उपाध्यायश्रीचारित्रनन्दिविरचिता

स्याद्वादपुष्पकलिका

स्वोपज्ञ‘कलिकाप्रकाश’वृत्तियुता

उपाध्यायश्रीचारित्रनन्दिविरचिता

स्याद्वादपुष्पकलिका

स्वोपज्ञ'कलिकाप्रकाश'वृत्तियुता

श्रुतभवन संशोधन केन्द्र

ग्रंथनाम	:	**स्याद्वादपुष्पकलिका (सटीका)**
विषय	:	**तत्त्वज्ञान, द्रव्यानुयोग**
भाषा	:	**संस्कृत**
कर्ता	:	**उपाध्यायश्रीचारित्रनन्दी**
टीकाकर्ता	:	**उपाध्यायश्रीचारित्रनन्दी**
संपादक	:	**मुनि वैराग्यरति विजय**
प्रकाशक	:	**श्रुतभवन संशोधन केन्द्र - शुभाभिलाषा रीलीजीयस ट्रस्ट**
आवृत्ति	:	**प्रथमा, वि.सं. २०७१ (ई.२०१५)**
पत्र	:	**३२ + १८४**

〜: प्राप्तिस्थान :〜

पूना : **श्रुतभवन संशोधन केन्द्र,**
४७-४८, अचल फार्म, सच्चाइ माता मंदिर के आगे,
कात्रज, पुणे-४११ ०४६
मो. ०७७४४००५७२८ (९.०० से ५.००)
www.shrutbhavan.org Email : shrutbhavan@gmail.com

अहमदबाद : **श्रुतभवन संशोधन केन्द्र, (अमदाबाद शाखा)**
C/o. उमंग शाह
बी-४०२, तीर्थराज कॉम्पलेक्स, वी. एस. हॉस्पिटल के सामने,
मादलपुर, अहमदाबाद. मो. ०९८२५१२८४८६

प्रकाशकीय

स्याद्वादपुष्पकलिका श्री संघ के करकमल में समर्पित करते हुए हमे आनन्द की अनुभूति हो रही है। श्रुतभवन संशोधन केन्द्र के सन्निष्ठ समर्पित सहकारिगण की कडी महेनत और लगन से दुर्गम कार्य सम्पन्न हुआ है। इस अवसर पर श्रुतभवन संशोधन केन्द्र के संशोधन प्रकल्प हेतु गुप्तदान करने वाले दाता एवं श्रुतभवन संशोधन केन्द्र के साथ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुडे हुए सभी महानुभावों का हार्दिक अभिनन्दन करते है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन का अलभ्यलाभ **श्री मर्चंट सोसायटी जैन संघ, पालडी, अमदावाद** ने प्राप्त किया है। आपकी अनुमोदनीय श्रुतभक्ति के लिये हम आपके आभारी है।

श्रुतभवन संशोधन केंद्र की समस्त गतिविधियों के मुख्य आधारस्तंभ मांगरोळ (गुजरात) निवासी श्री चंद्रकलाबेन सुंदरलाल शेठ परिवार एवं भाईश्री (इंटरनेशनल जैन फाउंडेशन, मुंबई) के हम सदैव ऋणी है।

भरत शाह

(मानद अध्यक्ष)

श्रुतप्रेमी

वि.सं.२०४८ एवं वि.सं.२०५८ के चातुर्मास की स्मृति में
संघ की धर्माराधना की प्रेरणा को जगानेवाले
पूज्यपाद तपागच्छाधिराज
आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.के शिष्यरत्न
प्रवचनकार बंधुबेलडी
पूज्य गणिवरश्री वैराग्यरति विजयजी म.सा.
एवं
पूज्य मुनिराजश्री प्रशमरति विजयजी म.सा.की
पावन प्रेरणा से

श्री मर्चंट सोसायटी जैन संघ

जैन मर्चंट सोसायटी, पालडी, अमदावाद-७
आपके श्रुतभक्ति की खूब अनुमोदना

संपादकीय :

प्रयोजन:

'स्याद्वादपुष्पकलिका' द्रव्यानुयोग का ग्रंथ है। द्रव्यानुयोग विषयक ग्रंथ की परिभाषा कठिन होती है, अतः वे दुरूह होते है। उसके अध्येता भी अल्प होते हैं। इसलिये द्रव्यानुयोग विषयक ग्रंथ की संख्या अति अल्प है। परिभाषागत कठिनाई के कारण द्रव्यानुयोग को सरल भाषा में प्रस्तुत करना चुनौती है। 'स्याद्वादपुष्पकलिका' यद्यपि अर्वाचीन ग्रंथ है फिर भी वह द्रव्यानुयोग को सरल भाषा में प्रस्तुत करता है, अतः उसका समीक्षात्मक संपादन करना आवश्यक है।

ग्रंथकर्ता:

'स्याद्वादपुष्पकलिका' के कर्ता खरतर गच्छ के महामनीषी वाचक श्री'संयम' है। उनके गुरु का नाम उपाध्यायश्री नवनिधि अथवा निधिउदय है। प्रशस्ति के अनुसार उनकी गुरुपरंपरा इस प्रकार है। खरतर गच्छ में आ.श्रीजिनसिंहसूरिजी हुए। उनके शिष्य आ.श्रीजिनराजसूरिजी हुए। उनके शिष्य श्री राम नामक उपाध्याय थे[१], उनके शिष्य श्री पद्महर्ष नामक उपाध्याय थे। उनके शिष्य श्री महिमंत्र(?) नामक उपाध्याय थे। उनके शिष्य श्री निधि नामक उपाध्याय थे। उनके शिष्य चारित्रनन्दी नामक उपाध्याय थे।

आ.श्रीजिनसिंहसूरिजी → आ.श्रीजिनराजसूरिजी → श्री राम उपाध्याय → श्री पद्महर्ष उपाध्याय → श्री महिमंत्र(?) उपाध्याय → श्री निधि उपाध्याय → श्री संयम अथवा चारित्र उपाध्याय।

ग्रंथकर्ता ने अपना समय वि.सं.१९१४-प्रशस्ति में स्वयं बताया है[२]। ग्रंथकार एवं उनकी रचनाओं के विषय में साक्षर उपाध्याय **श्री विनयसागरजी** का स्वतंत्र लेख इसी पुस्तक में अन्यत्र प्रस्तुत है।

पाण्डुलिपि परिचय:

स्याद्वादपुष्पकलिका की केवल दो पाण्डुलिपियां प्राप्त हुई है। एक पाण्डुलिपि लालभाई दलपतभाई संस्कृति विद्यामन्दिर, अमदावाद की है। इसे यहां पर **ला.** संज्ञा दी गई है। सन् २००७ में मनीषीप्रवर प.पू.मुनिराज **श्री धुरंधरविजयजी** म. अमदावाद की विहारयात्रा में थे। अपनी दीर्घदृष्टि से आपने अनेक उपयोगी पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपि(झेरॉक्स) करवाई थी। उनमें से स्याद्वादपुष्पकलिका की प्रतिलिपि आपने मुझे संपादन हेतु दी, अतः मैं आपका ऋणी हूँ। **ला.** प्रत में केवल मूल श्लोक ही है। केवल मूल श्लोक के आधार पर ग्रंथ का अर्थघटन करना कठिन लग रहा था, अतः संपादन में बडी कठिनाई हो रही थी। इस प्रत के आधार पर संपादन प्रवर्तमान था तब ही 'अहो श्रुतज्ञानम्' के माध्यम से ज्ञात हुआ कि प.पू.मुनिराज **श्री मोक्षांगरत्नविजयजी** म.भी इसी ग्रंथ का संपादन कर रहे हैं। मेरी प्रार्थना स्वीकार कर

---

१. श्रीमत्खरतरे गच्छे जिनसिंहपदाऽधिपः। सूरिः श्रीजिनराजोऽभूद्भव्याऽम्भोजदिनेश्वरः॥१॥
सूरिपादाऽम्बुजे भृङ्गः श्रीरामपाठकोऽभवत्। जिनशासनधौरेयः पद्महर्षसुवाचकः॥२॥
गुरुदृष्टिसरोहंसाः सुखनन्दनकाञ्चनाः। महिमन्त्रो(?)पाध्यायाः बभूवुः श्रुतिपारगाः॥३॥
तच्छिष्यो निध्युपाध्यायोऽभवत्प्रौढशिरोमणिः। चारित्रवाचकश्चक्रे गुरुपादप्रसादतः॥४॥

२. अथ वत्सरदिवसगाथामाह-वत्सराऽब्धीन्दुखेटेन्दौ (वि.सं. १९१४) धर्मजन्यसुवासरे।

आपने यह काम स्थगित कर दिया, अतः मैं आपका ऋणी हूँ। तत्पश्चात् न्यायविशारद वरेण्य विद्वान् **प.पू.आ.दे.श्री विजयजयसुंदरसू.म.**का पत्र मिला कि- आपके पास स्याद्वादपुष्पकलिका की पाण्डुलिपि है। आप चालीस साल से इसका संपादन करना चाहते थे किंतु कारणवशात् या संयोगवशात् हो न सका, अतः वे यह कार्य मुझे सौंप रहे हैं। आपने मुझे इस कार्य के योग्य समझा यह मेरा बडा सद्भाग्य है। मैं आपका अतीव आभारी हूँ। यह पाण्डुलिपि संवेगी (पगथियानो) उपाश्रय के हस्तप्रतसंग्रह की है। इसे यहां पर **सं.** संज्ञा दी गई है। इस पाण्डुलिपि में मूल ग्रंथ के साथ कर्ता ने स्वयं बनायी हुई व्याख्या भी है। इसके कारण अर्थघटन और संपादन में प्रतीत होने वाली कठिनाई की समस्या कम हो गई।

ला.- यह पाण्डुलिपि लालभाई दलपतभाई संस्कृति विद्यामन्दिर, अमदावाद की है। (क्रमांक-२०८६९) इसके १६ पत्र है। प्रत्येक पत्र पर १० पंक्तियाँ है। प्रत्येक पंक्ति में ३४ अक्षर है। अक्षर सुवाच्य है। इसमें केवल मूल ग्रंथ ही है। विषय के अनुरूप शीर्षक दिये है। अंत में लेखक की प्रशस्ति नहीं है।

सं.- यह पाण्डुलिपि संवेगी (पगथियानो) उपाश्रय के हस्तप्रतसंग्रह की है। इस पाण्डुलिपि में मूल ग्रंथ के साथ कर्ता ने स्वयं बनायी हुई व्याख्या भी है। इसके ५१ पत्र है। प्रत्येक पत्र पर १५ पंक्तियाँ है। प्रत्येक पंक्ति में ४१ अक्षर है। अक्षर सुवाच्य है। इस प्रत में **ला.**प्रत के अनुसार शीर्षक नहीं है। अंत में लेखक की प्रशस्ति इस प्रकार है**-**

लेखक प्रशस्तिः-संवत् १९१४ ना आश्वीन कृष्ण ९ रवीवासरे ली. व्यास. सोमेश्वर शीवलाल स्तम्भतीरथे ठेकाणु छतरीसीपोलमध्ये ली. बोरपीपला आगल धरमशालामां॥ श्रीरस्तु कल्याणमस्तु शुभं भवतु॥श्रीः॥श्रीः॥श्रीः॥

इस प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि-ग्रंथ का रचनाकाल और लेखनकाल एक ही है। ग्रंथकर्ता ने लिखी हुई अथवा स्वयं देखी हुई प्रति के आधार पर यह प्रति लिखी गई है अर्थात् यह प्रति उपमूलादर्श है। संग्राहक[१] ने इस प्रति की प्रतिलिपि करवाते समय मूलादर्श की प्रशस्ति भी लिखी है। स्याद्वादपुष्पकलिका की केवल ये दो पाण्डुलिपियाँ हमें उपलब्ध हुई है।

संपादनपद्धतिः

स्याद्वादपुष्पकलिका के संशोधन में तीन प्रमुख समस्या थी।

---

१ सङ्ग्राहकप्रशस्तिः-

आसीन्नाशित-पाप-ताप-निकरो निर्मूलिताहङ्कृतिरर्हच्छास्त्रसमुद्रपारगमनो निस्तन्द्रचन्द्राननः॥
श्रीश्वेताम्बर-सङ्घ-मङ्गल-मुखं कर्मद्रु-दावानलः सूरिर्भूरिगुणालयोऽत्र विजयानन्दोऽह्यमन्दाशयः॥१॥
यो लुम्पाकमतं विहाय रभसा निर्वाणविघ्नप्रदं संवेगामृतपान-पुष्टचरितः सत्यं मतं सङ्गतः।
योऽनेक-प्रतिपक्ष-पण्डित-गणं निर्जित्य जातोदयः स्वार्गं धाम जगाम काममथनश्चात्मादिरामाभिधः॥२॥
साध्वध्वाधमतादुर्व्यसनतो नानानरानावयन् भूपान् धर्मसुधां वटोदरनरेशादीन् बहून्याययन्।
व्याख्यानात्प्रतिबोध्य धर्मरहितान् जीवावनं पालयन् मान्यश्रीविजयाङ्कितः कमलनामाचार्य एको बभौ॥३॥
सिद्धान्ताद्विपरीतवर्तनरता दूरीकृताः स्वापरे येनाकारि दिगन्तकीर्तिरमला दत्त्वा च सदेशनाम्।
तं सङ्घो रुचिरेऽणहिल्लनगरेऽद्रीब्ध्यङ्कभूवत्सरे प्रेम्णा स्थापितवान् मुनीन्द्रविजयानन्दीयसत्पट्टके॥४॥
आत्मारामममुनीश्वरस्य विदुषः शिष्यो विपश्चिद्वरः पूर्वोक्तस्य च पट्टदानसमये श्रीमानुपाध्यायकः।
यत्सेवाकरणाच्च मूकबधिरः श्रोता च वक्ताऽभवत् पूज्योऽयं जयति स्म वीरविजयः प्रज्ञानुभावाञ्चितः॥५॥

१) इस ग्रंथ की केवल एक ही पाण्डुलिपि है।

२) लेखन की दृष्टि से पाण्डुलिपि अशुद्ध है।

३) मूल ग्रंथ भी व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है।

इन समस्याओं के कारण पाठसंशोधन में कठिनाई का अनुभव हुआ। समीक्षात्मक-पाठसंपादन के अनुलेखनीय-संभावना और आंतर-संभावना के सिद्धांतों का उपयोग करके इस ग्रंथ को यथासंभव शुद्ध करने का प्रयास किया है। पाठसंशोधन के मार्गदर्शक नियम इस प्रकार है।

(१) मूल पाठ की सुरक्षा को प्रधानता देना।

(२) स्पष्ट रूप से प्रतीत होने वाली लेखककृत (लहिया की) अशुद्धियों का (जैसे ह्रस्व-दीर्घ की मात्रा इ.) मूल में ही संशोधन करना। अशुद्धियों के विषय में जहां संदेह हो वहां मूल पाठ को कायम रख कर संशोधित पाठ पादटीप में देना अथवा मूल में ही वृत्ताकार कोष्टक में देना।

(३) ग्रन्थगत व्याकरण संबंधि, छंद संबंधि और वाक्यरचना संबंधि अशुद्धियों के विषय में भी स्पष्ट रूप से प्रतीत होने वाली अशुद्धियों का मूल में ही संशोधन करना किंतु मूल पाठ पादटीप में देना। जहाँ संदेह हो वहां मूल पाठ को कायम रख कर संशोधित पाठ पादटीप में देना।

(४) जहाँ संभव हो वहाँ मूल पाठ को सहायक सामग्री (Testimonia) का आधार ले कर शुद्ध करना। जैसे-श्लोक क्रमांक ७४ का संदर्भ तत्त्वार्थाधिगमसूत्र की सिद्धसेनीय टीका का आधार ले कर शुद्ध किया है। स्याद्वादपुष्पकलिका पर उपा. श्री देवचंद्रजी म. कृत 'नयचक्रसार' नामक कृति का अत्यधिक प्रभाव है, अतः उसके आधार पर बहोत सारी अशुद्धियों का परिमार्जन हो सका है। कुछ एक संदेहास्पद स्थल का अर्थघटन भी सुकर हुआ है।

(५) चूंकि ग्रंथ अर्वाचीन है अतः अनुलेखनीय-संभावना और आंतर-संभावना के सिद्धांतों का उपयोग करके पाठ संशोधन तथा पाठसंस्करण करना अनिवार्य समझना।

प्रथम परिशिष्ट में मूल ग्रंथ के साथ विषय के अनुरूप शीर्षक दिये है वे **ला.** प्रति में है, **सं** प्रति में नहीं है। संभवतः **सं** प्रति में टीका होने से शीर्षक देना आवश्यक नहीं समझा होगा। दूसरे परिशिष्ट में स्याद्वादपुष्पकलिका की मूल कारिकाओं का पदानुक्रम है। तीसरे परिशिष्ट में स्याद्वादपुष्पकलिका की व्याख्या में उद्धृत शास्त्रपाठों का संकलन है। चतुर्थ परिशिष्ट में स्याद्वादपुष्पकलिका में वर्णित ग्यारह द्वारों के विषय कोष्टकाकार में प्रस्तुत किये है। द्रव्यानुयोग की परिभाषा स्पष्ट करने हेतु पांचवे परिशिष्ट में स्याद्वादपुष्पकलिका की टीका में प्रस्तुत व्याख्याओं का संकलन किया है। छठवें परिशिष्ट में पारिभाषिक शब्दकोश का संकलन है। जैसा कि पूर्व में कहा कि-स्याद्वादपुष्पकलिका उपा. श्री देवचंद्रजी म. कृत 'नयचक्रसार' नामक कृति की अनुकरणात्मक रचना है, अतः सातवें परिशिष्ट में यथादृष्ट 'नयचक्रसार' का उद्धरण प्रस्तुत किया है। सामग्री के अभाव में पाण्डुलिपि के आधार पर संशोधन और संपादन संभव नहीं हुआ। परिशिष्ट सामग्री की संकलना में सुविधा हेतु ग्रंथ को परिच्छेदों में विभाजित किया है।

कृतज्ञता:

मेरे परम उपकारी **परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी महाराजा, पितृगुरुदेव परम पूज्य मुनिप्रवरश्री संवेगरति विजयजी म.सा.**की पावन कृपा, **बंधुमुनिवरश्री प्रशमरतिविजयजी म**. का स्नेहभाव एवं **परम पूज्य साध्वीजी श्रीहर्षरेखाश्रीजीम. की शिष्या साध्वीजी श्रीजिनरत्नाश्रीजीम**.का निरपेक्ष सहायकभाव मेरी प्रत्येक प्रवृत्ति की आधारशिला है। आपके उपकारों से उऋण होना संभव नहीं है।

संपादन के इस कार्य में मुझे **पूज्य आ.श्री मुनिचंद्रसू.म**. का मार्गदर्शन, प्रेरणा एवं सहायता प्राप्त होती रही है। आपकी उदारचित्तता को शत शत नमन। संपादन कार्य में श्रुतभवन संशोधन केन्द्र के सभी संशोधन सहकर्मियों ने भक्ति से सहकार्य किया है, अतः वे साधुवादार्ह है।

इस ग्रंथ का यथामति शुद्ध संपादन करने का प्रयास किया है। फिर भी प्रमादवश कुछ अशुद्धियाँ रह गई हो, तो विद्वान् पाठकगण सम्पादक के प्रमाद को और भूल को क्षमा प्रदान करेंगे ऐसी विनम्र प्रार्थना है।

- वैराग्यरतिविजय

श्रुतभवन,पुणे

२७.५.१३

विषयानुक्रमः

क्र.	विषयाः	गाथा क्र.
१	मङ्गलाचरणम्	१
२	उद्देशग्रन्थः	२
३	षड्द्रव्यवर्णनम्	२
४	एकादशमूलद्वाराणि	३
५	प्रथमं लक्षणद्वारं द्वितीयस्य गुणद्वारस्य उत्तरद्वाराणि च	४
६	त्रयोदश सामान्यगुणाः	५
७	अष्टादश विशेषगुणाः	६
८	तृतीयस्य पर्यायद्वारस्य उत्तरद्वाराणि	८
९	पर्यायस्य षड्भेदाः	९
१०	चतुर्थस्य स्वभावद्वारस्य उत्तरद्वाराणि, त्रयोदश सामान्यस्वभावाः	१०
११	दश विशेषस्वभावाः	११
१२	पञ्चमस्य अस्तिकायद्वारस्य उत्तरद्वाराणि	१२
१३	षष्ठस्य नयद्वारस्य उत्तरद्वाराणि, द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः	१३
१४	पर्यायार्थिकनयस्य षड्भेदाः	१५
१५	नयानां सप्त भेदाः	१७
१६	नैगमनयस्य आरोपादि उत्तरभेदाः	१९
१७	सङ्ग्रहनयस्य द्वौ भेदौ	२२
१८	सङ्ग्रहनयस्य चत्वारो भेदाः	२४
१९	व्यवहारनयस्य द्वौ भेदौ	२५
२०	व्यवहारनयस्य षड् भेदाः	२९
२१	ऋजुसूत्रनयविचारः	३०
२२	शब्दनयविचारः	३१
२३	समभिरूढनयविचारः	३४
२४	एवम्भूतनयविचारः	३५
२५	सप्तमस्य प्रमाणद्वारस्य उत्तरद्वाराणि	३६
२६	अष्टमस्य भावद्वारस्य उत्तरद्वाराणि	३७
२७	नवमस्य जीवद्वारस्य दशमस्य अनुयोगद्वारस्य च उत्तरद्वाराणि	४३
२८	एकादशस्य क्षेत्रद्वारस्य उत्तरद्वाराणि	४४

२९	द्रव्यविचारः	४५
३०	धर्माधर्मास्तिकायौ	४५
३१	आकाशास्तिकायः	४५
३२	पुद्गलास्तिकायः	४५
३३	अस्तिकायपदे अस्तिपदकायपदयोः सार्थक्यविचारः	४५
३४	अस्तिकायपदे कायपदग्रहणस्य प्रयोजनम्	४५
३५	धर्मास्तिकायादिद्रव्याणां विशिष्टक्रमसन्निवेशप्रयोजनम्	४५
३६	प्रथमं द्रव्यलक्षणद्वारम्	४७
३७	नैयायिकोक्तलक्षणलक्षणे दोषप्रदर्शनम्	४७
३८	स्वाभिमतलक्षणलक्षणम्	४७
३९	कार्यभेदेन द्रव्ये भेदाः	४९
४०	कालभेदेन द्रव्ये भेदः	४९
४१	द्रव्यस्य मुख्यलक्षणम्	५०
४२	तत्त्वार्थगतद्रव्यलक्षणम्	५१
४३	व्यवहारनयेन द्रव्यलक्षणम्	५२
४४	द्रव्यप्रस्तावे नैयायिकाभिमतषोडशपदार्थखण्डनम्	५२
४५	वैशेषिकाभिमतसप्तपदार्थखण्डनम्	५२
४६	अद्वैतवादखण्डनम्	५२
४७	बौद्धमतखण्डनम्	५२
४८	ईश्वरकर्तृत्वखण्डनम्	५२
४९	मीमांसकमतखण्डनम्	५२
५०	द्वितीयं गुणद्वारम्	५४
५१	द्रव्येषु सामान्यगुणाः	५५
५२	द्रव्येषु विशेषगुणाः	५७
५३	तृतीयं पर्यायद्वारम्, द्रव्यपर्यायः, द्रव्यव्यञ्जनपर्यायः	६१
५४	गुणपर्यायः, गुणव्यञ्जनपर्यायः	६२
५५	द्रव्येषु स्वभावविभावपर्यायाः	६३
५६	चतुर्थं स्वभावद्वारम्	७२
५७	कालजीवयोः स्वभावाः	७३
५८	द्रव्याणां गुणपर्यायवत्त्वख्यापनम्	७४
५९	तत्त्वार्थगत-'द्रव्याणि जीवाश्च' इति सूत्रविमर्शः	७४
६०	तत्त्वार्थगत-'नित्यावस्थितान्यरूपाणि' इति सूत्रविमर्शः	७४

६१	तत्त्वार्थगत-'नित्यावस्थितान्यरूपाणि' इति सूत्रस्य व्याख्याभेदाः	७४
६२	द्रव्येषु द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकयोः प्रधानगुणभावविवक्षा	७४
६३	नित्यत्वनिर्वचनम्	७४
६४	अवस्थितशब्दार्थः	७४
६५	अन्यः अवस्थितशब्दार्थः	७४
६६	तत्त्वार्थसूत्रगतरूपशब्दार्थः	७४
६७	मूर्तत्वगुणानुसारिपुद्गललक्षणम्	७७
६८	नित्यतानिर्वचनम्	७७
६९	'रूपिणः पुद्गलाः' इति सूत्रस्य विवरणम्	७७
७०	द्रव्यगुणयोर्भेदाभेदः	७७
७१	धर्मादीनामेकानेकद्रव्यत्वम्	७८
७२	धर्मादीनां सक्रियत्वनिष्क्रियत्वे	७९
७३	धर्मादीनां सप्रदेशाप्रदेशत्वविचारणा	७९
७४	धर्मादिद्रव्याणां प्रदेशावयवनियमः	८१
७५	जीवद्रव्यस्य प्रदेशनियमः	८२
७६	आकाशद्रव्यस्य प्रदेशनियमः	८२
७७	आकाशस्य व्ययोत्पादौ	८२
७८	पुद्गलप्रदेशसङ्ख्या	८३
७९	परमाणोः अप्रदेशत्वस्थापनम्	८३
८०	धर्मादिद्रव्याणां स्वान्यप्रतिष्ठितत्वविचारः	८३
८१	षड्द्रव्येषु निश्चयव्यवहारपक्षौ	८४
८२	प्रकारान्तरेण द्रव्याणां मूलसामान्यस्वभावाः	८५
८३	अस्तित्वादिषट् मूलसामान्यस्वभावाः	८७
८४	आविर्भावलक्षणम्	८८
८५	तिरोभावलक्षणम्	८९
८६	प्रमेयत्वलक्षणम्	९०
८७	सत्त्वलक्षणम्	९१
८८	अगुरुलघुलक्षणम्	९१
८९	द्रव्येषु नित्यादिस्वभावप्रदर्शनम्	९५
९०	कूटस्थनित्यस्वभावः	९५
९१	पारिणामिकनित्यस्वभावः	९५
९२	नित्यानित्यस्वभावास्वीकारे दोषः	९६

९३	नित्यानित्ययोः परस्पराभावे दोषः	९७
९४	अनेकस्वभावविचारः	९८
९५	एकानेकयोः परस्पराभावे दोषः	९९
९६	अस्तिनास्तिस्वभावविचारः	१००
९७	सप्तभङ्गी	१००
९८	त्रयः सकलादेशाः	१०५
९९	चत्वारः विकलादेशाः	१०७
१००	जीवद्रव्ये सप्तभङ्गी	११२
१०१	सकलादेश-विकलादेश प्ररूपणा	११९
१०२	अस्तित्वनास्तित्वस्वभावाभावे दोषः	१२२
१०३	भेदाभेदस्वभावविचारः	१२४
१०४	भेदाभेदस्वभावाभावे दोषः	१२५
१०५	भव्याभव्यस्वभावविचारः	१२६
१०६	भव्याभव्यस्वभावाभावे दोषः	१२८
१०७	वक्तव्यावक्तव्यस्वभावविचारः	१२९
१०८	वक्तव्यावक्तव्यस्वभावाभावे दोषः	१३०
१०९	परमस्वभावविचारः	१३१
११०	अन्ये स्वभावाः	१३२
१११	स्वभावानाम् अनभिलाप्यत्वम्	१३३
११२	जीवस्याष्टप्रदेशानां स्थिरत्वम्	१३३
११३	विशेषस्वभावविचारः	१३४
११४	पञ्चमम् अस्तिकायद्वारम्	१३८
११५	षष्ठं नयद्वारम्, चतुर्विधनिक्षेपविचारः	१३९
११६	नामस्थापनानिक्षेपयोः द्वौ द्वौ भेदौ	१४०
११७	द्रव्यनिक्षेपविचारः	१४१
११८	भावनिक्षेपविचारः	१४३
११९	नामादयो निक्षेपा भावाभावे निष्फलाः	१४३
१२०	नयपदार्थविचारः	१४४
१२१	नयभेदाः	१४५
१२२	द्रव्यार्थिकनयविचारः	१४६
१२३	द्रव्यारोपविचारः	१४७
१२४	गुणारोपविचारः	१४८

१२५	कालारोपविचारः	१४९
१२६	हेत्वाद्यारोपविचारः	१५१
१२७	सङ्कल्पांशनैगमस्वरूपम्	१५२
१२८	सङ्ग्रहनयविचारः	१५५
१२९	सामान्यस्य लक्षणम्	१५६
१३०	गुणपर्यायान्वितसामान्यस्वरूपम्	१५७
१३१	विशेषगुणाः	१५८
१३२	वस्तूनां षट् मूलसामान्यभेदाः	१५९
१३३	सामान्यविशेषस्वभावविचारः	१६०
१३४	द्रव्येषु सामान्यविशेषसङ्ग्रहनयनिरूपणम्	१६१
१३५	द्रव्येषु सामान्यविशेषविभागः	१६२
१३६	सङ्ग्रहनयस्य सङ्गृहीतादिभेदाः	१६३
१३७	सङ्ग्रहनयस्य भेदान्तरम्	१६५
१३८	व्यवहारनयविचारः	१६६
१३९	प्रवृत्तिव्यवहारविचारः	१६७
१४०	साधनाव्यवहारविचारः	१६८
१४१	अशुद्धसद्भूतासद्भूतव्यवहारविचारः	१७०
१४२	असद्भूतस्य संश्लिष्टासंश्लिष्टभेदौ	१७१
१४३	ऋजुसूत्रनयविचारः	१७३
१४४	शब्दनयविचारः	१७६
१४५	ऋजुसूत्रशब्दयोः परस्परभेदः	१८०
१४६	शब्दनयमादृत्य सप्तभङ्गी	१८२
१४७	समभिरूढनयविचारः	१८५
१४८	एवम्भूतनयविचारः	१८७
१४९	नयानां विभागः	१८९
१५०	नयानां शुद्धाशुद्धभावः	१९०
१५१	द्रव्यार्थिकाभासनयः	१९१
१५२	पर्यायार्थिकाभासः	१९२
१५३	नैगमनयाभासः	१९३
१५४	सङ्ग्रहनयाभासः	१९४
१५५	परापरसङ्ग्रहाभासः	१९५
१५६	व्यवहाराभासः	१९९

१५७	ऋजुसूत्रनयाभासः	२००
१५८	शब्दनयाभासः	२०२
१५९	समभिरूढनयाभासः	२०४
१६०	एवम्भूतनयाभासः	२०५
१६१	शब्दार्थनयाभासौ	२०६
१६२	अर्पितानर्पितनयाभासौ	२०७
१६३	ज्ञानाभासक्रियाभासौ	२०८
१६४	नयानां परस्परं प्रभूताल्पविषयविचारः	२०९
१६५	सप्तमं प्रमाणद्वारम्	२१५
१६६	प्रत्यक्षज्ञानभेदाः	२१६
१६७	परोक्षज्ञानभेदाः	२१७
१६८	अनुमानप्रमाणलक्षणम्	२१८
१६९	उपमानप्रमाणलक्षणम्	२१९
१७०	आगमप्रमाणलक्षणम्	२२०
१७१	अर्थापत्तिप्रमाणलक्षणम्	२२१
१७२	ज्ञानफलम्	२२२
१७३	दर्शनचारित्रयोः विचारः	२२३
१७४	प्रमाणस्य लक्षणम्	२२५
१७५	जीवस्य रत्नत्रयसाधनस्वरूपम्	२२७
१७६	अष्टमं भावद्वारम्	२२८
१७७	पुद्गलेषु भावाः	२२९
१७८	मोहनीयादिषु भावविचारः	२३०
१७९	गतिमाश्रित्य भावविचारः	२३१
१८०	जीवद्रव्ये भावविचारः	२३२
१८१	चतुर्दशगुणस्थानकेषु भावविचारः	२३३
१८२	चतुर्दशगुणस्थानकेषु क्षयोपशमभावविचारः	२३७
१८३	चतुर्दशगुणस्थानकेषु औदयिकभावविचारः	२४१
१८४	चतुर्दशगुणस्थानकेषु उपशमभावविचारः	२४६
१८५	चतुर्दशगुणस्थानकेषु क्षायिकभावविचारः	२४७
१८६	चतुर्दशगुणस्थानकेषु पारिणामिकभावविचारः	२४९
१८७	चतुर्दशगुणस्थानकेषु सान्निपातिकभावविचारः	२५१
१८८	नवमं जीवद्वारम्, दशमम् अनुयोगद्वारम्	२५३

१८९	एकादशं क्षेत्रद्वारम्	२५४
१९०	उपसंहारः	२५६
१९१	ग्रन्थकर्तुः व्याख्याकर्तुश्च प्रशस्तिः	२६०
१९२	प्रथमं परिशिष्टम्- स्याद्वादपुष्पकलिकामूलमात्रम्	
१९३	द्वितीयं परिशिष्टम्- गाथानामकारादिक्रमः	
१९४	तृतीयं परिशिष्टम्- स्थलसङ्केताः	
१९५	चतुर्थं परिशिष्टम्- विषयसारणिः	
१९६	पञ्चमं परिशिष्टम्- पारिभाषिकशब्दकोशः	
१९७	षष्ठमं परिशिष्टम्- व्याख्याकोशः	
१९८	सप्तमं परिशिष्टम्- विशेषनामकोशः	
१९९	अष्टमं परिशिष्टम्- श्रीदेवचन्द्रजीकृतो नयचक्रसारः	
२००	नवमं परिशिष्टम्- सङ्क्षेपसूचिः	
२०१	दशमं परिशिष्टम्- सम्पादनोपयुक्तग्रन्थसूचिः	

उपाध्याय श्रीचारित्रनन्दी की गुरुपरम्परा एवं रचनाएं

-महोपाध्याय विनयसागर

खरतरगच्छ के गणनायक जिनसिंहसूरि के पट्टधर जिनराजसूरि हुए। वे आगम साहित्य, काव्य और न्याय के बेजोड विद्वान् थे। जिनराजसूरि की ही शिष्य परम्परा में उपाध्याय निधिउदय हुए। सम्भव है इनका बाल्यावस्था का नाम नवनिधि हो। इन्हीं के शिष्य उपाध्याय चारित्रनन्दी हुए जो चुन्नीजी महाराज के नाम से प्रसिद्ध थे। चारित्रनन्दी जैन, न्यायदर्शन, काव्य, व्याकरण और पूजा साहित्य के उद्भट विद्वान् थे। उनके समय में काशी में जैन विद्वानों में इनका अग्रगण्य स्थान था। इनका साहित्यसृजन काल १८९० से लेकर १९१५ तक है।

खरतरगच्छ साहित्य कोश के अनुसार चारित्रनन्दी की निम्न रचनाएं प्राप्त होती हैं:-

१. स्याद्वादपुष्पकलिकाप्रकाश स्वोपज्ञ टीकासह, न्यायदर्शन, संस्कृत, १९१४, अप्रकाशित, हस्तप्रत-(१)सिद्धक्षेत्रसाहित्यमन्दिर, पालीताणा,(२) जिनयशसूरि ज्ञानभंडार. जोधपुर

२. प्रदेशी चरित्र, भाषा-संस्कृत, सर्ग-९, रचना संवत् १९१३, स्थान-स्तम्भतीर्थ। प्रशस्ति पद्य-

श्री सङ्घाग्रे च [व्या]ख्यानं विशेषावश्यकागमम्। (९.४३)

अर्थात् संघ के समक्ष विशेषावश्यक आगम का व्याख्यान देते थे। अप्रकाशित, हस्तप्रत-श्री पुण्यविजयजी संग्रह, एल.डी. इन्स्टीट्यूट, अहमदाबाद, क्रमाङ्क ४५९३

३. सद्रत्नसार्द्धशतक, प्रश्नोत्तर, संस्कृत, १९०९ इन्दौर, अप्रकाशित , हस्तप्रत- आचार्यशाखा ज्ञानभंडार, बीकानेर, कांतिसागरजी संग्रह

४. श्रीपालचरित्र, कथा चरित्र, संस्कृत, १९०८, अप्रकाशित, हस्तप्रत-तकान्तिविजय संग्रह, बडौदा १९१०, स्वयंलिखित

५. चतुर्विंशति जिन स्तोत्र, स्तोत्र, संस्कृत, १९वीं, अप्रकाशित, हस्तप्रत- खरतरगच्छ ज्ञानभंडार, जयपुर

६. प्रश्नोत्तररत्न, प्रश्नोत्तर, हिन्दी, २०वीं, अप्रकाशित, हस्तप्रत-सदागम ट्रस्ट, कोडाय

७. चौवीसी-जिन स्तवन चौवीसी, चौवीसी साहित्य, हिन्दी, २०वीं, अप्रकाशित, हस्तप्रत-खजांची संग्रह रा.प्रा.वि.प्र., जयपुर

८. इक्कीसप्रकारी पूजा, पूजा, प्राचीन हिन्दी, १८९५ बनारस, अप्रकाशित, हस्तप्रत- **विनयसागर**. प्रतिलिपि, हरिसागरसूरि ज्ञानभंडार, पालीताणा

९. एकादश अङ्ग पूजा, पूजा, हिन्दी, १८९५ अप्रकाशित, हस्तप्रत- नाहर संग्रह, कलकत्ता

१०. चौदह पूर्व पूजा, पूजा, हिन्दी, १८९५ अप्रकाशित, हस्तप्रत- नाहर संग्रह, कलकत्ता

११. नवपद पूजा, पूजा, राजस्थानी, २०वीं, अप्रकाशित, उल्लेख, जैन गुर्जर कविओ भाग-३, पृ.३३६

१२. पंच कल्याणक पूजा, भाषा-प्राचीन हिन्दी, रचना संवत्-१८८९ कलकत्ता, महताबचन्द के आग्रह से। अप्रकाशित, हस्तप्रत- **विनयसागर** प्रतिलिपि

१३. पंच ज्ञान पूजा, पूजा, हिन्दी, १९वीं, मुद्रित, जिन पूजा महोदधि, हस्तप्रत- **विनयसागर**. प्रतिलिपि

१४. समवसरण पूजा, पूजा, प्राचीन हिन्दी, १९१...खम्भात, अप्रकाशित, हस्तप्रत- नाहर संग्रह कलकत्ता

१५. नवपद चैत्यनंदन स्तवन स्तुति, गीत स्तवन, प्राचीन हिन्दी, २०वीं, मुद्रित, हस्तप्रत- हरिसागरसूरि ज्ञानभंडार, पालीताणा

पूजा साहित्य में चारित्रनन्दी ने इक्कीस प्रकारी पूजा, पंचज्ञान पूजा, एकादशअंग पूजा, चतुर्दशपूर्व पूजा एवं समवसरण पूजा आदि ऐसे अछूते विषयों को छुआ है जिन पर सम्भवतः आज तक किसी ने लेखनी नहीं चलाई है।

मेरे समक्ष प्रदेशी चरित्र, पंचकल्याण पूजा, पंचज्ञान पूजा और इक्कीस प्रकारी पूजा-चार कृतियाँ है। अतः इन चारों कृतियों के आधार पर ही उनकी गुरु परम्परा और उनके दीक्षान्त नामों पर विचार किया जाएगा।

कवि ने अपनी पूर्व गुरु परम्परा देते हुए प्रदेशी चरित्र में लिखा हैः-

श्रीमत्कोटिकसद्गणेन्दुदुकुलश्रीवज्रशाखान्तरे मार्तण्डर्षभसन्निभः खरतरव्योमाङ्गणे सूरिराट्।
श्रीमच्छ्रीजिनराजसूरिरभवच्छ्रीसिंहपट्टाधिपः श्रीजैनागमत्त्वभासनपटुः स्याद्वादभावान्वितः॥३३॥
तत्पादाम्बुजहंसरामविजयः संविग्न सद्वाचकोऽभूज्जैनागमसागरप्रमथनैस्तत्त्वामृतस्वीकृतः।
तद्वैनेयसुवाचको गुणनिधिः श्रीपद्महर्षोऽभवत् यः संविग्नविचारसारकुशलः पद्मोपमो भूतले॥३४॥
तच्छिष्यः सुखनन्दनो मतिपटुः सद्वाचको विश्रुतस्तत्त्वतत्त्वविचारणे पटुतरोऽभूत्तत्त्वरत्नोदधिः।
तद्वैनेयसुवाचकोऽब्धिजनकाद्वादीन्द्रचूडामणिर्ज्ञानध्यानसुरङ्गरङ्गत(ता)दृशोऽभूदात्मसंसाधकः॥३५॥
तत्पट्टे महिमाभिधस्तिलकयुक् सद्वाचकोऽभूद्वरः शिष्याणां हितकारको मुनिजनाच्छिक्षाप्रवृत्तौ पटुः।
तत्पट्टे कुमरुत्तरो मुनिवरोपाध्यायचित्राभिधः ख्यातोऽभूद्धरणीतले शमयुतो ब्रह्मक्रियायां रतः॥३६॥

दीक्षा ग्रहण के पश्चात् नाम परिवर्तन में नन्दी का प्रयोग लगभग ८ शताब्दियों से चला आ रहा है। वर्तमान संविग्न परम्परा के साधुजनों में यह नन्दी परम्परा लुप्त होकर एक नन्दी पर आश्रित हो गई है। जैसे खरतरगच्छ में गणनायक सुखसागरजी के समुदाय में सागर नन्दी का ही प्रयोग होता आ रहा है। पूज्य श्री मोहनलालजी महाराज के समुदाय में मुनि नन्दी का प्रचलन है और श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी म. के समुदाय में सागर नन्दी का प्रयोग था। था इसलिए कि वह परम्परा अब निःशेष हो गई है। हालांकि श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी महाराज ने प्रथम नन्दी चन्द्र की स्थापना करके तिलोकचन्द नामकरण किया था, किन्तु समुदाय की अभिवृद्धि न देखकर उन्होंने सागर नन्दी का ही आश्रय लिया।

खरतरगच्छ दीक्षा नन्दी सूची में (जो कि बीकानेर बडी गद्दी, आचार्य शाखा और जिनमहेन्द्रसूरि मण्डोवरी शाखा का) इन नामों का उल्लेख न होने से स्वयं संदेहग्रस्त था कि यह परम्परा जिनराजसूरि परम्परा, जिनसागरसूरि परम्परा और जिनमहेन्द्रसूरि की परम्परा में नहीं थे किन्तु किस परम्परा के अनुयायी थे यह मेरे लिए प्रश्न था। किन्तु पंचकल्याणक पूजा में कवि ने स्वयं यह उल्लेख किया हैः-

श्रीअक्षयजिनचन्द्रं पंचकल्याणयुक्तं सुनिधिउदयवृद्धिं भावचारित्रनन्दी।
भवजलधितरण्डं भक्तिभारैः स्तुवंति अविचलनिधिधामं ध्याययन्प्राप्नुवन्ति॥१॥
गणाधीशौदार्यो गुणमणिगणानां जलनिधिः, गभीरोभूच्छ्रीमान्प्रवरजिनराजाक्षगणभृत्।
सूरीन्द्रस्तत्पट्टे द्युमणिजिनरङ्गः सुरतरुः, बृहद्गच्छाधीशो खरतरगणैकाम्बुजपति॥२॥

क्रमादायातं श्रीजिनअक्षयसूरीन्द्रगणभृदभून्नृणां तापं तदुपशमनं पूर्णशशिभृत्।
गभस्तिस्तत्पट्टे भविकजसुबोधैकरसिको भुवौ विख्यातं श्रीप्रवरजिनचन्द्रो विजयते॥३॥

अर्थात् जिनराजसूरि के पश्चात् शाखाभेद होकर जिनरंगसूरि शाखा का उद्भव हुआ। जिनरंगसूरि परम्परा में श्रीजिनाक्षयसूरि के पट्टधर श्रीजिनचन्द्रसूरि के विजयराज्य में यह पूजा रची गई। चारित्रनन्दी की परम्परा जिनरंगसूरि शाखा की आदेशानुयायिनी रही। इस शाखा की दफ्तरवही प्राप्त न होने से इस परम्परा के उपाध्यायों का दीक्षा काल का निर्णय नहीं कर सका।

१९वीं शताब्दी के अन्त में और २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में काशी में चारित्रनन्दी और जिनमहेन्द्रसूरि अनुयायी नेमिचन्द्राचार्य और बालचन्द्राचार्य जैन विद्वानों में विख्यात् थे अर्थात् इनका बोलबाला था। इसी समय के विजयगच्छीय उपाध्याय हेमचन्द्रजी का कलकत्ता में प्रौढ विद्वानों में स्थान था।

चारित्रनन्दी के शिष्य चिदानन्द प्रथम थे। जिनका प्रसिद्ध नाम कपूरचन्द था। वे क्रियोद्धार कर संविग्नपक्षीय साधु बन गए थे और उनका विचरण क्षेत्र अधिकांशतः गुजरात ही रहा। चिदानन्दजी प्रथम अच्छे विद्वान् थे, अध्यात्म ज्ञानी थे और उन्हीं पर उनकी रचनाएं होती थी। उनकी लघु रचनाओं का संग्रह श्री चिदानन्द (कर्पूरचन्द्रजी) कृत पद संग्रह (सर्व संग्रह) भाग१ एवं २ जो कि श्री बुद्धि-वृद्धि कर्पूरग्रन्थमाला की ओर से शा. कुंवरजी आनंदजी भावनगर वालों की ओर से संवत् १९९२ में प्रकाशित हुआ है। चिदानन्दजी प्रथम द्वारा निर्मित साहित्य के लिए देखें-खरतरगच्छ साहित्य कोश।

चारित्रनन्दी का बाल्यावस्था का नाम चुन्नीलाल होना चाहिए। काशी में इनका उपाश्रय ज्ञानभंडार भी था। जो चुन्नीजी के नाम से चुन्नीजी महाराज का उपाश्रय एवं भंडार कहलाता था। चारित्रनन्दी के पश्चात् परम्परा न चलने से उस चुन्नीजी के भण्डार को तपागच्छाचार्य श्रीविजयधर्मसूरिजी महाराज काशी वालों ने प्राप्त किया और उसे आगरा में विजयधर्मलक्ष्मी ज्ञान मन्दिर के नाम से स्थापित किया। प्रसिद्ध तपागच्छाचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी महाराज ने प्रयत्नों से उस विजयधर्मलक्ष्मी ज्ञानमन्दिर, आगरा की शास्त्रीय सम्पत्ति को भी प्राप्त कर लिया जो आज श्री कैलाशसागरसूरि ज्ञान मन्दिर, कोबा को सुशोभित कर रहा है।

[अनुसंधान अंक-३८]

परिचय

स्याद्वादपुष्पकलिका द्रव्यानुयोग का ग्रंथ है। जैन वाङ्मय को अर्थ की दृष्टि से चार विभागो में बांटा गया है। चरणकरणानुयोग, धर्मकथानुयोग, गणितानुयोग, द्रव्यानुयोग। जिस सूत्र में आचार अर्थ प्रधान होता है वह सूत्र चरणकरणानुयोग कहा जाता है। जैसे ओघनिर्युक्ति, दशवैकालिक इत्यादि। जिस सूत्र में उपदेशपर धर्मप्रधान कथा होती है वह सूत्र धर्मकथानुयोग कहा जाता है। जैसे ज्ञाताधर्मकथांग, उवासगदसाओ इत्यादि। जिस सूत्र में गणित-संख्या प्रधान होती है वह गणितानुयोग कहा जाता है। जैसे जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि। जिस सूत्र में धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों का विचार प्रधान होता है वह द्रव्यानुयोग कहा जाता है। जैसे राजप्रश्नीय, नंदी, अनुयोगद्वार आदि। जैन दर्शन के अनुसार इस लोक में छह मूलभूत द्रव्य है। द्रव्य का अर्थ है वह निराकार (Formless) पदार्थ जो साकार में (in form) बदलता है। सत् पदार्थ के दो अंश होते है। एक अंश अपरिवर्तनशील होता है और दूसरा निरंतर परिवर्तनशील होता है। अपरिवर्तनशील अंशको द्रव्य कहते है और परिवर्तनशील अंश को पर्याय कहा जाता है। हमेशा द्रव्य के साथ रहनेवाला पर्याय गुण कहा जाता है और गुण के पर्याय को पर्याय कहा जाता है। जैसे ज्ञान आत्मा का अविनाभावि पर्याय होने से गुण है और घटज्ञान उसका पर्याय है। गुण और पर्याय से सहित सत् पदार्थ को 'द्रव्य' कहा जाता है।

यह विश्व पर्यायों का महासागर है। जिस तरह समंदर में अनंत लहर उठती है और विलीन होती है फिर भी समंदर समंदर ही रहता है। उसी तरह प्रत्येक द्रव्य पर्यायों की अनंत लहरों का आश्रय है।

इस विश्व में मूलभूत छह द्रव्य है। छहों द्रव्य गुण और पर्याय को धारण करते है। द्रव्य के मूलभूत स्वभाव और विश्व व्यवस्था के संबंध में उनके प्रधान की चर्चा द्रव्यानुयोग में होती है। स्याद्वादपुष्पकलिका का प्रधान विषय यही है। द्रव्य का अन्य द्रव्य के साथ क्या संबंध है? द्रव्य का अपने गुण और पर्याय के साथ क्या संबंध है? पर्याय का अन्य पर्यायों के साथ क्या संबंध है? इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने हेतु द्रव्य के भीतर उतरना जरूरी है।

स्याद्वादपुष्पकलिका में छह द्रव्यों के विषय में निरूपण किया है। यहां यह ज्ञातव्य है कि-जिस ग्रंथ में केवल पदार्थ निरूपण हो वह ग्रंथ नहीं कहा जाता, अपितु पदार्थों का उद्देश, लक्षण और परीक्षा किये जाते है वह ग्रंथ होता है। स्याद्वादपुष्पकलिका इस अर्थ में तर्कप्रधान ग्रंथ है। जैन शैली में पदार्थ का निरूपण द्वारों के माध्यम से किया जाता है। अति प्राचीन समय से अर्थात् आगमयुग से जैन ग्रंथ रचनाशैली द्वार प्रधान रही है। एक विषय को अनेक पहलू से सोचने के लिये ग्रंथकार विचारणीय वस्तुका विभाजन करते है। इस विभाजन को द्वार कहते है। इस ग्रंथ में छह द्रव्यों के विषय में ग्यारह विचारणीय वस्तु है। फिर एकएक द्वार में पुनः विचार विभाजन होता है। उसे उत्तरद्वार कहते है। इस तरह ग्रंथ में विषय विस्तार होता है। जैन ग्रंथों में विषयनिरूपण की यह परंपरा आगम कालीन है।

स्याद्वादपुष्पकलिका में छह द्रव्यों के उनके गुण और पर्याय के वर्तन में ग्यारह मूलद्वार बतायें गये हैं।

(१) लक्षण (२) गुण (३) पर्याय (४) स्वभाव (५) अस्ति (६) नय (७) प्रमाण (८) भाव (९) जीव (१०) अनुयोग (११) क्षेत्र

उपाध्यायश्री चारित्रनंदी ने १ से ४५ श्लोक पर्यंत एकादश द्वारों के उत्तर द्वारों के प्रकार प्रस्तुत किये है। उसके पश्चात् क्रमशः सभी द्वारों का विस्तृत विचार प्रस्तुत किया है। चतुर्थ परिशिष्ट में स्याद्वादपुष्पकलिका में वर्णित ग्यारह द्वारों के विषय कोष्टकाकार में प्रस्तुत किये है।

प्रथम लक्षण द्वार

इस ग्रंथ का प्रधान विषय द्रव्य और तत्संबंध गुण और पर्याय है। प्रथम लक्षण द्वार में द्रव्य, गुण अनेक पर्याय के लक्षण की मीमांसा की गई है। इस के कोई उत्तर भेद नहीं है।

दूसरा गुण द्वार

गुण द्रव्य के सदा सहभावि पर्यायों को गुण कहते है। गुण दो प्रकार के होते है सामान्य गुण और विशेष गुण। सामान्य गुण तेरह है। विशेष गुण अठारह है।

सामान्य गुण

द्रव्यत्व, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व, सत्त्व, अगुरुलघुत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व, सक्रियत्व, अक्रियत्व यह तेरह सामान्य गुण है।

उनकी व्याख्या इस प्रकार है—

१) अपने अपने प्रदेश समुदाय के साथ अखंड रहकर जो अपने स्वभाव-विभाव, गुण और पर्याय से द्रवित होता है और द्रवित होगा वह द्रव्य का स्वभाव द्रव्यत्व है।

२) अस्तिका भाव अस्तित्व है, अर्थात् सद्रूपता।

३) जो सामान्यविशेष स्वरूप है वह वस्तु है। वस्तु का स्वभाव वस्तुत्व है।

४) प्रदेश का स्वभाव प्रदेशत्व है। अविभागि (जिसके दो भेद नहीं हो सकते ऐसे) पुद्गल के परमाणु द्वारा रोका गया क्षेत्र भाग प्रदेश है।

५) प्रमाण से स्व और पररूप का ज्ञान होता है। प्रमाण से ज्ञेय वस्तु को प्रमेय कहते है। प्रमेय के भाव को प्रमेयत्व कहते है।

६) उत्पाद, व्यय और ध्रुवता से युक्त होकर जो अपने गुणपर्याय से व्याप्त होता है वह सत् है। ऐसे सत् के भाव को सत्त्व कहते है।

७) अगुरुलघु के भाव को अगुरुलघुत्व कहते है। जो वाणी का विषय नहीं बनते ऐसे सूक्ष्म प्रतिक्षण वर्तमान में अगुरुलघु कहते है। यहां पर अगुरुलघु भाव जिनागम के प्रमाणसे ही अभ्युगम्य है। (जिनागम के अलावा अगुरुलघु भाव का ग्राहक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। क्योंकि –अगुरुलघुभाव इतना सूक्ष्म है कि वह वाणी का विषय नहीं बनता।

८) चेतना के भाव को चेतनत्व कहते है। चेतनत्व यह भाव अनुभव से ज्ञेय है। देवसेन कृत आलाप पद्धति में यह बात कही है - चैतन्य अनुभूति है। अनुभूति क्रियारूप है। और क्रिया हमेशा मनवचन काया में अन्वित रहती है।

९) अचेतन के भाव को अचेतनत्व कहते है। अचैतन्य का अर्थ है – अनुभव का अभाव।

१०) मूर्त के भाव को मूर्तत्व कहते है। मूर्तत्व का अर्थ है – रूप-रस-गंध-स्पर्शादि मान् होना।

११) अमूर्त के भाव को अमूर्तत्व कहते है। अमूर्तत्व का अर्थ है – रूपादि रहित होना। अरूपी-अरसी-अगंधी-अस्पर्शवत् होना।

१२) सक्रिय के भाव को सक्रियत्व कहते है। सक्रियत्व का अर्थ है – क्रिया युक्त होना।

१३) अक्रिय के स्वभाव को अक्रियत्व कहते है। अक्रियत्व का अर्थ – क्रियारहित होना। इसप्रकार

सामान्यगुण तेरह है।

विशेष गुण

दर्शन-ज्ञान-सौख्य-वीर्य-चेतना-अचेतना-मूर्त-अमूर्त-सक्रिय-अक्रिय-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-गतिहेतु-स्थितिहेतु-अवगाहनाहेतु -वर्तनाहेतु यह अठारह विशेष गुण है। ज्ञान, विशेष अवबोध रूप है। दर्शन, सामान्य अवबोध रूप है। सुख, परम आनंद स्वरूप है। वीर्य, अनंत शक्ति की प्रवृत्ति स्वरूप है। पहले सामान्य गुणों में चेतन वगैरह छः गुण कहे है उनका यहां अनुसंधान है। चेतन होना, अचेतन होना, मूर्त होना, अमूर्त होना, सक्रिय होना, अक्रिय होना यह छहः विशेष गुण है। अन्य विशेष गुणों की व्याख्या स्पष्ट है।

तीसरा पर्याय द्वार

जो द्रव्य गुण के विकार है वे पर्याय कहे जाते हैं। द्रव्य में स्वभाव और विभाव रूप पर्याय होते है। स्वभाव के अनेक प्रकार होते हैं। विभाव के भी अनेक प्रकार होते हैं। द्रव्य के शुद्ध स्वरूप में परिणत होना स्वभावपर्याय कहलाता है। स्वभाव पर्याय छहः द्रव्य में होते हैं। उदाहरण के तौर पर जीव द्रव्य का चेतना यह शुद्ध स्वरूप है। उसका चेतना परिणाम स्वभाव पर्याय है। आकाश का अवगाह दान करना यह स्वभाव है। वही उसका शुद्ध स्वरूप है उसमें परिणत होना अर्थात् निरंतर अवगाह दान में प्रवृत्त होना आकाश का स्वभाव पर्याय है। जीव और पुद्गल के सिवा कोई द्रव्य अपने स्वभाव से अर्थात् शुद्ध स्वरूप से च्युत नहीं होते हैं अतः वे सहज ही स्वभाव पर्याय में होते हैं। जीव और पुद्गल का संबंध होने पर दोनों के स्वभाव में परिवर्तन होता है। सभी द्रव्य के स्वभाव पर्याय होते हैं।

विभाव पर्याय केवल जीव और पुद्गल द्रव्य का होता है। द्रव्य का अशुद्ध स्वरूप में परिणमन होना विभावि पर्याय है। विभावि पर्याय जीव और पुद्गल के ही होते हैं।

द्रव्यों के अगुरुलघु विकार को स्वभावपर्याय कहते है। स्वभावपर्याय के बारह भेद हैं। अनंतभागवृद्धि, असंख्यतभागवृद्धि, यह छहः वृद्धि रूप स्वभाव पर्याय है। उसी तरह अनंतभाग हानि, असंख्यात भाग हानि, संख्यात भाग हानि, संख्यात गुण हानि, असंख्यातगुण हानि, अनंतगुणहानि यह छहः हानिरूप स्वभावपर्याय है।

स्वभाव पर्याय और विभाव पर्याय द्रव्य व्यंजनपर्याय और गुणव्यंजन पर्याय के भेदसे दो दो प्रकारके होते हैं।

अथवा ग्रंथांतर से पर्याय छहः प्रकारके होते है। द्रव्यपर्याय, द्रव्यव्यंजनपर्याय, गुणपर्याय, गुणव्यंजन-पर्याय, स्वभावपर्याय, विभावपर्याय। द्रव्य के असंख्यप्रदेश होना, सिद्ध होना इत्यादि द्रव्यपर्याय है। द्रव्य में गतिविशेष गुण होते है जो अपने अपने अलग कार्य को प्रत्यक्ष रूप से कृति में लाते है उन्हें द्रव्यव्यंजन पर्याय कहते हैं। पर्यायों को पिंडरूप में बांधना, अनंत गुणों का अविभाग रूप में होना गुणपर्याय है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र के अवांतर भेद का ज्ञान गुणव्यंजन पर्याय है प्रत्येक द्रव्य में अगुरुलघु गुण है। जिसकी वजह से द्रव्य में गुणों की हानिवृद्धि होती है। अगुरुलघु गुण द्रव्य का स्वभाव है। छहः वृद्धि और छहः हानि के भेद से बारह प्रकारका स्वभाव पर्याय है।

मनुष्य-तिर्यंच-नरक-देव-गति का अनुभव करना जीव द्रव्यके विभाव पर्याय है। यह जीव के स्वधर्म नहीं है। कर्मोदय कृत है अतः विभाव है।

चौथा स्वभावद्वार

जो स्वभाव छहः भी द्रव्य में रहते है वे सामान्य स्वभाव है। जो स्वभाव कुछ एक द्रव्य में है कुछ एक द्रव्य में नहीं है वे विशेष स्वभाव कहे जाते हैं। सामान्य स्वभाव का अभाव कहीं उपलब्ध नहीं होता अतः उन्हे केवलान्वयि

कह सकते है। विशेष स्वभाव का अभाव उपलब्ध हो सकता है। अतः जिनका व्यतिरेक = सामान्य अभाव उपलब्ध है वे विशेष स्वभाव है।

नित्य, अनित्य, एक, अनेक, अस्ति, नास्ति, भेद, अभेद, भव्य, अभव्य, वक्तव्य, अवक्तव्य और परमस्वभाव यह तेरह द्रव्य के सामान्य स्वभाव है।

१) नित्य स्वभाव : द्रव्य के अनेक पर्याय और अनेक स्वभाव है। पर्याय और स्वभाव बदलने पर भी द्रव्यमें अलग-अलग 'यह वही द्रव्य है' ऐसा प्रत्यय जिस स्वभाव की वजह से होता है उसे नित्यस्वभाव कहते है।

२) अनित्य स्वभाव : द्रव्य अनेक पर्यायों में परिणत होता है। अनित्य स्वभाव है।

३) एक स्वभाव : हरेक स्वभाव एक ही द्रव्य में रहता है अतः एक प्रतीत होता है वह उसका एक स्वभाव है। (जैसे वस्त्र अनेक तंतुओ के जोड से बना है फिर भी एक ही दिखता है।

४) अनेक स्वभाव : द्रव्य एक ही है फिर भी अनेक प्रतीत होता हो यह अनेक स्वभाव है।

५) अस्ति स्वभाव : द्रव्य का अपना स्वभाव अविनाशित रूप से रहता है। वह अस्ति स्वभाव है। उदा. घट रूप में होना।

६) नास्ति स्वभाव : द्रव्यांतर का स्वभाव प्रस्तुत द्रव्य में नहीं है, यह नास्ति स्वभाव है। उदा. घट में पट के धर्म का अभाव है। अर्थात् घट में पट के धर्म नास्ति स्वभाव से है।

७) भेद स्वभाव : संज्ञा के भेद से, संख्या के भेद से, लक्षण के भेद से और प्रयोजन के भेद से द्रव्य में भेद होता है। उसे द्रव्य स्वभाव कहते है। उदा. द्रव्य गुणी है पर्याय गुण है ये दोनों के नाम = संज्ञा के भेद है अतः दोनों भिन्न है।

८) भव्य स्वभाव **:** कोई भी द्रव्य कालांतर में अन्य रूप में परिवर्तित हो सकता है। द्रव्य की इस परिणमन शक्ति को भव्य स्वभाव कहते है। (जैसे दूध दहीं में परिवर्तित हो सकता है। तो दूध में दहीं का भव्य स्वभाव कहते है। दार्शनिक परिभाषा में इसे कुर्वद्रूपत्व या स्वरूपयोग्यता कहते है।)

९) अभव्य स्वभाव **:** भव्य स्वभाव से विपरीत अभव्य स्वभाव है। अनेक रूप में परिवर्तित होते हुए भी द्रव्य अपने मूल धर्म से च्युत होकर यह कभी दूसरे द्रव्य के साथ एकरूप नहीं होता। यह उसका अभव्य स्वभाव है।

१०) वक्तव्य स्वभाव : प्रत्येक द्रव्य, द्रव्य के रूप में नित्य है और पर्याय के रूपमें अनित्य है। द्रव्य के रूप में वह 'इदं नित्यं' यह शब्दोच्चार का विषय बनता है। पर्याय के रूपमें 'अयमनित्यः' इस शब्दोच्चार का विषय बनता है। इस तरह द्रव्य पर्याय प्रत्येक रूपमें उच्चार का विषय बनना वक्तव्य स्वभाव है।

११) अवक्तव्य स्वभाव **:** एक द्रव्य एक साथ नित्य और अनित्य दोनों धर्म से समन्वित होकर (एक शब्द में) वाणी का विषय नहीं बन सकता। यह उसका अवक्तव्य स्वभाव है।

१२) परम स्वभाव **:** पारिणामिक भाव द्रव्य का परम स्वभाव है।

१३) पारिणामिक भाव का अर्थ है – अपने आप में रहना।

मूर्तस्वभाव-अमूर्तस्वभाव-चेतनस्वभाव-अचेतनस्वभाव-शुद्धस्वभाव-अशुद्धस्वभाव-एकप्रदेशस्वभाव-अनेकप्रदेशस्वभाव-विभाव और उपचरित स्वभाव यह दस विशेष स्वभाव है। छठवी गाथा में सामान्य गुण का विवरण करते समय मूर्त वगैरह की व्याख्या की गई है।

पांचवा अस्तिद्वार

अस्ति का अर्थ है प्रदेश, काय का अर्थ है समूह। जो द्रव्य प्रदेश के समूह रूप है उन्हें अस्तिकाय कहा जाता है। काल को छोडकर पांचो द्रव्य अस्तिकाय है। पांचो द्रव्य में प्रदेश समूहत्व यह धर्म समान है इसलिये उस धर्म = (अस्तित्वेन अस्तिकायत्व) को लेकर उनमें भेद नही हो सकता। अतः उनके जीव और अजीव ऐसे अवांतर भेद कह कर भेद किया गया है। जीवास्तिकाय के सिवा चार अस्तिकाय अजीव है। अस्तिकादिक द्रव्य जीव और अजीव के भेद से दो प्रकारके हैं। उसमें जीवास्तिकाय एक प्रकारका ही है। दूसरा अजीवास्तिकाय धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय यह चार प्रकार का है। अस्तिरूप में अस्तिकायो में कोई भेद नहीं है।

छठवा नयद्वार

वस्तु के अनेक अंश होते हैं – अर्थात् द्रव्य के अनंत पर्याय हैं। उन में से जो पर्याय वर्तमान उपयोग का विषय है उसको ग्रहण करके उससे व्यतिरिक्त अंश को गौण करनेवाला अध्यवसाय नय कहलाता है। मूल भेद से नय दो प्रकार का है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। द्रव्यार्थिक नय के दस भेद हैं।

१) **कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक** : जीव कर्म उपाधि से युक्त है फिर भी उसमें निरपेक्ष रहकर आत्मा के शुद्ध रूप का ग्रहण करनेवाली दृष्टि कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिक नय कहलाता है। 'संसारी आत्मा सिद्ध के समान शुद्ध है' यह विधान प्रस्तुत भेद का उदाहरण है। संसारी जीव कर्म युक्त है फिर भी इस विधान में इस अंश के प्रति निरपेक्षता देखने मिलती है। अथवा हरेक आत्मा के मध्यवर्ती आठ रुचक प्रदेश हमेशा कर्ममुक्त होते है। इस अपेक्षा से आत्मा शुद्ध है। यहां असंख्य कर्मोपाधियुक्त प्रदेश से निरपेक्ष होकर अष्ट रुचक प्रदेश के शुद्धता को ग्रहण होता है।

२) **द्रव्यार्थिक** : वस्तु में उत्पाद और व्यय पर्याय है। ध्रुवता द्रव्य है। जिस दृष्टि में वस्तु के उत्पाद और व्यय को गौण करके सिर्फ सत्ता को ही प्रधानता दी जाती है, वह दृष्टि सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक है। जैसे 'आत्मा नित्य है' 'द्रव्य नित्य है' इत्यादि प्रतीति। आत्मा और हर एक द्रव्य प्रतिक्षण उत्पाद-व्ययशाली है फिर भी इस नय में उसे गौण कर नित्य भाग को प्रधानता दी गई है। नयचक्र आलाप पद्धति में इसको सत्ताग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिक कहा गया है।

३) **एक द्रव्यार्थिक भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिक** : जिस दृष्टि में भेद की कल्पना को गौण किया जाता है वह एक द्रव्यार्थिक नय है। द्रव्य से गुण और पर्याय कथंचिद् भिन्न है। फिर भी उस भेद को भूलकर द्रव्य और गुणपर्याय को एक मानना यह इस नय की दृष्टि है। आत्मा द्रव्य है और मनुष्य पर्याय। वे दोनों भिन्न है फिर भी 'मनुष्य आत्मा है' इस तरह अभेद प्रतीति एकद्रव्यार्थिक नय का विषय है। इस तरह अभेद प्रतीति एकद्रव्यार्थिक नय का विषय है। नयचक्रालाप पद्धति में इसे भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहा है। द्रव्य अपने गुण और पर्याय स्वभाव से अभिन्न रूप है। यह इस नय का उदाहरण है।

४) **अशुद्ध द्रव्यार्थिक : (कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक)** आत्मा के शुद्ध स्वभाव को गौण करके अशुद्ध स्वभाव को प्रधानता देनेवाली दृष्टि अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। जैसे क्रोध वगैरह भाव कर्म से पैदा होते है। वे आत्मा के नहीं है। फिर भी उन्हें आत्मा के रूप में देखनेवाली दृष्टि इस नय की है। 'आत्मा क्रोध है' इत्यादि इसके उदाहरण है।

५) **उत्पादव्यय सापेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक : (उत्पादव्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक)** यह नय सत्ता

द्रव्यार्थिक से विपरीत है। यह उत्पाद और व्यय को प्रधान करता है। जैसे एक समय में द्रव्य में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनों रहते हैं।

६) **सद् द्रव्यार्थिक : (भेदकल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक)** भेद कल्पना के साथ अपने अपने गुण को ग्रहण करनेवाली दृष्टि सद्द्रव्यार्थिक नय है। जैसे ज्ञान-दर्शन वगैरह आत्मा के गुण है 'आत्मा के गुण' कहने पर आत्मा और गुण में भेद प्रतीत होता है। गुण का ग्रहण होने से अशुद्धता आती है, क्योंकि गुण पर्याय रूप है। यहां इसे सद्द्रव्यार्थिक कहा है लेकिन नयचक्रालाप पद्धति में उसे भेदकल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहा गया है।

७) **वक्तव्य द्रव्यार्थिक** : वस्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से कथन का विषय बनती है। यह वक्तव्य द्रव्यार्थिक नय है। जैसे अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव यह चार रूप की अपेक्षा से द्रव्य है।

८) **अन्वय द्रव्यार्थिक** : गुण और पर्याय द्रव्य में अन्वित रहते है। द्रव्य, गुणपर्याय से अन्वित है। गुणपर्याय द्रव्य से अन्वित है। जो अन्वित होता है वह स्वभाव हो जाता है। अतः गुणपर्याय द्रव्य के स्वभाव है यह प्रतीति अन्वय द्रव्यार्थिक नय की है। सर्व द्रव्य में रहनेवाली मूल सत्ता एक ही होती है।

९) **परद्रव्याग्राहक द्रव्यार्थिक :** वस्तु अपने धर्म को छोडकर अन्य धर्म से युक्त नहीं होती यह ग्रहण करनेवाली दृष्टि परद्रव्याग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। जैसे–अन्य वस्तु के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से प्रस्तुत वस्तु नहीं है।

१०) **परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक** : गुण और गुणि को एक करके वस्तु में रहे उत्कृष्ट परम भाव को ग्रहण करनेवाली दृष्टि परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। उदाहरण : ज्ञान गुण को लेकर 'आत्मा ज्ञान स्वरूप चिद्धन है' यह प्रतीति। इस प्रतीति में आत्मा के अनेक स्वभाव में से एक ज्ञान नामका परम स्वभाव गृहीत हुआ है।

प्रधानरूप से पर्याय को ग्रहण करनेवाली दृष्टि को पर्यायार्थिक नय कहते है। यह नय उत्पाद और विनाश स्वरूप पर्याय को ही ग्रहण करता है। वस्तु के ध्रुव अंश की उपेक्षा करता है। पयार्थिक नय के छहः भेद है–

१) **अनादि नित्य पर्यायार्थिक** : जैसे मेरु वगैरह पुद्गल के पर्याय नित्य है।

२) **सादि नित्यपर्यायार्थिक** : जैसे सिद्ध जीव रूप पर्याय नित्य है।

३) **अनित्यशुद्ध पर्यायार्थिक** : सत्ता को गौण करके केवल उत्पत्ति और विनाश को ग्रहण करनेवाला नय अनित्य शुद्धपर्यायार्थिक नय है। जैसे समय समय पर पर्याय उत्पन्न होते हैं और नाश होते हैं।

४) **नित्यशुद्ध पर्यायार्थिक** : ध्रुवांश यानि कि सत्ता को सापेक्ष रहकर उत्पाद और विनाश रूप पर्याय को ग्रहण करनेवाली दृष्टि नित्य शुद्धपर्यायार्थिक नय है। जैसे–द्रव्य में एक ही समय में उत्पत्ति, स्थिति और विनाश तीनों रहते है। यहां स्थिति को गौण नहीं किया है।

५) **कर्मोपाधि निरपेक्ष स्वभाव** नित्याशुद्ध पर्यायार्थिक : जैसे संसारी जीव के पर्याय सिद्ध जीव के समान है।

६) **कर्मोपाधि सापेक्ष स्वभाव** अनित्याशुद्ध पर्यायार्थिक : जैसे संसारी जीव को जन्म मरण है। इस प्रकार पर्यायार्थिक नय है।

नय के भेद

नैगम, संग्रह, व्यवहार, और ऋजुसूत्र यह चार द्रव्यार्थिक नय के भेद है। पर्यायार्थिक नय शब्द, समभिरूढ और एवंभूत यह तीन प्रकारका है। जो नय द्रव्य को प्रधान रूप में ग्रहण करता है वह द्रव्यार्थिक नय है। जो नय पर्याय को प्रधान रूप में ग्रहण करता है वह पर्यायार्थिक नय है। द्रव्यार्थिक या पर्यायार्थिक को द्रव्यास्तिक या

पर्यायास्तिक शब्दों से भी कहा जाता है।

नैगम नय-धर्म और धर्मि, दो धर्म तथा दो धर्मि में एक को प्रधान बनाकर दूसरे को गौण करके जो विवक्षा होती है वह नैगम नय है। दो पर्याय में एक पर्याय के मुख्यरूप से और दूसरे को गौण रूप से ग्रहण करनेवाला नय नैगम है। द्रव्य और पर्याय में किसी एक से मुख्यरूपसे और अन्य को गौणरूप से ग्रहण करनेवाला नय नैगम है। नैगम नय के बोध प्रकार अनेक है। अत एव उसका नाम नैकगम है।

संग्रह नय-सिर्फ सामान्य को ग्रहण करनेवाला परामर्श संग्रह है। सामान्यमात्र का अर्थ है – समग्र विशेष से रहित वस्तुके द्रव्यत्व, सत्त्व इत्यादि सामान्य धर्म। सामान्य धर्म को ग्रहण करनेवाला नय संग्रह है। संग्रह का उत्पत्तिलभ्य अर्थ यह है – सम् उपसर्ग का अर्थ है एक करके अर्थात् पिण्ड बनाके संग्रह करता है वह संग्रह नय है।

व्यवहार नय : जो अभिसन्धि अर्थात् अभिप्राय, संग्रह नय के विषय बने अर्थों का विधिपूर्वक अवहरण करता है वह व्यवहार नय है।

ऋजुसूत्र नय : ऋजु का अर्थ है वर्तमानक्षण स्थायि पर्याय। वर्तमान क्षण स्थायि पर्याय को ही प्रधानतया कहनेवाला नय ऋजुसूत्र है। ऋजु शब्द का दूसरा अर्थ है – सरल। अर्थात् वक्रता से रहित। वस्तु में भूतकाल या भविष्यकाल का बोध वर्तमान को मानबिंदु बनाकर ही होता है। वर्तमान प्रारंभ नहीं होता उससे पहेले का मोड भूतकाल है , वर्तमान के पूर्ण होने पर भविष्य का मोड चालु होता है अतः दोनो ही वक्र है। ऋजुसूत्र नय वक्रको = भूतकाल और भविष्यकाल को ग्रहण नहीं करता। वर्तमान काल सरल है अतः उसे ही ग्रहण करता है। द्रव्य सत् है फिर भी द्रव्य से कोई गुण नहीं होता क्योंकि द्रव्य का ग्रहण उपचार की आधारपर होता है। भूतकाल और भविष्यकाल का उपचार करके ही व्यवहार संभव हो सकता है। भूत और भविष्यकाल तो असत् है। अतः ऋजुसूत्र द्रव्य को ग्रहण नहीं करता क्षणध्वंसि पर्यायों को प्रधानतया दिखाता है।

जो नय शब्द को प्रधानता देते है वे शब्दनय हैं। तीन शब्द नयों में प्रथम का नाम शब्दनय है। इसका दूसरा नाम साम्प्रतः नय भी है।

शब्द नय -शब्द नय शब्द के अर्थ को विभाजित करके ग्रहण करता है। जैसे कि काल बदलने पर शब्द का अर्थ बदल जाता है। एक ही शब्द काल का भेद होने पर भिन्न हो जाता है ऐसा शब्दनय का अभिमत है। जैसे भू धातू का अर्थ होना है। वर्तमान काल के प्रयोग में उसका भवति रूप होता है। भूतकाल में अभवत् रूप होता है। दोनों प्रयोग में धातु एक होने पर भी शब्दनय दोनों प्रयोग के धातु भी भिन्न है ऐसा मानता है।

समभिरूढ नय- पर्यायवाची शब्दों में व्युत्पत्ति और निरुक्ति में भेद होता है। उसके आधार पर अर्थ में भेद होता है। एक ही अर्थ के वाचक शब्द में व्युत्पत्ति निरुक्ति और भेद के आधार पर भिन्न अर्थ का अधिरोहण करनेवाले नय को समभिरूढ कहा जाता है। शब्दनय पर्यायवाची शब्दो में अर्थभेद नहीं मानता है। एक ही अर्थ को बतानेवाले अनेक शब्द, शब्द नयकी दृष्टि में हो सकते है। समभिरूढ नय की दृष्टि में नहीं हो सकते। उसके मत में पर्याय(वाची) शब्द बदलने पर अर्थ भी बदल जाता है। शब्द बदलने पर भी अर्थ तो एक ही रहता है यह पर्यायवाची शब्द के भेद की उपेक्षा करता है। जैसे शब्दनय पंकज और कुमुद दोनो शब्दों को एक ही अर्थ का वाचक मानता है। समभिरूढ नय पंकज शब्द और कुमुद शब्द को अलग अर्थ का वाचक मानता है क्योंकि दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति अलग है – पङ्के जायते इति पंकजम्। जो पंक में = दलदल में पैदा होता है वह पंकज है। यह पंकज पद की व्युत्पत्ति है। कौ = रात्रौ मोदते इति कुमुदम्। जो रात्रिमें खिलता है वह कुमुद है, यह कुमुद शब्द की व्युत्पत्ति है। दोनों के व्युत्पत्त्यर्थ में भेद है अतः दोनो भिन्न पदार्थ है यह समभिरूढ नय का अभिमत है।

एवंभूत नय : स्वप्रवृत्ति निमित्त भूत क्रिया से विशिष्ट अर्थ को ही वाच्य माननेवाला नय एवंभूत है। एवंभूत नय का ये मत है कि शब्द अर्थक्रिया में वर्तमान अर्थ का ही वाचक होता है। घट जब जलाहरण में वर्तमान है तो ही घट पद वाच्य है, अन्यथा नहीं। एवंभूत नय कहता है कि शब्द को आप जिस अर्थ में बोलते हो वो अपने व्युत्पत्ति निमित्त में होना चाहिये। अर्थात् गाय जब चलती है तो ही गाय है। पंकज तब ही पंकज है जब वह पंके जायमान है। उग जाने के बाद वह पंकज कैसा?।

नैगमनयके उत्तरभेद: आरोप नैगम

आरोप संकल्प और अंश के भेद से नैगम नय तीन प्रकार का है। पर विशेषावश्यक में उपचार का आश्रय लेकर चार प्रकार का कहा गया है। (टिप्पणी : आरोप, संकल्प, अंश की व्याख्या और विशेषावश्यक में यह तीन भेद कहां पर है यह अभी तक ज्ञान नहीं है।)

द्रव्य आरोप, काल आरोप , गुण आरोप , हेत्वादि आरोप यह चार भेद से नैगम चार प्रकार का है। जो तद् रूप नहीं है उसमे तद्वत्ता की बुद्धि करना आरोप है। जैसे भ्रमज्ञान से शुक्ति में रजतत्व नहीं है फिर भी रजतत्व का आरोप होता है। भ्रम में आरोप दोष के कारण होता है। वस्तु विशेष के कथन की अपेक्षा में जानबूझ कर भी आरोप होता है। जैसे प्रतिमा में पूज्यता की दृष्टि से भगवान के गुणों का आरोप होता है।

१) **गुण में द्रव्यका आरोप** : अर्थात् गुण को द्रव्य कहना। काल वास्तव में द्रव्य नहीं है क्योंकि उसका ध्रुवांश कोई नहीं है। अतः 'उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत्' यह द्रव्य का लक्षण उसमें घटित नहीं होता है। काल द्रव्य का वर्तना पर्यायरूप गुण में द्रव्य के सत्त्व वगैरह गुणों का आरोप करके काल को द्रव्य कहा जाता है। यह गुण (= परावर्तन स्वरूप वर्तना पर्याय) में द्रव्य आरोप है।

२) **द्रव्य में गुणारोप** अर्थात् द्रव्य को गुण कहना। द्रव्य गुण नहीं है फिर भी उसे गुण कहना। ज्ञान गुण है, जीव द्रव्य है ज्ञान की प्रधानता के कारण जीव को ज्ञान ही कहना – जैसे 'ज्ञानमेव जीवः' – द्रव्य में गुण का आरोप है।

३) **काल आरोप** दो प्रकार का है। वर्तमान काल में भूतकाल का आरोप और वर्तमान काल में भविष्य काल का आरोप। वर्तमान काल में भूतकाल के आरोप का उदाहरण है – आज दीवाली का दिन महावीर स्वामी के निर्वाण का दिन है। महावीर स्वामी का निर्वाण २६०० साल पहले हुआ है फिर भी उस दिन का आज के दिन में आरोप किया जाता है। वर्तमान काल में भविष्यकाल के आरोप का उदाहरण है- आज पद्मनाभ जिन का निर्वाणदिन है। पद्मनाभ आनेवाली चोवीसी की तीर्थंकर है उनका निर्वाण भविष्य में होगा आज के दिन उसका आरोप किया है। इस प्रकार कालारोप के छहः भेद होते है। वर्तमानकाल में भूतकाल का आरोप, वर्तमानकाल में भविष्यकाल का आरोप, भूतकाल में वर्तमानकाल का आरोप, भूतकाल में भविष्यकाल का आरोप, भविष्यकाल में वर्तमानकाल का आरोप, भविष्यकाल में भूतकाल का आरोप। प्रथम दो के उदाहरण उपर प्रस्तुत किये है। भूतकाल में वर्तमानकाल का आरोप अर्थात् भूतकाल को वर्तमानकाल कहना – जैसे 'राजगृही नगरी मे श्रेणिक राजा राज्य करता है।' किसी कथाग्रंथ का यह वाक्य भूतकाल को वर्तमान काल के रूप में प्रस्तुत करता है। भूतकाल में भविष्यकाल का आरोप अर्थात् भूतकाल को भविष्यकाल के रूप में प्रस्तुत करना। उदाहरण जैसे कल पद्मनाभ स्वामी का निर्वाणदिन था यहां कल = भूतकाल को भविष्यकाल के रूप में देखा गया है। भविष्यकाल में वर्तमानकाल का आरोप। जैसे – पद्मनाभ जिन के वर्णन में यह कहना कि 'भरतक्षेत्र में पद्मनाभ स्वामी विचर रहे है।'

४) **कारण में कार्य का आरोप** चार प्रकारका है। उपादान कारण में कार्यारोप, निमित्तकारण में कार्यारोप,

सामान्य कारण में कार्यारोप और अपेक्षा कारण में कार्यारोप। कारण की व्याख्या : जिसके होने से कार्य होता है और नहीं होने से कार्य नहीं होता वह उस कार्य का कारण होता है। यहां कारण के चार प्रकार ज्ञातव्य है। कार्य जिस कच्ची सामग्री से आकार लेता है उसे उपादान कारण कहा जाता है, जैसे मटका मीट्टी से बनता है। मिट्टी घट का उपादान कारण है। जिस सामग्री की सहायता से कार्य संपन्न होता है वह सामग्री निमित्त कारण होती है, जैसे घट के प्रति दण्ड निमित्त कारण है। दण्ड ही चक्र में भ्रमण पैदा करके घट संपन्न करने में सहकारी होता है। कार्य मात्र के प्रति काल, देश, कर्म इत्यादि साधारण कारण होते है वे सामान्य कारण है। अपेक्षा कारण कार्य में साक्षात् कारण नहीं होते फिर भी जिनके बिना कार्य नहीं होता। घट के प्रति कुम्हार का वाडा जल घट का साक्षात्कारण नहीं है। वह मृत्तिका बनाने में सहयोगी होता है। उसे प्रयोजक भी कहा जाता है। । इन चारो कारणों मे कार्य को आरोप का उदाहरण प्रस्तुत है। मीट्टी ही घट है या दूध ही घी है यह उपादान कारण में कार्य का आरोप है। आयुर्घृतम् यह निमित्त कारण में कार्य का आरोप है। कर्म ही जीवन है यह सामान्य कारण में कार्य का आरोप है। कुम्हारवाडा ही घट है यह अपेक्षा कारण में कार्य का आरोप है।

संकल्प नैगम

नैगम नय का दूसरा भेद-संकल्प है। उसके दो प्रकार है—स्वपरिणाम और कार्यान्तर। संकल्प का अर्थ यहां पर द्रव्य का रूपांतरण प्रतीत होता है। द्रव्य एकरूप का त्याग कर दूसरे रूप को धारण करता है, इस रूपांतरण को संकल्प कहते है। द्रव्य का रूपांतरण दो रूप में हो सकता है। एक, द्रव्य का अपना ही परिणाम होता है, जैसे दही का परिणमन श्रीखंड में होता है। उसे स्वपरिणाम संकल्प कहा जाता है। द्रव्य अपने वर्तमान स्वभाव को छोडकर बिलकुल अलग स्वभाव धारण कर ले तो कार्यान्तर संकल्प होता है। जैसे दूध से दही बनता है। दही, दूध का कार्यान्तर संकल्प होता है।

अंश नैगम

अंश दो प्रकार का है। भिन्न अंश और अभिन्न अंश। अंश का अर्थ है अवयव = वस्तु का एक भाग। वस्तुका अपना भाग जब वस्तु से पृथक् हो जाता है उसे भिन्न अंश कहते है और वस्तु के साथ जुडा हुआ रहता है तो अभिन्न अंश कहते है। भिन्न अंश नैगम नय वस्तु के भिन्न अंश को भी स्वीकार करता है। अभिन्न अंश नैगम नय वस्तु के अभिन्न अंश को देखता है। यह नैगम नय के उत्तर भेद है।

संग्रह नय के भेद

संग्रह नय सामान्य और विशेष दो प्रकार का कहा गया है। सामान्य संग्रह नय मूल और उत्तर प्रभेद से दो प्रकार का है। पहला अस्तित्व वगैरह छहः प्रकार का है। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, सत्त्व और अगुरुलघुत्व। वस्तुत्व विशेष की व्याख्या पूर्व में कही गयी वही है। यह वस्तु के मूलभूत सामान्य धर्म है। मूल संग्रहनय उनका प्रधानरूपसे ग्रहण करता है। उत्तर सामान्य संग्रह नय अपने समुदाय की अपेक्षा से विविध प्रकारका है क्योंकि वह जाति से भिन्न भिन्न स्वरूप का होता है। समान प्रतीत होनेवाले द्रव्यों में सादृश्य की प्रतीति जाति द्वारा होती है। वस्तुत्व आदि सामान्य धर्म से व्याप्य घटादि द्रव्य में वर्तमान घटत्वादि धर्म सादृश्यप्रतीति के हेतु है। अतः वे उत्तर जाति है। घटत्व जाति घट समुदाय को एक करती है। ऐसी जातियां अनेक है। इसलिये उत्तर सामान्य संग्रह नय द्विविध प्रकार का है।

विशेषावश्यक के अनुसार संग्रह नय के चार प्रकार है – व्यतिरेक, अनुगम, संगृहीत और पिंडित।

व्यतिरेक संग्रह -इतर धर्मका निषेध करके बादमें विद्यमान समान धर्म को ग्रहण करना व्यतिरेक संग्रह है। जैसे जीव कहने पर अजीव का निषेध होता है और सभी जीव का संग्रह होता है।

अनुगम संग्रह -सर्व व्यक्ति में अनुगत सामान्य होता है उसका प्रदिपादन करना अनुगम संग्रह है। जैसे आत्मा सत् और चित् नय है। यह धर्म सभी आत्मा में समान है।

संगृहीत संग्रह- संगृहीत संग्रह का अर्थ है – सामान्य के अभिमुख करके संग्रह करना।

पिंडित संग्रह -पिंडित संग्रह का अर्थ है – एक जाति में लाना जैसे आत्मा है।

व्यवहार नय के भेद

व्यवहारनय दो प्रकार का है – शुद्ध व्यवहार नय और अशुद्ध व्यवहार नय। उसमें भी शुद्धव्यवहारनय दो प्रकार का है—वस्तुगत शुद्ध व्यवहार नय और साधनाशुद्ध व्यवहार नय। अशुद्ध व्यवहार नय के भी दो प्रकार है – सद्भूत अशुद्ध व्यवहार नय और असद्भूत अशुद्ध व्यवहार नय। असद्भूत अशुद्धव्यवहार नय के भी दो प्रकार है— संश्लिष्ट असद्भुत अशुद्धव्यवहार नय और संलिष्ट असद्भूत अशुद्धव्यवहार नय।

संग्रह नय सामान्य ग्रहण करता है। व्यवहार नय उस सामान्य का विभाजन करके व्यवहार या प्रवृत्ति करता है। जैसे संग्रह नय की दृष्टि से द्रव्य एक है। व्यवहार नय उसका विभाजन करे तो ये द्रव्य दो है। फिर उसका व्यवहार करता है कि जीव और अजीव। उस आधार पर लोकप्रवृत्ति करता है।

शुद्धव्यवहार नय में उपचार नहीं होता।

वस्तुगत शुद्ध व्यवहार – वस्तु = द्रव्य के अपने अपने गुणों का प्रवर्तन। जैसे धर्मास्तिकाय का द्रव्य को गति में सहकार करना, अधर्मास्तिकाय का स्थिरता में सहकार करना, जीव का ज्ञान करना इत्यादि व्यवहार का प्रवर्तन वस्तुगत शुद्ध व्यवहार नय से होता है।

साधनशुद्ध व्यवहार नय : आत्मा के शुद्ध स्वरूप की सिद्धि में साधन जिस व्यवहार नय के विषय बनते है वह साधनशुद्ध व्यवहारनय है। गुणों की साधना, गुणश्रेणि में आरोहण इत्यादि।

अशुद्ध व्यवहार नय में उपचार होता है।

सद्भूत अशुद्ध व्यवहार नय : द्रव्यके वास्तविक गुण द्रव्य से अभिन्न है फिर भी उसका भेद करके व्यवहार करना। जैसे ज्ञान आत्मा का गुण है। यहां ज्ञान और आत्मा के बीच भेद प्रदर्शित किया है वह व्यवहार है। और ज्ञान आत्मा का गुण है यह सही है इसलीए सद्भूत व्यवहार है। भेदबुद्धि प्रधान होने से यह अशुद्धि है।

असद्भूत अशुद्ध व्यवहार नय : जो गुण जिस द्रव्य का नहीं है उसे उस द्रव्य का बनाकर व्यवहार करता असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे भगवती सूत्र में आत्मा के आठ प्रकार बताये है उसमें कषायात्मा है। कषाय आत्मा का गुण नहीं है। यह कर्मजनित औदयिक भाव है फिर भी उसका आत्मा पर आरोपण असद्भूत व्यवहार नय से हुआ है। उसी तरह 'मैं मनुष्य हुं', 'देव हुं' इत्यादि बुद्धि असद्भूत अशुद्ध व्यवहार नय है। मनुष्यत्व देवत्व इत्यादि नाम कर्म के औदयिक भाव है। आत्मा के धर्म नहीं है।

असद्भूत शुद्ध व्यवहार : जो द्रव्य के साथ जुडा हुआ है उसका आरोपण। 'मैं शरीर हूं', 'शरीर मेरा है' इत्यादि बुद्धि। यहां शरीर आत्मद्रव्य के साथ है उसका असद्भूत व्यवहार से आत्मा में आरोपण हुआ है।

असंश्लिष्ट असद्भूत अशुद्धव्यवहार नय जो द्रव्य के साथ जुडा नहीं है फिर भी व्यवहार करना। जैसे पुत्र

कलत्रादि आत्मद्रव्य से संश्लिष्ट नहीं है फिर भी उन्हें 'मेरा है' यह कहना असंश्लिष्ट असद्भूत अशुद्धव्यवहार नय है।

व्यवहार नय के अन्य भेद

अथवा व्यवहार नय के दो भेद है – विभजन और प्रवृत्ति। विभजन व्यवहार का शाब्दिक अर्थ यह हो सकता है कि जो विभाजन करता है। वस्तुगत सामान्य से विशेष को अलग करता है वह विभजन व्यवहार है। जैसे पृथ्वी सामान्य से घटत्व का विभजन करना। प्रवृत्ति व्यवहार का अर्थ है। विभजन से प्राप्त विशेष धर्मका व्यवहार में उपयोग करना। जैसे घटरूप विशेष का घटत्वविशिष्ट घट का जलाहरणादि रूप कार्य में उपयोग होता है।

प्रवृत्ति व्यवहार के तीन प्रकार है – वस्तुप्रवृत्ति व्यवहार, साधनप्रवृत्ति व्यवहार और लौकिकप्रवृत्ति व्यवहार अथवा व्यवहार नय के दो भेद है – विभजन और प्रवृत्ति। प्रवृत्ति तीन प्रकार की है। वस्तु, साधना और लौकिक।

वस्तुप्रवृत्ति व्यवहार में वस्तुकी प्रवृत्ति होती है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप को उपलब्ध करने के साधन की प्रवृत्ति को साधन प्रवृत्ति कहते है। लोकद्वारा निर्मित संज्ञा या परंपरा या धारणाओं से निर्मित प्रवृत्ति को लोकप्रवृत्ति व्यवहार कहते है। उदाहरण बुधवार को दक्षिण दिशामें जाना निषिद्ध है इत्यादि।

साधन प्रवृत्तिव्यवहार के पुनः तीन प्रकार है – लोकोत्तर साधन प्रवृत्ति , लौकिक साधन प्रवृत्ति और कुप्रावचनिक साधन प्रवृत्ति। आत्मासाधना की जो प्रवृत्ति जिनाज्ञानुसारिणी होती है उसे लोकोत्तर साधन प्रवृत्ति व्यवहार नय कहते है। आत्मसाधना की जो प्रवृत्ति अन्य धर्म के अनुसार (जिनाज्ञा से विपरीत) होती है उसे कुप्रावचनिक साधनप्रवृत्ति व्यवहारनय कहते है। अपने अपने कुल के रिवाज अनुसार जो साधन की प्रवृत्ति होती है उसे लौकिक साधन प्रवृत्ति व्यवहार नय कहते है।

व्यवहार नय के अन्य भेद

अन्य ग्रंथ में शुद्ध-शुभ-उपचरित और इन तीनों के विपरीत भेद से व्यवहारनय छहः प्रकार का है। शुद्धव्यवहार नय, अशुद्धव्यवहार नय, शुभव्यवहार नय, अशुभव्यवहार नय, उपचरितव्यवहार नय, अनुपचरितव्यवहार नय।

शुद्धव्यवहार – जिसमें सामान्य या अभेद विषय नहीं बनता। जैसे घटत्वविशिष्ट घट को घट कहना। यहां घट विशेष है और वह घटत्वेन = विशेषरूप से ही गृहीत होता है अतः भेद प्रधान होने से शुद्ध व्यवहार नय है।

अशुद्धव्यवहार नय : जो अल्पअंश में सामान्य को या अभेद को विषय बनाता है , जैसे पृथ्वीत्व विशिष्ट घट को घट कहना। यहां घट विशेष है और पृथ्वीत्वेन = सामान्य रूपसे गृहीत होता है। आंशिक संग्रह का संमिश्रण व्यवहार नय को अशुद्ध बताता है।

शुभ व्यवहार नय : शुभ का अर्थ है प्रशस्त जो शुभ वस्तु को व्यवहार का विषय बताता है। जैसे सत्य बोलना धर्म है। सत्यवचन धर्म का साधन है, अतः शुभ है।

उपचरित व्यवहार नय : उपचार प्रधान व्यवहार उपचरित व्यवहार नय होता है जैसे – शौर्यादि गुण के सादृश्य से किसी आदमी के शेर(सिंह) कहना।

अनुपचरित व्यवहार नय :बिना उपचार का व्यवहार अनुपचरित व्यवहार नय है , जैसे सिंह को सिंह कहना।

ऋजुसूत्र आदि नय के एक एक ही भेद कहे हैं।

पंडित देवसेन के अनुसार नय भेद

पंडित देवसेनजी ने नयचक्र आलापपद्धति में नयों का अध्यात्म की भाषामें वर्गीकरण किया है। अध्यात्म की दृष्टि से नय के दो प्रकार है – निश्चयनय और व्यवहारनय नय। निश्चय नय अभेद को विषय बनाता है, व्यवहार नय भेद को विषय बनाता है। (याद रहे यह अध्यात्म नय के भेद है) निश्चयनय के दो भेद है—शुद्धनिश्चय नय और अशुद्ध निश्चय नय।

शुद्धनिश्चय नय- आत्माके निरुपाधिक गुणों का आत्मा के साथ अभेद करना शुद्धनिश्चय नय है जैसे केवलज्ञान आत्मा का निरुपाधिक गुण है। उसका आत्मा के साथ अभेद ज्ञान करना कि 'आत्मा केवलज्ञानमय है' शुद्धनिश्चय नय है।

अशुद्धनिश्चय नय- आत्मा का गुण जो कर्मो से प्रभावित है उनका आत्मा के साथ अभेद ज्ञान करना अशुद्ध निश्चय नय है, जैसे मतिज्ञान नय आत्मा है। यहां मतिज्ञान, ज्ञानावरणीय कर्म से आवृत आत्मा का गुण है, अतः सोपाधिक होने से अशुद्धनिश्चय नय का विषय है।

व्यवहारनय के दो भेद है – सद्भूत व्यवहार और असद्भूत व्यवहार नय प्रधानतया भेद को विषय बताता है। **सद्भूत व्यवहारनय** एक ही वस्तु में गुण गुणि द्रव्य पर्याय का भेद बताना सद्भूत व्यवहारनय है।

असद्भूत व्यवहारनय-अन्य द्रव्य से प्रस्तुत द्रव्यके भेद की विवक्षा असद्भूत व्यवहार है। जैसे जीव जड से अलग है।

सद्भूत व्यवहार के दो प्रकार है—उपचरित सद्भूत व्यवहार और अनुपचरित सद्भूत व्यवहार। **उपचरित सद्भूत व्यवहार** कर्म रूप उपाधि से सहित गुण और गुणि के भेद को विषय बताता है। जैसे मतिज्ञानादि आत्मा के गुण है, यहां आत्मा और ज्ञान का भेद विषय है **अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय** कर्मोपाधि से सहित गुण गुणि के भेद को विषय बताता है। जैसे केवलज्ञान आत्मा का गुण है।

असद्भूत व्यवहार भी दो प्रकारका है—उपचरित असद्भूत व्यवहारनय और अनुपचरित असद्भूत व्यवहार।

उपचरित असद्भूत व्यवहार अन्य द्रव्य से असंलग्न वस्तु के संबंध से विषय बताता है। जैसे धन आत्मा से संलग्न नहीं है फिर भी 'देवदत्तस्य धनम्' कहकर दोनों का संबंध बताया जाता है।

अनुपचरित असद्भूत व्यवहार संलग्न वस्तुके संबंध को बतानेवाला अनुपचरित असद्भूत व्यवहार है। जैसे जीव का शरीर है। यहां पर जीव और शरीर संलग्न है।

सातवां प्रमाणद्वार

परोक्ष और प्रत्यक्ष के भेद से प्रमाण दो प्रकारका है—परोक्ष और प्रत्यक्ष। इन्द्रिय से उत्पन्न होनेवाला ज्ञान परोक्ष है। मति और श्रुतज्ञान परोक्ष है। इन्द्रिय के बिना होनेवाला ज्ञान प्रत्यक्ष है। वह अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान और केवलज्ञान यह तीन प्रकारका है।

आठवां भावद्वार

जीव और कर्म का संयोग अनादि है। विश्व में षड् द्रव्यों की स्थिति अनादि है। द्रव्यों की अपनी विविध अवस्थाएं होती है। उसे भाव कहते है। जीव की अपनी स्वतंत्र अवस्था और कर्म के संयोग-वियोग आदि से निष्पन्न

अवस्था द्वारा भाव बनते हैं। यहां पर जीवों के भावों का वर्णन है। क्षायिक, उपशम, मिश्र, परिणाम, उदय और सन्निपात भाव यह छहः भाव है।

क्षायिक भाव: कर्म के क्षय से उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायिक है। क्षायिक चारित्र, दान-लाभ-भोग-उपभोग और वीर्य यह पांच लब्धि यह क्षायिक भाव है। क्षायिक भाव काल की अपेक्षा से आदि और सांत है। क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन और क्षायिकसम्यक्त्व काल की अपेक्षा से सादि अनंत है।

उपशम भाव कर्म का विपाक और कर्म का प्रदेश यह दोनों प्रकारों के उदय[१] का उपशम करने से औपशमिक भाव होता है। वह औपशमिक सम्यक्त्व आदि है और सादि सांत होता है। । औपशमिक भाव के दो भेद है सम्यक्त्व और चारित्र।

मिश्र भाव उदय में आये हुए कर्म के क्षय से और उदयमें नहीं आये कर्म के उपशम से बने हुए भाव को मिश्र यातो क्षायोपशमिक भाव कहते है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान यह चार ज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान[२]। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन यह तीन दर्शन, देशविरति, सर्वविरति, क्षयोपशम सम्यक्त्व, उपरोक्त दानादि पांच प्रकार की लब्धि यह अठारह क्षायोपशमिक भाव है। वह काल से सादि सांत है। अभव्य जीवों को अनादि अनंत है।

उदय भाव शुभ और अशुभ प्रकृतिका विपाक से अनुभव करना उदय कहलाता है। उदय से निष्पन्न भाव को औदयिक भाव कहते है। अपनी अपनी गति में वर्तमान नरकगति आदि नामकर्म की प्रकृति औदयिक भाव में है। वह सादि सांत होती है। मिथ्यात्व ज्ञानावरण आदि भव्य जीवों को अनादि सांत औदयिक भाव है और वही अभव्यों के लिये अनादि अनंत औदयिक भाव है।

पारिणामिक भाव परि उपसर्ग का अर्थ है – चारो और से, नामन पद का अर्थ है – जीवका जीवके रूप में होने के लिये सज्ज होना, अजीव का अजीव के रूप में होने के लिये सज्ज होना। सभी तरह से द्रव्य का अपने स्वरूप में होने के लिये सज्ज होना परिणाम है। परिणाम से निष्पन्न भाव को पांचवा पारिणामिक भाव कहते है। पुद्गलास्तिकाय में द्व्यणुकादि पारिणामिक भाव है। पुद्गल मूल द्रव्य है उसका पर्याय द्व्यणुकादि स्कंध है। पुद्गल परिणत होकर द्व्यणुक होता है अतः द्व्यणुक पारिणामिक भाव है। पुद्गलका पारिणामिक भाव सादि सांत है। भव्यत्व भव्य जीवों का पारिणामिक भाव है। वह अनादि अनंत है। भव्यत्व का अर्थ है – सिद्धिगमन योग्यता। यह जीव द्रव्यका अनादि पारिणामिक भाव है,जीव दो प्रकार के होते है। जिनमें मोक्षमें जाने की स्वाभाविक योग्यता होती है। वह 'भव्य' है। जिनमें मोक्षमें जाने की स्वाभाविक योग्यता नही होती है वे 'अभव्य' है। भव्यत्व रूप योग्यता कर्म या किसी अन्य कारण से जन्य नहीं अतः अनादि है। जब जीव मोक्ष प्राप्त करता है तव भव्यत्व नामक योग्यता परिवर्तित होकर सिद्धत्व भाव प्राप्त होता है। अतः भव्यत्व सांत है।

सान्निपातिक भाव– उपरोक्त क्षायिकादि पांच भावों के संयोग से सान्निपातिक भाव बनता है। उसके छब्बीस भेद होते है। दो भावों के संयोग से, तीन भावों के संयोग से, चार भावों के संयोग से, पांच भावों के संयोग से सन्निपातिक भाव बनता है। सन्निपातिक भावमें एक साथ कितने भाव होते है उसका विचार किया जाता है। औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक यह पांच भाव है। इन पांच में से दो भावों के

---

१. उदय का अर्थ है कर्म का फल देने के लिये उन्मुख होना, सक्रिय होना, जागृत होना। कर्म उदय में आता है तो उसे प्रकार से जाना जाता है कर्मके प्रदेश के साथ रस भी उदय में आता है। वह विपाकोदय है और रस के बिना सिर्फ कर्म के प्रदेश का उदय प्रदेशोदय है। प्रदेशोदय में आये हुए कर्म की फल देने की ताकत नहीं के बराबर होती है। विपाकोदय से आये हुए कर्म की फल देने की ताकत पूर्ण होती है।

२. मिथ्यात्व मोहनीय उदय से सहचरित मतिश्रुत और अवधि को क्रमशः मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और विभंगज्ञान कहते है।

संयोग से दस सांयोगिक भाव बनते हैं। वे इस तरह-

१. औपशमिक-क्षायिक
२. औपशमिक-क्षायोपशमिक
३. औपशमिक-औदयिक
४. औपशमिक-पारिणामिक
५. क्षायिक-क्षायोपशमिक
६. क्षायिक-औदयिक
७. क्षायिक-पारिणामिक
८. क्षायोपशमिक-औदयिक
९. क्षायोपशमिक-पारिणामिक
१०. औदयिक-पारिणामिक।

पांच में से तीन भावों के संयोग से दस सांयोगिक भाव बनते हैं।

१. औपशमिक-क्षायिक क्षायोपशमिक
२. औपशमिक-क्षायिक-औदयिक
३. औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिक
४. औपशमिक-क्षायोपशमिक-औदयिक
५. औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक
६. औपशमिक-औदयिक-पारिणामिक
७. क्षायिक-क्षायोपशमिक-औदयिक
८. क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक
९. क्षायिक-औदयिक-पारिणामिक
१०. क्षायोपशमिक-औदयिक-पारिणामिक

पांच में से चार भावों के संयोग से पांच सांयोगिक भाव बनते हैं

१. औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-औदयिक
२. औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक
३. औपशमिक-क्षायोपशमिक-औदयिक-पारिणामिक
४. क्षायिक-औपशमिक-औदयिक-पारिणामिक
५. क्षायिक-क्षायोपशमिक-औदयिक-पारिणामिक

पांच संयोग से एक ही भाव बनता है। औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-औदयिक-पारिणामिक। एक संयोग नहीं होता है। अतः एक संयोग से कोई भंग नहीं बनता। संयोग दो भावों के मिलने पर ही बनता है।

नौवां जीवद्वार

छह द्रव्यों में जीवास्तिकाय जीव है, शेष द्रव्य जड है।

दसवां अनुयोग द्वार

अनुयोग का अर्थ है सूत्र और अर्थ का संबंध सूत्र शब्दात्मक होते है और एक शब्द के अनेक यावत् अनंत अर्थ होते है। प्रस्तुत शब्द-सूत्र का कौनसा अर्थ अभिप्रेत है यह अनुयोग से निश्चित होता है। अनुयोगद्वार नाम के आगम में अनुयोग को चार द्वारों के द्वारा विस्तृत रूपसे विवरण किया है। प्रत्येक शब्द का शब्दार्थ उपरांत फलितार्थ होता है जो पूरे संदर्भ से प्रगट होता है। आगम सूत्रो के फलितार्थ चार होते है– द्रव्यानुयोग, चरणकरणानुयोग, गणितानुयोग और धर्मकथानुयोग।

द्रव्यानुयोग–जिस सूत्र के द्वारा द्रव्य की जानकारी मिलती है। अर्थात् द्रव्यों का तटस्थ युक्तिसंगत निरूपण जिस सूत्र का विषय होता है उसे द्रव्यानुयोग कहते है। राजप्रश्नीय, नंदी,अनुयोगद्वार आदि सूत्र द्रव्यानुयोग के आगम है।

चरणकरणानुयोग–जो सूत्र आचार की प्रेरणा देता है, आचार की विधिप्रक्रिया दर्शाता है, अतीचार और आलोचना का बयान देता है वह चरणकरणानुयोग है। आचारांग-निशीथसूत्र-बृहत्कल्प वगैरह सूत्र चरणकरणानुयोग के आगम है।

गणितानुयोग–जिसमें गाणितिक प्रक्रिया प्रधान है उसे गणितानुयोग कहा जाता है। चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति वगैरह गणितानुयोग के आगम हैं।

धर्मकथानुयोग–जिसमें ऐतिहासिक या अनैतिहासिक पात्र के द्वारा धर्मकी प्रेरणा मिलती है वह धर्मकथानुयोग है। ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, विपाकसूत्र वगैरह धर्मकथानुयोग के आगम है। विवाहप्रज्ञप्ति = भगवती सूत्र वगैरह सूत्र में चारों अनुयोगकी बाते है। आ.श्री आर्यरक्षित सू. से पहले प्रत्येक सूत्र के चार फलितार्थ होते थे। अनुयोगधर आचार्य या वाचक प्रत्येक सूत्र के चारों अर्थ शिष्य को प्रदान करते थे उसे अपृथक्त्वानुयोग कहा जाता था। लेकिन बुद्धिबल क्षीण होने से आ.श्री. आर्यरक्षित सू. ने चारों अर्थों को अलग दिया तब से वह पृथक्त्वानुयोग हुआ।

ग्यारहवां क्षेत्र द्वार

क्षेत्र का अर्थ है आकाशखण्ड। क्षेत्र दो प्रकारका है देशगत और सर्वगत। मर्यादित क्षेत्र में अभिव्याप्त पदार्थ का क्षेत्र देश से होता है, जैसे घटका क्षेत्र जितने आकाश प्रदेश में यह अभिव्याप्त है उतना ही होगा। सर्व लोकाकाश में व्याप्त धर्मादिका क्षेत्र सर्वगत है।

प्रारंभिक गाथाओं में प्रस्तुत ग्रंथ के प्रधान ११ विषयों के उत्तर द्वारों का कथन किया है। जिसे हम विभागग्रंथ के रूप में पहचान सकते है। इससे आगे यही ११ द्वार के उत्तर द्वारों का विशेष विवरण प्रस्तुत है। जिसे हम परीक्षाग्रंथ कह सकते है।

-वैराग्यरतिविजय

श्रुतभवन, पुणे, ८.१.१५

उपाध्यायश्रीचारित्रनन्दीविरचिता

स्वोपज्ञ'कलिकाप्रकाश'वृत्तियुता

स्याद्वादपुष्पकलिका

॥श्री गुरुभ्यो नमः॥श्री सरस्वत्यै नमः॥

[मङ्गलाचरणम्]

[१] वाजीचमूभूपकुले[१] गभस्तिं सुदर्शनज्ञानसमन्वितं च।
माणिक्यरत्नद्युतिदेहरोचिं चारित्रपार्श्वं प्रणमामि नित्यम्॥१॥
दुर्भेद्यदुःकर्मरजःसमीरं नरामरेन्द्रार्चितपादपद्मम्।
ज्ञानार्कद्रव्यार्थविभासकं च नमाम्यहं श्रीजिनवर्धमानम्॥२॥
श्रीद्वादशाङ्गश्रुतिरत्नगेहं विज्ञाय तत्त्वं निजभावलीनम्।
स्याद्वादपक्षप्रविभासकं च सुधर्मसूरीन्द्रमहं नमामि॥३॥
श्रीमद्गणेशाननपद्मलीनां विद्वज्जनानां सुरकल्पवल्लीम्।
कवीश्वराणां वरकामधेनुं श्रीभारतीं भक्तिभरैः स्मरामि॥४॥
चन्द्रे कुले वाचकवंशभानुं नौनिध्युपाध्यायमहं प्रणम्य।
स्वोपज्ञस्याद्वादलतान्तकस्य व्याख्यां विरच्ये कलिकाप्रकाशम्॥५॥

[२] **(व्याख्या)** इह केचिद् दुष्कर्मजालप्रतिबद्धानादिकालमिथ्याशासनीयधूर्तजनव्युद्ग्राहितचित्तेन षड्द्रव्याणि यथार्थभावा(वेना)नुभवन्तोऽपि न प्रतिपद्यन्ते। अतस्तन्निर्णयार्थं स्याद्वादपुष्पकलिकाप्रकरणं करोमि। यद्यपि पूर्वाचार्यनिर्मितषड्दर्शनसमुच्चयरत्नाकरावतारतत्त्वार्थानेकान्तजयपताकादयो बहवो ग्रन्थाः क्लिष्टतरा विद्वज्जनचित्ताह्लादकाः सन्ति, अतो बालबोधाय समासतः प्रकरणकरणमिच्छुः नमस्काररूपमङ्गलार्थाय प्रथमां कारिकामाह-

[३] [मूल] नत्वा संयमवामेयं गुरुं नौनिधिवाचकम्।
स्याद्वादपुष्पकलिकां दर्शयामि जिनागमात्॥१॥

(व्याख्या) अहं = वाचकचारित्रः स्याद्वादपुष्पकलिकाभिधानं प्रकरणं जिनागमात् = जिनप्रवचनाद् दर्शयामि = प्रत्यक्षेण यथार्थं प्रकटं करिष्यामि। किं कृत्वा? संयमवामेयं नौनिधिवाचकं गुरुं नत्वा प्रणम्येत्यर्थः। पुष्पाणां कलिका पुष्पकलिका, स्याद्वाद एव पुष्पकलिका स्याद्वादपुष्पकलिका तामिति। वामाया अपत्यं पुमान् वामेयः, संयमश्चासौ वामेयश्च संयमवामेयस्तं चारित्रतीर्थाधिपं चारित्रपार्श्वनाथमित्यर्थः। नौनिधिश्चासौ वाचकश्च नौनिधिवाचकस्तं स्वगुरुमित्यर्थ इति गाथार्थः॥१॥

[उद्देशग्रन्थः]

[४] [मूल] धर्माधर्मव्योमजीवपुद्गलाद्धा भवन्ति च।
रसोन्मितानि द्रव्याणि लोको द्रव्यात्मकः स्मृतः॥२॥

---

१. अश्वसेनराज्ञः कुले।

(व्याख्या) धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, व्योम = आकाशास्तिकायः, जीवास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः, अद्धा = समयात्मकानि द्रव्याणि रसोन्मितानि षट्प्रमाणान्येव भवन्ति। द्रव्यात्मको लोकः स्मृतः = कथितः।

[५] (व्याख्या) तत्र गत्यादिनिजनिजधर्ममर्यादापूर्वकपर्यायान् द्रवति = गच्छति इति द्रव्यम्। तत्र नामस्थापनाद्रव्यभावभेदैश्चतुर्विधं द्रव्यम्। तत्र नामद्रव्यं यस्य कस्यचिज्जीवस्याजीवस्य वा द्रव्यनाम क्रियते तत् नामद्रव्यम्। यथा कस्यापि मानुजबालस्य द्रव्येन्द्राभिधानं तद्वत्। स्थापनाद्रव्यं काष्ठचित्रपाषाणादिषु या द्रव्यस्थापना क्रियते तत् स्थापनाद्रव्यं देवप्रकृतिवदिन्द्ररुद्रविश्वेत्यादिवत्[१]। द्रव्यद्रव्यं सर्वगुणपर्यायविमुक्तप्रज्ञास्थापितधर्मादीनाम् अन्यतमं द्रव्यद्रव्यम्। भावतो द्रव्याणि धर्मादीनि गुणपर्यायपिण्डैकत्वपरिणतरूपाणि भवन्ति।

अथ निक्षेपचतुष्कप्रगटार्थाय भाष्यगाथामाह-

पज्जायाणभिधेयं ठियमण्णत्थे तयत्थणिरवेक्खं। जाइच्छियं च णामं जावदव्वं च पाएण॥

(वि.आ.भा.२५)

जं पुण तयत्थसुण्णं तयभिप्पाएण तारिसागारं। कीरइ व णिरागारं इत्तरमियरं व सा ठवणा॥

(वि.आ.भा.२६)

दवए दुयए दोरवयवो विगारो गुणाण संदावो। दव्वं भव्वं भावस्स भूयभावं च जं जोग्गं॥

(वि.आ.भा.२८)

अहवा सम्मद्दंसणणाणचरित्तोवओगपरिणामो। णोआगमतो भावो णोसद्दो मिस्सभावम्मि॥

(वि.आ.भा.५०) इत्यादिवचनाद्बोध्यम्।

[६] (व्याख्या) लोको द्रव्यात्मकेत्यादि। लोको द्रव्यनिचयात्मकः। क्षेत्रैकप्रदेशस्थानन्तद्रव्यनिचयात्मकः कज्जलभृतमुद्गकवदिति दृष्टान्तः। अत्र कोऽप्याह - नन्वलोकेऽप्याकाशद्रव्यमस्ति कथं द्रव्याभावो भाषसे? इत्युच्यते, आधाराधेयाभ्याम्, अलोकाधारो लोकः, लोकालोकाधारं नभः, लोकाकाशाधारे आधाराधेयभावेन व्याप्यव्यापकभावेन[२] वा षड् द्रव्याणि भवन्ति, अनाद्यनन्तकालत्वाद्। अतः अवगाहरूपं नभ आधारभूतं सदपि द्रव्याधेयाभावाल्लोकाभावोऽस्तीति[३]।

[षड्द्रव्यवर्णनम्]

[७] (व्याख्या) तत्र जीवपुद्गलानां गतिपरिणतानां गत्युपष्टम्भहेतुर्धर्मास्तिकायः स चासङ्ख्येयलोकप्रदेशप्रमाणोऽस्ति। तथा स्थितिपरिणतानां जीवपुद्गलानां स्थित्युपष्टम्भहेतुरधर्मास्तिकायः स चासङ्ख्यप्रदेशी लोकाकाशप्रमाणोऽस्ति। तथा सर्वद्रव्यानामाधारभूतोऽस्ति जीवपुद्गलादीनाम् अवगाहोपष्टम्भकोऽम्बरास्तिकायः, स चानन्तप्रदेशी लोकालोकप्रमाणोऽस्ति। यत्र जीवादयो वर्तन्ते स लोकोऽसङ्ख्यप्रदेशप्रमाणः, ततः परमलोकोऽस्ति केवलाकाशप्रदेशव्यूहरूपोऽनन्तप्रदेशात्मकप्रमाणः। चेतनालक्षणो जीवः, चेतना च ज्ञानदर्शनोपयोगिकः अनन्तपर्याय-परिणामिककर्तृत्वभोक्तृत्वादिलक्षणान्वितोऽसङ्ख्यप्रदेशात्मको जीवः, ते अनन्ता भवन्ति।

---

१. यहां पर देवप्रकृति वदितुपियेत्येत्यादि का शब्दार्थ स्पष्ट नहीं होता है। भावार्थ स्पष्ट है। **यः काष्ठपुस्तचित्रकर्माक्षनिक्षेपादिषु स्थाप्यते जीव इति स स्थापनाजीवो देवताप्रतिकृतिवदिन्द्रो रुद्रः स्कन्दो विष्णुरिति।** इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्रभाष्य में पाठ है।

२. यहां पर **लोकाकाशे आधाराधेयभावेन व्याप्यव्यापकभावेन वा** ऐसा पद अधिक सुसंगत लगता है।

३. यहां **द्रव्याभाव** पाठ होना चाहिए। अलोक में द्रव्याभाव है।

पूरणगलनस्वभावः पुद्गलास्तिकायः, स च परमाणुरूपः, यदुक्तम्-

कारणमेव यदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः। एकरसवर्णगन्धद्विस्पर्शः कार्यलिङ्गी च॥ ()

ते च लोके अनन्ता एकरूपाः परमाणवः, अनन्ता द्व्यणुकाः, एवं त्र्यणुका अप्यनन्ताः, एवं सङ्ख्याताणुकस्कन्धा अप्यनन्ताः, अनन्ताणुकस्कन्धा अप्यनन्ता एकैकस्मिन्नाकाशे, इत्थं सर्वलोके विज्ञेयमिति। ततो धर्माधर्मनभः पुद्गलाः चत्वारोऽस्तिकाया अचेतना भवन्तीति। परत्वापरत्वे नूतनपुराणादिलिङ्गव्यक्ते, वृत्तिर्वर्तनारूपपर्यायः कालोऽप्रदेशकरूपोऽस्ति अस्तिकायत्वाभावात्। अनेन पञ्चास्तिकायान्तर्भूतपर्यायरूपता एवास्येति। एते पञ्चास्तिकायाः। तत्र धर्माधर्मौ लोकप्रमाणसङ्ख्य(सङ्ख्यात)प्रदेशिकौ स्तः। लोकप्रमाण-प्रदेशप्रमाणैकक्षेत्रप्रदेशे चानन्तजीवाः सन्ति[1]। एवं जीवा अनन्ता भवन्ति। आकाशस्त्वनन्तप्रदेशात्मकलोका-लोकप्रमाणोऽस्ति। पुद्गलपरमाणुः स्वयमेकोऽप्यनेकप्रदेशबन्धहेतुभूतद्रव्ययुक्तत्वाद्[2] अस्तिकायः। कालस्तूपचारेण भिन्नद्रव्यम् (?) उक्तः। स च व्यवहारनयापेक्षया मार्तण्डगतिपरिच्छेदपरिमितकालः समयक्षेत्रे एव। एष व्यवहारकालः समयावलिकादिरूप इति॥२॥

[एकादशमूलद्वाराणि]

[८] अथ द्वारगाथामाह-

[मूल] लक्षणगुणपर्यायस्वभावास्तिनयानि च। भावजीवानुयोगाश्च द्रव्येषु वितनोम्यहम्॥३॥

(व्याख्या) लक्ष्यते वस्तु अनेनेति लक्षणम्। द्रव्येषु लक्षणद्वारं प्रथमम्, द्वितीयं गुणद्वारम्, तृतीयं पर्यायद्वारम्, स्वभावद्वारं चतुर्थम्, अस्तिद्वारम् [पञ्चमम्], नयद्वारम् [षष्ठम्] चकारात् प्रमाणद्वारं सप्तमम्, भावद्वारम्, जीवद्वारम्, अनुयोगद्वारम्, चकारेण एकादशमं क्षेत्रद्वारम्, एतानि एकादशद्वाराणि द्रव्येषु लेशेन वितनोमि = निरूपयामीत्यर्थः॥३॥

[प्रथमं लक्षणद्वारं द्वितीयस्य गुणद्वारस्य उत्तरद्वाराणि च]

[९] अथ लक्षणादीनामुत्तरद्वारसङ्ख्यानयनाय गाथामाह-

[मूल] यत्सत्तल्लक्षणं द्रव्यं व्ययोत्पादध्रुवान्वितम्।
त्रयोदशः स्युर्धूर्तिकः(१८) सामान्येतरतो गुणाः॥४॥

(व्याख्या) व्ययोत्पादध्रुवान्वितं यत्सत्तल्लक्षणम् द्रव्यम्, उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् यत् तद् द्रव्यमिति लक्षणम्। लक्षणस्य भेदाभावादेकविधमेव लक्षणं प्रोक्तमिति लक्षणद्वारम्। अथ गुणद्वारमाह- **त्रयोदशेत्यादि।** गुणाः सामान्येतरतः = सामान्यविशेषाभ्यां क्रमात् त्रयोदश अष्टादश च भवन्तीत्यर्थः॥४॥

[त्रयोदश सामान्यगुणाः]

[१०] अथ सामान्योत्तरभेदानि सार्धगाथयाह-

[मूल] द्रव्यत्वास्तित्ववस्तुत्वप्रदेशत्वप्रमेयकम्। सत्त्वं चागुरुलघुत्वं चेतनाचेतनस्तथा॥५॥

[मूल] मूर्तामूर्तक्रियान्यानि सामान्याः स्युस्त्रयोदश।

---

१. यहां पर **लोकप्रमाणप्रदेशके क्षेत्रप्रदेशे चानन्तजीवाः सन्ति** यह पाठ समुचित प्रतीत होता है।

२. यहां पर **हेतुभूतद्रव्ययुक्तत्वाद्** यह पाठ उचित प्रतीत होता है।

(व्याख्या) सामान्यास्त्रयोदश गुणाः सन्ति। तद्यथा— द्रव्यत्व-अस्तित्व-वस्तुत्व-प्रदेशत्व-प्रमेयत्व-सत्त्व-(त्त्वानि), च पुनरर्थः, अगुरुलघुत्व-चेतनत्व-अचेतनत्व-मूर्तत्व-अमूर्तत्व-सक्रियत्व-अक्रियत्वका इत्यादयो भवन्तीत्यर्थः। गुण्यते = पृथक्क्रियते द्रव्यं द्रव्याद् यैस्ते गुणाः।

(१) द्रव्यस्य भावो द्रव्यत्वम्। निजनिजप्रदेशव्यूहैरखण्डवृत्त्या स्वभावविभावगुणपर्यायेभ्यो द्रवति द्रोष्यति इति द्रव्यम्।

(२) अस्तीत्येतस्य भावोऽस्तित्वं सद्रूपत्वम्।

(३) सामान्यविशेषात्मकं वस्तु, वस्तुनो भावो वस्तुत्वम्।

(४) प्रदेशस्वभावः प्रदेशत्वम् = क्षेत्रत्वमविभागि-पुद्गल-परमाणुनावष्टब्धत्वम्।

(५) प्रमाणेन स्वपररूपं परिच्छेद्यं प्रमेयम्, प्रमेयस्य भावः प्रमेयत्वम्।

(६) उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्, सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोति इति सदिति। सदित्येतस्य भावः सत्त्वम्।

(७) अगुरुलघोर्भावोऽगुरुलघुत्वम्, सूक्ष्मा = अवाग्गोचराः प्रतिक्षणं वर्तमाना इत्यर्थः। अत्र जिनागम-प्रामाण्याद् अगुरुलघुगुणा अभ्युपगम्याः सन्ति।

(८) चेतनस्य भावश्चेतनत्वमनुभवाज्ज्ञेयोऽस्ति। तदुक्तं देवसेनालापपद्धत्याम्-

***चैतन्यमनुभूतिः स्यात् सा क्रियारूपमेव च। क्रिया मनोवचःकायेष्वन्विता वर्तते ध्रुवम्॥* ( )**

(९) अचेतनस्य भावोऽचैतन्यम् अचैतन्यमननुभवनमित्यर्थः।

(१०) मूर्तस्य भावो मूर्तत्वं रूपादिमत्त्वमित्यर्थः।

(११) अमूर्तस्य भावोऽमूर्तत्वं रूपादिरहितत्वमरूपादिमत्त्वमित्यर्थः।

(१२) सक्रियस्वभावः सक्रियत्वं क्रियायुक्तत्वमित्यर्थः।

(१३)अक्रियस्य भावोऽक्रियत्वं क्रियारहितत्वमित्यर्थः।

एवं सामान्या त्रयोदशगुणा भवन्ति।

[अष्टादश विशेषगुणाः]

[११] अथ सार्द्धगाथयाष्टादश विशेषगुणानाह-

दर्शनज्ञानसौख्यं च वीर्यं षट् चेतनादयः॥६॥

[मूल] वर्णगन्धरसस्पर्शगतिस्थित्यवगाहना। वर्तनाहेतुचत्वारो[१]ऽष्टादश स्युर्विशेषिकाः॥७॥

(व्याख्या) दर्शन-ज्ञान-सुख-वीर्य-चेतनत्व-अचेतनत्व-मूर्तत्व-अमूर्तत्व-सक्रियत्व-अक्रियत्व-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-गतिहेतुत्व-स्थितिहेतुत्व-अवगाहनाहेतुत्व-वर्तनाहेतुत्वम् इमेऽष्टादश विशेषा गुणा भवन्तीत्यर्थः।

विशेषाववोधरूपं ज्ञानम्, सामान्यावबोधरूपं दर्शनम्, परमानन्दस्वरूपं सुखम्, अनन्तशक्तिप्रवृत्तिस्वरूपं वीर्यम्। पूर्वोक्ताः षट् चेतनादयः चेतनत्व-अचेतनत्व-मूर्तत्व-सक्रियत्व-अक्रियत्वरूपाणीत्यर्थः। **हेत्वि**ति चतुर्णां सञ्ज्ञा शेषं स्पष्टम्। इति गुणद्वारम्॥६॥७॥

---

१ यहां पर **भिन्न** पद में समास है एवं **हेतु** पद के बाद विभक्ति होनी चाहिए।

[तृतीयस्य पर्यायद्वारस्य उत्तरद्वाराणि]

[१२] अथ तृतीयं पर्यायद्वारमाह-

[मूल] द्रव्यगुणविकारा ये पर्यायाः प्रवदन्ति ते। निजभावविभावाभ्यां द्विविधाः स्युर्जिनागमे॥८॥

(व्याख्या) ये द्रव्यगुणविकारास्ते तज्ज्ञाः पर्यायाः प्रवदन्ति = कथयन्तीति। पुनस्ते पर्याया जिनागमे = सिद्धान्ते निजभावविभावाभ्यां = स्वभावविभावाभ्यां द्रव्येषु विविधाः प्रकारा भवन्तीत्यन्वयः। द्रव्येषु शुद्धस्वरूप-परिणमनरूपा ये पर्यायास्ते स्वभावपर्यायाः षड्द्रव्येषु भवन्ति। अशुद्धस्वरूपपरिणमनरूपा विभाविपर्यायाः। ते पुद्गलजीवयोरेव भवन्ति। अगुरुलघुविकाराः स्वपर्यायास्ते द्वादशधा भवन्ति। अनन्तभागवृद्धिः, असङ्ख्यात-भागवृद्धिः, सङ्ख्यातभागवृद्धिः, सङ्ख्यातगुणवृद्धिः, असङ्ख्यातगुणवृद्धिः, अनन्तगुणवृद्धिरिति षड् वृद्धिरूपाः ज्ञेयाः। तथा अनन्तभागहानिः, असङ्ख्यातभागहानिः, सङ्ख्यातभागहानिः, सङ्ख्यातगुणहानिः, असङ्ख्यात-गुणहानिः, अनन्तगुणहानिः, एवं षइ हानिरूपा ज्ञेयाः। विभावे पर्यायाः[१] नारकादिगतिभिश्चतुर्विधाः सन्ति [अथ]वा चतुरशीतिलक्षयोनयो भवन्तीत्यर्थः। तथा स्वभावविभावपर्याया द्रव्यव्यञ्जनगुणव्यञ्जनाभ्यां द्वौ द्वौ भवत इति गाथार्थः॥८॥

[पर्यायस्य षइभेदाः]

[१३] अथवा पर्यायस्य षइभेदान् ग्रन्थान्तरादाह-

[मूल] वा द्रव्ये रसपर्यायाः स्युर्द्रव्ये द्रव्यव्यञ्जनः। गुणगुणव्यञ्जनकः स्वभावान्ये भवन्ति च[२]॥९॥

(व्याख्या) वा = अथवा पर्यायाः षड्विधा भवन्ति। द्रव्य-द्रव्यव्यञ्जन-गुण-गुणव्यञ्जन-स्वभाव-विभावा भवन्तीत्यर्थः। असङ्ख्येयप्रदेशसिद्धत्वादयो द्रव्यपर्यायाः। द्रव्येषु गत्यादयो विशेषगुणाः स्वस्वभिन्नकायप्रत्यक्ष-करणशीला द्रव्यव्यञ्जनाः। पर्यायपिण्डत्वानन्तगुणाविभागरूपा गुणपर्यायाः सन्ति। ज्ञानदर्शनचारित्रगुणानां भेदान्त-रज्ञानं गुणव्यञ्जनम्[३]। स्वभावपर्याया अगुरुलघुवस्तुनि षट्स्थानीयवृद्धिहानिभ्यां द्वादशविधाः सन्ति। पूर्वोक्तानि ज्ञेयानीत्यर्थः। तथा जीवपुद्गलयोः नरनारकादिगत्यनुभवनं द्व्यणुकत्र्यणुकादिभिरनन्तप्रदेशपर्यन्तं[४] विभाविपर्याया इत्यर्थः॥९॥

[चतुर्थस्य स्वभावद्वारस्य उत्तरद्वाराणि, त्रयोदश सामान्यस्वभावाः]

[१४] अथ त्रयोदश सामान्यस्वभावगाथामाह-

[मूल] नित्यैकास्तिभेदभव्यवक्तव्येतरकोत्कटाः।
सामान्यानि स्वभावाः स्युः त्रयोदशमितानि च॥१०॥

(व्याख्या) नित्यानित्यैकानेकास्तिनास्तिभेदाभेद-भव्याभव्य-वक्तव्यावक्तव्य-परमस्वभावास्त्रयोदशमितानि सामान्यानि भवन्तीत्यर्थः।

१) निजनिजविविधपर्यायानेकस्वभावेषु तदेवेदमिति द्रव्योपालम्भो नित्यस्वभावः।

---

१. यहां पर **विभावे पर्यायः** की जगह **विभावपर्यायः** पाठ अधिक सुसंगत होता है। **वा** पद **योनयो** के बाद संगत लगता है।
२. यहां पर **द्रव्ये द्रव्यव्यञ्जन** की जगह **द्रव्य-द्रव्यव्यञ्जन** पाठ होना चाहिए। **स्वभावान्ये** की जगह **स्वभावान्यौ** होना चाहिए।
३. यहां पर **गुणव्यञ्जनम्** की जगह **गुणव्यञ्जनः** पाठ होना चाहिए।
४. यहां पर **पर्यन्तो विभावपर्याय इत्यर्थः** ऐसा पाठ होना चाहिए।

२) तथानेकपर्यायपरिणमनरूपोऽनित्यस्वभावः।

३) स्वभावानामेकाधारत्वमेकस्वभावः।

४) एकस्याप्यनेकत्वभावोपलम्भोऽनेकस्वभावः।

५) स्वस्वभावाविनाशितधर्मोऽस्तिस्वभावः।

६) [तद् विपरीतः पररूपाभावो] नास्तिस्वभावः।

७) गुणगुण्यादिसञ्ज्ञादिभेदाद्भेदस्वभावः। सञ्ज्ञासङ्ख्यालक्षणप्रयोजनानि।

८) गुणगुण्याद्येकस्वभावादभेदस्वभावः।

९) भाविकाले परस्वरूपाकारो भव्यस्वभावः।

१०) कालत्रयेऽपि परस्वरूपाकाराभवनरूपोऽभव्यस्वभावः। उक्तं च-

अण्णोण्णं पविसंता दिंतावगासमण्णमण्णस्स। मेलंतावि अ णिच्चं सगसगभावं ण विणिहंति।

(प.का.-७)

११) नित्यानित्याद्येकस्वरूपोच्चारणं वक्तव्यः।

१२) उभयधर्मसमन्वितोऽवक्तव्यः।

१३) पारिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावः।

इति त्रयोदशसामान्यस्वभावार्थः॥१०॥

[दश विशेषस्वभावाः]

[१५] अथ दश विशेषस्वभावानाह-

[मूल] मूर्तचेतनशुद्धैकप्रदेशप्रतिपक्षिकाः। विभावाश्चोपचरितस्वभावाः स्युर्विशेषिकाः॥११॥

(व्याख्या) मूर्तामूर्त-चेतनाचेतन-शुद्धाशुद्धैकप्रदेशानेकप्रदेश-विभावोपचरितस्वभावा विशेषा भवन्तीत्यर्थः। मूर्तादीनां व्याख्या तु पूर्वोक्तैव बोद्धव्या॥११॥

[पञ्चमस्य अस्तिकायद्वारस्य उत्तरद्वाराणि]

[१६] [मूल] जीवाजीवप्रभेदाभ्यां स्याद् द्विविधोऽस्तिकायिकः।
नूनं जीवस्त्वेकविधोऽपरो धर्मादिकाम्बुधिः॥१२॥

(व्याख्या) जीवेत्यादि। अस्तिकायिको जीवाजीवप्रभेदाभ्यां द्विविधोऽस्ति = युगविधो भवति। तत्र नूनं जीव एकविधोऽपरोऽजीवास्तिकायो धर्मादिकैरम्बुधिश्चतुर्विधो भवतीत्यर्थः। अस्तित्वेनास्तिकायस्य निजगतभेदाभावाद् विशेषेण भाक्तमिति॥१२॥

[षष्ठस्य नयद्वारस्य उत्तरद्वाराणि, द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः]

[१७] अथ नयद्वारं गाथाद्विकेनाह-

[मूल] द्रव्यपर्यायार्थिकाभ्यां मूलतोऽस्ति नयद्विधा। शुद्धसत्तैकद्रव्यार्थाशुद्धनित्यस्वरूपकाः॥१३॥

[मूल] सद्वक्तव्यान्वयोत्कृष्टपरमभावकास्तथा। द्रव्यार्थिको दशविधो भवेत्तीर्थङ्करागमे॥१४॥[१]

१. यहां पर १५, १६ गाथाएं तथा १७ वी गाथा का पूर्वार्ध **सं.** प्रत में नहीं है , **ला.**द प्रत में है।

(व्याख्या) नयो मूलतो द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकाभ्यां द्विप्रकारो भवति। तत्र द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः सन्ति। तानाह-

१) कर्मोपाधिनिरपेक्षरूपः शुद्धद्रव्यार्थिकः। भवस्थजीवो विमलात्मभावेनाष्टरुचकप्रदेशापेक्षया सिद्धसदृशः।

२) गौणभावेनोत्पादव्ययसत्ताग्राहकः सत्ताद्रव्यार्थिकोऽस्ति द्रव्यनित्यवदिति।

३) तथा भिन्नभावकल्पनानादृत एकद्रव्यार्थिकः। यथा द्रव्यं निजगुणपर्यायस्वभावेभ्योऽभिन्नभावेन भवति।

४) तथा कर्मोपाधिसापेक्षभावोऽशुद्धद्रव्यार्थिकः। कषायादिकर्ममलभावचैतन्यवदिति।

५) उत्पादव्ययसापेक्षः शुद्ध(नित्य)द्रव्यार्थिकः। उत्पादव्ययध्रौव्यरूपं द्रव्यमेकस्मिन् समयवत्।

६) तथा भेदकल्पनायुक्तो निजनिजद्रव्यादिगुणग्राहकः सद्द्रव्यार्थिकः। दर्शनज्ञानादिगुणस्थितचैतन्यवदिति।

८) कथनादिस्वद्रव्यादिकृत(?)ग्राहको वक्तव्यद्रव्यार्थिकः। यथा निजद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयापेक्षया द्रव्यमस्ति।

९) अन्वयद्रव्यार्थिको यथा गुणपर्यायस्वभावं द्रव्यम्। तथा सर्वद्रव्यगतमूलसत्ता एका एव भवति। परद्रव्यादि[१] अग्राहकद्रव्यार्थिकः परद्रव्यचतुष्टयापेक्षया द्रव्याभाववत्।

१०) गुणगुणिद्रव्यैक्यभावेन परमभावग्राहको द्रव्यार्थिकः। यथा ज्ञानमाश्रित्य ज्ञानस्वरूपश्चिद्घनोऽस्ति। अत्रानेकस्वभावपुञ्जान्तरगताज्ज्ञानं परमस्वभावो गृहीतः। इति द्रव्यार्थिकाः॥१४॥

[पर्यायार्थिकनयस्य षड्भेदाः]

[१८] [मूल] पर्यायार्थिकभेदाश्च पूर्वोक्ता द्रव्यकादयः।
वानादिसादितो नित्यौ नित्यशुद्धेतरौ भवेत्॥१५॥

[मूल] नित्याशुद्धेतरौ ज्ञेयौ भवन्ति षड्विधानि च।
इमेऽपि भेदाः सिद्धान्ते वदन्ति पूर्वसूरयः॥१६॥

(व्याख्या) अथ पर्यायार्थिकनयस्य षड्भेदानाह-

१) अनादिनित्यः पर्यायार्थिकः पुद्गलनिचयमेर्वादिवत्।

२) द्वितीयः सादिनित्यपर्यायार्थिकः श्रेयोवासस्थ[२]सिद्धपर्यायवत्।

३) गौणत्वेनोत्पादव्ययग्राहकः स्वभावोऽनित्यशुद्धपर्यायार्थिकः। यथा समयं समयं प्रति पर्याया उत्पादविनाशिनः।

४) सत्तासापेक्षस्वभावो नित्यशुद्धपर्यायार्थिको यथैकस्मिन्समये उत्पादादित्रयात्मकः पर्यायः।

५) कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभावो नित्याशुद्धपर्यायार्थिकः। यथा सिद्धपर्यायसदृशाः शुद्धा भवस्थसत्त्वपर्यायाः।

६) कर्मोपाधिसापेक्षस्वभावोऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको भवोत्पत्तिमरणवत्।

इति पर्यायार्थिकभेदाः॥१३॥१४॥१५॥१६॥

---

१. यहां पर **परद्रविणादि** की जगह **परद्रव्यादि** यह पाठ समुचित लगता है।

२. यहां पर **श्रेयावासा** यह पाठ है वह अशुद्ध प्रतीत होता है **श्रेयोवासस्थ** पाठ हो सकता है श्रेयोवासका मतलब होता है – सिद्धशिला या मोक्ष।

[नयानां सप्त भेदाः]

[१९] [मूल] द्रव्यपर्याययोर्भेदा नयैः सन्ति महीधराः। नैगमसङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रकानि च॥१७॥

[मूल] द्रव्यार्थिकोऽस्ति चत्वारः सत्पर्यायार्थिकस्त्रिधा। शब्दसमभिरुढैवम्भूतभेदेन विद्यते॥१८॥

(व्याख्या) तत्र द्रव्यार्थिको नैगमसङ्ग्रहव्यवहार-ऋजुसूत्रभेदैश्चतुर्विधो भवति। पर्यायार्थिकः शब्दसमभिरूढैवम्भूतभेदैस्त्रिविधोऽस्तीत्यर्थः।

१) धर्मयोर्धर्मिणोः धर्मधर्मिणोश्च प्रधानोपसर्जनभावेन यद्विवक्षणं स नैकगम इति। पर्याययोर्द्रव्यपर्याययोश्च मुख्यामुख्यरूपतया यद्विवक्षणं स एवंरूपो नैको गमो = बोधमार्गो यस्यासौ नैकगमो नाम नयो बोधव्यः।

२) सामान्यमात्रग्राही परामर्शः सङ्ग्रह इति[१]। सामान्यमात्रं समग्रविशेषरहितं सत्त्वद्रव्यत्वादिकं गृह्णातीत्येवंशीलः। सम् = एकीभावेन पिण्डीभूततया विशेषराशिं गृह्णातीति सङ्ग्रहः। स्वजातेर्दृष्टेष्टाभ्यामविरोधेन विशेषाणामेकरूपतया यद् ग्रहणं [स] सङ्ग्रहः।

३) सङ्ग्रहेण गोचरीकृतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसन्धिना क्रियते स व्यवहार इति।

४) ऋजु = वर्तमानक्षणस्थायि पर्यायमात्रं प्राधान्यतः सूत्रयन्नभिप्राय ऋजुसूत्र इति। ऋजु = अतीतानागतकाललक्षणकौटिल्यवैकल्यात्प्राञ्जलम् अवैहि[२](ति) द्रव्यं सदति गुणाभावान्न पर्येति[३] पर्यायांस्तु क्षणध्वंसिनः प्रधानतया दर्शयतीति।

[२०] ५) कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेदं प्रतिपद्यमानः शब्दः।

६) पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरुढ इति। शब्दनयो हि पर्यायभेदेऽप्यर्थाऽभेदमभ्युपैति। समभिरुढस्तु पर्यायभेदेन भिन्नार्थमभिमन्यते, अभेदं त्वर्थगतं पर्यायशब्दानामुपेक्षत इति।

७) शब्दानां स्वप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाविशिष्टमर्थं वाच्यत्वेन अभ्युपगच्छन्नेवम्भूत इति। समभिरूढनयस्तु इन्दनादिक्रियायां सत्यामसत्यां च वासवादेरर्थस्येन्द्रादिव्यपदेशमभ्युपैति, एवम्भूतः पुनरिन्दनादिक्रियापरिणतमर्थं तत्क्रियाकाले इन्द्रादिव्यपदेशभाजमभिमन्यते।

[२१] एतेषु प्रथमे चत्वारोऽर्थप्रतिपादनादर्थनयाः, त्रयोऽन्त्यास्तु शब्दार्थप्रतिपादनाच्छब्दनयाः सन्ति। तथा पूर्वः पूर्वो नयः प्रचुरगोचरोऽस्ति, परः परस्त्वल्पविषयोऽस्तीत्यर्थः[४]। तथा रत्नाकरावतारिकायां नैगमादिनयास्त्रयो द्रव्यार्थिका भवन्ति, शेषास्तु चत्वारः पर्यायार्थिकाः सन्तीत्यप्युक्तम्। तथाहि- ***स व्याससमासाभ्यां द्विप्रकारः। स व्यासतोऽनेकविकल्पः। समासतस्तु द्विभेदो द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च। आद्यो नैगमसङ्ग्रहव्यवहारभेदात्त्रिविधः। द्वितीयः[५] ऋजुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूतभेदाच्चतुर्विध[६]*** इत्यादीति()।

तथा विशेषावश्यकेऽप्युक्तम्-

नामाइतियं दव्वट्ठियस्स भावो य पज्जवणयस्स। णेगम[७]-संगह-ववहारा पढमगस्स सेसा य इयरस्स॥

इति (वि.आ.भा.७५)

---

१. यहां पर **सामान्यमात्रग्राही परामर्शः सङ्ग्रह इति** यह पाठ अधिक उचित लगता है।

२. यहां पर **अवैहि** की जगह **अवैति** पाठ उचित लगता है।

३. यहां पर **द्रव्यं सदति गुणाभावान्न पर्येति** की जगह **द्रव्यं सदपि गुणाभावान्न पर्येति** यह पाठ समुचित लगता है।

४. यहां पर **परः परस्त्वल्प विषयोऽस्तीत्यर्थः** इस तरह का पाठ उचित लगता है।,

५. उल्लिखित उद्धरण प्रमाणनय में इस प्रकार है - पर्यायार्थिकश्चतुर्धा..... परि.७ सू. २७।

६. **भेदाच्चतुर्विधेत्यादि** की जगह **भेदाच्चतुर्विध** इत्यादि पाठ उचित लगता है।

७. **णेगम** इति नास्ति।

तथा देवचन्द्रकृतनयचक्रे-***नैगमादयश्चत्वारो द्रव्यार्थिकाः, शेषाः पर्यायार्थिकाः***[१] इति प्रोक्तमिति[२] ॥१७॥१८॥

[नैगमनयस्य आरोपादि उत्तरभेदाः]

[२२] अथ नैगमोत्तरभेदगाथामाह-

[मूल] आरोपसङ्कल्पांशैश्च नैगमस्त्रिविधो भवेत्। उपचारकमादृत्य महाभाष्ये चतुर्विधः॥१९॥

(व्याख्या) आरोपसङ्कल्पांशभेदात् त्रिविधो नैगमो भवति[३]। विशेषावश्यके तु उपचारकमाश्रित्य चतुर्विधोऽस्तीत्यर्थः। शेषं स्पष्टम्॥१९॥

[२३] अथारोपादित्रयभेदकथनगाथाद्वयमाह-

[मूल] द्रव्यकालगुणारोपो हेत्वाद्यारोपभेदतः।
नैगमोदधिभेदः[४] स्यात्सङ्कल्पो द्विविधो भवेत्॥२०॥

[मूल] प्रथमः स्वपरिणामः कार्यान्तर[५](रो)द्वितीयकः।
भिन्नाभिन्नस्वरूपाभ्यामंशोऽपि द्विविधो भवेत्॥२१॥

(व्याख्या) नैगमो द्रव्यारोप-कालारोप-गुणारोप-हेत्वाद्यारोपभेदाच्चतुर्विधो भवति।

१) पञ्चास्तिकायानां च(स्व) परावर्तनधर्मात्कालस्य द्रव्यकथनं गुणे द्रव्यारोपः।

२) ज्ञानमेव जीवो द्रव्ये गुणारोपः।

३) वर्तमाने अतीतानागतकालारोपेनारोपो द्विविधौ स्तः(न कालारोपो द्विविधः)। वर्तमाने अतीतकालारोपोऽनागतकालारोपः(श्च)। वर्तमाने भूतभविष्यद्वासरवदिति। ४) कारणे कार्यारोप उपादान[६]सुनैमित्त-सामान्यापेक्षभेदेन चतुर्विधो भवतीत्यर्थः। तथा सङ्कल्पः स्वपरिणामकार्यान्तरभेदेन द्विविधोऽस्ति। तथांशो भिन्नाभिन्नाभ्यां द्विविधो भवतीत्यर्थः। इति नैगमोत्तरभेदाः॥२०॥२१॥

[सङ्ग्रहनयस्य द्वौ भेदौ]

[२४] अथ सङ्ग्रहभेददर्शनाय गाथाद्वयमाह-

[मूल] सङ्ग्रहो द्विविधः प्रोक्तः सामान्यसुविशेषतः।
मूलोत्तरप्रभेदाभ्यां सामान्यो द्विविधः स्मृतः॥२२॥

[मूल] आद्योऽस्तित्वादिषड्भेदोऽस्त्युत्तरो विविधः स्मृतः।
स्वसमुदायभावेन भिन्नरूपकजातितः॥२३॥

---

१. द्रव्यार्थिकश्चतुर्धा..... पर्यायार्थिकस्त्रिधा....विकल्पान्तरे ऋजुसूत्रस्य पर्यायार्थिकताप्यस्ति। (न.पृ.१३८)

२. **प्रोक्तमिति** की जगह **प्रोक्ता** इति अथवा **इति प्रोक्तम्** पाठ उचित प्रतीत होता है।

३. णेगाइं माणाइं सामन्नोभयविसेसणाणाइं। जं तेहिं मिणइ तो णेगमो णेगमाणोत्ति ॥ (वि.आ.भा.२१८६)

४. सो कमविसुद्धिभेओ लोगपसिद्धिवसओऽणुगंतव्वो। विहिणा णिलयण-पत्थय-गामोवम्माइसंसिद्धो॥ (वि.आ.भा.२१८८)

५. यहां **नैगमोदधिभेदः** पाठ अनुचित प्रतीत होता है **नैगम उदधिभेदः** यह पाठ उचित है, लेकिन इसका स्वीकार करने पर छन्दोभंग होता है। सोलहवी गाथा में **परीणाम** भी अशुद्ध है **परिणाम** होना चाहिए वहां भी इसका स्वीकार करने पर छन्दोभंग होता है।

६. यहां पर **न्तर** की जगह **न्तरो** पाठ उचित प्रतीत होता है।

७. यहां पर **रोपापादान** की जगह **रोप उपादान** पाठ उचित प्रतीत होता है।

(व्याख्या) सम् = सम्यक्प्रकारेण गृह्णातीति सङ्ग्रहः। स सामान्यविशेषाभ्यां द्विप्रकारोऽस्ति प्रोक्तः = कथितः। तथा सामान्यो मूलोत्तरभेदाद् द्विप्रकारोऽस्ति स्मृतः = कथितः। तत्र मूलोऽस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्व-प्रमेयत्व-सत्त्वागुरु-लघुत्वैः षड्भेदोऽस्ति। उत्तरस्तु स्वसमुदायभावमपेक्ष्य विविधप्रकारः कथितः। जातितो भिन्नरूप-कादित्यर्थः ॥२२॥२३॥

[सङ्ग्रहनयस्य चत्वारो भेदाः]

[२५] अथवा सङ्ग्रहश्चतुर्विधो ग्रन्थान्तरादाह-

[मूल] वा व्यतिरेकानुगमसङ्गृहीतसुपिण्डिताः।

सङ्ग्रहः स्याच्चतुर्भेदो विशेषावश्यकागमात्॥२४॥

(व्याख्या) अथवा सङ्ग्रहो व्यतिरेकानुगम-सङ्गृहीत-सुपिण्डितैश्चतुर्विधो विशेषावश्यकेऽस्तीत्यर्थः।

१) सङ्ग्रहणं सामान्यरूपतया सर्वभावानामाक्रोडनं सङ्ग्रहः।

२) अथवा सामान्येन समग्रं सङ्गृह्णातीति सङ्ग्रहः।

३) वा सर्वेऽपि भेदाः सामान्येन सङ्गृह्यन्तेऽनेनेति सङ्ग्रहः।

४) वा सङ्गृहीतं पिण्डितं तदेवार्थोऽभिधेयं यस्य तत्स सङ्गृहीतपिण्डितार्थः। तदुक्तं विशेषावश्यके-

संगहणं संगिण्हइ संगिज्झंते व तेण जं भेया। तो जो संगहो त्ति संगहियपिंडियत्थं वओ जस्स॥

(वि.आ.भा.२२०३)

एवम्भूतं वचो यस्य सङ्ग्रहस्येत्याशयः। अत्र सङ्ग्रहस्य व्यतिरेकादिगर्भितविशेषावश्यकगाथामाह-

संगहियमागहियं संपिंडियमेगजाइमाणीयं। संगहियमणुगमो वा वइरेओ पिंडियं भणियं॥

(वि.आ.भा.२२०४) इति।

१) सामान्याभिमुखेन ग्रहणं सङ्गृहीतसङ्ग्रहः।

२) पिण्डितमेकजातिमानीतमभिधीयते पिण्डितसङ्ग्रहः, *'एगे आया'* इत्यादिवत्।

३) सर्वव्यक्तिषु अनुगतस्य सामान्यस्य प्रतिपादनमनुगमसङ्ग्रहोऽभिधीयते, 'सच्चिन्मयो आत्मा' इत्यादिवत्।

४) व्यतिरेकस्तदितरधर्मनिषेधात् ग्राह्यधर्मसङ्ग्राहकः व्यतिरेकसङ्ग्रहः प्रोच्यते। यथा 'अजीव' इत्युच्चारिते जीवनिषेधेन कस्यापि जीव[स्य] सङ्ग्रह एव जाते(तो)ऽस्ति[१]। अतो व्यतिरेकादयश्चत्वारः सङ्ग्रहभेदाः सन्तीत्यर्थः॥ इति सङ्ग्रहः॥२४॥

[व्यवहारनयस्य द्वौ भेदौ]

[२६] अथ व्यवहारनयस्य भेदद्वारगाथाचतुष्कमाह-

[मूल] शुद्धाशुद्धप्रभेदाभ्यां व्यवहारो युगः स्मृतः।

वस्तुगतसाधनाभ्यां शुद्धः स्याद् द्विविधः श्रुतौ॥२५॥

---

१. यहां पर इस प्रकार का पाठ होना चाहिये **यथा जीव इत्युच्चारितेऽजीवनिषेधेन कस्यापि जीवस्य सङ्ग्रह एव जातोऽस्ति।**

[मूल] सद्भूतकेतराभ्यां च अशुद्धोऽपि भवेद् द्विधा।
असद्भूतोऽपि द्विविधः स्यात्संश्लिष्टेतरेण च॥२६॥

(व्याख्या) व्यवहारनयः शुद्धाशुद्धाभ्यां द्विविधो भवति। तत्रापि शुद्धो द्विविधो वस्तुगतसाधनाभ्यामस्ति। तथा सद्भूतकासद्भूतकाभ्यामशुद्धोऽपि द्विविधोऽस्ति। च = पुनः। असद्भूतोऽपि संश्लिष्टासंश्लिष्टेन द्विविधो भवेदिति ॥२५॥२६॥

[२७] [मूल] व्यवहारो युगं स्याद्वा विभजनप्रवृत्तितः।
प्रवृत्तिस्त्रिविधा ज्ञेया वस्तुसाधनलौकिकात्॥२७॥
[मूल] लोकोत्तरा लौकिका च कुप्रावचनिका तथा[1]।
साधना त्रिविधा प्रोक्ता विशेषावश्यकागमे॥२८॥

(व्याख्या) अथवा व्यवहारो विभजनप्रवृत्तितः द्विविधोऽस्तीति। तथा प्रवृत्तिरपि वस्तुसाधनलौकिका त्रिविधा ज्ञेया। तत्र साधन(प्रवृत्तिः) लोकोत्तर-लौकिक-प्रावचनिका त्रिविधा ज्ञेयेत्यर्थः। तदुक्तं विशेषावश्यके-

ववहरणं ववहरए स तेण वऽवहीरए व सामन्नं। ववहारपरो व जओ विसेसओ तेण ववहारो॥

(वि.आ.भा.२२१२)

व्यवहरणं = व्यवहारः, व्यवहरति स वा व्यवहारः, विशेषतो अवह्रियते = निराक्रियते सामान्यमनेनेति व्यवहारः, लोकव्यवहारपरो वा विशेषतो यस्मात्तेन व्यवहारः। न व्यवहारस्य स्वधर्मप्रवृत्तिस्तेन ऋते सामान्यमिति स्वगुणप्रवृत्तिरूपव्यवहारस्य वस्तुत्वम्, तमन्तरेण तदभावादिति[2]॥२७॥२८॥

[व्यवहारनयस्य षड् भेदाः]

[२८] [मूल] ग्रन्थान्यस्मिन् शुद्धशुभोपचरितेतरैस्तथा। व्यवहारो रसविधो भवेत्तज्ज्ञानुसारतः॥२९॥

(व्याख्या) अन्यस्मिन्ग्रन्थे = ग्रन्थान्तरे तज्ज्ञानुसारतः = प्रौढानुसारेण शुद्ध-अशुद्ध-शुभ-अशुभ- उपचरित-अनुपचरितभेदेन व्यवहारो रसविधः = षड्विधो भवेदित्यर्थः॥२९॥

[ऋजुसूत्रनयविचारः]

[२९] अथ ऋजुसूत्रनयविचारगाथामाह-

[मूल] प्रवृत्तिकालमादृत्य ऋजुसूत्रनयो भवेत्। नामाद्यब्धिप्रकारेण मत्या द्रव्येषु योजयेत्॥३०॥

(व्याख्या) प्रवृत्तिकालं = वर्तमानकालमपेक्ष्य मत्या = बुद्ध्या नामाद्यब्धिप्रकारेण = नामस्थापनाद्रव्यभाव-भेदेन द्रव्येषु बोधरूपो यः स ऋजुसूत्रनयो भवेदित्यर्थः। यत् साम्प्रतमुत्पन्नं वर्तमानकालीनं वस्तु तच्च यस्य प्रत्येकमात्मीयं तदेव तदुभयस्वरूपं वस्तु प्रत्युत्पन्नमुच्यते। तदेवासौ नय ऋजु प्रतिपद्यते। तदेव च वर्तमानकालीनं वस्तु तस्यर्जुसूत्रस्यास्ति। तदुक्तं विशेषावश्यके-

पच्चुप्पन्नं संपयमुप्पन्नं जं च जस्स पत्तेयं। रिजुतयेव तस्सत्थि उ वक्कमन्नंति तमसच्चं[3]॥

---

१. यहां पर **'लोकोत्तरा लौकिकश्च कुप्रावचनिकस्तथा'** की जगह **'लोकोत्तरा लौकिका च कुप्रावचनिका तथा'** पाठ अधिक युक्त लगता है।

२. यहां पर **न व्यवहारा** इत्यादि पंक्ति नयचक्रसार से ली गई है, जो स्वयं अशुद्ध है उसका संशोधन करके अर्थ किया जाता है- **न व्यवहारस्य घटत्वादिस्वधर्मप्रवर्तितेन (विशेषेण) ऋते सामान्यम्।**

३. जमसंतं इति मु.।

(वि.आ.भा.२२२३)

अतः प्रवृत्तिमन्तरेण कालत्रिकस्य न वस्तुत्वम्। कथम्? भूतकालस्यातीतेनागामिकस्यानागतेन च साम्प्रतं यद्वर्तते वर्तमानं तस्यैव वस्तुत्वम्। अतीतस्य कारणभावेन अनागतस्य कार्यभावेन जन्यजनकभावेन यो वर्तते स ऋजुसूत्रो वर्तमानग्राहक इत्याशयः॥३०॥

[शब्दनयविचारः]

[३०] अथ शब्दनयस्वरूपोत्पादकगाथाद्वयमाह-

[मूल] सुवाच्यार्थग्राहकेन तत्समः स्वक्रियान्वितः। भावनिक्षेपमादृत्य द्रव्ये शब्दनयो भवेत्॥३१॥

[मूल] आविर्भावतिरोभावैरनेकधर्मसंयुतः। सप्तभङ्ग्यनुयोगेन वदेच्छब्दनयः श्रुतौ॥३२॥

(व्याख्या) द्रव्ये भावनिक्षेपकमपेक्ष्य सद्वाच्यार्थग्राहकेन तत्सदृशो यः स्वक्रियान्वितः स शब्दनयो भवेदिति। कथम्भूतः शब्दनयः? आविर्भावतिरोभावैर्विविधधर्मसमन्वितः श्रुतौ सप्तभङ्ग्यनुयोगेन = स्याद्वादभावेन शब्दनयो वदेदित्यर्थः। 'शप् आक्रोशे' शपनम् आह्वानमिति, शपतीति वा आह्वयतीति शब्दः, शप्यते आहूयते वस्तु अनेनेति शब्दः। (तस्य) शब्दस्य यो वाच्योऽर्थस्तत्परिग्रहात् तत्प्रधानत्वान्नयः शब्दः। यथा कृतकत्वादित्यादिकः पञ्चम्यन्तः शब्दोऽपि हेतुः अर्थरूपं कृतकत्वमनित्यत्वगमकत्वान्मुख्यतया हेतुरुच्यते, उपचारतस्तु तद्वाचकः कृतकत्वशब्दो हेतुरभिधीयते। एवमिहापि शब्दवाच्यार्थपरिग्रहादुपचारेण नयोऽपि शब्दो व्यपदिश्यते इति भावः। यथा ऋजूसूत्रनयस्याभीष्टं प्रत्युत्पन्नं वर्तमानं तथैवेच्छत्ययं शब्दनयः। (यद् यस्मात्) पृथुबुध्नोदरकलितं मृन्मयं लिप्तमभीष्टजलाहरणादिक्रियाक्षमं प्रत्यक्षघटरूपं भावघटमिच्छति, न तु शेषान्नामस्थापनाद्रव्यरूपान् त्रीन्घटानिति। शब्दार्थप्रधानो ह्येष नयश्चेष्टालक्षणयुक्तश्च घटशब्दार्थः। 'घट चेष्टायाम्', 'घटत इति घटः'। अतो जलाहरणादिक्रियां कुर्वन् घट इति। अतो नामाद्यब्धिनिक्षेपयुक्तर्जुसूत्राच्छब्दो विशेषिततरं वस्तु इच्छति। शब्दो भावघटमभिप्रैति, ऋजुसूत्रः सामान्यघटमभ्युपैति। शब्दस्तु सद्भावासद्भावादिभिर्विविधधर्मान्वितपूर्वोक्तसप्तभङ्ग्यनुसारेणैव भावघटमिच्छतीत्याशय इति॥३१॥३२॥

[३१] अथ शेषनयविचारान्वितामिमां गाथामाह–

[मूल] प्रत्येकमेकभेदोऽस्ति[१] श्रुतौ शब्दनयादयः। पर्यायार्थिकमन्येऽत्र वदन्ति ऋजुसूत्रकम्॥३३॥

(व्याख्या) श्रुतौ = सिद्धान्ते शब्दादिकानां नयानां प्रत्येकमेकैक एव भेदो भवति। अन्ये जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणाद्याचार्या ऋजुसूत्रनयं पर्यायार्थिकं वदन्तीत्यर्थः॥३३॥

[समभिरूढनयविचारः]

[३२] अथ समभिरूढनयलक्षणमाह-

[मूल] सञ्ज्ञान्तरार्थविमुखो भवेत्समभिरूढकः। सर्वभावेषु या सञ्ज्ञा तां तामेव वदेद् ध्रुवम्॥३४॥

(व्याख्या) सञ्ज्ञामित्यादि। स एवम्भूतो निगद्यते। समभिरूढो यां यां सञ्ज्ञां लक्षणेन गदति तां तामेव वदति। ततः सञ्ज्ञान्तरार्थविमुखः स समभिरूढः विविधार्थे वाच्ये विविधं नाम एव भाषते यद्येकपर्यायवाच्ये समग्रपर्यायवाचकः स्यात्तदा पर्यायाणां सङ्करेण वस्तुसङ्करः स्यादेव। अतः सङ्करदोषनिवारणाय

---

१. **प्रत्येकमेकैकभेदाः** यह पाठ अधिक संगत लगता है।

पर्यायान्तरमनपेक्षकः समभिरूढः। तदुक्तं विशेषावश्यके-

जं जं सण्णं भासइ तं तं चिय समभिरोहइ जम्हा। सण्णंतरत्थविमुहो तओ नयो समभिरूढो त्ति॥

(वि.आ.भा.२२३६) ॥३४॥

[एवम्भूतनयविचारः]

[३३] अथ एवम्भूतस्वरूपनिरूपणार्थं गाथामाह-

[मूल] एवं यथा शब्दभावः शब्दार्थेषु व्यवस्थितः। यत्प्रवृत्तिस्तत्तथैव सैवम्भूतो निगद्यते॥३५॥

(व्याख्या) तदुक्तं भाष्ये-

एवं जह सद्दत्थो संतो भूतो तदन्नहाभूओ। तेणेवंभूअनओ सद्दत्थपरो विसेसेणं॥ (वि.आ.भा.२२५१)

एवम् = अमुना प्रकारेण यथा 'घट चेष्टायाम्' इति शब्दार्थे व्यवस्थितः **(तहत्ति)** तथैव यः प्रवर्तते घटाद्यर्थ एवं = सन् भूतो = विद्यमानः। **तदन्नहाभूओ त्ति।** तदन्यथा = शब्दार्थोल्लङ्घनेन वर्तते स तत्त्वतो घटाद्यर्थोऽपि न भवति, किन्त्वभूतोऽविद्यमानः। येनैवं मन्यते तेन कारणेन शब्दनयसमभिरूढाद्(भ्याम्) एवम्भूतो विशेषेन शब्दार्थतत्परः। अयमेवम्भूतो योषिच्छिरःस्थितजलाहरणादिक्रियान्वितं चेष्टमानमेव घटं मन्यते, न तु गृहकोण-स्थितम्। विशेषतः शब्दार्थतत्परोऽयमिति॥ इति नयद्वारम्॥३५॥

[सप्तमस्य प्रमाणद्वारस्य उत्तरद्वाराणि]

[३४] चकारात्प्रमाणद्वारगाथामाह-

[मूल] परोक्षप्रत्यक्षाभ्यां च प्रमाणं द्विविधं स्मृतम्। परोक्षमिन्द्रियज्ञानं प्रत्यक्षं स्यादनिन्द्रियम्॥३६॥

(व्याख्या) प्रमाणं युगविधं परोक्षं प्रत्यक्षं चेति। **परोक्षेत्यादि**। तत्रेन्द्रियोद्भवं ज्ञानं परोक्षं मतिश्रुतम्, अनिन्द्रियज्ञानं प्रत्यक्षं तदवध्यादित्रिप्रकारं भवतीत्यर्थः। शेषं स्पष्टम्॥ इति प्रमाणद्वारम्॥३६॥

[अष्टमस्य भावद्वारस्य उत्तरद्वाराणि]

[३५] अथ भावद्वारगाथामाह-

[मूल] क्षायिकोपशममिश्रपरिणामोदयस्तथा। षष्ठमः सन्निपातश्च भावाः सन्ति जिनागमे॥३७॥

(व्याख्या) १) कर्मक्षयादुत्पन्नो यः स क्षायिकः। तत्र क्षायिकं चारित्रं दानादिलब्धिपञ्चकं क्षायिको भावः कालतः सादि-स(अ)पर्यवसितः। क्षायिकानि ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वानि कालतः साद्यपर्यवसितः(तानि)।

२) उपशमः कर्मविपाकप्रदेशरूपतया द्विविधस्याप्युदयस्योपशमनं तेन निर्वृत्त औपशमिकः सम्यक्त्वादिः सादिसपर्यवसानः।

---

१. यहां पर **अवध्यादिस्त्रिप्रकारो** भवति की जगह **त्रिप्रकारं भवति** यह पाठ होना चाहिए।

२. इस अर्थघटन से ऐसा प्रतीत होता है कि- क्षायिक भाव का चारित्र और दानादि पांच लब्धि यह छह क्षायिक भाव सादि सांत है तथा क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व यह तीन क्षायिक भाव सादि अनंत है। यह बात विचारणीय है।

३) क्षयोदीर्णस्या(उदीर्णस्य क्षयाद)नुदीर्णस्य चोपशमान्निर्वृत्तो मिश्रः = क्षायोपशमिकः। तत्र ज्ञानचतुष्क-विभङ्गज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि देशविरतिः, सर्वविरतिः, क्षयोपशमिकसम्यक्त्वम्, दानादिलब्धिपञ्चकानि च क्षायोपशमिको भावः कालतः सादिसपर्यवसानोऽस्ति, अभव्यानामनाद्यपर्यवसानोऽस्ति।

४) उदयः शुभाशुभप्रकृतीनां विपाकतोऽनुभवनं तेन निर्वृत्त औदयिकः। तत्र नारकादीनां नरकगत्यादिरौदयिकभावः सादिसपर्यवसानः, मिथ्यात्वादिक औदयिक भावो भव्यानामनादिसपर्यवसानः। एष एवाभव्यानाम् अनाद्यपर्यवसितोऽस्तीति।

५) परि = समन्तान्नामनं = जीवानामजीवानां च जीवाजीवत्वादिस्वरूपानुभवनं प्रति प्रह्वीभवनं = परिणामस्तेन निर्वृतः पारिणामिकः पञ्चमः। तत्र पुद्गलास्तिकाये द्व्यणुकादिः पारिणामको भावः। स कालतः सादि-सपर्यवसानः। भव्यत्वं भव्यानामनादिसपर्यवसानः। अत्र चतुर्भङ्गीस्थापना। (सादि-सपर्यवसानः, अनादि-सपर्यवसानः, सादि-अपर्यवसानः, अनादि-अपर्यवसानः)

६) **षष्ठमः सन्निपात इति**। एतेषां सन्निपातैः= द्व्यादिसंयोगान्निष्पन्नः सान्निपातिकभावः षष्ठमोऽस्ति। स च षड्विंशतिधा। तत्र द्विकसंयोगाद्दशः। तथाहि- औपशमिकक्षायिक- औपशमिकक्षायोपशम-औपशमिकऔदयिक-औपशमिकपारिणामिक-क्षायिकक्षायोपशमिक-क्षायिकऔदयिक-क्षायिकपारिणामिक-क्षायोपशमऔपशमिक-क्षायोपशमपारिणामिक-औदयिकपारिणामिकाः।

त्रिकसंयोगाद्दश औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिक-औपशमिकक्षायिकऔदयिक-औपशमिकक्षायिक-पारिणामिक-औपशमिकक्षायोपशमऔदयिक-औपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिक-औपशमिकऔदयिक-पारिणामिक-क्षायिकक्षायोपशमिकऔदयिक-क्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिक-क्षायिकऔदयिक-पारिणामिक-क्षायोपशमिकऔदयिकपारिणामिकाः।

चतुःसंयोगिकाः पञ्च औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकऔदयिक-औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिक-पारिणामिक-औपशमिकक्षायोपशमिकऔदयिकपारिणामिक-क्षायिकऔपशमिकऔदयिकपारिणामिक-क्षायिकक्षायोपशमिकऔदयिकपारिणामिकाः।

पञ्चसंयोगिक एकः-औपशमिकक्षायिकक्षायोपक्षमिक-औदयिकपारिणामिकः। एकत्वे सन्निपातो न भवति, द्विकादि-संयोगाभावादिति॥३७॥

[३६] अथैतद्गाथापञ्चकमाह–

[मूल] कैवल्यदर्शनज्ञानं तथा क्षायिकदर्शनम्। क्षयान्तरायचारित्रखगाः सन्त्युत्तराणि च॥३८॥
[मूल] शमदर्शनचारित्रौ युगलोपशमो भवेत्। ज्ञानाम्बुनिध्यज्ञानानि त्रिदर्शन-गृहस्थकाः॥३९॥
[मूल] संयमी मिश्रसम्यक्त्वदानादिशरलब्धयः। मिश्रभावोत्तरा भेदा भवन्त्यष्टादश श्रुतौ॥४०॥
[मूल] कषायसंयमज्ञानलेश्यासिद्धचतुर्गतिः। वेदमिथ्यात्वोत्तराः स्युरेकविंशतिधोदयः॥४१॥
[मूल] जीवभव्याभव्यभेदैः परिणामस्त्रिधा भवेत्। इमान्युत्तरभेदानि[१] भावानां प्रविनिर्ममे॥४२॥

[नवमस्य जीवद्वारस्य दशमस्य अनुयोगद्वारस्य च उत्तरद्वाराणि]

[३७] अथ जीवानुयोगद्वारगाथामाह-

---

१. **इमे चोत्तरभेदा हि** यह पाठ अधिक संगत है।

[मूल] भवेज्जीवस्त्वेकविधः स्वनुयोगश्चतुर्विधः। द्रव्यचारित्रगणितसुधर्माः स्युर्जिनागमे॥४३॥

(व्याख्या) जीव एकविध एव भवति स्वद्रव्यत्वाश्रयेन। जिनागमे = सिद्धान्ते अनुयोगश्चरणकरण-द्रव्यगणितधर्मैश्चतुःप्रकारोऽस्तीत्यर्थः। जीवति स्म स्वप्राणान्धारयतीति जीवः। एवं धर्मादिद्रव्याणामनुयोगौ यत्र स द्रव्यानुयोगः समवायाङ्गजीवाभिगमप्रज्ञापनादयः। तथा चरणकरणानुयोगौ आचाराङ्ग-निशीथ-बृहत्कल्पादयः। गणितानुयोगः चन्द्रप्रज्ञप्तिसूर्यप्रज्ञप्त्यादयः। धर्मकथानुयोगो ज्ञाताधर्मकथोपासकदशाङ्गान्तकृद्दशाङ्ग-विपाकादयः। वेदानुयोगान्विता विवाहप्रज्ञप्त्यादयः सन्तीति[1]॥४३॥

[एकादशस्य क्षेत्रद्वारस्य उत्तरद्वाराणि]

[३८] अथ क्षेत्रद्वारमाह-

[मूल] देशगः सर्वगश्चैव क्षेत्रोभयविधः स्मृतः[2]। शिवोन्मितानि द्वाराणि लेशेनेत्थमचीकथन्॥४४॥

(व्याख्या) देशेत्यादि स्पष्टम्। इति एकादशद्वारोत्तराणि॥४४॥

[द्रव्यविचारः]

[३९] अत्र प्रथमं द्रव्यविचारमाह-

[मूल] जीवाजीवस्वरूपश्च लोके राशिद्विकः स्मृतः।
धर्माधर्मा[3] अस्तिकायाः भवन्ति पुद्गलास्तथा॥४५॥

[मूल] सिद्धसंसारिभेदाभ्यां जीवस्तु द्विविधः स्मृतः। निजभावविभावाभ्यां भवेत्पर्यायभेदतः॥४६॥

(व्याख्या) लोके = भवे राशियुगेव भवति। जीवश्च अजीवश्च। तत्राजीवो धर्माधर्मा-म्बरपुद्गलास्तिकायैश्च-तुर्विधो भवतीति। जीवः सिद्धसंसारिभेदेन द्विप्रकारोऽस्ति। सिद्धो जिनादिभेदेनानेकविधोऽस्ति। संसारिका एकेन्द्रिया-दिजात्यपेक्षया विविधा भवन्ति। एते भेदाः स्वभावविभावाभ्यां पर्यायभेदतो भवेद् बोद्धव्याः। कालस्तु जीवपुद्गलानां परावर्तकरूपोऽस्तीत्यनेनास्तिकायाभाव एवास्ति, मुख्यपर्यायरूपत्वादिति। अजीवानां काया अजीवकायाः। शिला-पुत्रकस्य शरीरमित्यादावभेदेऽपि षष्ठी दृष्टा। तत्र कनकस्य अङ्गुलीयकम-(मित्य)न्यत्वाशङ्काव्यावृत्यर्थाय वा कर्मधारयसमासोऽभ्युपेयते। अजीवाश्च ते कायाश्चेत्यजीवकायाः। कायशब्द उपसमाधानवचनः। प्रदेशानामवयवानां च सामीप्येनान्योन्यानुवृत्त्या सम्यग् = मर्यादया धारणमवस्थानमुप-समाधानमिति। वा काया इवैते कायाः = शरीराणि यथा प्रदेशावयवत्वात् कायशब्दवाच्यान्येवमेतेऽपीति। अकृत-द्वन्द्वाश्चैते धर्मादयो निर्दिष्टाः।

[धर्माधर्मास्तिकायौ]

[४०] तत्र धर्मो वक्ष्यमाणगत्युपष्टम्भकार्यानुमेयः, स्थित्युपष्टम्भकार्यानुमेयोऽधर्मः। **(शं)** अत्रादृष्टौ धर्माधर्मौ शुभाशुभफलदायिनौ कस्मान्न गृह्येते ? **(स)** सत्यम्, उच्यते, द्रव्यप्रस्तावापन्नत्वाद् गुणत्वे सति तयोरप्रसङ्गः। अपि च जैनमते धर्माधर्मौ शुभाशुभफलप्रदौ मूर्तावेव पुद्गलात्मकत्वादतः पुद्गलग्रहणेनैव तयोर्ग्रहणमिति अत्र नास्ति तद्विषयं मनागिति।

---

१. यहां **'विवहज्ञप्ति'** की जगह **विवाहप्रज्ञप्ति** पाठ होना चाहिए, **'दयोऽस्तीति'** की जगह **'दयः सन्तीति'** पाठ होना चाहिये।
२. इस गाथा का पूर्वार्ध इस तरह ज्यादा उचित प्रतीत होगा **देशगं सर्वगं चैव क्षेत्रं हि द्विविधं स्मृतम्**।
३. यह पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है।

[आकाशास्तिकायः]

[४१] अवगाहरूपकार्यानुमेयमाकाशम्। **(शं)** अतो लोकाकाशं कथम्? इति चेद्, **(स)** अनवगाह्यत्वादिति उच्यते। तद्धि व्याप्रियेत एव अवकाशदानेन यदि गतिस्थितिहेतू धर्माधर्मौ तत्र स्याताम्, तत्र तदभावाद् विद्यमानोऽप्यवगाहनगुणो नाभिव्यज्यते अलोकाकाशत्वादिति।

[पुद्गलास्तिकायः]

[४२] तथा पूरणाद्गलनाच्च पुद्गलाः, संहन्यमानत्वाद्विसंहतिमत्त्वाद्वा, पुरुषं वा गिलन्तीति वा, पुरुषैर्गिलन्तीति[१] पुद्गलाः। मिथ्यादर्शनादिहेतुवर्तिनं मानुजं बध्नन्ति वेष्टयन्तीति गिरणार्थः। इतरत्रादानार्थो गिरतिः, पुरुषेणादीयन्ते कषाययोगभाजा कर्मतयेति पुद्गलाः।

[४३] **(शं)** सत्यजीवत्वे कालः कस्मान्न निर्दिष्ट इति, **(स)** उच्यते, स त्वकीयमतेन द्रव्यमित्याख्यास्यते द्रव्यलक्षणप्रस्ताव एव। अमी पुनरस्तिकायव्याख्याने[२], न च कालोऽस्तिकाय एकसमयत्वादिति।

[अस्तिकायपदे अस्तिपदकायपदयोः सार्थक्यविचारः]

[४४] धर्मादीनां (धर्मादयः)[३] कायग्रहणं च साक्षात्कृतं तदप्यजीवपदसम्बद्धं (भाष्यकारः) समानाधिकरण्यनिर्देशे सति धर्मादिभिः सह सङ्घटयति- ***प्रत्येकं धर्मास्तिकाया*** इति। इह अस्तिकायद्वारमाह = जानना[४](?)। ननु धर्मकाय इति भाव्यमेवमस्तिशब्दोऽन्तरालवर्ती कुतोऽतर्कितः पतितः ? इत्युच्यते ज्ञानशब्दयोर्निबद्धमुभयमर्थविदः प्रचक्षते स्वभावरूपमापत्तिरूपं च। तत्र प्रत्यस्तमितनिरवशेषविशेषण(णः) स्वभावरूपः सर्वदाप्यविकार्यो येनांशेन ध्रौव्यव्यपदेशमश्नुतेऽसौ, यथा चैतन्यमात्मनोऽकृत्रिममूर्तत्वं वा, मूर्तत्वं वा पुद्गलद्रव्यस्य, धर्मादीनाममूर्तत्वं सकललोकव्यापितागत्याद्युपग्रहादिलक्षणानि च ध्रुवाण्येतानि। आपदनम् = आपत्तिः = आविर्भावतिरोभावौ = वस्तुन उत्पादविनाशाविति यावत्। तत्र मृन्मूर्तिरूपादिस्वभावमजहद्वस्तु घटकपालशकला-कारमास्कन्ददुत्पद्यत इति व्यपदिश्यते। यथा हि महतः सरसस्तरङ्गमालाः पटुमारुतवेगायासिताः प्रादुःष्यन्ति जलद्रव्यात्मिकाश्च ताः, एवं घटादयोऽपीति। तथा विनाशोऽपि घटाद्याकारप्रलयः कारणापेक्षः स्थूलतरङ्ग-सन्ततीनामिव स्तिमितवारितयावस्थानमुज्झितसमीरणप्रबलवेगसम्पर्काणाम्। इत्येवमुत्पादप्रलयध्रौव्यलक्षणः प्रवचनेऽस्त्यर्थः (प्रासिधत्)। तत्र (एतत्) त्रितयप्रदिदर्शयिषया(आचार्येणा)स्ति-शब्दोऽव्ययसञ्ज्ञः सकलधर्मादि-द्रव्यधौव्यप्रतिपादनायाकारि। काय-शब्दस्तु तत्रोपात्त आपत्त्यर्थः। **(शं)** एवं तर्हि सूत्र एवोपादानमस्तिशब्दस्य न्याय्यं, विशिष्टार्थप्रतिपत्त्यर्थत्वात्, कायशब्दवत्, कायशब्दो वा तत्र नोपादेयस्तत एव हेतोरस्तिशब्दवदिति, **(स)** उच्यते, अन्यतरोपादाने ह्यत्रान्यतरसम्प्रत्ययो भवतीत्यभिप्रायः सूरेः। संसर्गादीनि कारणानि शब्दस्य (अन्यस्य) सन्निधाने भवन्ति व्यवच्छेदे वा(च)।

संसर्गो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता। अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः॥
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः। शब्दस्यार्थानव्यवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥

(वा.प.२.३१५-३१६)

१.यहां पर **गिलन्ति** की जगह **गिल्यन्ते** पाठ होना चाहिए।

२. यहां पर इस प्रकार पाठ होना चाहिए - **स स्वकीयमतेन द्रव्यमित्याख्यास्यते द्रव्यलक्षणप्रस्ताव एव। अत्र पुनरस्तिकायव्याख्यानम्।**

३. इस परिच्छेद में और अग्रिम परिच्छेदों में वृत्त कोष्ठ में दिये गये पाठ तत्त्वार्थसूत्र और भाष्य की सिद्धसेनीय टीका के है। व्याख्याकार का यह विवरण **अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः** (त.सू.५.१.) इस सूत्र और भाष्य की सिद्धसेनीय टीका का ही उद्धरण है।

४. **इह अस्तिकायद्वारमाह जानना** इस पंक्ति का अर्थ/संदर्भ स्पष्ट नहीं होता है।

एषामनन्तरोक्तानां मध्ये संसर्ग आद्रियते (गृह्यते)।

अत्र संसर्गमङ्गीकृत्य ध्रौव्यार्थप्रतिपत्तयेऽस्तिशब्दप्रक्षेपः। उत्पादविनाशौ हि ध्रौव्याविनाभूतौ संसृष्टौ ध्रौव्येण। अन्यथा हि ध्रौव्यात्मकताभावेऽन्वयिशून्यत्वादसन्निहितभवितृकत्वादुत्पादविनाशौ निर्बीजौ न स्याताम्। नापि ध्रुवता आविर्भावतिरोभावरहिता। ततस्त्र्यात्मकं वस्तु जैनेन्द्राणां बुद्धिव्यवस्थापितप्रविभागं प्रज्ञापनोपायत्वान्नरसिंहादिवद्, अतः कायशब्देनापत्तिरभिधित्सिता अस्तिशब्देन ध्रौव्यमिति।

[४५] (शं) कथं[१] पुनः कायग्रहणादापत्तिरुद्भवप्रलयात्मिका प्रतीयते? इति, **(स)** उच्यते, प्रचीयमानाकारता हि कायः = समुदायः। स च विभागे सति भवति। विभक्ताश्च धर्मद्रव्यप्रदेशाः, न यत्रैकः स्थितो धर्मप्रदेशः तत्रापरोऽपि तत्प्रदेशः प्रतिष्ठित इति तेषां विभक्तानामसौ[२] परस्पराविच्छेदलक्षणः समुदायः सोऽवश्यन्तया तथोत्पन्नः समुदायशब्दवाच्यत्वात्। नन्वेवमादिमत्त्वं धर्मादीनां प्रसज्यते तन्त्वादिसमुदायवद्, उच्यते, तेऽपि हि नादिमन्तः पुद्गलद्रव्यस्यानेकशक्तित्वात्सा च शक्तिः शक्तिमतो भेदाभेदाभ्यामग्रे[३] वक्ष्यते। यत्र चोत्पादस्तत्रावश्यं विनाशेन भवितव्यं तत्सहचारित्वात् च विनाशः पूर्वावस्थाप्रच्युतिलक्षणः समुदायादेवोन्नीयत इति।

[४६] अथवाधुना गतिपरिणतिभाजश्चैत्रस्य धर्मद्रव्यमुपग्रहं कुरुते तच्चोपग्रहकारितया प्रागजिगमिषति चैत्रे न व्यापारमगमदुत्तरकालं तु कोऽप्यतिशयः समुदपादि येन गतेरुपग्रहकृद्भवति कयापि विक्रियावस्थयेत्यतस्तेनाकारेणोत्पादः, समुपरतगतिव्यापारे च चैत्रे यो गत्युपग्रहव्यापारोऽभवत्तया[४] तत्पुनरपैत्यतो विनाश एव। अधर्माकाशयोरपि स्थित्यवगाहनामुखेनोत्पादविनाशौ वाच्यावतः कायग्रहणात्सुगमः आपत्तिशब्दार्थ इत्यतोऽस्तिश्चासौ कायश्चेत्यस्तिकायः = ध्रुवश्चासावुत्पादविनाशवांश्चेत्यर्थः। धर्मश्चासावस्तिकायश्च धर्मास्तिकायः। एवमधर्माकाशावपीति। पुद्गलास्तिकाये तूत्पादव्ययध्रुवताः प्रत्यक्षैवास्ति[५] प्रायः।

[४७] एवमेताँश्चतुरोऽप्यजीवान्[६] सूत्रेण परिगणय्याह - ***तान्लक्षणतः पुरस्ताद् वक्ष्यामः*** (त.सू.भा.५-१) तान्धर्मादीनेतावतः परस्तादुपरि लक्षणतो गतिस्थित्युपग्रहावगाहशरीराद्युपकाररूपादिः पूर्वोक्तम्[७], इदं तूद्देशमात्रमारचितममुना सूत्रेण, अवश्यन्तया च पदार्थभेदमभ्युपेयता विविक्तमेव लक्षणमासञ्जनीयम्, अन्यथा दुरुपपादः स्यादतस्तान्प्रत्येकं लक्षणभेदेनाग्रे प्रतिपादनमुक्तमेव[८]।

[अस्तिकायपदे कायपदग्रहणस्य प्रयोजनम्]

[४८] अथ[९] कायग्रहणं किमर्थमित्यत आह– ***कायग्रहणं प्रदेशावयवबहुत्वार्थमद्धासमयप्रतिषेधार्थं चेति॥*** (त.सू.भा.५.१) ननु च कायग्रहणस्य प्रयोजनं वर्णितमापत्तिः कायशब्दार्थ इति, सत्यमुक्तम्[१०] धर्मादीनामजीवता गम्यत एव, तस्मात्तस्योपादाने प्रयोजनमेषां धर्मादीनां प्रदेशबहुत्वमिष्यते। प्रकृष्टो देशः प्रदेशो निर्विभागः खण्डम् अनपायि स्वस्थानादनादिकालपरिणामापादिततथास्थितिः। तेषामेवंविधप्रदेशानां बहुत्वम्, धर्माधर्मयोः असङ्ख्येय-प्रदेशता प्रत्येकम्, आकाशस्यानन्तप्रदेशता प्रभूतार्थः[११]। एवंविधासङ्ख्येयप्रदेशसमुदायो धर्मास्तिकायस्तथैव अधर्मास्तिकायः, आकाशमपि लोकपरिमाणमेतावत्प्रदेशसङ्ख्यम्। सकलाकाशं त्वनन्तप्रदेशमित्येवं समुदितिरूपत्वाद् गत्याद्युपग्रहविक्रियापत्तिद्वारेण स्फुटैवापत्तिरिति।

---

१. यह ग्रंथ भाग भी त.सू.भा.सि उद्धरण है।, २. **विभक्तप्रदेशानां योऽसौ।** त.सू.भा., ३. **त्रिसूत्र्यामेव।** त.सू.भा
४. **चैत्रे तया गत्युपग्रहव्यापारावस्थया।** त.सू.भा, ५. **प्रकाशा एव।** त.सू.भा, ६. यह त.सू.भा.सि. का उद्धरण ही है।
७. **रूपाद् वक्ष्यामः।** त.सू.भा, ८. **प्रतिपादयिष्यामः।** त.सू.भा, ९. अभी त.सू.भा.सि उद्धरण वर्तमान है।
१०. **भाष्याक्षरानपेक्षम्, अधुना तमेवार्थं भाष्याक्षरैर्दर्शयति। विनापि कायग्रहणेन।** त.सू.भा.सि
११. **बहुत्वार्थः।** त.सू.भा.सि.

[४९] पुद्गलद्रव्यमङ्गीकृत्य अवयवबहुत्वमुक्तम्, अवयूयन्त इत्यवयवाः परमाणुद्व्यणुकादयः। परमाणवो हि समुदायपरिणतिमनुभूय भेदमपि प्रतिपद्यन्ते, ततश्चैकका अपि भवन्ति, न त्वेवं धर्मादिप्रदेशा, अत एव च नावयवास्तेऽभिधीयन्ते। तस्माद् भेदेनोपादानं प्रदेशावयवयोः, बह्ववयवं हि पुद्गलद्रव्यमवगन्तव्यम्, सङ्ख्येय-प्रदेशः स्कन्धोऽसङ्ख्येयप्रदेशोऽनन्तप्रदेशोऽनन्तानन्तप्रदेशश्च इति।

ननु चैकोऽपि परमाणुः पुद्गलद्रव्यमेव स कथं बह्ववयवो भवेत्? किमत्र प्रतिपाद्यम्?, ननु प्रसिद्धमेवेदम् एकरसगन्धवर्णो द्विस्पर्शश्चाणुर्भवति। भावावयवैः सावयवो द्रव्यावयवैर्निरवयव इति। तदुक्तं सिद्धान्ते-

कइविहे णं भंते भावपरमाणू पन्नत्ते ? गोयमा ! चउव्विहे भावपरमाणू पन्नते। तं जहा- वण्णमंते रसमंते गंधमंते फासमंते इति। (भ. सू. ६७०)

मतुबिह संसर्गे द्रव्यपरमाण्वपेक्षो वा तस्माद्वर्णाद्यवयवैर्बहुत्वं द्रव्याणोः। यच्च तत्तथा प्रयतते संयुज्यते वियुज्यते च ते[१] इत्यादि कारणं तत्परमाणुद्रव्यम्। अत्राप्यापत्तिः स्पष्टा।

[५०] तथा द्वितीयं कायग्रहणे प्रयोजनमद्धा = समयः कायो न भवति। अद्धा चासौ समयश्चाद्धासमयः। स चार्द्धतृतीयद्वीपान्तवर्ती सामयिकः[२] परमसूक्ष्मो निर्विभागस्तस्य न कायता, समुदायश्च कायशब्दवाच्य इति। पूर्वोक्तैव[३] द्रव्यप्रस्तावे द्रव्यतामेकीयमतानुसारिणीम्। द्रव्यं च प्रदेश-प्रचितमवयवप्रचितं वा स्यादाशङ्कमानो न्यषेधीत्काय-ग्रहणात्कायतामद्धासमयस्य।

(शं) एवं तर्हि कायप्रतिषेधादनुत्पादविनाशः स्यात्समयस्तदभावाच्च ध्रौव्यमप्यपेयात्ततश्च मण्डूकजटाभार-कृतकेशालङ्कारशृङ्गारान्वितवन्ध्यापुत्रखपुष्पमुण्डमालाद्याख्यानवत्समस्तमिदमनालम्बनं समयव्यावर्णनं स्यादि-ति, **(स)** उच्यते, नायं नियमो यत्कायशब्देनाक्षिप्यते तदेवोत्पादविनाशवद् नेतरन्न। **(शं)** कथं तर्हि प्रतिपत्तव्यमेवम्? **(स)** ननु यत्र कायशब्द उपात्तस्तत्रायमर्थोऽस्य यदुतोत्पादविनाशौ स्वरससिद्धावेव च कायशब्देन प्रकाश्येते, न पुनरभूतावपि शब्दसामर्थ्यात्सन्निधानं कल्पयतः। यत्र तु कायग्रहणं नास्ति तत्र स्वरससिद्धावेवोत्पादविनाशौ तत्सहचरितत्वाच्च ध्रौव्यमपीत्येतत्समस्तमेव द्रव्यप्रस्तावे प्रोक्तमेव[४]।

[धर्मास्तिकायादिद्रव्याणां विशिष्टक्रमसन्निवेशप्रयोजनम्]

[५१] नन्वादौ[५] षड्द्रव्यसूचकगाथायामादौ धर्मग्रहणस्य किं प्रयोजनम्? उच्यते, कारणसमुच्चयार्थः[६] प्रश-स्ताभिधानाद् धर्मग्रहणमादौ लोकव्यवस्थाहेतुत्वाद्विपरीतत्वादेकद्रव्यत्वाच्च अधर्मग्रहणमनन्तरं तत्परिच्छेद्यमाकाशं लोकत्वात्तदनन्तरममूर्तसाधर्म्याच्च जीवग्रहणम्[७], तदवगाढत्वात्तदनन्तरं पुद्गला इति विशिष्टक्रमसन्निवेशप्रयोजन-मेतदेवमवसेयमिति॥४५॥४६॥

[प्रथमं द्रव्यलक्षणद्वारम्]

[५२] अथ षड्द्रव्येषु एकादशद्वारावतरणाय प्रथमं सप्तश्लोकैर्द्रव्यलक्षणनिर्णयाय गाथाद्विकमाह-

[मूल] जीवादिवस्तुनो भावः स्वरूपं तत्त्वमेव हि। यत्सर्वथाविरोधेन व्याप्यव्यापकभावतः॥४७॥

[मूल] यं लक्ष्यते यथार्थेन वस्तु सद्रूपलक्षणम्। क्षेत्रकालभावकानामेकपिण्डस्वरूपकम्॥४८॥

(व्याख्या) हि = अस्माद्धेतोर्यत्सर्वथा विरोधेन व्याप्यव्यापकभावतो जीवादिवस्तुनो भावः स्वरूपक्षेत्र-कालभावानामेकपिण्डस्वरूपं यथार्थेन सद्रूपलक्षणं वस्तु लक्ष्यते तद् द्रव्यमित्यर्थः। **(शं)** ननु लक्षणस्य लक्षणं किम्? **(स)** परस्परव्यतिकरे(रेके) सति येनान्यत्वं लक्ष्यते तल्लक्षणमिति। पुनरात्मभूतानात्मभूताभ्यां लक्षणं द्विविधमस्ति। तत्र यद्वस्तु स्वरूपानुप्रविष्टं तदात्मभूतम्, शिखायामुष्णवत्। उष्णं हि पावकस्वरूपं स[२] जलादिभ्यो व्यावर्तयति। तद्विपरीतमनात्मभूतं यथा दण्डो मानुजस्य, दण्डिनमानयेत्युक्ते हि दण्डो मानवाननुप्रविष्ट एवान्यमानुजं व्यावर्तयतीति।

[नैयायिकोक्तलक्षणलक्षणे दोषप्रदर्शनम्]

[५३] अनेन ये केचिद्वदन्ति-असाधारणधर्मवचनं लक्षणमिति तदनुपपन्नम्, लक्ष्यधर्मिवचनस्य लक्षणधर्म-वचनेन समानाधिकरण्याभावप्रसङ्गात्, दण्डादेरतद्धर्मस्यापि लक्षणत्वाच्च। पुनः व्याप्त्यभिधानलक्षणाभासस्यापि तथात्वात्। तद्यथा त्रयो लक्षणाभासभेदाः-अव्याप्तमतिव्याप्तमसम्भवश्चेति। तत्र लक्ष्यैकदेशप्रवृत्तमव्याप्तम्, यथा गोः शाबलेयत्वम्। लक्ष्यालक्ष्यप्रवृत्तमतिव्याप्तम्, यथा गोः पशुत्वमिति। बाधितलक्ष्य-वृत्तिक(कोऽ)मसम्भवं(वः) यथा नरस्य विषाणत्वम्। अत्र लक्ष्यैकदेशवर्तिनः पुनरव्याप्तस्य असाधारणधर्मत्वभावोऽस्ति, न तु लक्ष्यभूतगौमात्र-व्यावर्तकत्वम्। ततः यथोक्तमेव लक्षणम्। तस्य कथनं लक्षणनिर्देश इति।

[स्वाभिमतलक्षणलक्षणम्]

[५४] तथा जीवादेर्मूलधर्मा वस्तुभावस्वरूपाः काञ्चनस्थगुरुपीतस्निग्धतादिस्वरूपवत्, एतत्कार्यं भूषणा-दीनामनेकभोग्यस्वरूपमिति। एवं धर्मादिषु गतिस्थित्यवगाहज्ञानदर्शनचारित्रादिरूपारूपीपरावर्तनादि। ज्ञानमभिन्न-भावावस्थिते वस्तु तत्तत्त्वम्। असम्भवादिदोषाभावत्वं व्याप्यत्वम्, व्याप्याधिकरणत्वं व्यापकम्। अतो व्याप्य-व्यापकभावेन वस्तूनां यथार्थविषयज्ञानं वस्तुलक्षणम्। तत्र तल्लक्षणं द्विविधं–बाह्यलिङ्गाकाररूपं वस्तुगतरूपम्। तच्च तत्र बाह्यलिङ्गाकारादिदर्शनात्मकं बोधं तत्प्रथमं गवादिवत्। वस्तुगतत्वावच्छिन्नं तद्गतस्वरूपज्ञानं वस्तुगतरूपं चेतनधर्मलक्षणजीववत्। तथा चेतनाभावोऽजीव इति॥ एवं सर्वभावानां लक्षणस्वरूपाणि भवन्तीति॥४७॥४८॥

[कार्यभेदेन द्रव्ये भेदाः]

[५५] अथ द्रव्ये कार्यभेदगाथामाह-

(सूत्रं) [मूल] कार्यभेदेन भावानां द्रव्ये भेदा भवन्ति च। तज्ज्ञागमानुसारेण ज्ञातव्या जिनशासने॥४९॥

(व्याख्या) द्रव्ये स्वस्वकार्यभेदेन भावानां वस्तूनां भेदा भवन्ति। ते तज्ज्ञागमानुसारेण = जिनप्रवचनानुसारेण जिनशासने ज्ञेया इत्यर्थः। तत्र द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदेन द्रव्यं चतुर्विधमस्ति। तत्र धर्मादि(दि)यो द्रव्याणि स्वस्वमूललक्षणापेक्षया निजभावैकभेदेऽपि परन्तु निजनिजवस्तुगतपिण्डमाश्रित्य पृथक् तिष्ठन्तीति द्रव्यभेदः। यथा सामान्येन सर्वेऽपि जीवा जीवत्वभावेन सदृशा अपि प्रतिजीवं स्वस्वगुणपर्यायपिण्डरूपाः पृथग्भावाः तिष्ठन्ति, परस्परसंमिश्राभावात्। एवं पुद्गला अपि जडमूर्तादिभावेन तुल्या अपि सर्वेऽपि परमाणवः पृथग्भावाः सन्ति

---

२. **तद्धि** त.सू.भा.सि.।

अनाद्यनन्तकालादपि वृद्धिहीना(हान्य)भावात्। एवं पञ्चास्तिकाया बोद्धव्याः। एवं नभोद्रव्यमपि लोकाकाश-प्रदेशभावेनैकमपि परन्तु जीवादिद्रव्यानां प्रदेशाः पृथग्भावेन निजावगाहनायां सन्ति। क्षेत्रस्य द्रव्येभ्यः पृथग्भा-वाभावात् सर्वप्रदेशे गुणपर्याया अनन्ताः प्रदेशस्थाः पर्यायाः स्वप्रदेशं विमुच्य प्रदेशान्तरेषु न गच्छन्तीत्यर्थः।

[कालभेदेन द्रव्ये भेदः]

[५६] अथ कालभेदमाह- एकस्मिन्वस्तुद्रव्ये उत्पादव्ययस्वरूपेण पर्यायस्पन्दनः समयैकमानोऽस्ति। तथोत्पादव्ययैरगुरुलघुवृद्धिहानिभावेन परिणमनमेकसमयोऽस्ति[१]। एवमनन्त अतीतसमयोऽभूत्। तद्वर्तनपरिणमन-भावेन परम्परारूपोऽस्ति। एवमागामिकोऽपि भविष्यति, भूतागामिकालस्य(योः) पुञ्जाभावात्। अतः पञ्चास्ति-कायपिण्डरूपपरिणमनं कालमानमिति। अतः समयादिभेदमानेनैव कालभेदोऽस्ति। ये पर्याया भिन्नभिन्नकार्यं कुर्वन्ति तदेव कार्यभेदभिन्नोऽस्ति भावभेद इत्याशयः। तत्र क्षेत्रकालभावभेदानां मिश्रीभूयैकपिण्ड-रूपाधारसमुदा-यावस्थितत्वं द्रव्यलक्षणम्। द्रवति गच्छति (तांस्तान्) यान्यान्पर्यायानिति द्रव्यम्॥४९॥

[द्रव्यस्य मुख्यलक्षणम्]

[५७] अथ पुनर्मुख्यद्रव्यलक्षणसार्द्धगाथामाह-

[मूल] व्ययोत्पादध्रुवयुतं यत्सत्तद् द्रव्यलक्षणम्। भवेत्समग्रद्रव्येषु योज्यं मेधानुसारतः॥५०॥

(व्याख्या) द्रव्यपर्याययुगलनयमाश्रित्य लक्षणम्। व्ययोत्पादध्रुवयुतं यत्सत्तद् द्रव्यलक्षणं समस्तद्रव्येषु भवेदेवं मेधा = बुद्धिः तदनुसारतो गुरुपरम्परातोऽवसेयम् इत्यर्थः। अथ(त्र) नूतनपर्यायसमुद्भवनरूपो यः स उत्पादः, पूर्वपर्यायविनशनरूपो यः स व्ययः, यो नित्यसत्त्वादिगुणयुक्तः स ध्रुवः। एते त्रयोऽपि भावाः[२] परिणमनभावेन यत्परिणमनं तद् द्रव्यम्। अतः कारणकार्ययोः समकालेन परिणमन्ति। कारणाभावेन कार्योत्पत्तेरभावात्। यो हेतुः कार्योत्पत्तिं न करोति स कारणमपि न स्यात्, ऊखरभूम्यां घनवृष्टिवत्। अतो य उपादानहेतुः स एव कार्योत्पत्तये शक्तोऽस्ति, मृत्तिकापुञ्जजन्यघटादिवत्। समयं प्रति नूतनकारणोत्पत्तौ सत्यां समये समये नूतनकार्योत्पत्तिरस्ति। अतः कारणकार्ययोरुत्पादव्ययभावेन गुणपिण्डरूपैकत्वद्रव्याधारैकत्वध्रुवस्थैर्यत्वैः तादृशपरिणमनरूपो(पमस्ति)-ऽस्ति। अत उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं प्रत्ययन्सत्[३] तल्लक्षणं द्रव्यमस्ति। एतल्लक्षणं द्रव्यपर्यायोभयनयमाश्रित्य प्रोक्तम्, द्रव्यास्तिकधर्ममपेक्ष्य ध्रुवत्वमुक्तम्, पर्यायास्तिकमादृत्योत्पादव्ययौ गृह्णन्ति। अत एतल्लक्षणं द्रव्यं विद्वज्जना-ह्लादकमस्तीत्याशयः॥५०॥

[तत्त्वार्थगतद्रव्यलक्षणम्]

[५८] एतदेवाह-

[मूल] द्रव्यपर्याययुगलनयमाश्रित्य लक्षणम्। इति।

अथ तत्त्वार्थगतद्रव्यलक्षणोत्तरार्द्धशेषगाथामाह-

---

१. यहां पर **एकसमयमस्ति** यह पाठ अधिक संगत प्रतीत होता है।

२. **तेषाम्।** त.सू.भा.सि.

३. **अभिप्रेत्य यत् सत्।** त.सू.भा.सि.

गुणपर्यायवद् द्रव्यमेतत्पर्यायमादृतः॥५१॥

(व्याख्या) अथवा द्रव्ये गुणाः कारणप्रतिबद्धाः कार्ये प्रवर्त्तमाने भवन्ति। गुणस्य पर्याया कारणरूपाः सन्ति। अतः द्रव्ये गुणपर्याययोर्निजाश्रयेण परिणमनरूपोऽस्ति। अनेन *गुणपर्यायवद् द्रव्यम्* (त.सू.५.३७) इत्येतल्लक्षणमागतम् अस्ति। गुणपर्यायान्वितद्रव्यैक्यगतविभागाभावात्। एतद् द्रव्यस्य मूललक्षणम्। पुनर्ये विविधभूतपरमाणुनिचयस्कन्धरूपं द्रव्यमपेक्ष्यन्ते, ते उपचाररूपेण मन्यन्ते। द्रव्यं निजपरिणमनभावं कालत्रये कदापि न विमुञ्चति, मूलजातित्वात्। द्रव्यगत-अगुरुलघुः षट्गुणवृद्धिहानिरूपस्वजातीयलक्षणचक्रैकभावः प्रचलती-त्याशयः। यत्र पृथग्भावेन भ्रमणं करोति तत्पृथग्द्रव्यमवगन्तव्यमिति। अतो धर्माधर्माभ्ररूपाणि द्रव्याणि पृथगेकैकानि सन्ति। जीवस्त्वसङ्ख्यातप्रदेशरूपैकद्रव्यमस्ति। एतादृशा जीवाः सर्वलोके अनन्ताः सन्ति। श्रेयोवासस्थसिद्धा अपि लोके घटन्त्येव। लोके जीवसङ्ख्यावृद्धिहान्यभावात्।

[५९] एवमेकाकाशप्रदेशे नैके परमाणवो विद्यन्ते। ते एकैव[१] एकमेव द्रव्यमस्ति। ते परमाणवः समग्र-जीवप्रदेशेभ्योऽनन्तगुणा भवन्ति। द्विप्रदेशाद्यनन्तप्रदेशात्मकस्कन्धगतस्थेऽपि लोके प्रमित-परमाणूनां वृद्धिहान्-यभावादिति[२]॥५१॥

[व्यवहारनयेन द्रव्यलक्षणम्]

[६०] अथ व्यवहारनयलक्षणार्थं गाथामाह-

[मूल] अर्थक्रियाकारि द्रव्यं स्वस्वधर्मसमादृतैः। इत्यादयो रसगुणाः परिणामादिभावतः॥५२॥

(व्याख्या) निजनिजधर्ममादृत्य यदर्थक्रियाप्रवृत्तिकरणं द्रव्यमिति। जीवस्य समग्रज्ञेयप्रबोधाय शुद्धक्रियाज्ञानादिगुणप्रवृत्तिर्ज्ञानविभागप्रवृतिरित्याशयः। एवं सर्वगुणानां यज्ज्ञानं कार्यविशेषधर्मज्ञानस्वरूपमिति। एवं दर्शन-गुणस्य समस्तकार्यसामान्यस्वभावबोधरूपमिति। एवं चारित्र[३]कार्यस्वरूपपरिणमनमिति। एवं धर्मास्तिकायस्य स्वगतिगुणपरिणमितजीवपुद्गलानां चलनधर्मसहायकरणरूपमित्यादि। एवमधर्मादिद्रव्याणामपि निजमत्यनुसारेण ज्ञेयम्। एवं सर्वद्रव्यगतगुणानामपि स्वकार्यानुजातीयप्रवृत्तिका अर्थक्रिया योजनीया। तत्र धर्मादयः षड्द्रव्याणि प्रोक्तान्येव ज्ञातव्यानि। एतत् षड्द्रव्यं विमुच्य अन्यानि पदार्थानि जिनशासने न सन्ति।

[द्रव्यप्रस्तावे नैयायिकाभिमतषोडशपदार्थखण्डनम्]

[६१] (व्याख्या) अत्र नैयायिकादयः षोडश पदार्था मन्यन्ते। ते चामी- ***प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्तावयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास-छल-जाति-निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगम इति*** (न्या.सू.१-१-१)। तत्र प्रमाणं पदार्थभिन्नभावाङ्गीक्रियमाणेन जीवद्रव्यस्य ज्ञानप्रमेयगुणोऽस्ति। गुणस्तु गुणिनि तिष्ठत्येवातो भिन्नभावस्तु न विभाव्यते। एवं प्रयोजन-सिद्धान्तादयो गुणा अपि जीवस्य प्रवृत्तिरूपा एव तिष्ठन्तीत्यर्थः। अतः प्रमाणस्य भिन्नवक्तव्यतादोषोऽस्ति।

---

१. यहां पर **एकैकाः** पाठ अधिक संगत प्रतीत होता है।

२. इस पंक्ति का संतोषप्रद अन्वय नहीं लगता।

३. **गुणस्य।** त.सू.भा.सि.

[वैशेषिकाभिमतसप्तपदार्थखण्डनम्]

[६२] (व्याख्या) तथा वैशेषिकाः सप्तपदार्थान् अवमन्यन्ते। तथाहि-

द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं सविशेषकम्। समवायस्तथाभावः पदार्थाः सप्त कीर्तिताः॥ (का.२) एतदप्यसत्यम्। गुणास्तु द्रव्यान्तर्गता एव तिष्ठन्ति। कर्मस्तु(तु) द्रव्यस्य कार्यरूपमस्ति। सामान्यविशेषौ तु द्रव्येषु परिणमनभावेन भवतः। समवायस्तु द्रव्ये कारणरूप एव प्रवर्तते। अभावस्त्वसद्भाव एवास्ति। अतस्तद्वचनमसत्यमिति। तथा वैशेषिका द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजःसमीराम्बरकालदिगात्ममनांसि नवैवेति मन्यन्ते। तत्र पृथव्यप्तेजोवायवस्त्वात्मैव भवति, कर्मयोगाद्देहभेदाभिधानमस्ति। कालस्त्वम्बरे मिश्रित एव तिष्ठति। मनस्तु भवस्थजीवस्योपयोगप्रवर्तनरूपमस्तीति। अत एते पृथिव्यादयो भिन्नभावरूपा न सम्भवन्ति। इत्येते वैशेषिकमते दोषाः।

[अद्वैतवादखण्डनम्]

[६३] तथा वेदान्तिकास्त्वात्मा अद्वैतभावमाश्रित्य एकमेव द्रव्यं मन्यन्ते। तत्र पुद्गलस्कन्धद्रव्यरूपो देहः कथमेकभावोऽस्ति? तथात्मादेहाधाराकारोऽस्ति। अतोऽद्वैतभावो न घटते इति।

[बौद्धमतखण्डनम्]

[६४] तथा शौद्धोदनीया जीवकालाकाशपुद्गलाश्च क्षणविनश्वरभावेन चत्वारः पुनः पुनः नूतनपर्याया मन्यन्ते। तत्र जीवपुद्गलयोरेकक्षेत्रस्थित्यभावेन तत्प्रचलनादिभावाप्तौ अपेक्षाकारणरूपधर्माधर्मास्तिकायाववश्यम् एवाङ्गीकर्तव्यौ स्तः। अतस्ते मृषावादिनो भवन्ति।

[ईश्वरकर्तृत्वखण्डनम्]

[६५] तथा केचिदीश्वरकर्तृकसंसारस्थितिं परमेश्वरं मन्यन्ते, तदप्यसत्यं, परमेश्वरस्य रागद्वेषाद्यभावेन संसारकर्तृत्वाभावादिति। पुनः केचिदीश्वरेच्छा वदन्ति, तदपि मृषावागस्ति, पूर्णगुणान्वितेश्वरस्येच्छाभावात्। पुनः केचिल्लीलां वदन्ति, तदपि चिन्तनीयमेव, ईश्वरस्य सदानन्दमयत्वात् चिद्ध्यानरूपत्वाच्चेति। अतो धर्माधर्मयोर्विना न किञ्चिद्भवत्येवेति।

[मीमांसकमतखण्डनम्]

[६६] तथा मीमांसकादयः- जीवपुद्गलसंयोगाद्धर्मादिचतुर्णामुत्पत्तिर्मन्यन्ते। पुनः लोकालोकप्रमितमाकाशं भिन्नद्रव्यं वदन्ति, एतदप्यसत्यमस्ति, षड्गुणास्तु पूर्वोक्ता एव परिणामादिभावादिति गाथार्थः॥५२॥

इति द्रव्यलक्षणद्वारम्॥

[६७] अथ गुणद्वारस्वरूपगाथामाह-

[मूल] द्रव्याद् द्रव्यपृथग्भावो यैस्ते प्रक्रियते गुणाः।
द्रव्येषु ये गुणाः सन्ति वच्म्यहं तान् जिनागमात्॥५३॥

(व्याख्या) यैर्द्रव्याद् द्रव्यस्य पृथग्भावः प्रक्रियते ते गुणाः। अतो ये गुणा द्रव्येषु भवन्ति तान् जिनागमाद्वच्मीत्यर्थः॥५३॥

[द्वितीयं गुणद्वारम्]

[६८] अथ गुणलक्षणगाथामाह-

[मूल] द्रव्यैकस्मिन्प्रदेशे च शक्याः स्वकार्यहेतवे। सन्त्यनन्ताविभागा ये पर्यायसञ्चया गुणाः॥५४॥

(व्याख्या) ये द्रव्यैकस्मिन्प्रदेशे स्वकार्यहेतवे = निजकार्यं विधातुं शक्यास्ते पर्यायसञ्चया गुणा अनन्ताविभागा भवन्तीत्यर्थः। तत्र सामर्थ्यवस्तुप्रवृत्तिभ्यां गुणो द्विविधोऽस्तीति। तत्रैकस्मिन्द्रव्ये प्रदेशं प्रति निजनिजकार्यकारणसामर्थ्यरूपा अनन्ता अविभागरूपाः छेदनभेदनाद्यभावेन ये पर्यायाः सन्ति तेषां समुदायो गुणा भवन्तीति। भिन्नभिन्नकार्यकरणसामर्थ्यरूपा गुणस्य पर्याया भिन्ना भवन्ति। एवं गुणा अप्यनन्ततां यान्ति। प्रतिगुणं प्रतिप्रदेशं पर्याया अविभागरूपा अनन्तास्तुल्यात्मप्रदेशप्रवर्तमानास्ते भवन्तीति। यथा अविभागपरिणमनावलम्बनरूपः कार्यसामर्थ्यरूपो वीर्यगुणसामर्थ्यरूपोऽस्ति। एवं जीवं प्रति ज्ञानदर्शनादयो गुणा अनन्ताः सन्ति। तथा पञ्चास्तिकायेष्वप्यगुरुलघुपर्यायाः तरतमभेदेनानन्ताः विद्यन्त इत्याशयः। ***गुणानामासओ दव्वं (गुणानामाश्रयो द्रव्यम्)*** इति वचनात्। कार्यरूपा गुणपर्यायाः सन्ति। तदुक्तं भाष्ये-***यावन्तो ज्ञेयास्तावन्त एव ज्ञानपर्याया*** इत्यादि। एवं वस्तुप्रवृत्यर्थेऽप्यनन्ताः भवन्तीति॥५४॥

[द्रव्येषु सामान्यगुणाः]

[६९] अथ द्रव्येषु सामान्यगुणसङ्ख्यार्थं गाथाद्विकमाह-

[मूल] धर्माधर्माभ्रद्रव्येषु मूर्तचेतनसक्रियम्। विहाय दिग्गुणाः सन्ति सामान्यानि बुधोदिताः॥५५॥

[मूल] जीवाक्रियामूर्तकत्वं मूर्तत्वचेतनाक्रियम्। विमुच्य पुद्गले जीवे सामान्याः प्रभवन्ति ते॥५६॥

(व्याख्या) धर्माधर्माकाशद्रव्यत्रिकेषु चेतनसक्रियमूर्तत्रिकं परित्यज्य बुधोदिताः पूर्वोक्तानि सामान्यानि दश गुणाः सन्ति। तथाहि–द्रव्यत्वास्तित्ववस्तुत्वप्रदेशत्वप्रमेयत्वसत्त्वागुरुलघुत्वाचेतनत्वामूर्तत्वाक्रियत्वरूपाणीति। **जीवेत्यादि**। सामान्यगुणाः क्रमात्पुद्गले चेतनामूर्ताक्रियं विमुच्य दश गुणाः सन्ति। तथा जीवे मूर्तत्वाक्रियाचेतनत्वं परिहृत्य दश सामान्यगुणा भवन्तीत्यर्थः॥५६॥

[द्रव्येषु विशेषगुणाः]

[७०] अथ द्रव्येषु गुणाधिकाराद्विशेषगुणा अपि गाथाचतुष्केन प्राह-

[मूल] अचैतन्यामूर्तगत्यक्रिया धर्मे द्वयोत्कटाः। गतिं मुक्त्वा स्थितिक्षेपादधर्मे सन्ति वारिधिः॥५७॥

[मूल] तथावगाहनक्षेपात्परावर्तनकस्य च। विशेषाब्धिगुणाः सन्ति क्रमादम्बरकालयोः॥५८॥

[मूल] वीर्यदृष्टिज्ञानसुखचैतन्यमूर्तकानि च। विशेषाः षड् गुणाः ज्ञेया जीवद्रव्ये भवन्ति च॥५९॥

[मूल] वर्णगन्धरसस्पर्शाचैतन्यरूपकास्तथा। गुणास्ते पुद्गले सन्ति गुणद्वारं प्ररूपितम्॥६०॥

(व्याख्या) धर्मे = धर्मास्तिकाये अचैतन्यामूर्तगत्युपष्टम्भाक्रिया गुणा विशेषाः चत्वारो भवन्ति। अधर्मे च

पूर्वोक्तगुणेषु गतिं परिहृत्य स्थितिक्षेपेणाचेतनाक्रियारूपस्थित्युपष्टम्भहेतुरूपाश्चत्वारो विशेषगुणा भवन्ति। तथा क्रमादम्बरकालयोः स्थितिं परिहृत्य अवगाहनपरावर्तनयोः क्षेपात् प्रत्येकं चत्वारो विशेषगुणाः सन्तीति। शेषं स्पष्टमेव। अत्र सामान्यविशेषयोः व्याख्यामग्रे वक्ष्यामः॥५७॥५८॥५९॥६०॥

[तृतीयं पर्यायद्वारम्, द्रव्यपर्यायः, द्रव्यव्यञ्जनपर्यायः]

[७१] अथ पर्यायद्वारगाथामाह-

[मूल] प्रदेशासङ्ख्यकैकत्वस्थितिर्द्रव्यं निगद्यते।

गुणोत्कटान्यद्र[1]व्याणां प्रोच्यते द्रव्यव्यञ्जनः॥६१॥

(व्याख्या) असङ्ख्येयप्रदेशपिण्डैकस्वरूपो द्रव्यैकस्मिन्समावेशः स द्रव्यपर्यायः। धर्माधर्मजीवानां प्रत्येकमसङ्ख्येयप्रदेशपिण्डवदिति। तथा पुद्गलाभ्रावनन्तप्रदेशात्मकाविति। **गुणोत्कटेत्यादि**। स्वकीयान्यद्रव्यगता विशेषगुणानां द्रव्याणां प्रवेशेन द्रव्यव्यञ्जनपर्यायाः स्वद्रव्यगता एवावस्थितत्वात् प्रोच्यन्ते। यथा धर्मादिषु गतिस्थित्यवगाहनचैतन्यपूरणगलनपरावर्तनक्रमाद् गुणस्वरूपाणि निजगतभिन्नभावस्थितिवत्॥६१॥

[गुणपर्यायः, गुणव्यञ्जनपर्यायः]

[७२] अथ गुणगुणव्यञ्जनस्वरूपगाथामाह-

[मूल] गुणाविभागानन्ताः पर्यायव्यूहका गुणाः। ज्ञानादयः कार्यरूपाश्चतुर्धो गुणव्यञ्जनः॥६२॥

(व्याख्या) गुणेत्यादि। गुणानां पिण्डत्वरूपाः पर्याया गुणादविभागभावेनानन्ता भवन्ति। धर्मादिद्रव्येषु पर्यायसमुच्चयो गुणा इति। **ज्ञानादयः कार्यरूपा इत्यादि**। तथा ज्ञानभेदा मतिज्ञानादयः, दर्शनस्य चक्षुर्दर्शनादयः, पर्यायाः क्षमामार्दवादयः चारित्रस्यावर्णागन्धारसास्पर्शादयः पर्याया इत्यादि जीवस्येति। तथा पुद्गलस्याचेतनवर्णगन्धरसादय इति। तथा धर्मादीनामरूपावर्णादय इत्यादयो गुणव्यञ्जनपर्यायाः॥६२॥

[द्रव्येषु स्वभावविभावपर्यायाः]

[७३] अथ द्रव्येषु स्वभावविभावपर्यायगाथामाह-

[मूल] द्रव्येषु ये स्वपर्यायाः प्रोच्यन्ते ते स्वभावजाः।

ये द्रव्येष्वन्यपर्यायास्ते विभावा निगद्यते[2](न्ते)॥६३॥

(व्याख्या) द्रव्येष्वित्यादि। द्रव्येषु स्वपर्याया अगुरुलघवस्ते षट्स्थानवृद्धिहानिभ्यां द्वादशविधाः सन्ति। ते पूर्वोक्ता एव ज्ञातव्याः। वस्तुमूलधर्मस्वभावादनुभवगम्याः सन्ति। एते पञ्चापि पर्यायाः सर्वद्रव्येषु भवन्ति तथा विभाविपर्यायास्तु जीवपुद्गलयोरेव भवन्ति। जीवस्य नरनारकादिगतयश्चतुरशीतिलक्षयोनिरूपो वा भवति। पुद्गलस्य तु द्व्यणुकत्र्यणुकाद्यनन्ताणुकस्कन्धेषु परस्परसम्मिलनरूपोऽस्ति। पुद्गले शाश्वते शैलादिष्वनादिनित्यरूपेण पर्यायास्तिष्ठन्ति। जीवे सिद्धावस्थायां सिद्धावगाहनादयः सादिनित्यभावेन पर्यायाः सन्ति। सादिसान्तपर्याया

---

१. यहां पर **गुणोत्कटान्ये** की जगह **गुणोत्कटान्य** पाठ संगत प्रतीत होता है। न च.सा.पृ-१८०।

२. **निगद्यन्ते** पाठ व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है।

भवशरीराध्यवसायादयः। भव्यत्वादयोऽनादि सान्तपर्यायाः॥ इति पर्यायद्वारम्॥६३॥

[७४] अथैतदर्थगर्भितस्य स्पष्टार्थायाष्टगाथा आह-

[मूल] प्रदेशासङ्ख्यपिण्डत्वस्थितिद्रव्येषु द्रव्यकः।
गत्यादयो विशेषाश्च धर्मोऽस्ति[१] द्रव्यव्यञ्जनः॥६४॥

[मूल] तथा स्थित्यादयोऽधर्मेऽवगाहप्रमुखा अम्बरे। चैतन्यत्वादयो जीवे पुद्गले वर्णकादयः॥६५॥

[मूल] परावृत्त्यादयः काले गदितो द्रव्यव्यञ्जनः। गुणाविभागानन्तानि द्रव्येषु तृतीयो भवेत्॥६६॥

[मूल] धर्माधर्माभ्रकालेष्वरूपावर्णादयो गुणाः।
जीवे ज्ञानादिकानां च ज्ञानं स्याद् गुणव्यञ्जनः॥६७॥

[मूल] पुद्गले रूपमादृत्य वर्णगन्धरसादयः। गुणव्यञ्जनपर्यायाः द्रव्येषु गदिता मया॥६८॥

[मूल] स्वपर्याया (अ)गुरुलघुविकारास्ते स्वभावजाः।
षड्गुणाः वृद्धिहानिभ्यां सर्वद्रव्येषु विद्यन्ते[२]॥६९॥

[मूल] जीवे विभावपर्यायाश्चत्वारो गतयः स्मृताः।
द्व्यणुकादयः पुद्गले स्कन्धा भवन्त्यनन्तकाः॥७०॥

[मूल] अनादिनित्यपर्यायैः भूधराः सन्ति भूतले। एवं द्रव्येषु पर्यायद्वारं निगदितं मया॥७१॥

(व्याख्या) एते गतार्थत्वात्स्पष्टाः सन्ति॥६४॥६५॥६६॥६७॥६८॥६९॥७०॥७१॥ इति पर्यायद्वारम्॥

[चतुर्थं स्वभावद्वारम्]

[७५] अथ धर्मादिषु स्वभावद्वारनिरूपणाय गाथामाह-

[मूल] शुद्धाशुद्धमूर्तजीवविभावेषुस्वभावकान्।
विमुच्य धर्मादित्रिषु दिग्गजाः स्युः स्वभावजाः(काः)॥७२॥

(व्याख्या) शुद्धादिविभावान्तानि पञ्च स्वभावानि विमुच्य = परित्यज्य धर्मादिषु त्रिष्वष्टादश स्वभावा भवन्तीति। एतद्विचारमग्रे गदिष्यामीति॥७२॥

[कालजीवयोः स्वभावाः]

[७६] अथ कालजीवयोः स्वभावप्ररूपणाय गाथामाह–

[मूल] बहुप्रदेशमुक्तेन काले दिग्भूधराधिकाः। जीवपुद्गलयोरेकविंशतिः स्युः स्वभावकाः॥७३॥

(व्याख्या) पूर्वोक्ताष्टादशस्वभावगतानेकप्रदेशमुक्तेन काले दिग्भूधराधिका = सप्तदशस्वभावाः स्युः। तथा जीवपुद्गलयोरेकविंशतिः स्वभावा भवन्ति। जीवस्याचेतनमूर्तिरूपं विमुच्यैकविंशतिः, पुद्गले च चेतनामूर्तिकं परिहृत्यैकविंशतिरित्यर्थः॥७३॥

---

१. **धर्मेऽस्ति द्रव्यव्यञ्जनः अथवा धर्मे स्युः द्रव्यव्यञ्जनाः** पाठ व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है।
२. **सन्ति ते** पाठ व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है।

[द्रव्याणां गुणपर्यायवत्त्वख्यापनम्]

[७७] (व्याख्या) ननु धर्मादीनां द्रव्यगुणपर्यायत्वेनानुपदेशे सति सन्देहः स्यादतः संशयव्यावृत्त्यर्थमिदमुच्यते- ***द्रव्याणि जीवाश्च*** (त.सू.५.२)। तत्र उपरिष्टाद्वक्ष्यन्ते तत्त्वार्थे ***गुणपर्यायवद् द्रव्यम्*** (त.सू.५.३७) लक्षणमिति। द्रव्याणीति सामान्यसञ्ज्ञा, धर्मादिका च विशेषसञ्ज्ञा। अतः सामान्यविशेषसञ्ज्ञाभाञ्जि धर्मादीनि। द्रव्यसञ्ज्ञा च द्रव्यत्वनिमित्ता द्रव्यास्तिकनयाभिप्रायेण जातिश्च शब्दार्थः। तच्च द्रव्यत्वं परमार्थविचारणायां व्यतिरिक्ताव्यतिरिक्तपक्षावलम्बि नैकान्तेनान्यद्धर्मादिभ्यो नान्यदिति पुरो वक्ष्यत[१] इत्याह-

[७८] [मूल] नित्यावस्थितान्यरूपाणि तत्त्वार्थे प्रवदन्ति च।
लोके समग्रद्रव्येषु गुणपर्यायकेषु च॥७४॥

[मूल] तद्भावाव्ययभावेन नित्यमिति प्रवक्ष्यते। पञ्चत्वभूतार्थत्वाभ्यां द्वितीयोऽव्यभिचारतः॥७५॥

[मूल] स्पर्शादिमूर्त्यभावेन अरूपीति निगद्यते। सामान्यान्यविशेषानि सूत्रोक्तानि भवन्ति ते॥७६॥

(व्याख्या) लोके चतुर्दशरज्ज्वात्मके सकलद्रव्यगुणपर्यायेषु नित्यावस्थितारूपाणि त्रीणि प्रवदन्ति = कथयन्तीत्यर्थः। एतानि धर्मादीनि मयूराण्डकवत्सम्मूर्च्छितसर्वभेदबीजानि देशकालक्रमव्यङ्ग्यभेदसमरसावस्थैकरूपाणि द्रव्याणि, गुणपर्यायकलापपरिणामयोनित्वात्। भेदप्रत्यवमर्शेनाभिन्नान्यपि भिन्नानीव भासन्ते। द्रव्यं च ***भव्ये*** इति वचनात् (अ.सू.५.३.१०४) भावे कर्तरि च निपात्यते। इह तु भावे द्रव्यं भव्यं भवनमिति द्रव्यस्वभावव्याख्याने वक्ष्यामः।

[तत्त्वार्थगत-'द्रव्याणि जीवाश्च' इति सूत्रविमर्शः]

[७९] अन्ये तत्र द्वयमेतदधीयन्तो द्रव्याणि जीवाश्च, तत्त्वयुक्तम्, अस्तिकायता द्रव्यता च प्रतिपिपादयिषिता जीवानाम्, सा चैकयोगेऽपि सति प्राणिनामव्याहतैव 'च' शब्दोपादानसामर्थ्यादतः क एष निर्विशेषो उपयोगद्वयादरः? पूर्वोक्ता धर्मादयश्चतुःसङ्ख्यावच्छिन्नाः प्राणिनश्चास्तिकाया द्रव्याणि च। चशब्दादुभयमभिसम्बध्यते प्राणिषु, द्रव्यता चैषां स्वपरनिमित्तद्वयोपलक्षिता। तत्र स्वनिमित्तं स्वधर्मव्याप्तिः ययासाववष्टब्धः तथा गृह्यतेऽस्वधर्मव्याप्त्यैव द्रव्यम्, प्रतिषिध्यते प्रत्याय्यते च यथाभूतं वा ज्ञायते। स्वधर्मप्राप्तिश्च व्याप्तिलक्षणा तादात्म्येन व्यवस्थानम्। ततश्च स्वभावावस्थानमेव द्रव्यलक्षणं परनिमित्तं चक्षुर्ग्राह्यं रूपमित्यादि योज्यम्। द्रव्यमेव हि तत्तथा व्यपदिश्यते रूपादितया गत्याद्युपग्रहकृत्तया च। विशेषणापेक्षं पितृपुत्रभ्रातृभागिनेयमातुलादिसम्बन्धिदेवदत्तवदिति। परनिजनिमित्तोपलक्षणदर्शनाभिप्रायेण वाह[२]। अतः स्वपरनिमित्तोपलक्षितानि धर्मादीनि द्रव्यास्तिकाभिप्रायवशात् प्रतिपत्तव्यानीति।

[तत्त्वार्थगत-'नित्यावस्थितान्यरूपाणि' इति सूत्रविमर्शः]

[८०] अथ[३] द्वितीयमवस्थितभेदमाह- **पञ्चत्वमित्यादि**। अथैतानि पञ्चत्वसङ्ख्यावच्छिन्नानि धर्मादीनि द्रव्याणि किमु कदाचित्स्वभावात्प्रच्यवन्ते? पञ्चत्वसङ्ख्यां वा व्यभिचरन्ति? मूर्तान्यमूर्तानि वा? इति प्रश्नत्रयगतसंशयनिवारणाय प्रोच्यते- **तद्भावेत्यादि।** (नित्यावस्थितान्यरूपाणि त.सू.५.३) यथासङ्ख्यमनेन सूत्रेण प्रश्नत्रितयं प्रत्युच्यते। नित्यग्रहणाद्धर्मादीनां स्वभावादप्रच्युतिराख्यायते। अवस्थितग्रहणादन्यूनानधि-कत्वमावि-

---

१. देखिए- त.सू.भा.सि.पृ.३१९।
२. **उक्तं हि इत्यादि।** त.सू.भा.सि.
३. त.सू.भा.सि टीका का उद्धरण है। वृत्ताकार कोष्ठकगत पाठ सिद्धसेनीय टीका का है।

र्भाव्यते[१]। पृथिव्यप्तेजोवाय्वादिद्रव्यादयो[२] मूर्तक्रियान्वितत्वादात्मपरिणमिता वा वसुधादयः पुद्गला जीवा एव मनुजादिवत्। कालश्चैकीयमतेन द्रव्यमिति प्रवक्ष्यते। बुधाः पञ्चैव वदन्ति। दिक् च अम्बरद्रव्यान्तर्गतत्वान्न द्रव्यान्तरमिति। नभःप्रदेशा एव भवन्ति विशिष्टरचनाभाजो दिग्व्यपदेशमन्वरुन्धन्ति। न च व्योमान्तरेण तत्स्वरूपोपलब्धिरूपा दिगस्तीति। अरूपिग्रहणाद्धर्माधर्माकाशजीवानाममूर्तत्वमाविष्करोति रूपरसवर्णगन्धपरिणमनबहिर्वर्तित्वात्[३]।

[तत्त्वार्थगत-'नित्यावस्थितान्यरूपाणि' इति सूत्रस्य व्याख्याभेदाः]

[८१] अन्ये द्विधा भिन्दन्ति (सूत्रम्)-**नित्यावस्थितानीति**। पञ्चापि धर्मादीनि नित्यावस्थितानि भवन्ति ततोऽरूपाणि। एतान्येव धर्मादीन्यविद्यमानरूपरसादीनि द्रष्टव्यानि। चत्वारि इति पृथग्योगकरणात्किल पञ्चानामप्यवस्थितत्वमरूपत्वं चतुर्णामिति, एतच्च शक्यमेकयोगेऽपि हि। अरूपिग्रहणात्सम्भवतो धर्मादय एव सम्भत्स्यन्ते, न पुद्गलाः। अथवारूपिग्रहणात्पञ्चानामपि प्रसङ्गे अपवदिष्यते- ***रूपिणः पुद्गलाः*** (त.सू.५.४) इति। न च पृथग्योगेऽप्येषोऽर्थः शक्यो लब्धुमतो वृथा वाञ्छेति।

[८२] अन्ये एवं वर्णयन्ति- एकयोग एव नित्यावस्थितान्यरूपाणि, अत्राद्ययोः समस्तपदयोः पाठः कृतः। अरूपग्रहणं तु न समस्तमाभ्यां सहातो विभक्तिद्वयश्रवणमेतस्मादुन्नीयते नित्यावस्थितग्रहणं समस्तद्रव्यविशेषणमरूपिग्रहणमेककं पुद्गलद्रव्यव्युदासेन धर्मादिचतुष्टयविशेषणम्।

[८३] अत्रान्ये व्याचक्षते-यत्किञ्चिदेतद्, ***अनित्यावस्थितानि रूपाणि*** इत्येवमपि पाठे लभ्यत एवाभिलषितोऽर्थः, उत्तरसूत्रोपादानात् तस्मात्समस्यैव त्रीण्यपि पदानि सूत्रमध्येयम्। अस्मिन्पक्षे तत्त्वार्थे विरचितविन्यासभङ्गापत्तिर्न तु प्रक्रिया दुःष्यति।

[८४] अन्ये नित्यग्रहणमवस्थितविशेषणं कल्पयन्ति। नित्यमवस्थितानि नित्यावस्थितानि ***'सह सुपा'*** इति (अ.सू.२.१.४) समासो नित्यप्रजल्पितवद्। अस्मिन्विकल्पे तत्त्वार्थभाष्यमगमितं स्याद्भाष्यकारेण त्वेतानि त्रीण्यपि स्वतन्त्राण्येव व्याख्यातानि[४]। तत्कथं नित्यग्रहणमवस्थितविशेषणं स्याद्? इति[५]।

[८५] अपरे त्वाहुः- भाष्ये आचार्येण सूत्रमेवमधीतं-**नित्यावस्थितान्यरूपाणीति।** अत्र च बहुव्रीहिणोक्तत्वात् मत्वर्थीयानुपपत्तिरिति, अत्रोच्यते, क्वचिद्बहुव्रीहिं बाधित्वा तत्पुरुषवृत्तौ मत्वर्थीयो भवति, तद्यथा- ***इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रणि*** (अ.सू.३.२.१०३) तथा अनरवन्ति चक्राणि, सर्वधनादित्वाद्वा। अपरे ब्रुवते- भवतु मत्वर्थीयो योऽत्रार्हः, स च मतुरेव रसादिपाठान्न त्विनिरिति उक्तम्, तत्रान्यतरस्याग्रहणं समुच्चयार्थमित्यतो न दोषः।

[द्रव्येषु द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकयोः प्रधानगुणभावविवक्षा]

[८६] एतानीत्यनन्तराधिकृतानि[६] पञ्चापि धर्मादीनि द्रव्याणीति द्रव्यास्तिकनयाभिप्रायेण, न तु पर्यायनयसमाश्रयणात्। द्रव्यास्तिको हि ध्रौव्यमेवेच्छति नोत्पादविनाशावतस्तदभिप्रायेणैषां शास्ति नित्यतामन्यथा

---

१. **अनादिनिधनेयत्ताभ्यां न स्वतत्त्वं व्यभिचरन्ति। ननु च पृथिव्यादीनि नव द्रव्याणि तत् कथं पञ्चत्वसङ्ख्यां न व्यभिचरन्ति इति? उच्यते-।** त.सू.भा.सि.

२. **पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि तावत् पुद्गलद्रव्यमेव मूर्तक्रियावत्त्वात्।** त.सू.भा.सि.

३. **यहां पर कुछ शब्द पतित हो गये है ऐसा लगता है।** मूर्तान्युच्यन्ते। त.सू.भा.सि.

४. **तथा च तत्त्वार्थभाष्यम्– एतानि द्रव्याणि नित्याणि भवन्ति।.... अवस्थितानि च.... अरूपाणि च।**(त.सू.भा.५.३)

५. **भाष्ये सति इति।** त.सू.भा.सि.

६. सिद्धसेनीय टीका का उद्धरण अभी चालु है।

द्रव्यास्तिकनयनिरपेक्षनिरूपणायामेकान्तवादः स्यात्स च बहुदोषव्रातत्वात् सामीक्षिका[१]भिप्रायवदसमञ्जसः स्यात्। ननु चैवमेकनयनिरुपणा न जैनेन्द्रदर्शनप्रतिपूरणायालम्, सत्यमेतत्, किञ्च द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकयोः प्रधानगुण-भावविवक्षावशाद्वस्तुस्वतत्त्वमुपनीयते जिनाधिपैरन्यथा हीत्थं वस्तुप्रज्ञापना दुःकरा स्यादतः प्रज्ञापनेयम-भिन्नांशस्य वस्तुनो नरसिंहस्येव नरकेसरिशब्दभेदेन। तत्र हि द्रव्यास्तिकस्य प्राधान्यमाश्रित्येतरस्य च गौणभावं नित्यता प्रज्ञाप्यते। यथा चैतानि न युगलोपसङ्गृहीतानि तथा[२] नयाधिकारे प्रवक्ष्यामि।

[नित्यत्वनिर्वचनम्]

[८७] तामेव च ध्रौव्यांशद्रव्यास्तिकनयप्रज्ञापनामादर्शयितुमाह-***नित्यानि भवन्ति*** (त.सू.भा.५.३) नित्यानि {नेर्धवेत्यब्(सि.६.३.१७)} = ध्रुवाणि नोत्पादविनाशवन्तीति यावद्। ***भवन्ति*** इति अनेन (त.सू.भा.५.३) समग्रकालाविकारिणी सत्ताख्यायते धर्मादीनाम्। तच्च नित्यलक्षणमुद्धट्टयति- ***तद्भावाव्ययं नित्यम्*** इति (त.सू ५.३०) यतो भावान्न व्येति न व्येष्यति तन्नित्यमिति भवतीति भावः। योसौ भवति स कर्ता द्रव्यं स च तस्मात्स्वरूपान्न विगमेन युज्यते योक्ष्यते वातो नित्यं प्रोच्यते। न कदाचित्सद्रूपतां परित्यक्ष्यतीत्यर्थः।

[अवस्थितशब्दार्थः]

[८८] अथावस्थितशब्दार्थं निरूपयति- नित्यावस्थितयोरभेदभ्रान्तिमपनयन्मा भूत् सङ्करोनयोः, अन्यन्नित्यलक्षणमन्यच्चावस्थितलक्षणमिति। ***अवस्थितानि च। न हि कदाचित्पञ्चत्वं भूतार्थत्वं च व्यभिचरन्ति।*** (त.सू.भा५.३) नित्यत्वानुज्ञापेक्षया 'च'शब्दोपादानमवस्थितानि भवन्ति धर्मादीनि द्रव्याणि। तच्चावस्थानमेषां वाक्यान्तरेण निरूप्यते- ***न कदाचित्पञ्चत्वं व्यभिचरन्ति।*** तद्भावाव्ययतायामियत्तैतेषां निश्चीयतेऽवस्थितशब्दोपादानात्पञ्चैव भवन्त्येतानि, न च न्यूनान्यधिकानि चेति सङ्ख्यानियमोऽभिप्रेतः। सर्वदा पञ्चास्तिकायात्मकत्वाज्जगतः कालस्य चैतत्पर्यायत्वादिति। नापि भूतार्थत्वं व्यभिचरन्त्येतान्यतोऽवस्थितानि इत्युच्यन्ते। अन्योन्यावेवं[३] साधितायां सत्यामपि धर्मादीनि न स्वतत्त्वं भूतार्थत्वं वैशेषिकलक्षणमतिवर्तन्ते। तच्च धर्माधर्मयोः गतिस्थित्युपग्रहकारिते, नभसोऽवगाहदानव्यापारः, स्वपरप्रकाशिचैतन्यपरिणामो जीवस्य, अचैतन्य-शरीरवाङ्मनःप्राणापानसुखदुःखजीवितमरणोपग्रहमूर्तत्वादि[४]गुणान्वितः पुद्गलः।

[अन्यः अवस्थितशब्दार्थः]

[८९] अथवा असङ्ख्येयादिप्रदेशानादिपरिणामस्वभावता वा भूतार्थता मूर्तता चेति, तां न जातुचिदना-दिकालप्रसिद्धिवशोपनीतां मर्यादामतिक्रामन्ति। निजलक्षणव्यतिकरो हि निर्भेदताहेतुः पदार्थानामतः स्वगुणमपहाय नान्यदीयगुणसम्परिग्रहमेतान्यातिष्ठन्ते। तस्मादवस्थितानीति ***अरूपाणि च, नैषां रूपमस्तीति।*** (त.सू.भा.५.३) न समुदायविशेषणमेतदरूपाणीत्यसम्भवाद् धर्माधर्माभ्रजीवेषु चतुर्ष्वेव सम्भवत्यमूर्तत्वम्, न पुनः पुद्गलेष्वत एव प्रसक्तौ सत्यामुत्तरसूत्रेण निषेधः करिष्यते। चक्षुर्ग्रहणलक्षणं रूपं तदविद्यमानं येषां तान्यरूपाणीत्यरूपित्वाच्चक्षुषा नैतानि

---

१. यहां पर **सामीक्षिक** की जगह **असामीक्षिक** पाठ होगा ?
२. **प्रथमसूत्रेऽभिहितमभिधास्यते च त्रिसूत्र्याम्।** त.सू.भा.सि.
३. **अन्योन्यानुबन्धितायाम्।** त.सू.भा.सि.
४. **मूर्तत्वादि पुद्गलानाम्।** त.सू.भा.सि.

गृह्यन्ते। न तु चक्षुषैषामगृह्यमाणत्वमरूपत्वे कारणमुच्यते, परमाण्वा-दिभिरनेकान्तता तस्मादरूपे ग्रहणं द्रव्य-स्वतत्त्वनिर्ज्ञापनार्थं मूर्तिमत्त्वनिवृत्तिप्रकाशनाय, प्रात्ययिकोत्पादवत्त्वं तु भाज्यमङ्गुल्याकाशादिवत्, स्वतस्तु नैषां रूपमस्तीति।

[तत्त्वार्थसूत्रगतरूपशब्दार्थः]

[९०] किं पुना रूपं नामेत्यत आह-***रूपं मूर्तिः*** (त.सू.भा.३.५) मूर्तिर्हि रूपादिशब्दाभिधेया। सा च रूपादिसंस्थानपरिणामा, नासर्वगतद्रव्यपरिमाणलक्षणा व्यभिचारदर्शनात्, सर्वतः[१] परिमितत्वे लोकस्यात्मनोऽपि मूर्तिमत्त्वप्रसङ्गः, परिमितत्वं चावश्यमभ्युपेयं विशिष्टसंस्थानत्वादिभिर्लोकस्य, अतो रूपमेवाव्यभिचारित्वात् मूर्ति-रुच्यते।

[९१] अन्येऽभिदधति- रूपशब्दो नीलादिवर्णाभिधायी समस्ति। अस्ति च दीर्घादिसंस्थानप्रतिपादनपरः तद्यः संस्थानप्रतिपत्तिमाविष्करोति रूपशब्दस्तमुररीकृत्यावोचदाचार्यो ***रूपं मूर्तिरिति।*** एवंविधमूर्त्याश्रिताश्च स्पर्शादयः किल सर्वदा न कदाचिदसंस्थाना भवितुमर्हन्त्यन्यथा वान्ध्येयव्योमकुसुममण्डूकशिखण्डकल्पाः स्युरित्यत्र पक्षे धर्माधर्मसिद्धसंस्थानैरनेकान्तस्तस्माद् रूपमेव मूर्तिरस्तु। **(शं)** एवं तर्हि गुणमात्रं[२] मूर्तिशब्दस्य विषयः प्रसक्तो, न च रूपमेव मूर्तिरिति, **(स)** उच्यते, द्रव्यास्तिकनयावष्टम्भात्सकलमिदं निरूप्यते, तत् किमाश्चेव विस्मृतं भवतो। न खलु रूपादयस्तस्य केचिन्मूर्ता विविक्ताः सन्ति। सैव हि मूर्तिर्द्रव्यस्वभावाच्चक्षुर्ग्रहणमासाद्य रूपमिति व्यपदिश्यते। अत एव पुनराह- सहचाराव्यभिचारप्रदिदर्शयिषया-***मूर्त्याश्रयाश्च स्पर्शादय इति।*** (त.सू.भा.५.३) न खलु मूर्त्तिं स्पर्शादयो व्यभिचरन्ति, सहचारित्वात्। यत्र रूपपरिणामः तत्रावश्यंतया स्पर्शरसगन्धेभ्योऽपि भाव्यमतः सहचरमेतच्चतुष्टयमतः परमाणावपि विद्यते। न च परमाणवश्चर्तुर्गुणादिभेदभाजः सन्ति, सर्वेषामेकरूपत्वाद्। इयांस्तु विशेषः किञ्चिद् द्रव्यमुत्कटं गुणपरिणाममासाद्य तमेव त्यजति। यथा लवणहिङ्गुनी संहतिपरिणामसामर्थ्यवती लोचन-स्पर्शनग्रहणगोचरतामुपेत्य जले विलीने सती रसनघ्राणग्रहणयोग्यतामागच्छतः। न च वर्णस्पर्शौ तत्र सम्भवन्तावपि पुनर्ग्रहीतुं शक्यौ, परिणामविशेषत्वाद्। एवं पार्थिवाप्यतैजसवायवीयाणवो एकजातीयाः कदाचित्काञ्चित्परिणतिं बिभ्रतो न सर्वेन्द्रियग्राह्या भवन्ति। अतो रूपरसगन्धस्पर्शा एव विशिष्टपरिणामानुगृहीताः सन्तो मूर्तिव्यपदेशभाजो भवन्ति।

[९२] अन्येऽन्यथा वर्णयन्ति- मूर्तिशब्देन रूपमेवाभिधीयते। ये च रूपमाश्रित्य वर्तन्ते स्पर्शादयस्तेऽपि मूर्तिशब्दवाच्याः, तदेतदयुक्तम्, रूपो मूर्तिर्मूर्त्याश्रयाश्च स्पर्शादय इति। ***द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः*** (त.सू.५.४०) इति वक्ष्यते। द्रव्यमाश्रयो भवति स्पर्शादीनाम्, न पुना रूपमुपघ्नतयेष्यतेति[३]। अत्रापि पर्यायनयसमाश्रयणादुच्यते- न द्रव्यमस्ति, रूपादिग्रहे द्रव्यबुद्ध्यभावादतो रूपादय एव परस्परसमाश्रयेण वर्तमानाः सेनावनादिवत् मूर्तिशब्दवाच्या इति। न ह्येकः पदातिः करी वा सेना किन्तु परस्परसमाश्रयेण वर्तमाना तुरगगजस्यन्दनपदातयः सेनेत्येवं न रूपमेव मूर्तिः, किन्तु समुदाय इति। अतो यथावर्णितमेवेति[४] ***नित्यावस्थितान्यरूपाणीति*** विशेषविधानेन सामान्येन लक्षणं प्रोक्तम्॥७४॥७५॥७६॥

---

१. यहां पर **असर्वगतस्य** पाठ अधिक संगत लगता है।
२. यहां **गुणमात्र** की जगह **रूपमात्र** शब्द संगत लगता है।
३. यहां **उपघ्नतया** पाठ चिंतनीय है।
४. **मेवास्तामिति भाष्यम्।** त.सू.भा.सि.

[मूर्तत्वगुणानुसारिपुद्गललक्षणम्]

[९३] अथ मूर्तिमादृत्य लक्षणमारभ्यत इत्याह-

[मूल] मूर्तत्वगुणमादृत्य पुद्गला एव रूपिणः। विशेषगुणसंयुक्ता मूर्ताः सन्ति रसादयः॥७७॥

(व्याख्या) अत्र मूर्तत्वमुख्यगुणभावमालम्ब्य रूपिणः पुद्गला एव भवन्ति। पुद्गले रूपमेव विशेषगुणोऽस्ति, शेषा रसादयो गुणा रूपान्तरस्था[१] स्तिष्ठन्तीत्यर्थः[२]। सामान्यश्रुतिनिषेधमुखेनालाभादागृहीतविशेषत्वाद् अपवादस्य नित्यत्वावस्थितत्वाभ्यनुज्ञानद्वारेणारूपत्वमात्रप्रतिषेधोऽत्र विवक्षितः। अरूपिणः पुद्गला न भवन्ति, किं तर्हि? रूपिणः, तत्स्वभावाव्ययत्वाच्च नित्यता सदा समस्त्येव रूपादिमत्तया वाव्यतिकीर्यमाणस्वभावतया अवस्थितत्वं पुद्गलानाम्।

[नित्यतानिर्वचनम्]

[९४] ननु चोत्पादविनाशवत्त्वादनित्यतैवातिस्पष्टैषां तत्कथं तद्विरोधिनी नित्यतावबुध्यत इति, अत्रोच्यते, नित्यता द्विविधा प्रवचनविद्भिराख्यायते- अनाद्यपर्यवसाननित्यता, सावधिनित्यता च। तत्राद्यालोकसन्निवेश-वदनादितः पूर्वापरावधिविभागा[३] सन्तत्यव्यवच्छेदेन स्वभावमजहति तिरोहितानेकपरिणतिप्रसवशक्तिगर्भा भवन-मात्रकृतास्पदा प्रतीतैव। अपरा श्रुतोपदेशनित्यता[४] उत्पत्तिप्रलयत्वेऽप्यवस्थानात् पर्वतोदधिवलयाद्य-वस्थानवच्च सावधिका । अनित्यतापि द्विविधा- परिणामानित्यता उपरमानित्यता च। तत्र परिणामानित्यता नाम मृत्पिण्डो हि विस्रसाप्रयोगाभ्यामनुसमयमवस्थान्तरं प्रागवस्थाप्रच्युत्या समश्नुते। उपरिमानित्यता तु भवोच्छे-दवदपास्त-गतिचतुष्टयपरिभ्रमक्रियाक्रमपर्यन्तवर्तिनी परिप्राप्तावस्थानविशेषरूपा, नात्यन्ताभावभाविनीति। तत्र परिणामानित्य-तया पुद्गलद्रव्यमनित्यमित्याचक्ष्यते तद्भावाव्ययतया च नित्यम्, उभयथा हि दर्शनान्न च विरोधोऽस्ति कश्चिदित्ये-तत्प्रपञ्चतः प्रतिपादयिष्यते परस्ताद्।

['रूपिणः पुद्गलाः' इति सूत्रस्य विवरणम्]

[९५] उभयमेव वावस्थामास्थाय वस्तु सकलां वास्तवीं धियमाधिनोति, अन्यथाङ्गारकितमात्र-नियतपलाशस्वतत्त्वग्राहिवन्न प्रधानाराधनसाधीयसीं बुद्धिमादध्याद् अतिविकलत्वात्। प्रधानोपसर्जनतया तु कदाचित् किञ्चिद्विवक्ष्यते, शिबिकावाहकयानेश्वरयानवद्। अतः प्रत्यक्षप्रमाणप्रसिद्धपदार्थस्वरूपेणातीवायासयन्ति बुद्धिमात्मवन्तः तस्मान्नित्यानित्ययोः आस्पदमेकममी पुद्गला इति न किञ्चित्कस्यचिद् बाध्यते। ते च रूपवन्त इति। एतदेवमनुश्रियते[५]। ***पुद्गला एव रूपिणो भवन्तीत्यादि।*** पूरणाद्गलनाच्च पुद्गलाः परमाणुप्रभूतयोऽनन्तान-न्तप्रदेश-स्कन्धपर्यवसानास्त एव रूपवत्ताम् अनन्यसाधारणीमनेकरूपपरिणतिसामर्थ्यापादितसूक्ष्मस्थूलविशेष-प्रकर्षाप्रकर्ष-वर्तितां बिभ्रति, न धर्मादिद्रव्यविशेषा इति रूपवत्त्वमत्रावधार्यते। तद्धि न जातुचिदतिचिरपरिचितपरमाणु-द्व्यणुका-दिक्रमवृद्धद्रव्यकलापमुज्झति। सामर्थ्याच्च पुद्गला अपि न तां विहाय वर्तन्तेऽतः पुद्गला एव रूपिण इति सुष्ठूच्यते।

१.यहां पर **रूपान्तरस्था** की जगह **रूपान्तःस्था** पाठ उचित लगता है।

२. **विशेषतः।** त.सू.भा.सि.

३. यहां पर **पूर्वापरावधिविभागा** की जगह **पूर्वापराद्यविभागा** पाठ संगत लगता है।

४. **नित्यतावद्।** त.सू.भा.सि.

५. **अधुना भाष्यमनुश्रियते।** त.सू.भा.सि.

रूपं मूर्तिरिति च प्राक्प्रतिपादितमतस्तदनुसन्धानाभिप्रायेणाह- ***रूपमेषामस्त्येषु वास्तीति रूपिण इति***[१]। (त.सू.भा.५.४)।

[९६] अथवा तुल्य एव मत्वर्थीयोऽयमुभयत्राभेदो भेदश्च पर्यायनयापेक्षो द्रव्यास्तिकनयापेक्षश्च योजनीयः। न मूर्तिव्यतिरेकेण पुद्गलाः सन्ति, भिन्नदेशसम्बन्धित्वेनानुपलब्धेः, व्यतिरेकिणोऽपि गमकत्वादसन्निहितविपक्षकस्येत्यभेदः। तथा यदिदं चन्दनमुपलभ्यते तस्य शुक्लं रूपम्, तिक्तरसः, सुरभिगन्धान्वितः[२] शीतलस्पर्श इति। यश्चैष प्रत्यक्षेण प्रत्यक्षस्य व्यपदेशः सोऽर्थान्तरे दृष्टः, तद्यथास्य ब्राह्मणस्यायं कमण्डलुरिति।

[द्रव्यगुणयोर्भेदाभेदः]

[९७] ***ननु*** चोपन्यस्तं निदर्शनबलेन द्रव्यमेव द्रव्यादर्थान्तरमिति न गुणेभ्यो द्रव्यमित्यत्रोच्यते, योऽयमुपलभ्यस्य समस्तैरुपलब्धैर्व्यपदेशः सोऽर्थान्तरं गमयति। तच्च द्रव्यं गुणः क्रिया वा स्यादिति कोऽपरितोषः? (प्र.) सेनावनादिवदनेकान्त [इति चेद्[३]], दृष्टो ह्यनर्थान्तरेऽपि व्यपदेशः, सेनायाः कुञ्जरः सहकारः काननस्येति (चेद्), ***अत्रोच्यते,*** न खलु प्रसिद्धमनर्थान्तरत्वं सेनाकाननयोर्यस्मादनियतदिग्देशसम्बन्धिषु करिनरतुरगस्यन्दनेषु परस्परप्रत्यासत्तिजनितोपकारेष्ववधारितानवधारितेयत्तेषु बहुत्वसङ्ख्यैव सेना, तथा काननमपि। एतच्च द्वयमप्यर्थान्तरमेव। यूषपङ्क्त्यादयोऽपि ह्यर्थान्तरतयैवं वक्तव्या। यूषो ह्युत्पन्नपाकजानां द्रव्याणां कालविशेषानुग्रहे सति द्रव्यान्तरसंपृक्तानां पाकजोत्पत्तौ यः संयोगः स यूष इत्याख्यायतेऽर्थान्तरभूतश्च, पङ्क्तेरप्येकदिग्देशसम्बन्धिषु परस्परप्रत्यासत्त्युपकृतेष्ववधारितानवधारितेयत्तकेषु भिन्नाभिन्नजातीयेष्वाधारेषु वर्तमाना बहुत्वसङ्ख्या एवाभिधीयते इति। तस्मात्सापेक्षमिदं नयद्वयं वस्तुनः सद्भावमापादयति, नैकान्त इत्यस्यार्थस्योद्भासनार्थमकरोत्[४] पुद्गलेषु मूर्तिर्भेदाभेदवर्तिनी विवक्षावशादिति॥७७॥

[धर्मादीनामेकानेकद्रव्यत्वम्]

[९८] अथ पुद्गलानां विशेषाभिधित्सया सूत्रमाह-

[मूल] आकाशादेकद्रव्याणि धर्मादीनि भवन्ति च। तथैवानेकद्रव्याणि विद्यन्ते जीवपुद्गलाः॥७८॥

(व्याख्या) आ आकाशादाधाराधेयभावात्[५] क्रममुद्दिश्याकाशाभिव्याप्तिप्रचिकाशयिषया आ आकाशादित्युवाच। **धर्मादीनीति**। प्रथितप्रतिशिविष्टानुपूर्वीप्रदर्शनं धर्माधर्माम्बराणि एकद्रव्याण्येव भवन्तीत्यर्थः। नैषां समानजातीयानि द्रव्यान्तराणि सन्ति, अविलक्षणोपकारात्। धर्माधर्माकाशानां च गतिस्थित्यवगाहोत्पत्त्या प्रभावित उपकारः, गत्यादित्रययुक्तं हि वस्तु अर्थक्रियासमर्थमुपेयतेऽनेकान्तवादिभिः[६]। धर्मादिद्रव्याणां च गत्यादय उपकाराः स्वस्थाने युक्त्या प्रतिपादयिष्यन्ते। एकशब्दोऽसहायार्थमभिधत्ते, यथा परमाणुः परमाण्वन्तरेण सद्वितीयः, आत्मा

---

१. **एषामिति पुद्गलानां परमाणु-द्व्यणुकादिक्रमभाजामुक्तलक्षणं रूपं मूर्तिः सा विद्यते इति रूपिणः षष्ठीप्रदर्शनात्तु भेदविवक्षावशपरिप्रापितं द्रव्यगुणयोर्नानात्व-मध्यवसातव्यम्, अभेदविवक्षोपनीतं च द्रव्यपर्याययोरैक्यम्, अतस्तत्प्रदर्शनाय व्यापकाधिकरणलक्षणा सप्तमी विवृण्वता आचार्येणोपात्ता।** त.सू.भा.सि.

२. **पटुर्गन्धः।** त.सू.भा.सि.,

३. यहां पर **इति चेद्** ये पद **काननस्येति** के बाद अधिक सुसंगत लगते है।

४. **भाष्यकारो विभक्तिद्वयेन विग्रहं अतोऽयं वाक्यार्थः।** त.सू.भा.सि.

५. **अध्यायादिसूत्रोपात्ता।** त.सू.भा.सि.

६. **चकारस्त्वर्थः।** त.सू.भा.सि.

चात्मान्तरेण ज्ञानसुखदुःखजीवनादिभेदभाजा, न धर्मद्रव्यं धर्मद्रव्यान्तरेण ससहायम्, अधर्मव्योमनी चैवमाविष्कार्ये। द्रव्यं गुणपर्यायवदित्युक्तम्[१]। तदनेन स्वगतधर्मपरिणामप्राप्तिरापाद्यते मुक्तस्येव, अन्यथा गुणपर्यायशून्यं द्रव्यमेव न स्याद्, व्योमोत्पलादिवद्। एवशब्देन नियम्यते एकद्रव्याण्येवैतानि = तुल्यजातीयद्रव्याण्येवैतानि, अतुल्य-जातीयद्रव्याभावात्[२]। नियमेन चेष्टार्थसिद्धिं प्रदर्शयति- **पुद्गलजीवास्त्वनेकद्रव्याणीत्यादि**। सम्भाव्यानेकतया पुद्गलात्मनो विशेष्यन्ते, तथा शब्देन। इतिकरणं, यस्मादर्थे यस्मात्तुल्यजातीयभूयस्त्वमेषां तस्मादनेकद्रव्याणि परमाणु प्रभृतीन्यनन्ताणुकस्कन्धप्रमाणानि[३]। भूजलज्वलनानिलतरुद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियात्मानश्चेत्यर्थः॥७८॥

[धर्मादीनां सक्रियत्वनिष्क्रियत्वे]

[९९] पुनस्तेषां विशेषमाह-

[मूल] धर्मादयो निःक्रियाणि जीवपुद्गलसक्रिये। प्रदेशावयवव्यूहैः प्रोच्यन्ते कायसञ्ज्ञकाः॥७९॥

[मूल] परमाणून्यवयवा[४] सुस्कन्धानां निरन्तरम्। स्कन्धाणुघातभेदेभ्यः प्रदेशाः सन्त्युत्पत्तितः॥८०॥

(व्याख्या) धर्मादीन्यम्बरान्तानि निःक्रियाणि = क्रियारहितानि भवन्तीत्यर्थः। करणं = क्रिया द्रव्यस्य भावस्तेनाकारेण स चैषां न समस्ति, यतो धर्माधर्माकाशान्यनासादितातिशयान्येव सर्वदा पूर्वापरावस्था-भेदमनाजि-हानानि किल लक्ष्यन्ते। तदेतदपव्याख्यानमवधीरितसमयसद्भावैरकारि, यतः सर्वमेव सदुत्पाद-व्ययध्रौव्यधर्मात्म-व्यवस्थां नातिक्रामते। तदेतेऽपि धर्मादयो यदि सत्तां नातिलङ्घयन्ति, भवितव्यं तदा तर्हि क्रियायैषामुत्पाद-विगमलक्षणया, जीवानामिव। अथ सत्तातिक्रमेणाभ्युपेयन्ते तदानीं द्रव्यतैवावहीयते गगनेन्दी-वरादिवत्। जिनेश्वरोऽपि व्याजहार प्रश्नत्रयमात्रेण द्वादशाङ्गप्रवचनार्थं समग्रवस्तुसङ्ग्राहित्वात्प्रथमतः किल गणधरेभ्यः-***उवए वा विगमे वा धुवेति वा*** तदेतदशेषं विशीर्यते। ततो द्रव्यत्वात् मुक्तात्मवदुत्पादव्ययस्थिति-मत्त्वमनुमितिहेतुकम्। तथा चावधृतसिद्धान्तहृदयेन विशेषावश्यककारेण जिनभद्रसूरिणा नमस्कारनिर्युक्तौ शब्दानित्यत्वप्रतिपादनेच्छयावाचि-

अवगाहणादयो णणु गुणत्तओ चेव पत्तधम्मव्व। उप्पायाइसहावा तह जीवगुणावि को दोसो ?॥
अवगाढारं व विणा कुतोऽवगाहो त्ति तेण संजोगो। उप्पाई सोऽवस्सं गच्चुवगारादओ चेवं॥
ण य पज्जवओ भिन्नं दव्वमिहेगंतओ जओ तेणं। तण्णासम्मि कहं वा नहादओ सव्वहा णिच्चा?॥

(वि.आ.भ.२८२१-२३)

अवगाहनादयो ननु गुणत्वतश्चैव पत्र(प्राप्त)धर्म इव।
उत्पादादिस्वभावास्तथा जीवगुणा अपि को दोषः ?॥
अवगाढारं च विना कुतोऽवगाह इति तेन संयोगः। उत्पादी सोऽवश्यं गत्युपकारादयश्चैवम्॥

न च पर्यायतो भिन्नं द्रव्यमत्रैकान्ततो यतस्तेन। तन्नाशे कथं वा नभआदयः सर्वथा नित्याः॥]

अयमेतदर्थोऽवधार्यः[५] गुणत्वात्पत्रनीलतावत् तथा नभोऽवगाहोऽप्यनित्यः। नभसोऽवगाहः स्वलक्षणमुपकारः स चावगाढामन्तरेण जीवादिकं नाभिव्यज्यत इति। अवगाढजीवादिसंयोगमात्रमवगाह इति। संयोगश्चोत्पा-

---

१. वक्ष्यते। त.सू.भा.सि.
२. तुल्यजातीयद्रव्याभावात्। त.सू.भा.सि.
३. अवसानानि। त.सू.भा.सि.
४. यहां पर **परमाणुनि** की जगह **परमाणवस्त्ववयवा** पाठ होना चाहिए। उत्तरार्ध में भी कुछ त्रुटि लगती है।
५ अवगाहनादयोऽनित्या। त.सू.भा.सि.

दादिसंयुज्यमानवस्तुजन्यो द्व्यङ्गुलसंयोगवद्। तथा चावगाह आकाशस्य, एवं गतिस्थित्युपकारावपि धर्माधर्म-योर्गतिमदादिद्रव्यसंयोगमात्रत्वादुत्पादादिस्वभावौ इति।

[१००] कथं तदा निःक्रियत्वमेषामत आह- **जीवेत्यादि। *जीवपुद्गलास्तु क्रियावन्तः*** (त.सू.भा) ५.६ ***पुद्गलजीवास्तु क्रियावन्तः)*** क्रियेति[१] कथम्? उच्यते, पुद्गलजीववर्तिनी या विशेषक्रिया देशान्तरप्राप्तिलक्षणा तस्याः प्रतिषेधोऽयं नोत्पादादिसामान्यक्रियायाः। पुद्गलास्त्विवतो देशान्तरमास्कन्दन्तः समुपलभ्यन्ते जीवाश्चेत्यतस्ते क्रियावन्तः। अमुमेवार्थं धात्वन्तरेण प्रसिद्धदेशान्तरप्राप्त्यर्थेन प्रकाशयति- गतिः क्रियाशब्देनाभिधित्सिता विशिष्टैव न क्रियासामान्यम्, धर्मादयः पूर्वावष्टब्धप्रदेशान्तरमपि विचलितुमनुत्सहमानाः कथमेवंविधक्रियाधारतां प्रतिपत्स्यन्ते ? तस्मान्निष्क्रियाणीति निरवद्यं दर्शनम्।

[धर्मादीनां सप्रदेशाप्रदेशत्वविचारणा]

[१०१] अथाधिकृतधर्मादिद्रव्याणां सर्वेषामेव प्रदेशावयवेयत्ताविष्करणार्थमिदमुच्यते- **प्रदेशेत्यादि**[२] सूत्रे यस्मादजीवकाया इत्यत्र ***कायग्रहणं प्रदेशावयवबहुत्वार्थमिति व्याहृतम्*** (त.सू.भा.५.१) ततः क[३] एषां धर्मादीनां जीवान्तानां प्रदेशावयवानां व्यूहः समुदायस्तेषां कायसञ्ज्ञाः प्रोच्यन्ते = निगद्यन्त इति। **अत्रेति**। प्रदेशावयवनियमप्रश्ने यथागममधीयते मया। एष अभिप्रायः प्रश्नयितुः- अमूर्तेषु धर्मादिष्ववयवव्यवहारो नास्ति, मूर्तेषु चान्त्यभेदावस्थेषु परमाणुषु। अवयवव्यवहारो हि मूर्तेष्वेव प्रतीयते इत्यतो नियमोऽभिधेयः के एषामवयवा इति[४] ? सर्वेषां मूर्तानाममूर्तानां च प्रदेशाः सन्ति = विद्यन्ते संव्यवहारार्थम्। प्रदिश्यन्ते इति प्रदेशास्तत्र धर्माधर्माभ्रजीवानां द्रव्यपरमाणुमूर्तिव्यवच्छिन्नाः प्रदेशाः। यथाह- ***निरवयवो खलु देशः स्वस्य क्षेत्रप्रदेश इति***[५], पुद्गलस्य तु निरंशो द्रव्यात्मना भागः प्रदेश इत्युच्यते, न तु तस्यान्यः प्रदेशोऽस्ति अतः ***परमाणोरन्यत्र*** इत्युक्तम्। इदं च द्रव्यांशं प्रदेशध्वनिवाच्यमाधाय चेतसि भाष्यकारेणोक्तम्- अन्यत्र परमाणोः प्रदेशाः सन्ति[६], न पर्यायांशं रूपादिलक्षणम्। यतः प्रशमरतावनेनैवोक्तम्-

परमाणुरप्रदेशो वर्णादिगुणेषु भजनीयः॥ (२०८)

अत एव च भेदः प्रदेशानामवयवानां च ये न जातुचिद्वस्तुव्यतिरेकेणोपलभ्यन्ते ते प्रदेशाः। ये तु विशकलिताः परिकलितमूर्तयः प्रज्ञापथमवतरन्ति तेऽवयवा इत्यत आह- **परमाणून्यवयवा इत्यादि**। विशेषार्थस्तु शब्दः विस्रसा-प्रयोगाभ्यामवयूयन्त इत्यवयवाः पृथक्क्रियन्ते इति यावत्। ते च स्कन्धानामेव द्व्यणुकादिक्रमवता-मनतिक्रान्त-रूपादिभेदानाम्[७]। 'एव' शब्दो नियामकः, धर्माधर्माकाशजीवानां न सन्त्यवयवाः, स्कन्धानामेव भवन्ति। कुत एतदेवम्? इत्याह- ***सङ्घातभेदजाः स्कन्धाः***[८]। वियुतानामवयवानां संहतिपरिणतौ स्कन्धा जायन्ते संहतानां च भेदपरिणतौ द्व्यणुकादयः सम्भवन्ति। परमाणवस्तु भेदादेवावयूयमाना अवयवास्तस्मादवयवव्यवहारः पुद्गलद्रव्य-विषय एवाध्यवसेयः॥७९॥८०॥

---

१. **क्रियेति गतिकर्माह सूत्रकारः।** त.सू भा.
२. **अध्यायादि।** त.सू.भा.सि.
३. **य।** त.सू.भा.सि.
४. **सर्वेषामवयवाः सन्ति अन्यत्र परमाणोः अवयवास्तु स्कन्धानामेव।** त.सू.भा
५. **दृष्ट।** त.सू.भा.सि.
६. **सर्वेषां प्रदेशाः सन्त्यन्यत्र परमाणोः** (त.सू भा.५.६)
७. यह पंक्ति समझ में नहीं आती।
८. **सङ्घातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते।** (त.सू ५.२६)

[धर्मादिद्रव्याणां प्रदेशावयवनियमः]

[१०२] अथावसितप्रदेशावयवनियमो धर्मादिद्रव्यप्रदेशानां इयत्तामाविष्कुर्वन्नाह-

[मूल] तत्र धर्माधर्मयोश्च प्रदेशाः सन्त्यसङ्ख्यकाः। क्षेत्रे समग्रसूक्ष्मः स्यात्परमाणो(र)-वगाहकः[१]॥८१॥

(व्याख्या) तत्रेत्यादि। तेषु धर्मादिषु पञ्चसु धर्माधर्मयोरसङ्ख्येयाः प्रदेशाः = धर्माधर्मयोः प्रत्येकमसङ्ख्येयाः प्रदेशा भवन्ति। ते च लोकाकाशप्रदेशमाना सङ्ख्येयानन्तसङ्ख्याद्वयव्युदासेन असङ्ख्यका निगद्यन्ते। ननु कीदृशार्थः प्रदेशः? प्रकृष्टो देशः प्रदेशः परमनिरुद्धो निरवयव इति यावत्। अपेक्षाप्रयोजनः अपेक्षानिवृत्तो वा आपेक्षिकः। स च स्वसिद्ध एवार्वाग्दर्शनैरस्मदादिभिः अनेनाभ्युपायेन प्रज्ञाप्यमान आपेक्षिक उच्यते। सर्वेषां धर्माधर्माकाशजीवानामापेक्षिकत्वे सत्यपि सूक्ष्म एव न स्थूलः, ततोऽपि सूक्ष्मतरः परमाणोरवगाहः। द्रव्यपरमाणुपरिग्रहेण प्रदेशपरमाणोरवगतिः क्रियते। तदेतदुक्तं भवति- तन्मूर्तिमात्राक्रान्तो देशः प्रदेश उच्यते।

अवगाहो व्यवस्थानमाक्रान्तिरध्यासनमिति पर्यायाः, न पुनरिहावगाहो गतिः। नन्वेवमाकाशस्यैव प्रदेशो निरूपितः स्यान्न धर्मादीनाम्, यतोऽवगाहोऽम्बरस्य लक्षणम्, अस्तु, को दोषः? प्रदेशलक्षणं तावन्निर्ज्ञातम्। लोकाकाशे च यत्राकाशप्रदेशः स च यावांस्तत्रैव धर्मास्तिकायप्रदेशोऽवगाढः स च तावानेवेत्येवमधर्मप्रदेशोऽपि तत्र वाच्योऽतस्तुल्यप्रमाणत्वादेकेनैव प्रदेशपदप्रघट्टेन प्रदेशनिरूपणम्। तत्राकाशमवकाशदाने व्याप्रियते। गति-परिणतौ धर्म उपकारकः स्थितिपरिणामे चाधर्मद्रव्यमुपकरोति। ततः सर्वप्रदेशानामिदमेवापेक्षणीयमव्याहतं लक्षणम्। इतिशब्देन[२] उपसंहरति- ***धर्माधर्मयोरीयती प्रदेशसङ्ख्येति***॥८१॥

[जीवद्रव्यस्य प्रदेशनियमः]

[१०३] अथासङ्ख्येयप्रदेशे प्रस्तावमुपजीवन् जीवस्यापि तत्तुल्यप्रदेशनियतत्वादतो जीवप्रदेशनियम-गाथामाह-

[मूल] जीवैकं द्रव्यमादृत्य प्रदेशाः सन्त्यसङ्ख्यकाः। तथैव लोकाकाशस्य गगनस्य त्वनन्तकाः॥८२॥

(व्याख्या) जीवद्रव्यस्यैकजीवस्यासङ्ख्येयाः प्रदेशा भवन्ति। तथैव = एवं लोकालोकाभ्यामम्बरो द्विधा। तत्र लोकाकाशस्य असङ्ख्येया प्रदेशाः, तथालोकाकाशस्यानन्ताः प्रदेशाः, गगनस्य केवलाकाशद्रव्यस्यानन्ताः प्रदेशाः सन्तीत्यर्थः। जीवो ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावः। स कदाचित्सामान्येन निर्दिश्यते जीव[३] इत्यनेन समग्रनर-नारकादिभेदः समागतः गौशब्दवत्समस्तस्वभेदाक्षेपी। कदाचित् प्रतिविशिष्टोपाधिव्यवच्छिन्नो व्यक्तिपदार्थाश्रयणेन। तत्रैकशब्देन सर्वजीवराशिव्यवच्छेदमादर्शयति एकजीवस्यैकस्या व्यक्तेरिति। चशब्देनासङ्ख्येयप्रदेशता-मात्मन्य-नुसन्धत्ते, प्रसिद्धधर्मादिक्रमोल्लङ्घनाभिधानं तुल्यप्रदेशाख्यानलाघवार्थम्। एकयोगकरणाच्चोन्नीयते[४] इत्यभिप्रायः। सङ्कोचविकासस्वभावास्तुल्येऽप्यसङ्ख्येयप्रदेशत्वे जीवप्रदेशाश्चर्मादिवत्, धर्माधर्मयोस्तु सततमेव विततावस्थिताः, ते च सङ्कोचविकासस्वाभाव्याज्जातुचिन्निकृष्टकुन्थुविग्रहग्राहिणः कदाचित्तामेव सङ्ख्याम-जहन्तः स्थूलं करिणः शरीरमाददते विकासित्वादिति।

---

१. यहां पर **परमाणोरवगाहकः** में एक अक्षर छंद की दृष्टि से अधिक है।

२. त.सू.भा.५.७

३. **इत्याक्षिप्तसकलनारकादिभेदः गौ..।** त.सू.भा.सि.

४. **सूत्रकाराभिप्रायः।** त.सू.भा.सि.

[आकाशद्रव्यस्य प्रदेशनियमः]

[१०४] आकाशस्यापि यथोक्त-द्रव्यवत्प्रदेशनियमं विधित्सुराह- **तथैवेत्यादि**। अत्र न ह्यलोके जीवादयो द्रव्यावगाढास्तिष्ठन्ति। तदभावादाकाशो निष्फलरूपोऽस्ति। तज्ज्ञाः सञ्ज्ञैवेयमनादिकाला द्रव्यान्तरस्यालोकाकाश इति वदन्ति धर्माधर्मादिसञ्ज्ञावत्।

[१०५] अन्ये त्वेवं मन्यन्ते। तस्याप्यवगाहदानशक्तिरस्ति, सा त्ववगाहकाभावान्न व्यज्यते। यदि स्यादवगाहकं तत्र व्यापारं यायात्तदवगाहपरिणत्या, न त्वस्ति, तस्मात् तदप्यवगाहदानशक्तियुक्तत्वादाकाशम्।

[१०६] अपरे पुनरुपचारमाचरन्ति-आकाशवदाकाशं शुषिरदर्शनादिति, एतदप्यसत्, सिद्धान्तापेतत्वात्।

[आकाशस्य व्ययोत्पादौ]

[१०७] अथ ये केचिदेवं निगद्यन्ते व्ययोत्पादौ न स्वतो व्योम्नः, किन्तु परप्रत्ययाज्जायेते, अवगाहकसन्निधानासन्निधानायत्तावुत्पादव्ययाविति, तेषां कथमलोकाकाशे[१]? अवगाहकाभावाद्, अर्द्धवैशसं च सतो लक्षणं स्याद्, व्यापि चेष्यते स्थित्युत्पादव्ययमित्यत्रोच्यते, य एवं महात्मानस्तर्कयन्ति स्वबुद्धिबलेन पदार्थस्वरूपं[२] विदुषः पृच्छनीयोऽस्ति- कथमेतत्? वयन्तु विस्रसापरिणामेन सर्ववस्तूनामुत्पादादित्रयमिच्छामः, प्रयोगपरिणत्या च जीवपुद्गलानाम्। इत्थन्तावदस्मद्दर्शनमविरुद्धसिद्धान्तसद्भावम्, अस्मदुक्तार्थानुगुणमेवेति[३]। ततः[४] आकाशमविशिष्टमभिधित्सितं ततोऽनन्ततत्प्रदेशता समीचीना भवेद्। विभाग[५] एवं जीवाजीवाधारक्षेत्रो लोकस्ततः परमलोकः। अतः समग्राम्बरस्यानन्ता अपर्यवसाना इत्यर्थः॥८२॥

[पुद्गलप्रदेशसङ्ख्या]

[१०८] अथ पुद्गलप्रदेशसङ्ख्यागाथामाह-

[मूल] सङ्ख्यासङ्ख्यानन्तकाश्च पुद्गलानां प्रदेशकाः। भवन्त्यणुरप्रदेशो मध्याद्यभावतः खलु॥८३॥

(व्याख्या) पुद्गलानां प्रदेशाः सङ्ख्येया असङ्ख्येया अनन्ताः सन्ति। अणुः = परमाणुरादिमध्याद्यभावेन प्रदेशाभावोऽस्तीत्यर्थः। **खलु** इत्यनेन लोकाकाशे क्षेत्रैकप्रदेशे अवगाहो भवतीत्यर्थः। **पुद्गलानामित्यादि।** पूरणगलनपरिणतिलब्धसञ्ज्ञकाः पुद्गलाः परमाणूपक्रमा अचित्तमहास्कन्धपर्यवसाना विचित्ररूपादिपरिणतयस्तेषां प्रदेशाः सम्भवन्तः सङ्ख्येयादयो भवन्ति। सङ्ख्येयपरमाणूपचितः स्कन्धः सङ्ख्येयप्रदेशः, एवमितरावपि स्वसङ्ख्यावच्छिन्नाणुघटितावसङ्ख्येयानन्तप्रदेशौ वाच्यौ।

[परमाणोः अप्रदेशत्वस्थापनम्]

नन्वणुरपि पुद्गलशब्देनाक्षिप्तः पूरयति गलति च, तस्य चानन्तरपदेन[६] सङ्ख्येयासङ्ख्येयानन्तप्रदेश-विकल्पानामन्यतमेन विकल्पेन भवितव्यम्, पुद्गलत्वाभावो वा परमाणोः, यदि च सङ्ख्येयादिप्रदेशभागिष्यते

---

१. **आकाशस्यावगाहः।** त.सू.भा.सि.
२. **तेऽत्र निपुणतरमनुयोक्तव्याः।** त.सू.भा.सि.
३. **गुणमेव च भाष्यकारेणाप्युच्यते- लोकालोकाकाशस्यानन्ताः प्रदेशाः। लोकाकाशस्य तु धर्माधर्मजीवैस्तुल्याः (त.सू.भा.५.९)।** त.सू.भा.सि.
४. **यदि आकाशशब्देन।** त.सू.भा.सि.
५. **विभाग व्याख्यानं च।** त.सू.भा.सि
६. **सूत्रेण।** त.सू.भा.सि.

ततोऽणुरेव न स्याद्घटादिवत्। अथाप्रदेशस्ततोऽसन्नसौ गगनोत्पलादिवदिति, अत्रोच्यते, द्वये प्रदेशाः द्रव्यरूपाः पर्यायरूपाः। पर्यायस्वभावाश्च रूपादयस्तदङ्गीकरणेन सप्रदेशः परमाणुः। यथा द्रव्यात्मकैरणुप्रदेशैः सप्रदेशो घटस्तथाणुरित्येवमसिद्धार्थता प्रचिकाशयिषया[१] अणोरापूरकाः परिणामिकारणभावभाजो द्रव्यरूपाः प्रदेशाः न सम्भवन्ति। अथ अप्रदेशत्वेन परमाणुत्वाभावः साध्यते ततः स तादृशोऽन्त्यः प्रदेशः परमाणुर्न भवतीति प्रतीतिविरोधः। सप्रदेशत्वं चाव्यापकासिद्धदोषाघ्रातं वनस्पतिचैतन्ये स्वापवत्। न हि पक्षीकृतेऽणौ सर्वत्र सप्रदेशत्वमस्ति क्षेत्रकालभावाख्ये द्रव्यपरमाणावेव तत्।

[१०९] येऽपि प्रमाणयन्ति- मध्यविभागादिरहितत्वाद् व्योमोत्पलादिवदसन्नसौ तद्वत्त्वाद्वा नाणुर्घटादिवदित्यत्रापि पूर्वके प्रमाणे विज्ञानक्षणेनानेकान्तः। दिग्विभागकल्पनाप्यनेन प्रत्युक्ता पाश्चात्यप्रयोगे हेत्वसिद्धतोद्भावयिषया[२] आदिमध्यान्तप्रदेशैः परिहीण एव परिमाणुरिष्यते प्रदेशग्रहणादन्तपरिग्रहः। अथवा आदिमध्यग्रहणादर्थप्राप्तमेवान्तग्रहणम्। अस्मिन्पक्षे अप्रदेश इति प्रतिविशिष्टप्रदेशनिराकरणमेव कृतं भवति। आदिमध्यान्तप्रदेशैरप्रदेशो, न रूपादिभिरिति। न चादिमध्यान्तावयवनिबन्धनं वस्तुत्वं प्रतीतम्, विनापि तैर्विज्ञानाद्युपलब्धेरविभागत्वादेव च व्योमानुप्रदेशोऽपि प्रत्याख्यातो। न च सर्वगतत्वव्याघातो व्योम्नः, सकलवस्तुसम्बन्धित्वेनाभ्युपगम्यमानत्वात् प्रसिद्धविज्ञानक्षणवदतः स्वयमेवप्रदेशोऽसौ, न तस्यान्ये प्रदेशाः सन्ति द्रव्यस्वभावाः। सर्वं च साधनं तन्निराकरणेऽभिधीयमानं सदुपासितयथार्थगुरुवचसा परेणैवमधिगतद्रव्यपर्याय-नयद्वयसद्भावेन स्याद्वादिना विघटनीयमागमयुक्त्यनुसारिणेति।

[धर्मादिद्रव्याणां स्वान्यप्रतिष्ठितत्वविचारः]

[११०] अथैतानि धर्माधर्मपुद्गलजीवद्रव्याणि किं स्वात्मप्रतिष्ठानि व्योमवत्किं जलादिवदाधारान्तरप्रतिष्ठानि ? इति, उच्यते, निश्चयनयाभिप्रायेण सर्वे धर्मादयो द्रव्याः स्वात्मप्रतिष्ठिता भवन्ति। व्यवहाराभिप्रायेण लोकाकाशावगाहोऽस्ति अलोकाकाशेऽवगाहाभावादिति॥८३॥

[षड्द्रव्येषु निश्चयव्यवहारपक्षौ]

[१११] अथ षड्द्रव्येषु निश्चयव्यवहारपक्षौ निरूपणाय गाथामाह-

[मूल] परिणामसप्रदेशनित्यकर्तृत्वकारणम्। क्रियसर्वगताश्चैव भवन्ति निश्चयेतरात्[३]॥८४॥

(व्याख्या) स्पष्टम्॥८४॥

[प्रकारान्तरेण द्रव्याणां मूलसामान्यस्वभावाः]

[११२] अथ स्वभाव पक्षान्तरगाथाद्वयमाह-[४]

---

१. आह- **नाणोः।** त.सू.५.२१ **अणोः प्रदेशा न भवन्ति।** त.सू.भा.सि.

२. **भाष्यकार आह– अनादिरमध्योऽप्रदेशो हि परमाणुः यस्माद्।** त.सू.भा.सि.

३. यहां पर **निश्चयेतरात्** से क्या तात्पर्य है? यह स्पष्ट नहीं होता। निश्चय और व्यवहार से भेद है? या निश्चय से भिन्न सिर्फ व्यवहार नय से? यह स्पष्ट करना जरूरी है।

४. यहां पर **पक्षान्तर** की जगह **प्रदर्शनाय** पाठ संगत लगता है।

[मूल] द्रव्येषु मूलसामान्यस्वभावामी[1] (वा अ) भवन्ति षट्।
अस्तित्वं वस्तु द्रव्यत्वं प्रमेयत्वं चतुर्थकम्॥८५॥

[मूल] सत्त्वं चागुरुलघुत्वं द्रव्येष्वेते निरन्तरम्। परिणामिकभावेन स्वतः परिणमन्ति च॥८६॥

(व्याख्या) तत्र

१) नित्यत्वाद्युत्तरसामान्यानां पारिणामिकत्वादिविशेषस्वभावानामाधारभूतधर्मत्वं अस्तित्वम्।

२) गुणपर्यायाधारभूतं वस्तुत्वम्।

३) अर्थक्रियाकारित्वं द्रव्यत्वं पूर्वोक्तमेव। अथवा उत्पादव्ययययोर्मध्ये उत्पादपर्यायाणां जनकत्वं प्रसवत्वमाविर्भावलक्षणम्, व्ययभूतपर्यायाणां तिरोभाव(लक्षणम्) अभावरूपायाः शक्तेराधारत्वं द्रव्यत्वम्।

४) स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम्। प्रमीयते अनेनेति प्रमाणम्। तेन प्रमाणेन प्रमातुं योग्यं तत्त्वं प्रमेयत्वम् चतुर्थः सामान्यः स्वभावोऽस्तीति। **सत्त्वमित्यादि।**

५) उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्त्वम्।

६) षड्गुणहानिवृद्धिस्वभावाः सन्ति अगुरुलघुपर्यायाधारत्वमगुरुलघुत्वम्।

एते षट्स्वभावाः सर्वद्रव्येषु परिणमन्ति तेन सामान्यस्वभावाः प्रोच्यन्ते। तेनास्तित्वादय उत्तरसामान्यस्वभावा अवगम्यन्ते। ते अनन्ता अपि व्यक्तत्वेन भावोत्तरद्वारगाथायां नित्यत्वादयः पूर्वोक्ता एव भवन्ति। ते चानेकान्तजयपताकाया अवसेया इति॥८५॥८६॥

[अस्तित्वादिषट् मूलसामान्यस्वभावाः]

[११३] अथास्तित्वादिषड्मूलसामान्यार्थ[2]प्रतिपादकसप्तगाथामाह–

[मूल] आधारभूतधर्मत्वमस्तित्वं च द्वितीयकम्। अर्थक्रियायाः कारित्वं द्रव्यत्वं स्याज्जिनागमे[3]॥८७॥

[आविर्भावलक्षणम्]

[मूल] वोत्पादव्ययययोर्मध्ये पर्यायोत्पादकानि च। जनकं प्रसवत्वं वाविर्भावलक्षणं भवेत्॥८८॥

[तिरोभावलक्षणम्]

अथ तिरोभावलक्षणमाह-

[मूल] व्ययपर्यायकाणां च यस्तिरोभावको भवेत्। अभावरूपाया शक्तेराधारं द्रव्यलक्षणम्॥८९॥

[प्रमेयत्वलक्षणम्]

अथ प्रमेयत्वलक्षणमाह-

[मूल] स्वान्यात्मकं बोधरूपं यज्ज्ञानं स्यात्प्रमाणकम्। तेन प्रमातुं यद्योग्यं प्रमेयत्वं तदुच्यते॥९०॥

---

१. यहां पर असंधि होनी चाहिए।

२. यहां पर सामान्य के बाद स्वभाव पद होना जरूरी है- **सामान्यस्वभावार्थ।**

३. इस गाथा क्रम में प्रथम दूसरे स्वभाव का वर्णन नहीं है। शायद एक गाथा कम है।

[सत्त्वलक्षणम्]

अथ सत्त्वविचाररूपगाथामाह–

[मूल] ध्रौव्योत्पादव्ययायुतं तत्सत्त्वं प्रविनिर्दिशेत्।

[अगुरुलघुलक्षणम्]

अथागुरुलघुविचारप्ररूपकसार्द्धगाथामाह-

षड्गुणवृद्धिहानिभ्यां स्वभावोऽस्त्यगुरुलघुः॥९१॥

[मूल] द्रव्यगुणप्रदेशाश्च भेत्तुं शक्या भवन्ति ये। सर्वद्रव्याधारभूतो[१](तम)गुरुलघुत्वमुच्यते॥९२॥

अथैतत्षट्सामान्यस्वभावफलविचारगाथामाह-

[मूल] एते रसस्वभावाश्च सर्वद्रव्येषु सर्वदा। पारिणामिकयोगेन सामान्यानि[२](श्च) गदन्ति ते॥९३॥

अथान्य[३]स्वभावविचारगाथामाह-

[मूल] वस्तुष्वनन्तकाः सन्ति प्रोक्ताः सामान्यकाः जिनैः।
त्रयोदशापि पश्यन्ति[४] अनेकान्तजयादिषु॥९४॥

(व्याख्या) वस्तुष्वित्यादि। स्पष्टम्॥९४॥

[द्रव्येषु नित्यादिस्वभावप्रदर्शनम्]

[११४] अथ द्रव्येषु नित्यादिस्वभावप्रदर्शनाय गाथामाह-

[मूल] पारम्पर्याप्रच्युतिभ्यां नित्यो युगविधः स्मृतः।
कूटस्थपरिणामी द्वौ ग्रन्थान्ये विद्य(द्ये)तेऽथवा॥९५॥

(व्याख्या) नित्यो द्विविधः स्मृतः = कथितः। तथाहि- प्रथमा अप्रच्युतिनित्यता, द्वितीया पारम्पर्यनित्यता च। तत्र द्रव्याणामूर्द्ध्वप्रचयतिर्यक्प्रचयेन ये परिणमन्ति पुनस्तदेवेति त्रिकालज्ञानरूपमप्रच्युतिनित्यकम्। मूलस्वभावाव्ययमूर्द्ध्वप्रचयम्। प्रथमसमये द्रव्यपरिणतौ सत्यां स एव द्वितीयसमयेऽभिनवपर्यायोत्पादनं यः करोति पुनरपरपूर्वपर्यायव्ययेन सर्वपर्यायपरावृत्तिं दधात्यपि तदेव द्रव्यमित्यात्मकज्ञानोत्पादनमूर्द्ध्वप्रचयं वदन्ति। तथा तिर्यक्प्रचयं द्रव्याणां प्रत्येकतुल्यं भिन्नजीवत्वरूपकं यज्ज्ञानं तत्तिर्यग्प्रचयम्। तत ऊर्द्ध्वप्रचयानन्तर-मनेकोत्पादव्ययपरावर्तनं करोति, परन्तु कारणसाहाय्यात्तदेवेत्यात्मकज्ञानोत्पत्तिरूपो नित्यस्वभावधर्मो द्रव्येषु भवति। तथा द्वितीयं कारणकार्योत्पत्तौ सत्यां पुनर्द्वितीयसमये द्वितीयकारणेनापरकार्योत्पादनेऽपि तदेव पुद्गल इत्यात्मकज्ञानं पारम्पर्यनित्यस्वभावं वनस्पतिकायवदिति, आत्मा त्वेक एवास्ति। अन्ये परम्पराभिधानं सन्ततिरिति वदन्ति। तदेवं पूर्वपर्यायव्ययाभिनवपर्यायोत्पादनेऽपि तदेवेत्यात्मको बोधो नित्यः पर्यायानित्यस्वभावादिति।

---

१. यहां पर **भूतो** की जगह **भूतं** पाठ अधिक संगत लगता है।

२. यहां पर **सामान्यानि** की जगह **सामान्याश्च** पाठ अधिक संगत लगता है।

३. यहां पर **सामान्य** पाठ अधिक संगत लगता है।

४. यहां पर संधि होनी चाहिए।

[११५] अथ ग्रन्थान्तरगतनित्यस्य भेदद्वयमाह- **कूटस्थेत्यादि।**

[कूटस्थनित्यस्वभावः]

१) असङ्ख्येयप्रदेशात्मकजीवस्य सङ्ख्येयक्षेत्रप्रदेशावगाहनपरावृत्त्यभावः सर्वकूटस्थवन्नित्यस्वभावेन गुणानामविभागो भवतीति प्रथमः।

२) ज्ञानादयो गुणा जीवे पारिणामिकेन नित्यस्वभावाः, गुणानां स्वकार्य(र्ये) पारिणामिकधर्मत्वादिति। ननु ज्ञानादिगुणानां कूटस्थनित्यत्वं कथं न मन्यसे? इत्युच्यते, प्रथमसमये ज्ञेयज्ञानोत्पत्तौ कूटस्थभावेन सर्वदा ज्ञान-स्थितिस्वभावेनाभिनवज्ञेयवृन्दपरिणमनज्ञानाभावो दोषः स्यात्। ज्ञानस्य तु प्रथमसमयमारभ्य सर्वदा समयस्थिति-भावाद् यथार्थदोषः स्यादतः ज्ञेयघटपटादिपरावृत्त्यैव ज्ञानमप्याविर्भावेन स्यात्तद्यथार्थं भवति। अतो ज्ञेयज्ञानाय ज्ञानादयः पारिणामिकनित्या एव भवन्तीति।

[पारिणामिकनित्यस्वभावः]

[११६] तत्र पारिणामिकत्वेन ज्ञानादिगुणानामुत्पादव्ययौ विविधप्रकारेण भवतः। तथाहि- विस्रसाप्रयोग-जभेदाद् द्विभेदा उत्पादव्यया परिणमन्ति। सर्वद्रव्याणां चलनसहकारादिपदार्थक्रियाकरणं भवत्येव। तत्र चलनसह-कारित्वं कार्यं धर्मास्तिकायपरिणमनं तेन कारणत्वपर्यायव्ययः कार्यत्वपरिणामस्योत्पादः गुणत्वेन ध्रुवत्वं प्रतिसमयं उत्पादव्ययौ कारणकार्ययोरपि स्यातामिति। यथा धर्मास्तिकायः प्रतिप्रदेशस्थगमनसहकारिगुणा-विभागोपादान-कारणः स्वत एव चलनसहकारी कार्यं परिणमतीत्यतः कारणव्ययकार्योत्पादचलनसहकारिगुणध्रुवैः पारिणामिक-स्वभावे परिणमति इत्याशयः। एवमधर्मादिष्वपि बोध्यम्। एवं सर्वद्रव्येषु सर्वेषां गुणानां स्वस्वकार्यकारणता ज्ञेया। इत्येका व्याख्या। तथा समस्तद्रव्याणां परिणामित्वं पूर्वपर्यायव्ययो नूतनपर्यायोत्पादः। इत्थमप्युत्पादव्ययौ द्रव्यत्वेन ध्रुवाविति द्वितीयः।

[११७] ३) तथा प्रतिद्रव्यं निजकार्यकारणपरिणमनपरावृत्तिगुणप्रवृत्तिरूपाः परिणतिरनन्ता अतीता। वर्तमाने एकानन्तजातीया आगामियोग्यतारूपा अनन्ता भवन्ति। वर्तमाना अतीता अनागता वर्तमाना भवन्ति। शेषा अनागताः कार्ययोग्यासन्नतां लभन्ते इत्येवमुत्पादादयो गुणत्वेन ध्रुवा इति तृतीयः।

[११८] अत्रान्ये कालद्रव्यमादृत्य परप्रत्ययत्वं वदन्ति, तदसत्, पञ्चास्तिकायस्य पर्यायत्वेनैव सिद्धान्ते कालस्य उक्तत्वादियं परिणतिः स्वकालत्वेन वर्तमानात्स्वप्रत्येयमेव। तथा कालस्य भिन्नद्रव्यत्वेऽपि कालस्य कारणभूतागामिवर्तमानत्वेन भवनं तु जीवादिद्रव्यस्यैव परिणतिरिति।

४) तथा श्रेयोवासे सिद्धात्मनि केवलज्ञानस्य यथार्थं ज्ञेयज्ञायकत्वाद्यथा ज्ञेया धर्मादयस्तथा घटपटादिरूपा वा परिणमन्ति, तथैव ज्ञाने भासनाद्यस्मिन्समये घटस्य प्रतिभासः समयान्तरे घटध्वंसे कपालादिप्रतिभासः तदा ज्ञाने प्रतिभासध्वंसककपालप्रतिभासस्योत्पादो ज्ञानरूपत्वेन ध्रुवत्वमिति। तथा धर्मास्तिकायस्य यस्मिन्समये सङ्ख्येय-परमाणूनां चलनसहकारिता, अपरसमये असङ्ख्येयानां सहकारिभावेनैवं सङ्ख्येयसहकारित्वव्ययास-ङ्ख्येयानन्त-सहकारितोत्पादचलनसहकारित्वेन ध्रुवत्वम्। इत्थमधर्मादिष्वपि बोध्यम्। एवं सर्वगुणप्रवृत्तिष्विति चतुर्थः।

[११९] ५) तथा समस्तद्रव्याणि अस्तिनास्तित्वेन परिणामीनि। तत्रास्तिभावानां निजधर्माणां पारिणामिकत्वेनोत्पादव्ययौ स्तः, नास्तिभावानां परद्रव्यादिना परावृत्तौ तेषां परावृत्तित्वेनाप्युत्पादव्ययौ ध्रुवत्वं च अस्तिनास्तिद्वयाविति पञ्चमः।

[१२०] ६) तथा पुनरगुरुलघुपर्यायाणां षट्हानिवृद्धिरूपाणां प्रतिद्रव्यं परिणमनभावानां हानिव्यये वृद्ध्युत्पादः, वृद्धिव्ययेन हान्युत्पादः ध्रुवत्वं चागुरूलघुपर्यायाणाम्। इत्थं सर्वद्रव्येषु ज्ञेयमिति। तथा अलोकाकाशस्याप्यगुरुलघुपर्यायपरावृत्तिरभ्युपेया। ते (न) त्वन्ये भवन्ति अन्यथाभिनवोत्पादव्ययौ नापेक्षिकाविति न्यूनत्वेन द्रव्यस्य सल्लक्षणे दोषः स्यादिति षष्ठमः।

[१२१] ७) तथा विवाहप्रज्ञप्तिटीकायाम् अस्तिपर्यायाः सामर्थ्यरूपाः विशेषपर्यायास्ते चानन्तगुणाः ते प्रतिसमयं निमित्तभेदेन परावृत्तिरूपाः। तत्र पूर्वविशेषपर्यायाणां नाशः अभिनवविशेषपर्यायाणामुत्पादः पर्यायाणां ध्रुवत्वमित्यादि सर्वत्र ज्ञेयमिति सप्तमः।

नित्याभावे कार्यस्य निरन्वयः [नाशः] स्यात्कारणाभावश्च भवति, अतो युक्तमेवास्ति नित्यस्वभाव इति नित्यस्वभावः॥९४॥९५॥

[नित्यानित्यस्वभावास्वीकारे दोषः]

[१२२] अथ केवलं नित्यमेव स्वीकुर्वाणो अनित्याभावे ज्ञापकतादिशक्तेरभावः स्यादर्थक्रियाया असम्भवो भवेद्। एतदेवाह–

[मूल] कार्यान्वयकारणाभ्यां युक्तो नित्य स्वभावकः।
द्रव्याणां गुण बोधायानित्योऽप्यस्ति द्वितीयकः॥९६॥

(व्याख्या) यत्सत्त्वे तत्सत्त्वमन्वयः अतः कार्यान्वयाय कारणप्रवृत्तये नित्यस्वभावो युक्तोऽस्ति। एवमनित्यस्वभावाभावे द्रव्याणां ज्ञानादिगुणज्ञापकादिशक्त्यभावेन गुणरूपकार्याभावः स्यादर्थक्रियाया असम्भवश्च, अतोऽनित्यस्वभावोऽप्यवश्यमेव वक्तव्यः॥९६॥

[नित्यानित्ययोः परस्पराभावे दोषः]

[१२३] अथैकानेकस्वभावविचारगाथामाह-

[मूल] सर्वस्वभावपर्यायाधारभूतप्रदेशकान्। स्वक्षेत्रभिन्नरूपाणामेकोऽस्त्येकत्वपिण्डतः॥९७॥

(व्याख्या) सर्वेत्यादि। समस्तस्वभावः पर्यायाधारभूतप्रदेशानां निजनिजक्षेत्रभेदरूपाणामेकत्वपिण्डीरूपात्यागो एकस्वभावोऽस्तीत्यर्थः। तत्रास्तित्वप्रमेयत्वादयः सर्वे स्वभावा गुणविभागादीनामाधारभूतक्षेत्र-प्रदेशाश्च निजनिजक्षेत्रप्रदेशभावेन भिन्नभिन्नरूपाः सन्ति। इत्थमसङ्ख्येयप्रदेशभिन्नभावानामेकपिण्डस्वरूप-स्थितिमादरति। स एक स्वभावोऽस्ति सर्वप्रदेशान्योन्यान्तरालक्षेत्रावकाशाभावादित्याशयः। तत्र पञ्चास्तिकायेषु धर्माधर्माकाशाश्च एकद्रव्याणि सन्ति। ततो जीवोऽनन्तो भवति। ततः परमाणुपुद्गला अनन्तगुणाः सन्ति। एको जीवोऽनेकरूपादिकं गत्यादिषु परिभ्रमणं कुर्वन्समाचरति अन्तराभावात्तेन द्रव्येष्वैकस्वभावोऽस्तीति॥९७॥

[अनेकस्वभावविचारः]

[१२४] अथानेकस्वभावाधिकारगाथाद्विकमाह-

[मूल] क्षेत्रकालसुभावानां गुणविभागयोगतः। भिन्नकार्यप्रवृत्तीनां भवेद्भिन्नप्रवाहकः॥९८॥

(व्याख्या) क्षेत्रेत्यादि। क्षेत्रमसङ्ख्यातप्रदेशरूपम्, कालस्तूत्पादव्ययस्वरूपः, भावपर्यायो गुणः। एतेषां प्रदेशादिगुणानां विभागस्वभावेन निजनिजभिन्नकार्यपरिणामिकोऽस्ति = सर्वेषां भिन्नप्रवाहो भवति। अतः सर्वकार्यभिन्नप्रवाहत्वादनेकस्वभावोऽस्ति सर्वस्वभावपर्यायभेदविचारणायामिति।

[एकानेकयोः परस्पराभावे दोषः]

[१२५] अथैकानेकयोः परस्पराभावे दोषापत्तिरूपगाथामाह-**द्रव्यैकेत्यादि।**

[मूल] द्रव्यैकभावाभावेन सामान्यविरहो भवेत्। तेष्वनेकाभावयोगाद्विशेषाभावकस्तथा॥९९॥

यदि द्रव्येष्वेकस्वभावाभावो मन्यते तदा सामान्यविरहो = अभावो भवति तदानेकपर्यायगुणानां स्वाम्याधारः कोऽस्ति आधेयो आधाराभावेन कुत्र तिष्ठति? ततो द्रव्येष्वेकस्वभावमनुभवामः। तथा द्रव्येष्वनेकस्वभावो न मन्यते तदा विशेषाभावः स्यात्तदानेकस्वभावप्राप्तिः कथं स्याद्? अनेकाभावेन गुणा अनेकस्वभावं कथं परिणमन्ति? तथा शब्दे निजविषयव्याप्यव्यापकताभावोऽपि कथमस्ति? अतोऽनेकस्वभावो द्रव्येषु भवत्येवेति। द्रव्ये व्याप्ये निजगुणपर्यायाः व्यापकाः सन्ति॥ इत्येकानेकस्वभावः॥९८॥९९॥

[अस्तिनास्तिस्वभावविचारः]

[१२६] अथास्तिनास्तिस्वभावविचारगाथामाह–

[मूल] स्वद्रव्यादिचतुष्केन व्याप्यव्यापकसंस्थितान्।
भावाद्भावान्तरो हेतुस्तद्रूपो वस्तुनो भवेत्॥१००॥

(व्याख्या) स्वद्रव्यादीत्यादि। निजद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्केनेति चतुष्टयेन व्याप्यव्यापकसम्बन्धि-स्थितानाम्। **भावादित्यादि।** स्वकीयपरिणामात्परिणामान्तरगमनहेतुः वस्तुनः तद्रूपतापरिणमनरूपोऽस्तिस्वभावः स्यादिति। द्रव्यगुणपर्यायाणाम् निजधर्मं विमुच्य धर्मान्तरपरिणमनाभावादिति॥१००॥

[१२७] अथ नास्तिस्वभावस्वरूपगाथाद्वयमाह-

[मूल] द्रव्याद्यपरजातीनां स्वद्रव्यादिचतुष्टये। सदा व्यवस्थितानां च द्रव्याद्यन्यविवक्षिते॥१०१॥

[मूल] सर्वदैवाविच्छिन्नानामन्यधर्मसमुच्चयाः।
व्यावृत्तिरूपो यो भावः प्रोच्यते नास्तिरूपकः॥१०२॥(युग्मम्)

(व्याख्या) द्रव्यादित्यादि। द्रव्याद्यपरजातीनाम् = अन्यजातीयद्रव्याणामित्यर्थः। **स्वद्रव्यादीत्यादि।** निजगतद्रव्यादिचतुष्के सदा = निरन्तरं व्यवस्थितानाम्। **द्रव्याद्यन्येत्यादि।** परद्रव्यादिके विवक्षिते। **सर्वेत्यादि।** सर्वदा परगतधर्मसमुच्चयोऽविच्छिन्नस्वभावेन, तत्र द्रव्यादिको अभावेन भवति। अतो **व्यावृत्तीति।** अपरधर्माणां यो व्यावृत्तिरूपोऽभावः स द्रव्येषु नास्तिस्वभावः प्रोच्यते इति॥१०१॥१०२॥

[१२८] अत्रैतदर्थे दृष्टान्तमाह-

[मूल] यथा जीवे गुणव्यूहाः सज्ज्ञानदर्शनादयः।
तेषामस्तिस्वभावोऽस्ति नास्तिकोऽन्यगुणादिकान्॥१०३॥

[मूल] घटे घटधर्मास्तित्वं नास्तित्वं परधर्मतः। एवं समग्रद्रव्येषु अस्तिनास्त्युभको भवेत्॥१०४॥

(व्याख्या) यथेति दृष्टान्तः। जीवे गुणव्यूहाः = ये गुणसमुच्चयास्ते ज्ञानदर्शनादयः तेषामस्ति स्वभावोऽस्ति। तथा **नास्तीत्यादि**। परधर्मादिद्रव्यगुणानां नास्तिस्वभावोऽप्यस्ति। **घटेत्यादि**। यथा घटे घट-धर्माणामस्तित्व-भावोऽस्ति तथा समग्रपटादिद्रव्याणां नास्तित्वभावोऽप्यस्तीति गाथाद्वयार्थः। तथा चोक्तं भगवत्याम्-

***गोयमा! अत्थित्ते अत्थित्तं परिणमई नत्थित्ते नत्थित्तं परिणमई* इत्यादि** ( )।

तथा ठाणसूत्रेऽप्युक्तम्-

***सिय अत्थि, सिय नत्थि, सिअ अत्थिनत्थि, सिअ अवत्तव्वं* इति चतुर्भङ्गिकास्ति।** तथान्यत्राप्युक्तम्-

सदसदविसेसणाओ भवहेउजहच्छिओवलंभाओ। नाणफलाभावाओ मिच्छद्दिट्ठिस्स अन्नाणं इति॥

(वि.आ.भा.११५)

[सप्तभङ्गी]

[१२९] स्याद्वादोपलक्षितं वस्तु। स्याद्वादश्च सप्तभङ्गीपरिणामः। एकैकस्मिन्द्रव्ये गुणे पर्याये च सप्तभङ्ग्यो भवन्त्येव। अतोऽनन्तपर्यायपरिणते वस्तुनि अनन्ताः सप्तभङ्ग्यो भवन्तीति। ननु परापेक्षामाश्रित्येमाः सप्तभङ्ग्यः सम्भवन्ति, न स्वद्रव्याश्रितेनेति चेद्, उच्यते, अत्र स्वगतविषयिका एव सप्तभङ्ग्यो भवन्ति, न तु परविषयाः सन्ति। तद्यथा- द्रव्ये स्वधर्मपरिणमनभावोऽस्तिधर्मो विद्यते परधर्मपरणतिरूपो नास्तिस्वभावोऽप्यस्तीति॥१०३॥१०४॥

[त्रयः सकलादेशाः]

[१३०] एतदेवाह-

[मूल] स्वपरोभयपर्यायैः सद्भावेतरकोद्भवैः। कुम्भः कुम्भाकुम्भकौ द्वाववक्तव्योभयाद्भवेत्॥१०५॥

(व्याख्या) स्वपरेत्यादि।

१) यदा विवक्षितैकवस्तुविषये स्वपर्यायाणां सद्भावेनार्पितविशेषणेन अस्तिस्वभावोऽस्ति।

२) तथा तस्मिन्नेव अन्यद्रव्यगतपरपर्यायपरिणामित्वादसद्भावार्पितेन नास्तिस्वभावो भवति।

३) तथोभयपर्यायाणामुभयेन सद्भावासद्भावोभयार्पितेनोभावपि भवतीति। समयैकस्मिन्ये पर्याया अस्तित्व-भावाः सम्भवन्ति, ततो परसमये ते पर्याया नास्तिस्वभाववृत्तिं कुर्वन्ति प्रत्येकसमयभावास्तु केवलिन एव जानन्ति, छद्मस्थोपयोगस्त्वसङ्ख्येयसमयात्मकोऽस्ति। अतः पूर्वापरसापेक्षया सप्त भङ्ग्यो भवन्तीति।

एतदेवाह- **कुम्भेत्यादि**। उष्टग्रीवाकपालकुक्षिबुध्नादिभिः स्वपर्यायैः सद्भावेनार्पितः = विशेषितः कुम्भः कुम्भो विद्यते सद्घटे। एवं जीवोऽपि स्वपर्यायैर्ज्ञानादिभिरर्पितः सन् जीवो भवति। इत्थं सर्वद्रव्येष्ववगन्तव्यमेवेति प्रथमभङ्गः। तथा पटादिगते त्वक्त्राणादिभिः परपर्यायैरसद्भावेनार्पितो = विशेषितः कुम्भो नास्ति। सकलस्यापि घटस्य परपर्यायैरसत्त्वविवक्षायामसद्घटः। एवं जीवोऽपि मूर्तत्वाद्यपरपर्यायैरसज्जीव इति द्वितीयभङ्गः। तथा सर्वो घटः स्वपरोभयपर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्यां सत्त्वासत्त्वाभ्यामर्पितो युगपद् द्वयं वक्तुमशक्येनावक्तव्यो भवति। स्वपरपर्यायसत्त्वासत्त्वाभ्यामेकैकेनाप्यसाङ्केतिकेन शब्देन सर्वस्यापि तद् वक्तुमशक्यत्वादिति। एवं जीवस्यापि

सत्त्वासत्त्वाभ्यामेकसमयेन वक्तुमशक्यत्वात् स्यादवक्तव्योऽयं जीव इति तृतीयभङ्गः॥१०५॥

[१३१] अथ तत्स्वरूपगाथामाह-

[मूल] एतेऽस्त्यादिस्त्रयो भङ्गाः पूर्णवस्तुसमादरात्।
भवन्ति सकलादेशा विकलादेशकाः परे॥१०६॥

(व्याख्या) एते इत्यादि। एते अस्तित्वादयस्त्रयो भङ्गाः सकलादेशा भवन्ति सर्वजीवाजीवादि वस्तुग्रहण-परत्वादिति। परे स्यादस्तिनास्त्यादयश्चत्वारो विकलादेशा विद्यन्ते, वस्तुस्वरूपैकदेशग्रहणपरत्वा-दित्यर्थः॥१०६॥

[चत्वारःविकलादेशाः]

[१३२] अथ विकलादेशभङ्गप्ररूपकगाथामाह-

[मूल] निजान्यसत्त्वासत्त्वेन सदसच्च घटोऽघटः। जीवोऽपि स्वान्यपर्यायैः सदसद्विद्यते खलु॥१०७॥

(व्याख्या) निजान्येत्यादि। तत्र वस्त्वैकस्मिन्देशे इति शेषः। वस्त्वैकदेशे निजस्वपर्यायसत्त्वेन सत्, अन्यपर्यायासत्त्वेन चासदिति घटोऽघटश्च भवति इत्थमिति शेषः। एवं जीवोऽपि स्वपर्यायैः सत्परपर्यायैरसदित्यतः स्यादस्तिनास्तिरूपश्चतुर्थभङ्गोऽप्यस्ति **खलु** इति निश्चयेन॥ इत्यस्तिनास्तिरूपश्चतुर्थो विकल्पः॥१०७॥

[१३३] अथ पञ्चमभङ्गप्ररूपकगाथामाह-

[मूल] विवक्षितः स्वैः सद्भावोऽन्यदेशे स्वपरोभयैः।
युगपत्सत्त्वासत्त्वाभ्यामवक्तव्योऽस्ति पञ्चमः॥१०८॥

(व्याख्या) विविक्षतेत्यादि। तथा वस्त्वैकस्मिन्देशे स्वैः = स्वपर्यायैः सद्भावेन विवक्षितः, अन्यत्र देशे स्वपरोभयपर्यायैः सत्त्वासत्त्वाभ्यां युगपदसङ्केतकेन शब्देन वक्तुं विवक्षितः सन्नावक्तव्यरूपः पञ्चमः। एवं जीवोऽपि चेतनत्वादिपर्यायैः सन्युगपत्स्वपरोभयपर्यायैः स्यादस्त्यवक्तव्यरूपः पञ्चमो भङ्गो भवतीत्यर्थः। इत्यस्त्यवक्तव्यपञ्चमो विकल्पः॥१०८॥

[१३४] अथ षष्ठमभङ्गप्रतिपादनाय गाथामाह-

[मूल] वस्त्वैकदेशे परकैरसद्भावसमर्पितः। भावान्यसत्त्वान्याभ्यां स्वान्यैरवक्तव्यको भवेत्॥१०९॥

(व्याख्या) वस्त्वैकेत्यादि। तथा वस्त्वैकदेशे परकैः = परपर्यायैरसद्भावेनार्पितो = विशेषितः परैः = स्वान्यैः स्वपरपर्यायैः। भावाश्च अन्यश्च भावान्यः, सत्त्वश्च अन्यश्च सत्त्वान्यस्ताभ्याम्। इह भावशब्देन सद्भावोऽन्येन तत्प्रतिपक्षोऽसद्भावः सद्भावासद्भावाभ्यां = सत्त्वासत्त्वाभ्यां युगपदसङ्केतिकेन शब्देन न वक्तुं विवक्षितः कुम्भोऽसन्नवक्तव्यश्च भवति। कुम्भो देशे **अकुम्भदेशे अवक्तव्यत्वादिति**। स्यान्नास्त्यव्यक्तव्य इति एवं जीवोऽपि एकदेशे परपर्यायमपेक्ष्य असद्भावोऽस्ति स्वपरसर्वपर्यायसमकालेनावक्तव्य इति अतो नास्त्यवक्तव्यरूपः षष्ठमो भङ्गः॥ इति षष्ठमो भङ्गः॥१०९॥

[१३५] अथ सप्तमत्रिकसंयोगिभङ्गिप्ररूपणाय गाथाद्विकमाह-

[मूल] वस्तुदेशे स्वपर्यायैः सद्भावेन समर्पितः। तथा देशेऽन्यपर्यायैरसद्भावसमर्पितः॥११०॥

[मूल] स्वपरोभयपर्यायैर्देशेऽन्यस्मिन्विवक्षितः। युगपदेकशब्देन भवेद्वक्तुं त्रियोगकः॥१११॥(युग्मम्)

(व्याख्या) वस्त्विवत्यादि। तथा वस्त्वैकस्मिन्देशे स्वपर्यायैः सद्भावेन अर्पितः। तथैकस्मिन्देशे अन्यपर्यायैः

= परपर्यायैरसद्भावेन समर्पितः॥ **स्वपरेत्यादि।** तथान्यस्मिन्देशे स्वपरोभयपर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्यामेक-कालावच्छिन्नयुगपदेकेन शब्देन वक्तुं विवक्षितः सन्, असन्, अवक्तव्यश्च भवतीति सप्तमो भङ्गः स्यादिति-॥११०॥१११॥

[जीवद्रव्ये सप्तभङ्गी]

[१३६] एते एकस्मिन्वस्तुनि अर्पिता ते(?) सप्तभङ्गी उक्ता। अथ जीवद्रव्ये स्वस्वरूपे बालबोधाय सप्तभङ्गिकामाह-

[मूल] ज्ञानादिनिजधर्मेषु अस्तित्वेन प्रवर्त्तनात्। जीवस्य प्रथमो भङ्गः अस्तिरूपो भवेत्खलु॥११२॥

(व्याख्या) जीवस्य ज्ञानादिनिजात्मधर्मेषु प्रवर्तमानादस्तित्वेन अस्ति स्यादस्तिरूपः प्रथमो भङ्गः खलु = निश्चयेन भवेत् = स्यादित्यन्वयः। अत्र स्वधर्मा अस्तिपदगृहीता इत्याशयः। निजगतज्ञानादि-गुणपर्यायाणां ज्ञायकपरिच्छेदककर्तृत्वादिभावेन अस्तिस्वभावत्वादिति। एवं सर्वगुणेषु निजधर्माणामस्तिता ज्ञेया। अत्र गुणाः पर्यायाविभागरूपव्यूहैकप्रवृत्तिरूपा वदन्ति। तेऽपि स्वकार्यकारणधर्मे अस्तिस्वभावा भवन्ति। अत्र द्रव्यस्वरूपेण अस्तिरूपाः षड्भङ्गा अन्येऽपि भवन्ति। अतः सापेक्षभावमालम्ब्य स्यात्पूर्वकोक्तेन स्यादस्तीति प्रथमभङ्गः ॥११२॥

[१३७] अथ द्वितीयभङ्गप्ररूपकगाथामाह-

[मूल] स्वान्यजात्यन्यद्रव्याणां तद्धर्माणां च सर्वथा।
जीवे नास्तित्वभावेन भङ्गः स्यान्नास्तिको भवेत्॥११३॥

(व्याख्या) स्वान्येत्यादि। स्वान्यजातिः = निजजातिः, विजातिः। **अन्यद्रव्याणामिति।** परद्रव्याणां **तद्धर्माणामिति।** किमत्रोच्यते? निजजातीयान्यद्रव्याणां तद्धर्माणाम्, विजातिपरद्रव्याणां चकारात्तद्धर्माणां च जीवे सर्वथा अभावेन नास्त्यस्ति, तेन स्यान्नास्तिरूपो द्वितीयभङ्गो भवेदित्यर्थः। एकस्मिञ्जीवे निजैकस्वरूपयोगस्थितेन निजजातीयान्यसिद्धसंसारिजीवानां नास्तितास्त्येव, सदृशयुगलाग्निकनकपृथक्पतितदाहकशक्तिभिन्नत्वाद्। अतः सर्वे जीवा निजज्ञानादिगुणैः सदृशा अपि परन्त्वेकजीवो ज्ञानादिगुणादिभिर्निजभावेन स्थितः, तद्गतगुणाः परजीवेषु न लभन्ते। सर्वे जीवाः स्वर्द्ध्या पृथग्भावेन (स्थिताः) परस्परगुणसङ्करोभावाद्। अतो जीवे परजीवाणां ज्ञानादिगुणापेक्षया स्यान्नास्तिस्वभावो भवत्येवेति। अत्र निजभावे परद्रव्यगतास्तित्वं नास्तिपदेन गृहीतम्, शेषा अस्तित्वादयः स्यात्पदेन समादृताः। तथा विजातीयान्यधर्मादिद्रव्याणामचेतनादि-गुणानामपि जीवे नास्तितास्त्येवेति। इत्याद्यनन्तधर्माणां सापेक्षतामाश्रित्य स्यादिति युक्तमेव समग्र धर्मभाषणार्थमिति द्वितीयभङ्गः॥११३॥

[१३८] अथावक्तव्यभङ्गस्वरूपगाथामाह-

[मूल] द्रव्ये च केचिद्धर्माणां वाग्गोचरनिषेधतः।
तृतीयः स्यादवक्तव्यः स्याद्धर्मापेक्षया भवेत्॥११४॥

(व्याख्या) द्रव्येत्यादि। वस्तुविषये कियद्धर्माः छद्मस्थः श्रुतिबलज्ञायकोऽपि वचनगोचरत्वेन प्रवक्तुं न शक्तोऽस्ति। अतः स्यादवक्तव्यस्तृतीय भङ्गः स्यादिति। ननु छद्मस्थैस्ते कथं वक्तुं न शक्या? इत्युच्यते समस्तज्ञेयज्ञायकास्तु जिना एव भवन्ति नान्ये इत्यर्थः। **धर्मेत्यादि।** धर्मसापेक्षार्थं स्यात्पदग्रहणमस्तीति॥११४॥

[१३९] अथ चतुर्थभङ्गप्ररूपणाय गाथामाह-

[मूल] समकालप्रवृत्तिनः अस्तिनास्तिस्वभावयोः।
वस्तुन्येकसमये स्यात्तुर्यः स्यादस्तिनास्तिकः॥११५॥

(व्याख्या) समेत्यादि। वस्तुनि = वस्त्वेकस्मिन्नेकसमयात्मके काले अस्तिनास्तिस्वभावयोः समकाल-प्रवर्तमानेन भवेत्स्यादस्तिनास्तिस्वरूपश्चतुर्थो भङ्ग इत्यन्वयः। वचनगोचरापेक्षया अत्रास्तित्वकथनेनासङ्ख्येयाः समया भवन्ति। एवं नास्तित्वकथनेनाप्यसङ्ख्येयाः स्युरतो वस्तुविषये अस्तिनास्तिस्वभावौ(योः) एकसमये एव समकालप्रवृत्तिबोधकश्चतुर्थभङ्गोऽस्तीत्याशयः॥११५॥

[१४०] अथ पञ्चमषष्ठमभङ्गनिरूपणाय गाथामाह-

[मूल] अस्तिनास्तिस्वभावाश्च वक्तव्याः सन्ति वस्तुषु।
अवक्तव्याभावशङ्काभावाय स्यादुभौ क्रमात्॥११६॥

(व्याख्या) अस्तिनास्तीत्यादि। अस्तिनास्तिस्वभावाः सर्ववस्तुषु वक्तव्या एव भवन्ति, न अवक्तव्याः। अतोऽवक्तव्याभावाभावाय क्रमादुभौ स्यादस्त्यवक्तव्य-स्यान्नास्त्यवक्तव्यौ पञ्चमषष्ठमौ स्यातामित्यर्थः। अत्र वक्तव्याभावः स्यात्पदैर्गृहीतः॥११६॥

[१४१] अथ त्रिकसंयोगिकसप्तमभङ्गप्ररूपकगाथामाह-

[मूल] द्रव्यादिश्चैकसमये समकालप्रवृत्तितः। वक्तव्यान्यास्तिनास्तिश्च भावानां सप्तमो भवेत्॥११७॥

(व्याख्या) द्रव्यादिष्वित्यादि। द्रव्यादिषु = प्रत्यैकस्मिन्द्रव्ये गुणे पर्याये वा, एकसमये = काले समकालप्रवृत्तितः = तुल्यकालप्रवर्त्तनादित्यर्थः। केषामित्याह- **वक्तव्यान्येत्यादि।** अस्तिभावा वक्तव्यावक्तव्याः तथा नास्तिभावा वक्तव्यावक्तव्या एतेषामित्यर्थः। **सप्तमो भवेदिति।** स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यरूपः स्यादिति। वक्तव्यश्च अन्यश्च वक्तव्यान्येति। अस्तिश्च नास्तिश्च अस्तिनास्तीति व्यक्तव्यान्यश्चासौ (न्यश्चाम्) अस्तिनास्ती च अवक्तव्यान्यास्तिनास्तिरिति समासोऽस्तीति।

[१४२] अत्रास्ति न नास्त्यस्ति, नास्ति नास्त्यस्ति, वक्तव्यो नावक्तव्योऽस्ति, अवक्तव्यो न वक्तव्योऽस्ति अतोऽत्र भङ्गे स्यात्पदेन गृहीतः। **(शं)** अत्र अस्त्यादिपदेन अस्तिनास्त्यवक्तव्यधर्माणां नित्यानित्याद्यने-कान्तसङग्रहः करोति। कथमनेकान्तसङ्ग्रह इत्युच्यते, **(स)** वस्तुनि अस्तिधर्मो नित्यानित्यैकानेकभेदाभेदाद्यने-कान्तसङ्ग्रहकारकत्वादिति एवं नास्त्यवक्तव्यधर्मावपि बोध्याविति॥११७॥

[१४३] एतदेवाह-

[मूल] अत्रास्तित्वेऽस्ति धर्मोऽस्ति नास्तित्वे नास्तिधर्मकः।
युगपद्युगभावेनावक्तव्यं स्यादवाक्पदम्॥११८॥

(व्याख्या) स्पष्टैव। अनेनानेकान्तसङ्ग्राहकः स्यादिति॥११८॥

[सकलादेश-विकलादेश प्ररूपणा]

[१४४] अथ सकलादेशविकलादेशौ प्ररूपणाय गाथामाह–

[मूल] अस्त्यादयस्त्रयो भङ्गाः सर्वादेशा भवन्ति च।
चत्वारो विकलादेशाः पूर्णैकदेशभावतः॥११९॥

(व्याख्या) अस्तीति। स्यादस्ति-स्यान्नास्ति-स्यादवक्तव्यरूपास्त्रयो भङ्गाः। **सर्वेत्यादि।** सकलादेशा भवन्तीति। **चत्वार इत्यादि।** स्यादस्तिनास्ति-स्यादस्त्यवक्तव्य-स्यान्नास्त्यवक्तव्य-स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यरूपाश्चत्वारो भङ्गा विकलादेशाः सन्तीति। ननु केन हेतुना एते भङ्गाः सकलादेशाः विकलादेशाश्च भवन्तीत्युच्यते, एतदेवाह- **पूर्ण इत्यादि।** वस्तुनि सम्पूर्णभावग्राहकत्वात्सकलादेशा वस्तुनो एकदेशग्राहकत्वाद्विकलादेशाः सन्तीति॥११९॥

[१४५] अथान्यपा(प)दैरपि सप्तभङ्गीनिरूपणाय गाथामाह-

[मूल] एवं द्रव्येषु नित्यैकादिषु सन्त्यद्रिभङ्गिकाः। सामान्येतरधर्माणां गुणानां च भवेदिमाः॥१२०॥

(व्याख्या) एवमित्यादि। एवम् = अमुना प्रकारेण द्रव्येषु नित्यसप्तभङ्गी, अनित्यसप्तभङ्गी एकानेकसप्तभङ्गी, भेदाभेदसप्तभङ्गिकादयो भवन्तीति। तथा सामान्यविशेषधर्माणां गुणानां चकारेण पर्यायाणां इमाः सप्तभङ्गिका भवेयुरित्यर्थः॥१२०॥

[१४६] अथ गुणादिषु अनन्तानन्तसप्तभङ्गीप्ररूपणाय गाथामाह–

[मूल] ज्ञानत्वेन ज्ञानमस्ति नास्तित्वो[1]ऽपि निजेतरैः।
इत्थं पञ्चास्तिकायेषु भवन्ति सप्तभङ्गिकाः॥१२१॥

(व्याख्या) ज्ञानत्वेनेत्यादि। ज्ञानं ज्ञानत्वेनास्तिरूपोऽस्ति। तथा नास्तित्वभावोऽप्यस्ति। **निजेतरैरिति।** निजाश्च इतरे च निजेतरास्तैः निजेतरैः निजादपरैरिति। स्वजातीयदर्शनादिधर्मैर्विजातीयाचेतनादिधर्मैरिति। **इत्थमिति।** एवं पञ्चास्तिकायेषु प्रत्यस्तिकायमनन्तानन्तसप्तभङ्ग्यो भवन्तीति॥१२१॥

[अस्तित्वनास्तित्वस्वभावाभावे दोषः]

[१४७] नन्वस्तित्वनास्तित्वाभावेन द्रव्यादिषु किं स्याद् ? अत आह-

[मूल] अस्त्यभावे गुणाभावस्तेन स्याद्वस्तुशून्यता।
नास्त्यभावेऽन्यभावेन मिश्रः स्यात्पारिणामिकैः॥१२२॥

(व्याख्या) अस्त्यभाव इत्यादि। यदा अस्तीत्येतदभावो मन्यते तदा गुणाभावः स्यात्तेन **वस्तुशून्यतेति।** पदार्थे शून्यतापत्तिर्दोषो भविष्यति। **नास्तीत्यादि।** यदा नास्त्यभावो मन्यते तदा कदापि = अन्यभावेन पर-भावेन परिणामकः स्यात्तदा सङ्करदोषाः समेष्यन्तीत्यर्थः॥१२२॥

[१४८] अथ पुनरेतयोरभावे दोषमाह-

[मूल] पुनर्व्यञ्जकयोगेन सत्तासत्ता स्फुरेत्तथा। पदार्था नियतापत्तिर्दोषो भूयादतोचितौ॥१२३॥

(व्याख्या) पुनरित्यादि। व्यञ्जकशब्देन प्रगटताहेतुस्तद्योगेन सत्तेनेति सद्धर्मः स्फुरति जलसंयोगान्नूतनमृत्तिकोद्भवघटस्थितगन्धसत्तावदिति। असदविद्यमानधर्मो वस्तुविषयेन स्फुरति। नास्त्यभावेन तु अविद्यमानोऽपि स्फुरति तदा पदार्थे शून्यतापत्तिरिति पदार्थानामनियामकः स्यादिति एष दोषोऽस्ति। अतोऽस्तिनास्ती सर्वपदार्थेषु वक्तुमुचितौ स्त इति॥१२३॥

---

१. यहां पर **नास्तित्वो** की जगह **नास्तित्वम्** पाठ उचित लगता है, किंतु ऐसा करने पर छंदोभंग होता है।

[भेदाभेदस्वभावविचारः]

[१४९] अथ भेदाभेदस्वभावविचारगाथामाह-

[मूल] स्वभावस्वकार्यगुरुलघुपर्यायभेदतः। भेदस्वभावोऽवस्थानाधारभूतोऽस्त्यभेदकः॥१२४॥

(व्याख्या) सर्वेत्यादि। ज्ञानदर्शनचारित्राश्च(णि च) क्रमाज्जीवद्रव्ये ज्ञानदर्शनस्थैर्यादिगुणानां रमणरूप-कार्यकरणशीलः स्वकार्यभेदः। तथा पुद्गले रूपवर्णगन्धरसस्पर्शादिकभिन्नभिन्नकार्यकरणशीलः स्वकार्यभेद इत्यादि। तथास्तिनास्तिनित्यानित्यैकानेकादीनां क्रमात्सदसदविनाशिपरावृत्तिपिण्डप्रदेशादिरूपः स्वभावभेदः। तथागुरुलघु-पर्यायाः प्रदेशैः गुणाविभागभावेन पृथग् पृथक् स्थितिरूपो गुरुलघुपर्यायभेदः। वृद्धिहानिरूप-परिणमनेन तुल्याभावा-दिति। एभिस्त्रिभिर्भेदैर्भेदस्वभावोऽस्ति। तथा समग्रवस्तुगतस्वगुणावस्थानामाधाररूपोऽभेदस्वभावोऽस्ति॥१२४॥

[भेदाभेदस्वभावाभावे दोषः]

[१५०] अथ द्रव्यादिषु भेदाभेदस्वभावाभावे दोषमाह–

[मूल] भेदाभावे गुणानां च द्रव्येषु सङ्करो भवेत्। अभेदाभावयोगेन स्थानविध्वंसकस्तथा॥१२५॥

(व्याख्या) भेदाभाव इत्यादि। द्रव्येषु भेदाभावेन सङ्करदोषः स्यात्तदा कथं कार्यभेदो भविष्यति? अतो द्रव्यादिषु कार्यभेदार्थं भेदस्वभावो वक्तुमुचित इति। तेन चेतनालक्षणो जीवः तद्रहितोऽजीवः, अजीवान्तर्गतो गतिसहकारकरणशीलो धर्मः, स्थितिगुणाधारोऽधर्मः, अवगाहदानगुणान्वितं नभः, रूपवर्ण-स्कन्धादिपरिणमन-कारकः पुद्गलः। एते भिन्नद्रव्यस्वभावा भवन्ति। ननु सर्वेऽपि द्रव्या जीवादयो निजनिजभावेन सदृशाः सन्ति कथं भिन्नस्वभावोऽस्ति? इत्युच्यते, सर्वजीवेषु उत्पादव्ययौ भिन्नस्वभावौ स्तः, न तु सदृशस्वभावाः सर्वेषु भवन्ति। तथा अगुरूलघुपर्याया अपि वृद्धिहानिस्वभावेन परिणमन्ति। अतः सर्वजीवेषु सर्वेगुणाः स्वस्वद्रव्येषु जीवेषु वा भिन्नभावपरिणमनरूपत्वाद्भेदस्वभावोऽस्त्येव, काञ्चने गुरुत्वसदृशवर्णादिकाश्रितमूलधर्मवदिति। तथा तन्मया-वस्थानाधारभूताद्यभेदस्वभावोऽस्तीति। यदि भेदस्वभावो न स्यात् तदा गुणपर्यायाणां सङ्करदोषः स्यात्तेन कस्यैते गुणाः को वा गुणी वा कस्यैते पर्यायाः? इत्यादि परविभागो न स्यात्तथा कारणकार्यधर्मयोः पृथग्भावो न स्यादतो द्रव्यादीनां भेदस्वभावो वक्तव्य इति। **अभेदेत्यादि।** तथा अभेदाभावयोगेन स्थानविध्वंसः स्यात् कुत्र के गुणास्तिष्ठन्तीति? अतोऽभेदस्वभावोऽपि वक्तव्य एवेति॥ इति भेदाभेदस्वभावः॥१२५॥

[भव्याभव्यस्वभावविचारः]

[१५१] अथ भव्याभव्यस्वभावगाथामाह–

[मूल] पारिणामिकभावत्वे ये पर्यायोत्तरोत्तराः। तेषां परिणमत्वेन[१] भवेद्भव्यस्वभावकः॥१२६॥

(व्याख्या) परिणामीत्यादि। जीवाजीवौ पारिणामकौ स्तः। जीवपुद्गलौ पारणामिकभावेन समयं समयं प्रत्यभिनवपरिणामपरिणमत्वेन पूर्वपर्यायव्ययमुत्तरपर्यायोत्पादनं द्रव्यपरणतिरस्ति। तन्मूलकारणमेव भव्यस्वभावोऽस्तीति। इह तु भावे द्रव्यं भवनमिति। गुणाः पर्यायाश्च भवनसमवस्थानमात्रका एवोत्थितासीनोत्कुटुक-शयितपुरुषवत्तदेव वृत्त्यन्तरव्यक्तिरूपेणोपदिश्यते। ***जायतेऽस्ति विपरिणमते वर्द्धतेऽ-पक्षीयते विनश्यतीति***

---

१. **पर्यायोत्तरोत्तराः। तेषां परिणमत्वेन-** यह पाठ व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध लगता है।

(निरुक्त) पिण्डातिरिक्तवृत्यन्तरावस्थाप्रकाशनायां तु जायत इत्युच्यते। सव्यापारैव भवनवृत्तिः अस्तीत्यनेन निर्व्यापारात्मसत्ताख्यायते। भवनवृत्तिः सदास्ति नास्ति शब्दस्य निपातत्वात्। विपरिणमत इत्यनेनापि तिरोभूतात्मरूपस्यानुच्छिन्नतथावृत्तिकस्य रूपान्तरेण भवनम्, यथा क्षीरं दधिभावेन विपरिणमते विकारान्तरवृत्या भवनमवतिष्ठते। वृत्त्यन्तरव्यक्तिहेतुभाववृत्तिर्वा विपरिणामः। वर्धते इत्यनेन तु स एव परिणामः उपचयरूपप्रवर्तने, यथाङ्कुरो वर्धते। उपचयवत्परिणामरूपेण भवनवृत्तिर्व्यज्यते। अपक्षीयत इत्यनेन तु तस्यैव परिणाम-स्यापचयवृत्तिराख्यायते। दुर्बलीभवत्पुरुषवदपचयरूपभवनवृत्त्यन्तरव्यक्तिरुच्यते। विनश्यतीत्यनेनाविर्भूत-भवनवृत्तेः तिरोभवनमुच्यते, यथा विनष्टो घटः। प्रतिविशिष्टसमवस्थानात्मिका भवनवृत्तिस्तिरोभूता, न त्वभावतैव जाता, कपालाद्युत्तरभवनवृत्यन्तरक्रमावच्छिन्नरूपत्वादित्येवमादिभिराकारैः द्रव्याण्येव भवनलक्षणान्युप-दिश्यन्ते ॥१२६॥

[१५२] अथाभव्यस्वभावगाथामाह-

[मूल] द्रव्येष्वस्त्यादयो मूलावस्थानामविमुक्तितः।
कालत्रिके च तद्रूपः स्यादभव्यस्वभावकः॥१२७॥

(व्याख्या) द्रव्येष्वित्यादि। धर्मादिद्रव्येषु अस्तित्ववस्तुत्वप्रमेयत्वागुरुलघुत्वादयो धर्माः कालत्रिके मूलावस्थानामपरित्यागात्तद्रूपोऽभव्यस्वभावः स्यादित्यर्थः॥१२७॥

[भव्याभव्यस्वभावाभावे दोषः]

[१५३] अथ भव्याभव्याभावे दोषमाह-

[मूल] भव्याभावे विशेषाणां द्रव्ये स्यादप्रवृत्तिकः।
द्रव्यान्तरवियोगाय वक्तुं योग्योऽस्त्यभव्यकः॥१२८॥

(व्याख्या) भव्येत्यादि। भव्यत्वाभावे द्रव्ये विशेषाणां = विशेषगुणानामप्रवृत्तिकः स्यात्तेन कार्यकारणयोरभावस्ततो द्रव्याणां वैयर्थ्यापत्तिदोषो भवेदिति। अतो द्रव्येषु भव्यस्वभावोऽवश्यमेव वक्तव्य इति। **द्रव्यान्तरेत्यादि।** अभव्यस्वभावाभावेन द्रव्यान्तरापत्तिदोषो भवेदतस्तन्निवारणाय अभव्यरूपोऽप्युचित एवास्तीति॥ इति भव्याभव्यस्वभावः॥१२८॥

[वक्तव्यावक्तव्यस्वभावविचारः]

[१५४] अथ वक्तव्यावक्तव्यस्वरूपविचारगाथामाह-

[मूल] वाग्गोचरापन्नधर्मास्ते वक्तव्याः भवन्ति च।
तत्प्रतिपक्षिकाः भावा अवक्तव्यास्तथैव स्युः॥१२९॥

(व्याख्या) वाग्गोचरेत्यादि। ये सर्वज्ञादीनामभिलाप्यभावेन = वचनगोचरत्वेन वस्तुगतयथार्थभाव-समादरणमाचरन्ति ते वक्तव्या भवन्तीत्यर्थः। **तत्प्रतिपक्षिकेत्यादि।** वचनगोचरानागता ये धर्मास्तेऽवक्तव्याः तथैव = प्रतिपक्षरूपेण स्युरिति। अत्र वक्तव्यधर्मापेक्षया अवक्तव्या अनन्तगुणा भवन्ति। वक्तव्यभावेन समग्रमवक्तव्यभावं जानन्ति। तत्र सङ्ख्येया वर्णाः ततः संयोगाक्षरा असङ्ख्येयास्तद्गोचरा भावा भावश्रुतगम्या अनन्तगुणाः कैवल्यं विमुच्य परोक्षप्रत्यक्षज्ञानेन पुद्गलधर्मस्य प्रत्यक्षज्ञायका अपि परमाण्वैकगतसमग्रपर्यायं न जानन्ति, यदि जानन्ति

कियत्पर्यायम्, तेऽप्यसङ्ख्येयसमयेन, केवलिनस्त्वेकसमयेन तद्गतसमग्रपर्यायान् प्रत्यक्षेण जानन्ति। अतो वक्तव्येनानन्तगुणात्मकमवक्तव्यं जानन्ति। उक्तं च-

अभिलप्पा जे भावा अणंतभागो अ अणभिलप्पाणं। अभिलप्पस्साणंतो भागो सुए निबद्धो अ॥ इति॥( )॥१२९॥

[वक्तव्यावक्तव्यस्वभावाभावे दोषः]

[१५५] अथ वक्तव्यावक्तव्याभावे दोषमाह–

[मूल] वक्तव्याभावयोगेन सिद्धान्तविरहो भवेत्। अवक्तव्यवियोगेन पर्यायविगमस्तदा॥१३०॥

(व्याख्या) वक्तव्येत्यादि। वक्तव्यस्वभावाभावेन। **सिद्धान्तेत्यादि।** जिनागमाग्रहणत्वापत्तिर्दोषः स्यात्तेन निर्ग्रन्थाभ्यासोपदेशपरिणमनादयो वैयर्थ्यभावमापद्यन्ते, अतो वक्तव्यमवश्यं वक्तुं मुचितोऽ(मस्ति?)स्तीति। **अवक्तव्येत्यादि।** अवक्तव्याभावेन। **पर्यायेत्यादि।** तदा भूतागामिपर्यायाणां कारणतायोग्यतारूपाणामभावः समग्रकार्याणां निराधारतापत्तिश्च भवेदित्यर्थः॥ इति वक्तव्यावक्तव्यस्वभावः॥१३०॥

[परमस्वभावविचारः]

[१५६] अथ परमस्वभावविचारगाथामाह-

[मूल] ये समग्रपदार्थानां भवन्ति परमेतरे। गुणास्तेषां वृत्तिहेतुः स्यात्परमस्वभावकः॥१३१॥

(व्याख्या) ये समग्रेत्यादि। समग्रपदार्थानाम् = सर्वेषां पदार्थानाम् = द्रव्याणां ये **परमेतरेति।** परमाश्च इतरे च परमेतरेस्ते परमेतरे = विशेषसाधारणगुणास्तत्र गतिस्थित्यवगाहसहकारित्वपूरणगलनचेतनादयः परमगुणाः। तथा ***नित्याविनाशि-अखण्डादयः*** साधारणगुणास्तेषां तदनुयायी यः प्रवृत्तिहेतुकः स परमस्वभावः स्यादिति। इति परमस्वभावः॥१३१॥

[अन्ये स्वभावाः]

[१५७] इत्यादयः सामान्यस्वभावाः तथान्येऽपि स्वभावा भवन्ति तद्गाथामाह–

[मूल] तथैवास्तित्वनास्तित्वकर्तृभोक्तृगुणत्वकः[1]। प्रदेशत्वासर्वगतेत्याद्यनेका[2] भवन्ति च॥१३२॥

(व्याख्या) तथानेकान्तजयपताकायामस्तित्व-नास्तित्व-कर्तृत्व-भोक्तृत्व-गुणवत्त्व-प्रदेशत्व-असर्वगतत्वादयः स्वभावाः सन्तीति॥१३२॥

[स्वभावानाम् अनभिलाप्यत्वम्]

[१५८] तथा पुनरप्याह-

[मूल] द्रव्यं प्रति सर्वधर्मा अनन्तधर्मवत्त्वतः।
न शक्याः सन्ति गदितुं छद्मस्थज्ञायकोऽपि हि३(ज्ञायकैरपि)॥१३३॥

---

१. यहां पर **गुणत्वकाः** पाठ अधिक संगत प्रतीत होता है।

२. यहां पर**ऽसर्वगतत्वाद्या नैकाः** पाठ अधिक संगत प्रतीत होता है।

३. यहां पर **ज्ञायकोऽपि हि** की जगह **ज्ञायकैरपि** पाठ अधिक संगत प्रतीत होता है।

(व्याख्या) द्रव्यं प्रतीत्यादि। हि = अस्माद्धेतोः छद्मस्थमुनयः(मुनिभिः) ज्ञायका(कैः) अपि, अनन्त-धर्मवत्त्वतो द्रव्यं प्रति सर्वधर्मा गदितुं = प्रवक्तुं न शक्या भवन्ति। सर्वज्ञायकास्तु सर्वज्ञा एव बभूवुः। अतः प्रवचनज्ञैः श्रुतिबलेन यथासम्भवेन प्ररूपणमायोजनीयं ज्ञानादिगुणप्रवृत्तिरूपक्रियावत्त्वम्। ततः पञ्चास्तिकाया अपि अर्थक्रियाकरणत्वेन क्रियावत्त्वं(न्तः), समस्तपर्यायोपयोगा अपि जीवस्वभावा एव भवन्ति। अतो जीवस्य पर्यायोपयोगत्वप्रदेशाष्टकनिश्चलत्वादिप्रकाराः सर्वे भूयांसः परिणामिका भवन्तीति भावः। तथा धर्माधर्माम्बराणां प्रदेशा अनाद्यनन्तकालावस्थिताचलभावेन तिष्ठन्ति। पुद्गलस्तु सदा चलभावेन तिष्ठति। पुद्गलपरमाणुः पुद्गल-स्कन्धश्चैकस्मिन्क्षेत्रे सङ्ख्येयासङ्ख्येयकालमानमचलस्वरूपेणोत्कृष्टस्थितिर्भवति, ततोऽवश्यमेव प्रचलति। तथा जीवोऽपि भवस्थितः सकर्मा क्षेत्रात्क्षेत्रान्तरगमनयोगेन भवान्तरगतिरूपेण वा व्रजति। स एव जीवो दर्शनज्ञानचारित्रगुणोद्भवेन परभावभोक्तृत्वं विमुञ्चति तदात्मस्वरूपनिर्धाररूपादिभासनस्वरूपादिकं परिणमति। एकत्व-स्वधर्मकर्तृत्व-स्वधर्मभोक्तृत्वादिभावमुपार्जति। निरावरण-निस्सङ्ग-निरामय-निर्द्वन्द्व-निःकलङ्कविमलतेजः -स्वानन्तज्ञानानन्तदर्शनानन्तचारित्ररूपि-अव्याबाधपरमानन्दमयाः सिद्धात्मानः सिद्धक्षेत्रस्थिताः साद्यनन्त-काल-स्थिताः सर्वप्रदेशस्थिरा भवन्ति।

[जीवस्याष्टप्रदेशानां स्थिरत्वम्]

भवस्थजीवस्य त्वष्टप्रदेशाः स्थिराः सन्ति। तदुक्तमाचाराङ्गटीकायां लोकविजयाध्ययने प्रथमोद्देशके-

तदनेन पञ्चदशविधेनापि योगेनात्मा अष्टौ प्रदेशान् विहाय तप्तभाजनोदकवदुद्वर्तमानः सर्वैरेवात्म-प्रदेशैरात्मप्रदेशावष्टब्धाकाशस्थकार्मणशरीरयोग्यं कर्मदलिकं यद्बध्नाति तत्प्रयोगकर्म इत्युच्यते इत्यनेना-ष्टप्रदेशानां कर्मबन्धाभावो भवतीति। ननु यद्येवं तदा जीवस्य अष्टप्रदेशैर्निरावरणस्वभावेन लोकालोकस्वरूप-स्वज्ञायकता शक्तिः कथं न? इत्युच्यते, जीवस्य गुणप्रवृत्तिः समग्रप्रदेशैकमिश्रेण भवति। अष्टप्रदेशैर्निरावरणा-न्वितोऽप्यतिसूक्ष्मस्वभावेन लोकालोकं न जानाति, दाहकप्रकाशकगुणान्वितातिसूक्ष्माग्निकण-कदाहकाभाववदिति। ननु जीवोऽष्टप्रदेशैर्निरावरणगुणं कथमादृणोति? इत्युच्यते, ये प्रविचलस्पन्दनादिगुणान्वितास्ते एव कर्म बध्नन्ति, अन्ये न बध्नन्ति, प्रचलाद्यभावात्। तदुक्तं पञ्चमाङ्गे-

जे एअइ वेअइ चलेइ फंदेइ घट्टेइ

इत्याद्यनुसारेण जीवस्याष्टप्रदेशा अवस्थिताचलरूपेण तिष्ठन्तीति। यदि शेषा अपि प्रदेशाः कर्मदलकं विमुच्य विमलनिरावरणादिगुणमादृणोति तदा लोकालोकप्रकाशं जीवः करोति। यद्यप्यष्टप्रदेशा निरावरणाः सन्ति, अन्ये प्रदेशा अपि अक्षरानन्तभागप्रमितज्ञानेनोद्घाटिता भवन्ति। प्रदेशस्था गुणाः स्वप्रदेशं विमुच्यान्यप्रदेशं प्रति न गच्छन्ति। इत्थमनादिपारणामिकभावा द्रव्ये भवन्ति। धर्मादित्रयाणां सप्रदेशतादयो धर्माः सदृशा भवन्ति। इति सामान्यस्वभावाधिकारः॥१३३॥

[विशेषस्वभावविचारः]

[१५९] अथ भिन्नभिन्नपर्यायप्रवर्तनस्वकार्यकरणसहकारभूतपर्यायानुगतपरिणामी विशेषस्वभावविचारवेद-गाथामाह-

[मूल] पर्यायपरिणामाश्च स्वप्रवृत्तिनिमित्तकाः। पारिणामिककर्तृत्वज्ञायकग्राहकास्तथा॥१३४॥

[मूल] भोक्तृत्वरक्षणाधाराधेयताव्याप्यव्यापकाः। विभुकरणता जन्यजनकः कारकः प्रभुः॥१३५॥

[मूल] स्वकार्यत्वसप्रदेशभावकाभावका अपि। गतिस्थित्यवगाहश्चागुरुलघ्वचलाक्रियः॥१३६॥

[मूल] सक्रियाखण्डनिस्सङ्गा इत्यनेके भवन्ति च। निजकार्योपकरणसुप्रवृत्तिनिमित्तकाः॥१३७॥[१]

(चतुर्भिः कुलकम्)

(व्याख्या) एतद्व्याख्या हारिभद्रीयवार्त्तिकसमुच्चयात्किञ्चिल्लिख्यते॥ **पर्यायेत्यादि।** भिन्नभिन्न-पर्यायाणां कार्यकारणप्रवृत्तेः सहकारभूता ये पर्यायास्तेषां परिणमनरूपास्ते विशेषस्वभावाः सन्ति। तत्र प्रथमं पारिणामिकभावार्थमाह- **पारिणामिकेति।** समस्तद्रव्येषु निजगुणैः समयं प्रति कार्यकरणप्रवृत्तिः(त्तयः?) भिन्नभिन्न-परिणामेन परिणमन्ति। तेषां सर्वगुणाः करणिकप्रवृत्त्या पारिणामिकस्वभावोऽस्ति। तथा कर्तृत्वस्वभावो जीवस्यैव भवति, नान्येषाम्। ***अप्पा कत्ता*** इत्युत्तराध्ययनवचनात्। (उ.सू.२०.३७) तथा ज्ञायकत्वशक्तिरपि चेतनस्यैव भवति, जीवगतज्ञानलक्षणधर्मत्वादिति। ***गिण्हइ काइएणं*** इत्यावश्यकनिर्युक्तिवचनाच्च (आ.नि.७)। तथा ग्रहणव्यवहारेण ग्राहकशक्तिरप्यस्ति। एवं क्रियाप्रवृत्तियोगेन सक्रियस्वभावोऽप्यस्ति। ***जो कुणई सो भुंजइ य*** इति वचनाद्भोक्तृत्वस्वभावोऽपि जीवस्यैव भवति।

[१६०] तथा रक्षणत्व-व्याप्यव्यापकत्व-आधाराधेयत्व-जन्यजनकत्वानि एते चत्वारः स्वभावास्तत्त्वार्थ-वृत्तितो ज्ञेयाः। तथागुरुलघुत्व-विभुत्व-कारणत्व-कार्यत्व-कारकत्वम् एते पञ्च स्वभावा विशेषावश्यकाद्बोद्धव्या इति। भावुकाभावुकस्वभावौ तु हरिभद्रसूरिकृतभावुक-प्रकरणतो(?) ज्ञेयौ।

तथा केचित्स्वभावा जैनतर्क-अनेकान्तजयपताका-सन्मतिप्रमुखग्रन्थेषु बोद्धव्याः। तथोर्ध्वप्रचय-तिर्यक्प्रचय-ओघशक्ति-समुचितशक्तयस्तु सन्मत्तिवृत्तितो ज्ञेयाः। तथा धर्मे अचेतनारूप्यक्रियगतिसहायादयोऽनन्तगुणाः सन्ति। तथाधर्मेऽरूप्यचेतनाक्रियस्थितिसहायादयो अनन्तागुणाः सन्ति। तथा खेऽरूप्यचेतनाक्रियावगाहनादयोऽनन्ता गुणा भवन्ति। पुद्गले रूप्यचेतनसक्रियपूरणगलनवर्णगन्धरसस्पर्शादयोऽनन्तगुणा भवन्ति। जीवे दर्शनज्ञानचारित्र-वीर्याव्या-बाधागुरुलघ्वद(?)नवगाहादयोऽनन्तगुणा भवन्ति। एतद्व्याख्या तु पूर्वोक्तैवेत्येवं द्रव्येष्वनन्तगुणा ज्ञातव्याः॥ इति स्वभावद्वारम्॥१३४॥१३५॥१३६॥१३७॥

[पञ्चमम् अस्तिकायद्वारम्]

[१६१] अथास्तिकायद्वारगाथामाह-

[मूल] लोके पञ्चास्तिकायास्ति२ प्रदेशानां समुच्चयात्।
कालः प्रदेशाभावेन अस्त्यभावो निगद्यते॥१३८॥

---

१. **सुनित्यैकसद्वक्तव्यप्रतिपक्षैर्गजोन्मिताः। भवन्ति सर्वद्रव्येषु वच्म्यहं ताञ्जिनागमात्॥१३४॥**
धर्माधर्माम्बरस्कन्धो जीवोऽसङ्ख्यप्रदेशतः। पुद्गलस्तत्त्वभावेन नित्यान्ये स्युरनित्यकाः॥१३५॥
धर्माधर्माभ्रैकरूपः समयः पुद्गलस्तथा। लोके जीवस्त्वनेकश्च परे नेका भवन्ति हि॥१३६॥
द्रव्यक्षेत्रकालभावैः सत्पदोऽस्ति निजाश्रितैः। परद्रव्यादिभावेन द्रव्यऽसदिति गद्यते॥१३७॥
अनन्तगुणपर्यायाः षड्द्रव्येषु भवन्ति च। यथाक्रमेण वक्तव्यो वाचाऽवक्तव्यको भवेत्॥१३८॥
ये पांच गाथाएं **ला.** प्रत में हैं। **सं.** प्रत में नहीं है।

२. यहां पर **योऽस्ति अथवा याः सन्ति** पाठ अधिक संगत प्रतीत होता है।

(व्याख्या) लोकेत्यादि। लोके चतुर्दशरज्ज्वात्मके पञ्चानामपि धर्मादीनां जिनागमे अस्तिकायसञ्ज्ञास्ति। ये प्रदेशव्यूहपिण्डत्वादस्तिकाया वदन्ति। कालस्य त्वस्तिकायता नास्ति, प्रदेशव्यूहाभावादिति। एतद्व्याख्या पूर्वगतैव ज्ञातव्येति॥ इत्यस्तिकायद्वारम्॥१३८॥

[षष्ठं नयद्वारम्, चतुर्विधनिक्षेपविचारः]

[१६२] अथ नयद्वारप्ररूपणाय प्रथमं चतुर्विधनिक्षेपविचारगाथामाह-

[मूल] सर्वद्रव्येषु विज्ञेयाः सुनिक्षेपाश्चतुर्विधाः। स्युर्नामस्थापनाद्रव्यभावभेदैर्जघन्यतः॥१३९॥

(व्याख्या) सर्वेत्यादि। समग्रद्रव्येषु जघन्यतो निक्षेपाश्चतुर्विधाः = चत्वारः स्युः। तथाहि- नामनिक्षेपः स्थापनानिक्षेपो द्रव्यनिक्षेपो भावनिक्षेप इति। उक्तं चानुयोगद्वारे-

जत्थ य जं जाणिज्जा निक्खेवं निक्खवे निरवसेसं। जत्थ य नो जाणिज्जा चउक्कयं निक्खिवे तत्थ॥ इति (अ.द्वा.सू.१) वचनाच्चत्वारो निक्षेपास्त्ववश्यमेव करणीया इति॥१३९॥

[नामस्थापनानिक्षेपयोः द्वौ द्वौ भेदौ]

[१६३] अथ नामादिनिक्षेपाणामुत्तरद्वारगाथामाह-

[मूल] सङ्केतसहजाभ्यां च नामस्तु द्विविधः स्मृतः[१]।
सहजारोपजाभ्यां च स्थापना द्विविधा भवेत्॥१४०॥

(व्याख्या) सङ्केतेत्यादि। तत्र नामनिक्षेपो द्विविधोऽस्ति। तथाहि- सङ्केतः सहजश्चेति। तथा स्थापना द्विधा- सहजा आरोपजा चेति भवेदिति॥१४०॥

[द्रव्यनिक्षेपविचारः]

[१६४] अथ द्रव्यनिक्षेपविचाररूपगाथायुगलमाह-

[मूल] आगमनोआगमाभ्यां द्रव्यनिक्षेपको द्विधा। आगमतस्तदर्थज्ञोऽनुपयुक्तो भवेद्यदा॥१४१॥

[मूल] ज्ञभव्यव्यतिरिक्तैः स्याद् द्रव्यो नोआगमस्त्रिधा।
त्रयो नामादिनिक्षेपाः सन्ति कारणरूपकाः॥१४२॥

(व्याख्या)आगमेत्यादि। द्रव्यनिक्षेपो द्विविधः- आगमतो नोआगमतश्चेति। तत्रागमतस्तदर्थज्ञाता अनुपयुक्तः। नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरतद्व्यतिरिक्तभेदेन त्रिविधो भवति। एते नामादित्रयो निक्षेपाः कारणरूपा भवन्तीत्यर्थः॥१४२॥

[भावनिक्षेपविचारः]

[१६५] अथ भावनिक्षेपविचारसूचकगाथामाह-

[मूल] भावनिक्षेपको भावकार्यरूपोऽस्ति सर्वदा। कार्यप्रवृत्त्यभावेन निष्फलास्ते भवन्ति च॥१४३॥

(व्याख्या) तत्र आगम-नोआगमाभ्यां भावनिक्षेपको द्विविधो भवति। तत्रागमतः स्वयं ज्ञायकोऽपि तदुपयोगप्रवृत्तिरूपो आगमतो भावनिक्षेपः। नोआगमतो भावनिक्षेपस्तद्भावप्रवर्तनरूप इति।

---

१. यहां पर **नामाऽत्र द्विविधं स्मृतम्** पाठ अधिक संगत प्रतीत होता है।

[नामादयो निक्षेपा भावाभावे निष्फलाः]

अत्र नामादयो निक्षेपाः कारणरूपा भावाभावे कार्यप्रवृत्त्यभावेन निष्फला भवन्ति। तदुक्तमाचाराङ्गटीकायां लोकविजयाध्ययने-

फलमेव गुणः फलगुणः। फलं च क्रियायां भवति। तस्याश्च क्रियायाः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररहिताया ऐहिकामुष्मिकार्थं प्रवृत्ताया अनात्यन्तिकानैकान्तिको भवत्फलं गुणोऽप्यगुणो भवन्ति। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रक्रियायास्त्वैकान्तिकानाबाधसुखाख्यसिद्धिगुणो व्याप्यते। एतदुक्तं भवति-सम्यग्दर्शनादिकैव क्रिया सिद्धिफलगुणेन फलवत्यपरा तु सांसारिकसुखफलाध्यास एव फलाध्यारोपान्निष्फलेत्यर्थः॥()

इति वचनाद्रत्नत्रयपरिणमनं विना क्रियाया भवसुखः स्यादतः क्रिया निष्फलेत्याशयः। अतो भावनिक्षेपं विमुच्य नामादित्रयो निक्षेपा निष्फला भवन्तीत्याशयः॥१४३॥

[नयपदार्थविचारः]

[१६६] अथ नयपदार्थविचारगाथामाह-

[मूल] भावानां बोधभावेन सन्ति ज्ञानांशका नयाः। धर्मानन्तात्मभावेऽस्य धर्मैकस्थापनं नयः॥१४४॥

(व्याख्या) भावानाम् = पदार्थानां बोधभावेन नया ज्ञानांशकाः सन्ति = भवन्ति। अथ नयलक्षणमाह- **धर्मेत्यादि।** अनन्तधर्मात्मकवस्तुन्येकधर्मस्योन्नयनं = ज्ञानं नयः। तथा रत्नाकरे-

नीयते येन श्रुताख्यप्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांशस्तदितरांशौदासीन्यतः स प्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः॥ स्वाभिप्रेतादंशादितरांशापलापी पुनर्नयाभासः॥१४४॥

[नयभेदाः]

[१६७] अथ नयभेदमाह-

[मूल] तत्र व्याससमासाभ्यां नयो युगविधो भवेत्।
व्यासतोऽनेकभेदः स्याद् युगभेदः समासतः॥१४५॥

(व्याख्या) तत्रेत्यादि। व्यासेति। विस्तृतभावतः = भेदानुभेदतः। **समासत इति।** सङ्क्षेपतः। शेषं स्पष्टम्॥१४५॥

[द्रव्यार्थिकनयविचारः]

[१६८] अथ समासेन युगभेदो नयस्यास्ति द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति। तत्र द्रव्यार्थिकविचारगाथामाह-

[मूल] कालत्रिकैकैव[१] द्रव्यः प्रयोजनसमागते।
द्रव्यार्थिकोऽस्ति पर्यायोत्पादव्ययध्रुवान्वितः॥१४६॥

---

१. यहां पर **कालत्रिक एकद्रव्यं** पाठ अधिक संगत प्रतीत होता है।

कालत्रिके एकैवेति सञ्ज्ञा येनार्थेन स्याद्यस्य द्रव्यस्य स द्रव्यार्थिक नयो भवतीति। एतद्भेदास्तु पूर्वोक्ता एव भवन्तीति। द्रवति द्रोष्यति अदुद्रुवत् तांस्तान्पर्यायानिति द्रव्यं तदेवार्थः सोऽस्ति यस्य विषयत्वेन स द्रव्यार्थिकः। **पर्यायेति**। उत्पादविनाशौ प्राप्नोतीति पर्यायः स एवार्थो सोऽस्ति यस्यासौ पर्यायार्थिकः। एतावेव च द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकाविति, द्रव्यस्थितपर्यायस्थिताविति।

[१६९] ननु गुणविषयस्तृतीयो गुणार्थिकोऽपि कथं नोक्तः? इति चेत्, गुणस्य पर्याये एवान्तर्भूतत्वेन पर्यायार्थिकेनैव तत्सङ्ग्रहात्। पर्यायो हि द्विविधः क्रमभावी सहभावी च। तत्र सहभावी गुण इत्यभिधीयते। पर्यायशब्देन तु पर्यायसामान्यस्य स्वव्यक्तिव्यापिनोऽभिधानान्न दोषः।

[१७०] ननु द्रव्यपर्यायव्यतिरिक्तौ सामान्यविशेषौ विद्येते, ततस्तद्गोचरमपरमपि नयद्वयं प्राप्नोतीति चेत्, नैतदनुपद्रवं, द्रव्यपर्यायाभ्यां व्यतिरिक्तयोः सामान्यविशेषयोरप्रसिद्धेः। तथाहि- द्विप्रकारं सामान्यमुक्तम्- ऊर्द्ध्वता-सामान्यम्, तिर्यक्सामान्यं च। तत्रोर्द्ध्वतासामान्यं द्रव्यमेव, तिर्यक्सामान्यं तु प्रतिव्यक्ति सदृश-परिणामलक्षणं व्यञ्जनपर्याया एव स्थूलाः कालान्तरस्थायिनः। शब्दानां सङ्केतविषया व्यञ्जनपर्याया इति प्रावचनिकप्रसिद्धेः विशेषोऽपि वैसदृश्यविवर्तलक्षणः पर्याय एवान्तर्भवतीति नैताभ्यामधिकनयावकाश इति॥१४६॥

[द्रव्यारोपविचारः]

[१७१] अथ द्रव्यार्थिकनैगमगतप्रथमद्रव्यारोपविचारगाथामाह-

[मूल] पञ्चास्तिकायिकानां च परावर्तनधर्मतः। कालस्य द्रव्यकथनं द्रव्यारोपोऽस्ति तद्गुणे॥१४७॥

(व्याख्या) पञ्चास्तीत्यादि। धर्माधर्माम्बरजीवपुद्गलानां पञ्चास्तिकायानां परावर्तनधर्ममादृत्य कालस्य द्रव्यकथनं तद्गुणे द्रव्यारोपोऽस्ति॥१४७॥

[गुणारोपविचारः]

[१७२] अथ गुणारोपविचारसूचकगाथामाह-**[मूल] ज्ञानादिगुणमादृत्य तद्द्रव्यमनपेक्ष्य च। ज्ञानमेव यथा जीवस्तद्गुणारोप उच्यते॥१४८॥**

(व्याख्या) ज्ञानादीत्यादि। तद्द्रव्यमनपेक्ष्य, चः पुनरर्थे, तद्गतज्ञानदर्शनशमादिगुणमादृत्य गुणानां द्रव्यकथनं तद्गुणारोपोऽस्ति। यथा जीवस्य ज्ञानादयो गुणास्ते समादृत्य जीव इति कथनरूपमिति। ज्ञानमेव जीवो दर्शनमेव जीवः शम एव जीवश्चेत्यादयो गुणारोपः। एवं गतिस्थित्यवगाहनमूर्तादिगुणमुपेत्य गत्यादीनां धर्माधर्मव्योमपुद्गलादि-द्रव्यकथनमेतद्गुणारोप इति ज्ञेयम्॥१४८॥

[कालारोपविचारः]

[१७३] अथ कालारोपगाथाद्वयमाह-

[मूल] अतीतकालभावानां करोत्यारोपकं यदा। तदा सम्प्रतिकाले च भूतारोपः स प्रोच्यते॥१४९॥

[मूल] वीरनिर्वाणयोगेन यथाद्य दीपमालिका। एवमनागतारोपो यथास्ति पद्मवासरः॥१५०॥

(व्याख्या) अतीतेत्यादि। यदा सम्प्रतिकाले = वर्तमानकाले अतीतकालभावानां य आरोपकं करोति तदा स कालो भूतारोपः प्रोच्यते इति। चकारेण एवमागामिकालगतपदार्थानां वर्तमानकाले आरोपः क्रियते स

कालोऽनागतारोपः प्रोच्यते। अत्र दृष्टान्तमाह- **वीरेत्यादि।** यथातीतकाले चतुर्थारकप्रान्ते वीरजिननिर्वाणमभूत्तत्पर्ववासरमाश्रित्याधुना पञ्चमारके कार्तिकामावस्यावासरागते दीपमालिकामालम्ब्यात्र दिवसे जिननिर्वाणोत्सवं कुर्वन्ति अद्य वीरनिर्वाणोऽस्तीति वदन्ति। तत्तु बभूव अतस्तमुपेत्यैनं कालं दीपमालिकेति वदन्ति। एवं मेरुत्रयोदशी-पौषदशम्यक्षयतृतीयादयोऽतीतकालारोपे दृष्टान्ता वाच्या। एवमनागतकालारोपोऽपि बोद्धव्यः। **यथेत्यादि।** यथेति दृष्टान्तः **पद्मेति**। यदद्य पद्मनाभ इत्यागामिजिनस्य वासरो = दिवसः पद्मवासरः। अत्र पद्मनाभजिनः त्वागामिकाले भविष्यति, अधुनैव तत्मूर्तिं पर्ववासरं वा कथं जना निगदन्ति? तदागामिकालिककल्याणकोत्सवमुपेत्यागामिकालारोपो नैगमनयापेक्षया पद्मजिनवासरोऽस्तीत्यादिकं जना वदन्तीति श्लोकद्वयार्थः॥१४९॥१५०॥

[हेत्वाद्यारोपविचारः]

[१७४] अथ चतुर्थहेत्वाद्यारोपगाथामाह-

[मूल] उपादानसुनैमित्तासामान्यापेक्षकादिकः। कार्यारोपः कारणेऽस्ति द्रव्यार्हन्तारको यथा॥१५१॥

(व्याख्या) कारणे कार्यारोपस्तमाह-तत्रोपादाननिमित्तासाधारणापेक्षाहेतुकैः कारणं चतुर्विधमस्ति। तत्र कस्मिन्नपि कारणे यः कार्यारोपः क्रियते तत्कारणे कार्यारोपोऽस्ति। तत्र द्रव्यक्रियासाध्यसापेक्षमनुजानां धर्मो निमित्तकारणकोऽस्ति। एवं जिनादयोऽपि मोक्षहेतुस्तमादृत्य शक्रेन्द्रः शक्रस्तवे ***तारयाणं*** इत्यगदत्। एवं हेतौ कर्तृत्वदायकत्वा(त्वोत् ?)क्षेपादयोऽपि ज्ञेयाः। एवमारोपोऽनेकविधोऽस्तीति॥१५१॥

[सङ्कल्पांशनैगमस्वरूपम्]

[१७५] अथ सङ्कल्पांशनैगमस्वरूपविचारगाथामाह-

[मूल] आरोपसर्जनारोपसङ्कल्पांशादिभेदतः। नैकगमग्राहरूपः सच्चैतन्यं च नैगमात्॥१५२॥

(व्याख्या) आरोपेत्यादि। धर्मयोर्धर्मिणो धर्मधर्मिणोश्च प्रधानोपसर्जनभावेनारोपसङ्कल्पांशादि भेदाद्यद्विवक्षणं स नैकगमो नैगम इति। पर्यायद्रव्ययोर्द्रव्यपर्याययोश्च मुख्यामुख्यरूपतया यद्विवक्षणं स एवं रूपो नैको गमो = बोधमार्गो यस्यासौ नैकगमो नैगमो नाम ज्ञेयः। अत्रोदाहरणमाह- **सच्चैतन्यमिति।**

१) सच्चैतन्यमात्मनीति धर्मप्रधानोपसर्जनभावेन विवक्षणमिति। अत्र चैतन्याख्यस्य व्यञ्जनपर्यायस्य प्राधान्येन विवक्षणं विशेष्यत्वात्, सत्ताख्यस्य तु व्यञ्जनपर्यायस्योपसर्जनभावेन, तस्य चैतन्यविशेषणत्वादिति धर्मद्वयगोचरो नैगमस्य प्रथमो भेदः।

२) तथा वस्तु पर्यायवद्द्रव्यमिति विवक्षायां वस्तुनो विशेष्यत्वात्प्राधान्यम्, पर्यायवद्द्रव्यस्य तु विशेषणत्वाद्गौणत्वमिति धर्मियुग्मगोचरोऽयं नैगमस्य द्वितीयो भेदः।

३) क्षणमेकं सुखी विषयासक्त जीव इति धर्मधर्मिणोरिति। अत्र विषयासक्तजीवाख्यस्य धर्मिणो मुख्यता विशेष्यत्वात्, सुखलक्षणस्य तु धर्मस्याप्रधानता तद्विशेषणत्वेनोपात्तत्वादिति धर्मधर्म्यालम्बनोऽयं नैगमस्य तृतीयो भेदः। न चास्यैवं प्राधान्येन प्रमाणात्मकत्वानुषङ्गो, धर्मधर्मिणोः प्राधान्येनात्र ज्ञप्तेरसम्भवात्, तयोरन्यतर एव हि नैगमनयेन प्रधानतयानुभूयते, प्राधान्येन द्रव्यपर्यायद्वयात्मकं चार्थमनुभवद्धि ज्ञानं प्रमाणं प्रतिपत्तव्यं नान्यदिति। चकारेण नैगमादेतद्भेदत्रयं बोध्यमिति॥१५२॥

[अंशग्राही नैगमनयविचारः]

[१७६] अथांशग्राही नैगमनयविचारगाथामाह-

[मूल] अंशग्राही नैगमश्च सत्तासिद्धिसमानकः। यथा सूक्ष्मः सिद्धसमो भवेत्संसारिको जिनः॥१५३॥

(व्याख्या) अंशेत्यादि। अंशो द्विविधो भिन्नांशोभिन्नांशश्चेति। तत्र प्रथमः स्कन्धादीनामंशः पृथग्भाव-स्थितिरूपः, द्वितीयोऽविभाङ्गांशरूपः। एतादृशो नैगमः द्रव्ये अंशमादृत्य भवस्थजीवः सत्तामादृत्य सिद्धसदृशः सत्तामपेक्ष्य नैगमो मन्यते। इत्येतदेवाह- **यथेत्यादि। सूक्ष्मेति।** निगोदिकोऽपि जीवः सिद्धिसत्तामादृत्य सिद्धसमोऽस्ति। पुनः शेषकर्म-स्थितिसत्तामुपेत्य तीर्थकरोऽपि संसारिकोऽस्तीति॥१५३॥

[१७७] अथ शेषद्रव्येषु नैगमनयस्य विचारगाथामाह–

[मूल] एवं पञ्चास्तिकायेषु प्रोक्तोऽयं नैगमो नयः।
जिनागमाच्च बुद्ध्या च सर्वभावेषु योजयेत्॥१५४॥

(व्याख्या) एवमित्यादि। एवं जीवद्रव्यगतदृष्टान्तानुसारेण पञ्चास्तिकायेषु बोध्यमित्ययं नैगमो नयः प्रोक्तः = कथितः। इत्थं सर्वभावेषु = पदार्थेषु निजमतिविकल्पानुसारेण जिनागमान्नैगमनयो योजयेदिति॥ इति नैगमनयः॥१५४॥

[सङ्ग्रहनयविचारः]

[१७८] अथ सङ्ग्रहनयभावविचारप्ररूपकगाथामाह-

[मूल] सङ्ग्रहज्ञानयोगेन एते पञ्चास्तिकायिकाः।
सामान्यान्यधर्मरूपौ वदन्ति सङ्ग्रहान्विताः॥१५५॥

(व्याख्या) सङ्ग्रहेत्यादि। सामान्यवस्तुग्राहकः सङ्ग्रहः। सङ्ग्रहज्ञानान्विता जनाः सङ्ग्रहज्ञानयोगेन एते धर्मादयः पञ्चास्तिकायिकाः, सामान्यश्च अन्यश्च सामान्यान्यौ, धर्मात्मको रूपो धर्मरूपः, सामान्यान्यौ धर्मरूपौ सामान्यविशेषधर्मरूपौ ते वदन्ति = निगदन्तीत्यर्थः। अतः सङ्ग्रहो द्विविधः प्रोक्तः- सामान्यसङ्ग्रहो विशेष-सङ्ग्रहश्चेति। तत्र मूलोत्तराभ्यां सामान्यसङ्ग्रहो द्विप्रकारोऽस्ति। तत्र मूलसामान्यसङ्ग्रहोऽस्तित्वादिभेदेन षड्विधः, उत्तरसामान्यसङ्ग्रहः = उत्तरजातिसमुदायभेदरूपो जातितो द्विविधोऽस्ति। तत्र गवि गोत्वम्, घटे घटत्वमिति जातिः। तथा समुदायतो मनुष्यसमूहे सामान्यमनुष्यग्रहणमिति। तत्रोत्तरसामान्यं चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनेन गृह्णाति, मूलसामान्यं प्रत्यक्षज्ञानत्रयेन गृह्णातीति॥१५५॥

[सामान्यस्य लक्षणम्]

[१७९] अथ सामान्यलक्षणगाथामाह–

[मूल] द्रव्येषु व्याप्यभावस्थे गुणपर्यायव्यापकात्।
परिणामिलक्षणस्थः सामान्यः प्रोच्यते तदा॥१५६॥

(व्याख्या) द्रव्येष्वित्यादि। व्याप्यभावस्थेषु द्रव्येषु स्वस्वद्रव्ये व्यापकस्थिताः ये नित्यत्वादयः सत्तागत-धर्मस्य पारिणामिकलक्षणेन सङ्ग्रहकरणशीलः स सामान्यसङ्ग्रहस्तद्भेदः पूर्वोक्त एव बोद्धव्यः॥१५६॥

[गुणपर्यायान्वितसामान्यस्वरूपम्]

[१८०] पुनर्गुणपर्यायान्वितसामान्यस्वरूपपक्षान्तरमाह-

[मूल] निरवयवैकनित्याक्रियसर्वगतान्वितः। सामान्योऽस्ति पिण्डरूपो गुणपर्यायसंयुतः॥१५७॥

(व्याख्या) निरवयवेत्यादि। निरवयवत्वैकत्वनित्यत्वाक्रियत्वसर्वगतत्वान्वितो गुणपर्यायसंयुतः पिण्डरूपः सामान्योऽस्तीत्यन्वयः। अथवा सामान्यरूपतया सकलं सङ्गृह्णातीति सङ्ग्रहः। वा सर्वेऽपि भेदाः सामान्यतया सङ्गृह्यन्ते अनेनेति सङ्ग्रहः। एतद्व्याख्या तु पूर्वोक्ता एव। वा स्वसत्ताख्यं महासामान्यं सङ्गृहणातीति सङ्ग्रह इति।

अन्ये(न्यैः) गोत्वादिकमवान्तरसामान्यं पिण्डितार्थमभिधीयते। तत्रेत्थं सामान्यो द्विधा- महासत्तारूपोऽवान्तर-सत्तारूपश्चेति। तत्र यद् नित्यनिरवयवैकत्वमक्रियत्वगं(यं सर्वगं) च सामान्यम् एतन्महासामान्यम्, गवि गोत्वादिकम् अवान्तरसामान्यं चेति॥१५७॥

[विशेषगुणाः]

[१८१] अथ विशेषगुणहेतुगाथामाह–

[मूल] नित्यानित्यसावयवनिरवयवसक्रियः। देशगः सर्वगश्चास्ति विशेषो गुणहेतुकः॥१५८॥

(व्याख्या) नित्येत्यादि। स्पष्टम्॥१५८॥

[वस्तूनां षट् मूलसामान्यभेदाः]

[१८२] अथ वस्तूनां षट् मूलसामान्यभेदाभिधानरूपगाथामाह-

[मूल] मूलसामान्यभेदामी[१] वस्तुत्वास्तिप्रमेयकम्।
द्रव्यसत्त्वागुरुलघुः[२] रसोन्माना भवन्ति च॥१५९॥[३]

(व्याख्या) द्रव्यसहचारित्वादेते षट् मूलसामान्यस्वभावा इति॥१५९॥

[सामान्यविशेषस्वभावविचारः]

[१८३] अथाधाराधेयसामान्यविशेषस्वभावविचारगाथामाह-

[मूल] नित्याद्युत्तरसामान्येतरे[४] परिणमादयः। प्रोच्यन्ते गुणपर्यायाधारत्वं वस्तुकं बुधाः॥१६०॥

(व्याख्या) नित्येत्यादि। उत्तरसामान्यास्तु नित्यादयः पूर्वोक्ता एव भवन्ति। इतरे विशेषास्तु परिणमनादयः सन्ति। कथमेवमुच्यते? **प्रोच्यन्त इत्यादि**। बुधैः गुणपर्यायाधारकत्वं वस्तुकं प्रोच्यन्ते गुणा द्रव्यत्वादयः। पर्याया द्रव्य-द्रव्यव्यञ्जनादयः तदाधारं द्रव्यमिति बोध्यम्॥१६०॥

---

१. यहां पर **भेदामी** की जगह **भेदा अमी** पाठ अधिक संगत लगता है।
२. यहां पर **लघुः** की जगह **लघू** पाठ अधिक संगत लगता है।
३. यह श्लोक ला. प्रत में नहीं है।
४. यहां पर **सामान्या इतरे** पाठ अधिक संगत लगता है।

[द्रव्येषु सामान्यविशेषसङ्ग्रहनयनिरूणम्]

[१८४] अथ द्रव्येषु सामान्यविशेषसङ्ग्रहनयनिरूपकगाथामाह-

[मूल] सङ्ग्रहज्ञानयोगेन द्रव्यं सामान्यतो वदेत्। विशेषसङ्ग्रहतया जीवेति[१] प्रवदन्ति ते॥१६१॥

(व्याख्या) सङ्ग्रहेत्यादि। प्रौढाः सङ्ग्रहस्य यज्ज्ञानं सङ्ग्रहज्ञानम्, सङ्ग्रहज्ञानस्य योगो = व्यापारः सङ्ग्रहज्ञानयोगस्तेन सामान्यतो द्रव्यम् इति वदन्ति। पुनस्ते विशेषसङ्ग्रहनयाज्जीव इत्यादयः प्रवदन्तीत्यन्वयः। विशेषश्चासौ सङ्ग्रहश्च विशेषसङ्ग्रह इति॥१६१॥

[द्रव्येषु सामान्यविशेषविभागः]

[१८५] अथ पुनरपि द्रव्येषु सामान्यविशेषविभागगाथामाह–

[मूल] नित्यादयश्च सामान्या विपरीता विशेषकाः। निजमेधानुयोगेन द्रव्येषु सङ्ग्रहो वदेत्॥१६२॥

(व्याख्या) नित्येत्यादि। तत्र नित्यः सामान्यः अनित्यो विशेषः, एकः सामान्यः अनेके विशेषाः, अस्तित्वं सामान्यं नास्तिभावोः विशेषः, भेदः सामान्योऽभेदो विशेषः, निरवयवः सामान्यः सावयवो विशेषः, तथा निष्क्रियः सामान्यः सक्रियो विशेषः, तथा सर्वगतः सामान्यः असर्वगतो विशेष इत्यादयो बोद्धव्याः। एवम् = अमुना प्रकारेण निजमेधानुयोगेन = स्वप्रज्ञया शास्त्रानुसारेण सङ्ग्रहो द्रव्येषु = द्रव्यादिषु वदेदित्यर्थः॥१६२॥

[सङ्ग्रहनयस्य सङ्गृहीतादिभेदाः]

[१८६] अथ सङ्ग्रहद्वारगतसङ्गृहीतादिस्वरूपगाथायुगमाह-

[मूल] सामान्याभिमुखेन ग्रहणं यत्सङ्गृहीतकः। ज्ञात्वैकमेकजातीनामेकेन सङ्ग्रहात्मकः॥१६३॥

[मूल] सर्वभावेष्वनुगमसामान्यप्रतिपादनम्।
सोऽनुगमसङ्ग्रहः स्याद् व्यतिरेकोऽन्य इति[२] ग्रहात्॥१६४॥ (युग्मम्)

(व्याख्या) सामान्येत्यादि। सामान्याभिमुखेन यदा ग्रहणं तत्सङ्गृहीतसङ्ग्रहः द्रव्यवद्। एकजातीनां वस्तुनामेकत्वभावं विज्ञाय एकेन यो गृह्यते सङ्ग्रहात्मकः पिण्डरूपेण स पिण्डितसङ्ग्रहः, एक आत्मा इतिवत्। **सर्वेत्यादि।** सर्वव्यक्तिषु अनुगतस्य सामान्यस्य यत्प्रतिपादनं सोऽनुगमसङ्ग्रहः प्रोच्यते, सच्चिदात्मतयात्मा इति वदति। **व्यतिरेक** इत्यादि। इतरधर्मनिषेधाद् ग्राह्यधर्मसमाग्राहको व्यतिरेकसङ्ग्रह इति। यथा अजीव इत्यादि जीवनिषेधेनाजीवसङ्ग्रहः। जीव इति वक्तव्ये अजीवनिषेधेन जीवसङ्ग्रह इत्यादि। एवं धर्मादीनामपि बोध्यम्। अतः सङ्ग्रहः सङ्गृहीतादिश्चतुर्भेदोऽस्ति॥१६३॥१६४॥

[सङ्ग्रहनयस्य भेदान्तरम्]

[१८७] अथ पुनः सङ्ग्रहनयस्य भेदान्तरगाथामाह-

[मूल] वा महदवान्तराभ्यां सङ्ग्रहो द्विविधो भवेत्।
सत्तारूपोऽस्ति प्रथमः पिण्डितार्थो द्वितीयकः॥१६५॥

---

१. यहां पर **जीवेति** की जगह **जीव इति** पाठ अधिक संगत लगता है।
२. यहां पर **न्य इति** की जगह **न्यथा** पाठ अधिक संगत लगता है।

(व्याख्या) वा महदित्यादि। वा = अथवा सङ्ग्रहो द्विविधो = द्विप्रकारो भवेत्। तथाहि- महासामान्यसङ्ग्रहः, अवान्तरसामान्यसङ्ग्रहश्चेति। तदेतदर्थमाह- **सत्त्वेत्यादि।** प्रथमो महासामान्यः सत्तारूपोऽस्ति। नो (?) नित्यो निरवयवो निक्रियः सर्वगश्च सामान्यमिति। **पिण्डितेत्यादि।** तथा द्वितीयकोऽवान्तरसामान्यो गवि गोत्वादय इति गाथार्थः॥ इति सङ्ग्रहः॥१६५॥

[व्यवहारनयविचारः]

[१८८] अथ व्यवहारनयविचारगाथामाह-

[मूल] भेदान्तरविभजनैर्व्यवहारप्रवर्तनम्। भवेद् व्यवहारनयः पूर्वप्रोक्तानुसारतः॥१६६॥

(व्याख्या) भेदेत्यादि। सङ्ग्रहेण गोचरीकृतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसन्धिना क्रियते स व्यवहार इति। सत्स्वार्थान्विधाय न तु निषिध्य(?)मः परामर्शविशेषस्तानेव विभजते स व्यवहारनयो भवेत्। एतद् द्वारगाथायां व्याख्यातमेवास्तीति। तद्विभजनमेवम्, तथाहि- द्रव्यं द्विविधं जीवाजीवाभ्यामिति। जीवोऽपि सिद्धसंसारिभेदेन द्विविधोऽस्तीत्यादयो बोद्धव्याः। एष एव द्वारगाथायां व्यवहारो विभजनप्रवृत्तितो द्विविधः प्रोक्तोऽस्ति॥१६६॥

[प्रवृत्तिव्यवहारविचारः]

[१८९] अथ प्रवृत्तिव्यवहारविचारगाथामाह-

[मूल] सर्वद्रव्यस्वरूपाणां शुद्धप्रवृत्तिलक्षणैः[१]। चलनादिसहायैश्च स द्रव्यज्ञायको भवेत्॥१६७॥

(व्याख्या) सर्वेत्यादि। समग्रधर्मादिद्रव्याणां स्वरूपाणां शुद्धप्रवर्तनलक्षणनिजनिजगत्यादि- सहचरण-रूपाणामिति। **चलनादिसहायैरिति।** आदिशब्दादधर्मास्तिकायादिकमपि ग्राह्यम्। यो द्रव्यज्ञायकः स प्रवृत्ति-व्यवहारः॥१६७॥

[साधनाव्यवहारविचारः]

[१९०] अथ पुनः प्रवृत्तिसाधनाव्यवहारविचारगाथामाह-

[मूल] लोकालोकज्ञानरूपो जीवस्य साधना तथा। स्यात्सम्पूर्णपरमात्मभावसाधनरूपकः॥१६८॥

[मूल] गुणानां साधकावस्थारूपः शुद्धप्रवृत्तिकः। गुणश्रेण्यारोहकादिः सा भवेत्साधना वरा॥१६९॥

(व्याख्या) लोकेत्यादि। जीवस्य लोकालोकादिज्ञानरूपः शुद्धप्रवृत्तिव्यवहारः प्रथमः। तथा साधनाव्यवहारः स्वसम्पूर्णपरमात्मभावसाधनरूपः स्यादित्यर्थः। **गुणानामित्यादि।** गुणानां साधकावस्थानरूपः शुद्धप्रवृत्तिकः। गुणस्थानगत-उपशम-क्षपकश्रेण्यारोहणादि साधकदशा तेन वराः प्रधानाः साधना जिनैः प्रोक्तास्तदेव व्यवहारः स्यादित्यर्थः॥१६८॥१६९॥

[अशुद्धसद्भूतासद्भूतव्यवहारविचारः]

[१९१] अथाशुद्धसद्भूतासद्भूतव्यवहारविचारगाथामाह-

---

१. यहां पर **शुद्धप्रवृत्तिलक्षणैः** इस पद की तृतीया विभक्ति का अन्वय दुर्घट लगता है।

[मूल] गुणज्ञानाद्यभिन्नेन सद्भूतव्यवहारकः। व्यवहारोऽसद्भूतः स्याद्यद्गुणान्यसमन्वितः॥१७०॥

(व्याख्या) गुणेत्यादि। अशुद्धोऽपि सद्भूतासद्भूतभेदेन द्विविधः। तत्र यस्मिन् क्षेत्रेऽभेदभावेन स्थिता ये ज्ञानादयो गुणास्तेनाभेदव्यवहारः स सद्भूतव्यवहारः स्यात्। पुनर्यो गुणान्यसमन्वितः कषायात्मादिभिर्मानवोऽहं सुरोऽहमित्याद्यात्मकं ज्ञानं सोऽसद्भूतव्यवहारः स्यादिति॥१७०॥

[असद्भूतस्य संश्लिष्टासंश्लिष्टभेदौ]

[१९२] अथासद्भूतस्य संश्लिष्टासंश्लिष्टविचारगाथामाह-

[मूल] संश्लेषितोऽशुद्धरूपोऽहं शरीरीति प्रोच्यते। पुत्राद्यसंश्लिष्टरूपोऽसद्भूतः स्याद्भवे खलु॥१७१॥[१]

(व्याख्या) संश्लेषितेत्यादि। संश्लिष्टाशुद्धव्यवहारो मम देहोऽस्तीत्यादिकः। **पुत्रेत्यादि।** मम पुत्रकलत्रादयः सन्तीत्याद्यसंश्लिष्टासद्भूतव्यवहार इति शेषः। व्याख्यानं तु द्वारगाथाव्याख्याने पूर्वमुक्तमेव बोध्यम्॥१७१॥

[१९३] अथ व्यवहारव्याख्योपसंहारगाथामाह-

[मूल] एवं पञ्चास्तिकायेषु योज्यो मेधानुसारतः। व्यवहारस्वरूपश्च(ञ्च)समासेन विनिर्ममे॥१७२॥

(व्याख्या) एवमित्यादि। स्पष्टम्॥ इति व्यवहारनयः॥१७२॥

[ऋजुसूत्रनयविचारः]

[१९४] अथ ऋजुसूत्रनयविचारगाथामाह-

[मूल] सुज्ञानबोधरूपो यः प्रवदेदृजुसूत्रकः। सम्प्रतिकालमाश्रित्य गदेद्भावनयो ह्ययम्॥१७३॥

(व्याख्या) सुज्ञानेत्यादि। सम्प्रतिकालं = वर्तमानकालम् आश्रित्य = आलम्ब्य यः सुज्ञानबोधरूपः स ऋजुसूत्रक इत्थं गदेदिति। अयं नयो भावनयो बोध्यः। तत्र ऋजु[म्] = अवक्रं श्रुतमस्य सोयमृजुश्रुतः। यच्च साम्प्रतमुत्पन्नं वर्तमानकालीनं वस्तु, यच्च यस्य प्रत्येकमात्मीयं तदेव तदुभयस्वरूपं वस्तु प्रत्युपन्नमुच्यते, तदेवासौ नय ऋजुः प्रपद्यते। ततो वर्तमानकालीनः पदार्थे ऋजुसूत्रोऽस्ति। अन्यत्तु शेषातीतानागतं परकीयं च यद्यस्मादसदविद्यमानं ततोऽसत्त्वादेव अवक्रं नेच्छत्ययमिति। तदुक्तम् आवश्यकनिर्युक्तौ-

पच्चुप्पन्नगाही उज्जुसुओ नयविही मुणेयव्वो॥ त्ति( )

यत्कालत्रये वर्तमानं वस्तु वस्तुत्वं भूतमतीतम् अनागतमभावेन साम्प्रतं यद्वर्तते ततो वर्तमानस्यैव वस्तुत्वमिति॥१७३॥

[१९५] अथैतदेवाह-

[मूल] भूतहेतुं समादृत्य कार्यमागामिकं तथा। वर्तते जन्यजनकै ऋजुसूत्रः स उच्यते॥१७४॥

(व्याख्या) भूतेत्यादि। भूतस्य कारणत्वं तथागामिकस्य कार्यत्वं समादृत्य = समालम्ब्य जन्यजनकभावेन यः प्रवर्तते स ऋजुसूत्र इत्युच्यते। अत ऋजुसूत्रो वर्तमानग्राहको भवतीति॥१७४॥

---

१. **संश्लेषितोऽशुद्धरूपोऽहं शरीरीति प्रोच्यते। पुत्राद्यसंश्लिष्टरूपोऽसद्भूतः स्याद्भवे खलु॥१७५॥**
शुद्धो ज्ञानादनमयोऽशुद्धो रागादिलिप्तकस्तथा। शुभाशुभौ पुण्यपापौ तुर्यः स्याद् व्यवहारकः॥१७६॥
भवोद्विग्नोपचरितः परशक्तोऽपरोऽपि हि। व्यवहारो रसविधो वच्मि ग्रन्थान्तरादहम्॥१७७॥
ये तीन श्लोक **ला.** प्रत में अधिक है।

[१९६] अथ वर्तमान-ऋजुसूत्रभेदगाथामाह-

[मूल] वर्तमानग्राहकः स्यात्स नामादिश्चतुर्विधः।
पूर्वोक्तयुक्त्या संयोज्यः पञ्चास्तिकायिकेषु च॥१७५॥

(व्याख्या) वर्तमानेत्यादि। स वर्तमानग्राहक ऋजुसूत्रो नामस्थापनाद्रव्यभावभेदैश्चतुर्विधो भवति। चः पुनरर्थे। पञ्चास्तिकायिकेष्वेवमेव संयोज्यः। इति ऋजुसूत्रनयः॥१७५॥

[शब्दनयविचारः]

[१९७] अथ शब्दनयविचारगाथामाह-

[मूल] शब्दस्य योऽस्ति वाच्यार्थः प्रधानस्तत्परिग्रहः।
वस्तु त्वाहूयतेऽनेन स शब्दः प्रोच्यतेऽधुना॥१७६॥

(व्याख्या) शब्दस्येत्यादि। 'शप् आक्रोशे' यः शब्दस्य वाच्योऽर्थस्तत्परिग्रहः तत्प्रधानत्वादाह्वयते इति शब्दः। शप्यते = आहूयते वस्तु अनेनेति शब्दस्तस्य शब्दस्य यो वाच्योऽर्थः तत्परिग्रहान्नयः शब्दः, यथा कृतकत्वादित्यादि पूर्वोक्तमेवेति॥१७६॥

[१९८] अथ कालमादृत्य शब्दनयगाथामाह-

[मूल] शब्दस्य यो नयो व्यक्तः स शब्दनयबोधकः। प्रत्युत्पन्नं वर्तमानं शब्दः पूर्ववदिच्छति॥१७७॥

(व्याख्या) शब्दस्येत्यादि। स्पष्टम्। **प्रत्युत्पन्नमित्यादि।** यथेति शेषः। यथा ऋजुसूत्रनयो यद्वर्तमानमभीष्टं प्रत्युत्पन्नं वर्तमानमिच्छति तथैवायमपि शब्दनयः प्रत्युत्पन्नं वर्तमानमेव गृह्णाति। असौ नामादित्रिकनिक्षेपं विमुच्य भावनिक्षेपमुपैति॥१७७॥

[१९९] एतदेवाह–

[मूल] पृथुबुध्नाकारयुतं सुलिप्तं मृन्मयादिना। पाथोर्णाद्याकृष्टशक्यं स भावघटमिच्छति॥१७८॥

(व्याख्या) पृथुबुध्नेत्यादि। पृथुबुध्नाकारवन्मृन्मयादिना लिप्तं जलाहरणादिक्रियाक्षमं प्रसिद्धभावकुम्भ-मिच्छति॥१७८॥

[२००] अथैतस्यैव स्पष्टार्थं गाथामाह-

[मूल] नामाद्यनिलकुम्भानि तद्भावेच्छुः स नेच्छति।
तच्छब्दार्थप्रधानोऽयं चेष्टालक्षणमिच्छति॥१७९॥

(व्याख्या) नामादीत्यादि। नामस्थापनाद्रव्यरूपाणि त्रीणि कुम्भानि नेच्छति। भावघटमिच्छुः शब्दार्थप्रधानो ह्येष नयः। चेष्टालक्षणश्च घटशब्दार्थो घटः चेष्टायामेव घटते। अतो घटते इति घटः तेन जलाहरणादिचेष्टां कुर्वन् शब्दो घटमिच्छतीति॥१७९॥

[ऋजुसूत्रशब्दयोः परस्परभेदः]

[२०१] अथ ऋजुसूत्रशब्दयोः परस्परभिन्नभावं प्रदर्शयन्गाथामाह-

[मूल] निक्षेपोदधिमादृत्य गौणेन घटमिच्छति। ऋजुसूत्रो वर्तमानसमयग्राहको भवेत्॥१८०॥

(व्याख्या) निक्षेपेत्यादि। ऋजुसूत्रो वर्तमानसमयग्राहको भवेत्। स तु निक्षेपोदधि = नामादिनिक्षेप-चतुष्कमादृत्य गौणेन = सामान्येन घटमिच्छति॥१८०॥

[२०२] अथ शब्दस्तु नैवमिच्छति अत एवाह-

[मूल] शब्दार्थग्राहकः शब्दो भावनिक्षेपग्राहकः। सद्भावासद्भावतः स्याद्धर्मानेकसमन्वितः॥१८१॥

(व्याख्या) शब्दार्थेत्यादि। भावनिक्षेपग्राहकः शब्दः सद्भावासद्भावावक्तव्यादिभिरनेकधर्मसमन्वितः स्या-दिति। अतोऽत्र सप्तभङ्गी पूर्ववज्ज्ञेया इति। अनेन शब्दनयः ऋजुसूत्राद्विशेषतरवस्तुमभ्युपैति॥१८१॥

[शब्दनयमादृत्य सप्तभङ्गी]

[२०३] अथ शब्दमादृत्य सप्तभङ्गीगाथामाह-

[मूल] द्रव्यादिषु स्वभावैश्च नित्यानित्यादिभेदतः।
सप्तभङ्ग्यः प्रयोज्याश्च पूर्वोक्तास्ते भवन्ति च॥१८२॥

(व्याख्या) द्रव्येत्यादि। ते च समग्रद्रव्यादिषु नित्यानित्यादिभेदतः स्वभावैः पूर्वोक्ताः सप्तभङ्ग्यः प्रयोज्या इति॥१८२॥

[२०४] एतदेवाह–

[मूल] एकैकैस्त्रिविकल्पाश्च युगयोगैस्त्रयस्तथा।
त्रिकसंयोगतस्त्वैको भङ्गाः सन्ति महीधराः॥१८३॥

(व्याख्या) एकैकेत्यादि। स्यान्नित्य-स्यादनित्य-स्यादवक्तव्य-स्यान्नित्यानित्य-स्यान्नित्यावक्तव्य-स्याद-नित्यावक्तव्य-स्यान्नित्यानित्यावक्तव्या इति। एवमेकादिस्वभावेष्वपि बोध्याः॥१८३॥

[२०५] अथ समग्रपदार्थेषु सप्तभङ्गीप्ररूपकगाथामाह–

[मूल] एवं समग्रभावेषु गुणपर्यायद्रव्यकैः। भवन्त्यनेकाद्रिभङ्ग्यो ज्ञातव्या मतियोगतः॥१८४॥

(व्याख्या) एवमित्यादि। एवम् = अमुनाप्रकारेण समग्रभावेषु = सकलपदार्थेषु द्रव्यगुणपर्यायैरनेकाः(के) अद्रिभङ्ग्यो मतियोगतो विविधाः सप्तभङ्ग्यो ज्ञातव्याः = बोधव्या इत्यर्थः॥ इति शब्दनयः॥१८४॥

[समभिरूढनयविचारः]

[२०६] अथ समभिरूढनयदृष्टिस्वरूपगाथामाह-

[मूल] या या सञ्ज्ञा द्रव्यकाणां लक्षणेन निगद्यते।
सञ्ज्ञान्तरार्थविमुखः सैव पश्यति षष्ठमः(?)॥१८५॥

(व्याख्या) या येत्यादि। अत्राकच्प्रत्ययान्तेन द्रव्यकाणामित्युक्तम्। अनेन द्रव्याणां या या सञ्ज्ञा लक्षणेन निगद्यते सा सा सञ्ज्ञा षष्ठमः समभिरूढनयः सञ्ज्ञान्तरार्थविमुखो नानालक्षणान्येव पश्यतीत्यन्वयः॥१८५॥

[२०७] अथ समभिरूढस्य पर्यायान्तरानपेक्षितभावप्ररूपकगाथामाह-

[मूल] नरः समभिरूढज्ञः पर्यायैकमपेक्ष्य च। न भवेत्सर्वपर्यायवाचको मिश्रदोषतः॥१८६॥

(व्याख्या) नर इत्यादि। समभिरूढनयज्ञः पुरुषः कस्यापि द्रव्यस्य पर्यायैकमालम्ब्य द्रव्यगत सकलपर्याय-

वाचकश्च मिश्रदोषान्न भवेदित्यन्वयः। यदि सर्वपर्यायवाचकः स्यात्तदा सङ्करदोषो भवेदतस्तन्निवारणाय समभिरूढो नानालक्षणान्यभ्युपैति॥ इति समभिरूढनयः॥१८६॥

[एवम्भूतनयविचारः]

[२०८] अथैवम्भूतविचारमाह-

[मूल] वाच्यार्थस्य[१] वाचको यः स तथैव प्रवर्तते। विशिनष्ट्यैवम्भूतज्ञो वदेदतिशयैर्जिनः॥१८७॥

(व्याख्या) वाच्येत्यादि। यो वाचको वाच्यार्थस्य स तथैव प्रवर्तते वाचको घटादिस्तच्चेष्टावतो वाच्यार्थस्तेन विशिनष्टि, स एव घटशब्दो यश्चेष्टावन्तमर्थं प्रतिपादयति। एवम्भूतज्ञो मानुजः प्रातिहार्यातिशयान्वितो जिनेश्वर एव मन्यते, न सामान्यजिनादयः सर्वज्ञगत-ऋद्ध्यभावादिति॥१८८॥

[२०९] अथैवम्भूतनयप्रबोधाय पुनर्दृष्टान्तान्तरमाह–

[मूल] कुम्भाकृतियुतः कुम्भः शुचिपाथोर्णविभृतः।
नारीशिरःस्थितश्चेष्टां कुर्वन्स कुम्भमिच्छति॥१८८॥

(व्याख्या) कुम्भेत्यादि। स एवम्भूतनयः शुचिपाथोर्णविभृतं कुम्भाकृतिसंयुतं नारीशिरःस्थितं चेष्टां कुर्वन्तमेव कुम्भमिच्छति, न गृहकोणादिव्यवस्थितं घटमिच्छति। अयं शब्दार्थतत्पर इति। वाचकशब्दो घटादिः तस्य यो वाच्योऽर्थः चेष्टावानित्यादिः तेनार्थेन विशिनष्टि। स एव घटशब्दो यश्चेष्टावन्तमर्थमभिप्रैति नान्य इति। एवं शब्दमर्थेन (सह) नैयत्येन व्यवस्थापयतीत्यर्थः। तथार्थलक्षणमभिहितरूपेण व्यञ्जनेन विशेषयति। या घटशब्दवाच्यत्वेन प्रसिद्धा सैव चेष्टा इति। अतोऽर्थेन (सह) नैयत्येन व्यवस्थापयतीत्यर्थः। इत्येवमुभयं विशिनष्टि। शब्दस्य ध्वनिना सह अर्थस्य शब्देन सह नैयत्यं स्थापयतीत्यर्थः। एतदेवोक्तं - **नारीशिरःस्थित** इत्यादिकम्। चेष्टावानर्थो घटशब्देनोच्यते स घटलक्षणोऽर्थः, स च तद्वाचको घटशब्दः, अन्यदा तु वस्त्वन्तरस्यैव तच्चेष्टाभावादघटत्वं घटवतश्च वाचकत्वमित्येवमुभयविशेषको एवम्भूत इति। तदुक्तं विशेषावश्यके-

वंजणमत्थेणत्थं च वंजणेणोभयं विसेसेइ। जह घडसद्दं चेट्ठावया तहा तंपि तेणेवेति॥

(वि.आ.भा.२२५२)॥

इत्येवम्भूतनयः॥१८८॥

[नयानां विभागः]

[२१०] अथैतेषां नयानां शब्दार्थविचारगाथामाह-

[मूल] प्राधान्यार्थेन प्रथमे चत्वारोऽर्थनयाः स्मृताः।
शब्दादयः शब्दमुख्याच्छब्दाः सन्ति जिनागमे॥१८९॥

(व्याख्या) प्राधान्येत्यादि। प्रथमे नैगमादयश्चत्वारो नया अर्थप्राधान्येन अर्थनयाः स्मृताः = कथिता इति। शेषास्तु शब्दादयस्त्रयो नयाः शब्दप्राधान्येन जिनागमे = प्रवचने शब्दाः = शब्दनयाः सन्ति = भवन्ति॥१८९॥

---

१. यहां **वाच्यार्थस्थो** ऐसा पाठ होना चाहिए।

[नयानां शुद्धाशुद्धभावः]

[२११] अथैतेषां शुद्धाशुद्धभावस्व(प्र)रूपकगाथामाह-

[मूल] नैगमाद्याश्च चत्वारः सामान्यार्थसमादरात्। अविशुम भवन्त्यत्र त्रयः शुद्धा विशेषतः॥१९०॥

(व्याख्या) नैगमेत्यादि। सामान्यार्थसमादरेण प्रथमे नैगमादयश्चत्वारोऽविशुद्धा नया भवन्ति। शेषास्त्रयो विशेषतो = विशेषार्थसूचनेन शब्दादयः शुद्धा भवन्तीति॥ इति सप्त नयाः॥

अथ नयाभासाः। अत्र नयाभासः किमुच्यते? प्रथमैकांशं मुख्यभावेन संस्थाप्य यो द्वितीयांशस्योत्थापनं करोति स नयाभास इति। तदा नयः किमुच्यते? पुनः पुनो लक्षणतः प्रोच्यते [नीयते] वस्तु अनेन श्रुताख्यप्रामाण्य-विषयीकृतस्यार्थस्य तिष्ठति पुनरितरांशौदासीन्यभावरूपो नय इति विशेषः॥१९०॥

[द्रव्यार्थिकाभासनयः]

[२१२] तत्र प्रथमं द्रव्यार्थिकाभासनयस्वरूपविचारगाथामाह-

[मूल] यः पर्यायप्रतिक्षेपी द्रव्यमात्रसमादृतः। द्रव्यार्थिकाभासरूपः प्रोच्यते श्रुतिसागरे॥१९१॥

(व्याख्या) यः पर्यायेत्यादि। यः पर्यायाणां प्रतिक्षेपेण द्रव्यमात्रं समादृतः स श्रुतिसागरे = प्रवचने द्रव्यार्थिकाभासः प्रोच्यते इत्यन्वयार्थः॥१९१॥

[पर्यायार्थिकाभासः]

[२१३] अथ पर्यायार्थिकाभासस्वरूपमाह–

[मूल] तथा द्रव्यप्रतिक्षेपी पर्यायमात्रग्राहकः। तत्पर्यायार्थिकाभासो विज्ञेयोऽस्ति द्वितीयकः॥१९२॥

(व्याख्या) तथा द्रव्येत्यादि। तथा यो द्रव्याणां प्रतिक्षेपेण पर्यायमात्रग्राहकः स पर्यायार्थिकाभासो विज्ञेयो भवतीति। इत्येष नयाभासः समासेन द्विविधोऽस्ति। तत्राद्यो नैगम- सङ्ग्रहव्यवहार-ऋजुसूत्रभेदाच्चतुर्विधः। अन्ये ऋजुसूत्रं पर्यायार्थिकं वदन्ति। (अन्ये) ते च चेतनांशत्वेन विकल्पस्य ऋजुसूत्रे ग्रहणात्, श्रीमज्जिनशासने मुख्यतः परिणतिचक्रस्यैव भावधर्मत्वेनाङ्गीकारात्तेषां ऋजुसूत्रो द्रव्यनय एवास्तीति॥१९२॥

[नैगमनयाभासः]

[२१४] अथ नैगमनयाभासस्वरूपगाथामाह-

[मूल] धर्मधर्मिकादीनामेकान्तिपार्थिक्ययोगतः। प्रोच्यते नैगमाभासो नैगमस्यावभासतः॥१९३॥

(व्याख्या) धर्मेत्यादि। धर्मद्वयादीनामेकान्तिकपार्थक्याभिसन्धिः नैगमस्यावभासतो नैगमाभासः प्रोच्यते इति। आदिशब्दाद्धर्मद्वय-धर्मधर्मिद्वययोः परिग्रहः। अत्र योगशब्देनाभिसन्धिर्बोध्यः। एकान्तिक-पार्थक्याभिसन्धिः = एकान्तिकभेदाभिप्रायो नैगमाभासो = नैगमदुर्नय इत्यर्थः। अत्रोदाहरणं- यथात्मनि सत्त्वचैतन्ये परस्परमत्यन्तं पृथग्भूते इत्यादिरिति। आदिशब्दाद् वस्तुद्वयपर्यायद्वयलक्षणयोर्धर्मिणोः, सुखजीव-लक्षणयोर्धर्मधर्मिणोश्च सर्वथा पार्थक्येन कथनं तदाभासत्वेन द्रष्टव्यम्। नैयायिकवैशेषिकदर्शनं चैतदाभासतया ज्ञेयमिति॥१९३॥

[सङ्ग्रहनयाभासः]

[२१५] अथ सङ्ग्रहाभासस्वरूपगाथामाह-

[मूल] सत्त्वं चैतन्यभिन्नेऽपि सामान्यमात्रग्राहकः। सत्तापरामर्शरूपः प्रोच्यते सङ्ग्रहो बुधैः॥१९४॥

(व्याख्या) सत्त्वेत्यादि। यथात्मनि सत्त्वचैतन्यभिन्नेपि सामान्यमात्रग्राही परामर्शरूपः सङ्ग्रहनयो बुधैः प्रोच्यते इत्यन्वयः। सामान्यमात्रमशेषविशेषरहितं सत्त्वद्रव्यत्वादिकं गृह्णातीत्येवंशीलः। सम् = एकीभावेन पिण्डीभूततया विशेषराशिं गृह्णातीति सङ्ग्रहः। अयमर्थः- स्वजातेर्दृष्टेष्टाभ्यामविरोधेन विशेषाणामेकरूपतया यद् ग्रहणं स सङ्ग्रह इति॥१९४॥

[परापरसङ्ग्रहाभासः]

[२१६] अथ सङ्ग्रहभेददर्शनाय गाथामाह-

[मूल] स परापरभेदाभ्यां युगभेदः समादृतः। सन्मात्रग्राहको द्रव्यं भाषते परसङ्ग्रहः॥१९५॥

(व्याख्या) स परेत्यादि। स सङ्ग्रहनयः परापरभेदाभ्यां **युगेत्यादि।** द्विभेदः कथितः। तत्र सन्मात्रग्राहको यो द्रव्यं भाषते स परसङ्ग्रहः। निखिलविशेषभावे ह्यौदासीन्यं भजमानः शुद्धद्रव्यं सन्मात्रमभिमन्यमानः परसङ्ग्रह इति परमार्थः। इत्यग्रेतनेऽपि योजनीयम्। अत्रोदाहरणं- ***विश्वमेकं सदविशेषादिति यथेति*** (प्र.न.त.७.१६)। अस्मिन्नुक्ते हि सदिति ज्ञानाभिधानानुवृत्तिलिङ्गानुमितसत्ताकत्वेनैकत्वमखिलार्थानां सङ्गृह्यते इति परसङ्ग्रहः॥१९५॥

[२१७] अथापरसङ्ग्रहं गाथार्द्धेनाह–

[मूल] चैतन्यलक्षणो जीवो गद्यतेऽपरसङ्ग्रहः।

(व्याख्या) चैतन्येत्यादि। अत्र ***द्रव्यत्वादीन्यवान्तरसामान्यानि मन्वानस्तद्भेदेषु गजनिमीलिकामवलम्बमानोऽपरसङ्ग्रहः*** इति(प्र.न.त.७.१९)। पुनः **अपरसङ्ग्रह इति।** द्रव्यत्वमादिर्येषां पर्यायत्वप्रभृतीनां तानि तथा अवान्तरसामान्यानि सत्ताख्यमहासामान्यापेक्षया कतिपयव्यक्तिनिष्ठानि तद्भेदेषु द्रव्यत्वाद्याश्रयभूतविशेषेषु द्रव्यपर्यायादिषु गजनिमीलिकाम् = उपेक्षाम् उदाहरन्ति। ***धर्माधर्माभ्रपुद्गलजीवद्रव्याणामैक्यं द्रव्यत्वाभेदादित्यादिर्यथेति*** (प्र.न.त.७.२०)। अत्र द्रव्यं द्रव्यमिति अभिन्नज्ञानाभिधानलक्षणलिङ्गानुमितद्रव्यत्वात्मकत्वेनैक्यं षण्णामपि धर्मादिद्रव्याणां सङ्गृह्यते। आदिशब्दात् चेतनाचेतनपर्यायाणां सर्वेषामेकत्वं पर्यायत्वाविशेषाद् इत्यादि दृश्यमित्यपरसङ्ग्रह इति।

[२१८] अथ परापरसङ्ग्रहाभासं शेषगाथार्द्धेनाह-

सत्ताद्वैतं स्वीकुर्वाणो द्रव्यान्यं यो न मन्यते॥१९६॥

(व्याख्या) अत्र प्रथमं परसङ्ग्रहाभासमाह–**सत्ताद्वैतमित्यादि।** ***सत्ताद्वैतं स्वीकुर्वाणः सकल विशेषान्निराचक्षाणस्तदाभास*** इति (प्र.न.त.७.१७)। निखिलविशेषेष्वौदासीन्यं भजमानो हि परामर्शविशेषः सङ्ग्रहाख्यां लभते, न चायं तथेति तदाभासो भवतीति। अत्रोदाहरणं - ***यथा सत्तैव तत्त्वं ततः पृथग्भूतानां विशेषाणामदर्शनाद्*** इति (प्र.न.त.७.१८)। अद्वैतवाददर्शनं साङ्ख्यदर्शनं चैतदाभासत्वेन ज्ञेयम्। अद्वैतवादस्य सर्वस्यापि दृष्टेष्टाभ्यां विरुद्ध्यमानत्वादिति परसङ्ग्रहाभासः॥१९६॥

एतदेवाह–

[मूल] स्वमत्याद्वैतभावेन साङ्ख्यनैयायिकादयः।
प्रोच्यन्ते सङ्ग्रहाभासः स्याद्वादपक्षिका बुधाः॥१९७॥

(व्याख्या) स्वमत्येत्यादि। स्पष्टम्॥१९७॥

[२१९] अथापरसङ्ग्रहाभासमाह-

[मूल] अत्रावान्तरसामान्यं स्वीकुर्वाणा बलाज्जनाः।
विशेषं नावमन्यन्ते पारिणामिकतादयः॥१९८॥

(व्याख्या) अत्रावान्तरेत्यादि। जना मूढा बलात् = हठादत्रावान्तरसामान्यं स्वीकुर्वाणा ये पारिणामिकत्वादयो विशेषं नावमन्यन्ते स अपरसङ्ग्रहाभासः। *यथा* ***द्रव्यत्वमेव वर्ततेऽर्थान्तरभूताणां द्रव्याणामनुपलब्धेरित्यादिः।*** इति (प्र.न.त.७.२२)। अयं हि द्रव्यत्वस्यैव तात्त्विकतां प्रख्यापयति, तद्विशेषभूतानि तु धर्मादिद्रव्याण्यपह्नुत इत्यपरसङ्ग्रहाभासनिदर्शनम्। तेनेत्थम् (तदित्थम्) अवान्तरसामान्येन जीवद्रव्यं स्वीकुर्वाणोऽपि जीवस्य भव्याभव्यसम्यक्त्वमिथ्यात्वादिभेदं नाङ्गीकुरुते इत्यर्थः। इत्यपरसङ्ग्रहाभासः॥१९८॥

[व्यवहाराभासः]

[२२०] अथ व्यवहाराभासविचारगाथामाह-

[मूल] सङ्ग्रहादृतभावानां परमार्थमजानतः। द्रव्यपर्यायभागं च योऽभिप्रैति स पञ्चमः॥१९९॥

(व्याख्या) अत्र व्यवहारस्त्वेवं तद्यथा- ***येनाभिसन्धिना सङ्ग्रहेण गोचरीकृतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं क्रियते स व्यवहार*** इति (प्र.न.त.७.२३)। अत्रोदाहरणं द्रव्यं धर्मादिषड्विधम्, एवं यो जीवः स मुक्तः संसारी च। यः पर्यायः स द्विविधः- क्रमभावी सहभावी चेति। ***क्रमभाविपर्यायः स क्रियारूपो अक्रियारूपश्चेत्यादि*** (प्र.न.त.अव.७.२४)। अथैतदाभासमाह- **सङ्ग्रहेत्यादि।** यः पुनरपरमार्थिकं द्रव्यपर्यायविभागमभिप्रैति सङ्ग्रहादृतपदार्थानां स पञ्चमो व्यवहाराभासोऽस्तीति। यः पुनः परामर्शविशेषः कल्पनारोपेण तद्द्रव्य-पर्यायप्रविवेकं मन्यते सोऽत्र दुर्नयव्यवहारप्रत्ययः। अत्रोदाहरणं- ***यथा चार्वाकदर्शनम्*** (प्र.न.त.७.२६)। चार्वाको हि प्रमाणप्रतिपन्नं जीवद्रव्यपर्यायादिप्रविभागकल्पनारोपितत्वेनापह्नुतेऽविचारितरमणीयं भूतचतुष्टयप्रविभागमात्रं तु स्थूललोकव्यवहारानुयायितया समर्थयत इत्यस्य दर्शनं व्यवहारनयाभास इति॥१९९॥

[ऋजुसूत्रानयाभासः]

[२२१] अथ ऋजुसूत्राभासगाथामाह-

[मूल] वर्तमानक्षणस्थायिपर्यायमात्रमादृतः। ऋजुसूत्रनयग्राही विपरीतं वदेद्यदा॥२००॥

(व्याख्या) वर्तमानेत्यादि। अत्र प्रथमं ऋजुसूत्रविचारमाह - **वर्तमानेत्यादि**। ऋजुसूत्रनयग्राहको नरोऽतीतानागतं विमुच्य वर्तमानक्षणस्थायी (यि)पर्यायमात्रं यः समादृतः स ऋजुसूत्रः प्रोच्यते। अथैतदाभासमाह- **विपरीतमित्यादि।** सर्वथा द्रव्यापलापी तदाभास इति। सर्वथा गुणप्रधानाभावप्रकारेण तदाभासः। अत्रोदाहरणम्, ***यथा तथागतमतम्*** इति (प्र.न.त.७.३१)। तथागतो हि प्रतिक्षणविनश्वरान्पर्यायानेव पारमार्थिकतया समर्थयते, तदाधारभूतं तु प्रत्यभिज्ञादि-प्रमाणप्रसिद्धं त्रिकालस्थायी द्रव्यं तिरस्कुरुते इत्येतन्मतं तदाभासतयोदाहृत-मित्यर्थः॥२००॥

तदेतदेवाह-

[मूल] दृष्टिज्ञानकषायाणामुपयुक्तो यदा भवेत्।
ऋजुसूत्राभासकः स्यात्कालस्थोऽन्योक्तिसौगताः॥२०१॥

(व्याख्या) स्पष्टम्॥ इति ऋजुसूत्रनयाभासः॥२०१॥

[शब्दनयाभासः]

[२२२] अथ शब्दनयाभासगाथाद्वयमाह-

[मूल] पर्यायैकस्य प्राग्भावस्तिरोभावान्यग्राहकः।
कालालिङ्गादिभेदेन शब्दार्थः शब्दको भवेत्॥२०२॥

[मूल] लिङ्गत्रिवाक्प्रत्ययाद्यैः संयुक्तार्थमुपैति यः।
तद्भेदेऽपि तमेवार्थं शब्दाभासस्तमादरात्॥२०३॥

(व्याख्या) पर्यायेत्यादि। पर्यायैकस्य प्राग्भावेन अन्येषां तिरोभावेन ग्राहक इति यः पर्यायग्राहकः स शब्दनयः। ***कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेदं प्रतिपद्यमानः शब्दः।*** (प्र.न.त.७.३२)। कालादिभेदेन = कालकारक-लिङ्गसङ्ख्यापुरुषोपसर्गभेदेन। अत्रोदाहरणं- ***यथा बभूव भवति भविष्यति सुरगिरिरित्यादिः*** इति (प्र.न.त.७.३३)। अत्रातीतवर्तमानभविष्यल्लक्षणकालत्रयभेदात्कनकाचलस्य भेदं शब्दनयः प्रतिपद्यते, द्रव्यरूपतया पुनरभेदमप्युपेक्षते। एतच्च कालभेदे उदाहरणम्। करोति क्रियते कुम्भ इति कारकभेदे। तटस्तटी तटमिति लिङ्गभेदे। दाराः कलत्रमित्यादि सङ्ख्याभेदे। एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यति, यातस्ते पितेति पुरुषभेदे। सन्तिष्ठते अवतिष्ठते इत्युपसर्गभेदे इति। अथैतदाभासमाह- **लिङ्गत्रिवागित्यादि**। तद्भेदेऽपि तदेवार्थसमादरणरूपः शब्दाभासः। [तद्भेदेन तस्य तमेव समर्थयमानस्तदाभासः(प्र.न.त.७.३४)] तद्भेदेन = कालादिभेदेन ध्वनेस्तमेव = अर्थभेदमेव, शब्दाभासः (प्र.न.त.अव. ७.३४)। अत्रोदाहरणं- ***यथा बभूव भवति भविष्यति सुमेरुरित्यादयो भिन्नकालाः शब्दा भिन्नमेवार्थमभिदधति भिन्नकालशब्दत्वात् तादृग्सिद्धान्यशब्दवदित्यादिः*** (प्र.न.त.७.३५) इति। अनेन हि तथाविधपरामर्शस्थेन वचनेन कालादिभेदाद्भिन्नस्यैवार्थस्याभिधायकत्वं शब्दानां व्यञ्जितम्, एतच्च प्रमाणविरुद्धमिति तद्वचनस्य शब्दनयाभासत्वम्। अन्येऽपि करोति क्रियते कट इत्यादयः शब्दनयाभासे बहून्युदाहरणानि भवन्ति॥ इति शब्दनयाभासः॥२०२॥२०३॥

[समभिरूढनयाभासः]

[२२३] अथ समभिरूढाभासस्वरूपविचारगाथामाह–

[मूल] यः पर्यायध्वनीनां च यावन्माना (अ)भिधेयकाः।
तन्नानात्वं स्वीकुर्वाणो रूढाभासः स उच्यते॥२०४॥

(व्याख्या) अत्र समभिरूढः पर्यायशब्दानां यथा निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन्नभिप्रायविशेषः समभिरूढः तथान्येष्वपि घटकुम्भादिषु द्रष्टव्यः (प्र.न.त.अव.७.३७)। अथैतदाभासमाह- **यः पर्यायेत्यादि**। पर्यायध्वनीनां यावन्माना अभिधेयका भवन्ति तेषामभिधेयानां नानात्वमेव स्वीकुर्वाणः = कक्षीकुर्वाणो रूढाभासः

स उच्यते = निगद्यते इत्यर्थः। अत्रोदाहरणं- ***यथेन्द्रः शक्रः पुरन्दर इत्यादयः शब्दाः भिन्नाभिधेया एव भिन्न-शब्दत्वात्करिमृगतुरगशब्दवदित्यादिः*** (प्र.न.त.७.३९) इति समभिरूढाभासः॥२०४॥

[एवम्भूतनयाभासः]

[२२४] अथैवम्भूताभासस्वरूपविचारगाथामाह-

[मूल] पदार्थानां नामभेदं प्रेक्ष्य भिन्नार्थको वदेत्। एवम्भूताभासकः स प्रोच्यते जिनशासने॥२०५॥

(व्याख्या) एवम्भूतस्तु पुनरिन्दनादिक्रियापरिणतमर्थं तत्क्रियाकाले इन्द्रादिव्यपदेशभाजमभिमन्यते। न हि कश्चिदक्रियाशब्दोऽस्यास्ति, गौरश्व इत्यादिजातिशब्दाभिमतानामपि क्रियाशब्दत्वाद्। गच्छतीति गौराशुगामित्वादश्व इति। शुक्लो नील इति गुणशब्दाभिमता अपि क्रियाशब्दा एव। शुचिभवनात्शुक्लो नीलनान्नील इति। देवदत्तो यज्ञदत्त इति यदृच्छाभिमता अपि क्रियाशब्दा एव - देव एनं देयाद्, यज्ञ एनं देयादिति। संयोगिद्रव्यशब्दाः समवायिद्रव्य-शब्दाश्चाभिमताः क्रियाशब्दा एव, दण्डोऽस्यास्तीति दण्डी; विषाणमस्यास्तीति विषाणीति अस्ति-क्रियाप्रधानत्वात्। पञ्च नया(भेदाः) तु शब्दानां व्यवहारमात्रान्न निश्चयादित्ययं नयः स्वीकुरुते।

अत्रोदाहरणं- ***यथेन्दनमनुभवन्निन्द्रः शकनक्रिया-परिणतः शक्रः पूर्दारणप्रवृत्तः पुरन्दर इत्युच्यते*** (प्र.न.त.७.४१) इति। अथैवम्भूताभासमाह- **पदार्थानामित्यादि।** ***क्रियाविष्टं वस्तु शब्दवाच्यतया प्रतिक्षिपँस्तु तदाभासः*** (प्र.न.त.७.४२) इति। क्रियाविष्टं वस्तु ध्वनिनाभिधेयतया प्रतिजानानोऽपि यः परामर्शस्तदनाविष्टं तत् तेषां तथाक्षिपति न तूपेक्षते स एवम्भूतनयाभास (प्र.न.त.अव.७.४२) इति प्रतीतिघातान्नोदाहरन्ति। अत्रोदाहरणं- यथा विशिष्टचेष्टाशून्यं घटाख्यं वस्तु न घटशब्दवाच्यं घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाशून्यत्वात्पटवदित्यादिः (प्र.न.त.७.४३) इति। अनेन हि वचसा क्रियानाविष्टस्य घटादेर्वस्तुनो घटादिशब्दवाच्यतानिषेधः क्रियते, स च प्रमाणबाधित इति(प्र.न.त.अव.७.४३) तद्वचनमेवम्भूतनयाभासोदाहरणतयोक्तं जिनशासने इत्यर्थः॥ इत्येवम्भूता-भासः॥२०५॥

[शब्दार्थनयाभासौ]

[२२५] अथान्यमपि बालबोधाय नयाभासमाह–

[मूल] शब्दक्षेप्यर्थाभिधायी वदेदर्थनयस्तथा। शब्दाभिधाय्यर्थक्षेपी शब्दाभास स उच्यते॥२०६॥

(व्याख्या) शब्देत्यादि। ***विशिष्टचेष्टारहितं घटाख्यं वस्तु न घटशब्दवाच्यं घटशब्दप्रवृत्ति-निवृत्तिभूतक्रिया-शून्यत्वात् पटवदित्यादि*** इति (प्र.न.त.७.४३)। अतोऽर्थाभिधायी शब्दप्रतिक्षेपी अर्थनयाभासो वदेदित्यर्थः। एवं शब्दाभिधाय्यर्थप्रतिक्षेपी शब्दनयाभास स उच्यत इति॥२०६॥

[अर्पितानर्पितनयाभासौ]

[२२६] अथार्पितानर्पिताभासमाह–

[मूल] अर्पितानर्पिताभासावन्योन्यं प्रतिक्षेपतः।
तत्त्वव्यवहारयोः क्षेपात्स्युर्व्यवहारविनिश्चयौ॥२०७॥

(व्याख्या) अर्पितेत्यादि। अन्योन्यं प्रतिक्षेपेन अर्पितमनर्पितं च प्रतिक्षेपेन क्रमादर्पितानर्पिताभासौ स्याताम् इति। अनर्पितं प्रतिक्षिपन्नर्पितमभिदधानोऽर्पितनयाभासः। तथैवार्पितं प्रतिक्षिपन्ननर्पितमभिदधा-नोनर्पितनयाभासोऽस्ति। **व्यवहारेत्यादि।** तथा तत्त्वव्यवहारयोः क्षेपाद् व्यवहाराभासनिश्चयाभासौ स्यातामित्यर्थः। तथाहि तत्त्वप्रतिक्षेपी लोकव्यवहारमभिदधानो व्यवहाराभासः। तथा तत्त्वमभ्युपगच्छन् व्यवहारप्रतिक्षेपी निश्चयाभासः॥२०७॥

[ज्ञानाभासक्रियाभासौ]

[२२७] अथ ज्ञानाभासक्रियाभासयोः स्वरूपमाह-

[मूल] ज्ञानं गृह्णन्क्रियाक्षेपाज्ज्ञानाभासो निगद्यते।
ज्ञानक्षेपात्क्रियां गच्छन्क्रियाभासो वदेद् बुधः॥२०८॥

(व्याख्या) ज्ञानमित्यादि। क्रियां प्रतिक्षिप्य ज्ञानमभिदधानो ज्ञाननयाभासः। **ज्ञानक्षेपेत्यादि।** तथा ज्ञानं प्रतिक्षिप्य क्रियामभिदधन् क्रियाभासो बुधो वदेदित्यादि बोध्यमिति॥२०८॥

[नयानां परस्परं प्रभूताल्पविषयविचारः]

[२२८] अथात्र नयानां परस्परं प्रभूताल्पविषयविचारगाथामाह-

[मूल] नैगमादिसप्तनयाः पूर्वानुपूर्वयोगतः। पूर्वः प्रभूतविषयः परोऽल्पविषयो भवेत्॥२०९॥

(व्याख्या) नैगमेत्यादि। अत्र नैगमः प्रभूतविषयोऽस्ति सङ्कल्पजन्यसदृशसद्भावग्राहकत्वादथवा सामान्यविशेषसङ्ग्राहकत्वादिति। ततः सङ्ग्रहोऽल्पविषयः सत्तामात्रग्राहकत्वादिति। अथवा परिमितविषयात् सन्मात्रगोचरसङ्ग्रहान्नैगमो भावाभावभूमिकत्वाद् भूरिविषयोऽस्ति। तथा सङ्ग्रहनयः सत्तागतसामान्यविशेषग्राहकोऽस्ति। ततो व्यवहारोऽल्पविषयोऽस्ति सद्विशेषग्राहकत्वादिति। तथा ऋजुसूत्राद् व्यवहारस्त्रिकालविषयत्वाद्बहुविषयोऽस्ति, कालादिभेदेन भिन्नार्थप्रदर्शनादिति। ऋजुसूत्रस्ततोऽल्पविषयोऽस्ति वर्तमानविशेषधर्मग्राहकत्वादिति। तथा शब्दादृजुसूत्रः कालादिवचनलिङ्गविषयाद्बहुविषयस्ततः शब्दोऽल्पविषयोऽस्ति, समग्रपर्यायानामेकपर्यायग्राहकत्वादिति। धर्मव्यक्तवाचकग्राहकत्वेन शब्दतः समभिरूढोऽल्पविषयः। पर्यायकालमभिवाञ्छतः समभिरूढाच्छब्दो बहुविषयोऽस्ति। एवम् एवम्भूतात्समभिरूढः प्रभूतविषयोऽस्ति प्रतिक्रियां भिन्नार्थप्रतिजाननात् तदेवम्भूतात्समभिरूढोऽल्पविषयः॥२०९॥

[२२९] इत्थं ***नयवचनमपि निजविषये प्रवर्तमानं विधिप्रतिषेधाभ्यां सप्तभङ्गीमनुव्रजति*** इति (प्र.न.त.७/५३)। केन हेतुना ? इत्याह-

[मूल] अंशग्राही नैगमोऽस्ति सत्ताग्राहकः सङ्ग्रहः।
गुणलोकप्रवृत्त्योर्यो ग्राही स्याद् व्यवहारकः॥२१०॥

[मूल] ऋजुसूत्रो भवेद्धेतुपरिणामसमादृतः। व्यक्तकार्यग्राहकः स्याच्छब्दो भावप्रवृत्तिकः॥२११॥

[मूल] पर्यायान्तरको भिन्नकार्यग्राही च षष्ठमः। तदृतमुख्यकार्यस्य ग्राह्येवम्भूतको भवेत्॥२१२॥

[मूल] इत्याद्यनेकसद्रूपो नयवादो जिनागमे। विधानप्रतिषेधाभ्यां सप्तभङ्ग्यो भवन्ति च॥२१३॥

(व्याख्या) एते(ताः) चत्वारोऽप्यनुष्टुपः स्पष्टत्वेन न व्याख्याता अत्रेति[१]॥२१०॥२११॥२१२॥२१३॥

[२३०] अथ नयविचारसमाप्तिरूपगाथामाह-

[मूल] इत्थं नयविचारश्च समासेन प्ररूपितः। लोके समग्रभावेषु भवेत्स्याद्वादशासने॥२१४॥

(व्याख्या) इत्थमित्यादि। इत्थम् = एवं नयविचारः समासेन = सङ्क्षेपेण प्ररूपितः = कथितः। कथमित्याह- **लोक इत्यादि।** लोके = चतुर्दशरज्ज्वात्मके समग्रभावेषु = पदार्थेषु स्याद्वादशासने नयप्रवादो भवेदित्यर्थः ॥२१४॥ इति नयाः॥

[सप्तमं प्रमाणद्वारम्]

[२३१] अथ लक्षणसङ्ख्यागाथायां **नयानि चे**ति शब्दोऽस्ति। अत्र चकारात्सप्तमप्रमाणद्वारगाथामाह-

[मूल] तत्प्रत्यक्षपरोक्षाभ्यां प्रमाणं द्विविधं स्मृतम्। अतीन्द्रियं च प्रत्यक्षमक्षजन्यं परं भवेत्॥२१५॥

(व्याख्या) तत्प्रत्यक्षेत्यादि। तत्प्रमाणं प्रत्यक्षपरोक्षाभ्यां द्विविधं स्मृतं = कथितमिति। तत्रानिन्द्रियज्ञानं प्रत्यक्षम्। **अक्षजन्यमिति।** इन्द्रियप्रवृत्तिजन्यं ज्ञानं परोक्षं भवेदित्यन्वयः। अतोऽक्षप्रवृत्तिं विनैव आवरणक्षयोपशमेन निजात्मोपयोगतो यज्ज्ञानं स्यात्तदाद्यमित्यर्थः। तद्भिन्नं परोक्षमिति॥२१५॥

[प्रत्यक्षज्ञानभेदाः]

[२३२] अथ प्रत्यक्षज्ञानभेदमाह–

[मूल] तत्र देशसमग्राभ्यां प्रत्यक्षं द्विविधं श्रुतौ। देशावधिपर्यायौ समग्रं केवलं भवेत्॥२१६॥

(व्याख्या) तत्र देशेत्यादि। तत्र प्रत्यक्षप्रमाणं द्विविधं- देशतः समग्रतश्चेति। श्रुतौ = सिद्धान्तेऽस्ति देशप्रत्यक्षं पुनर्द्विविधम्- अवधिज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं चेति। तत्रावधिज्ञानमसङ्ख्यातविधं भवति। तत्रावधिज्ञानिनः पुमांसो द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया लोके बहवः पर्यायान् पश्यन्तोऽपि कियत्पर्यायाः पश्यन्ति कियन्नेति, अतो देशप्रत्यक्षं भवति। मनःपर्यायज्ञानं तु सार्द्धद्वयद्वीपसमुद्रगतजीवानां मनोगतपर्यायान् जानाति परं समग्रलोकालोकप्रमाणं न जानाति, अतो देशप्रत्यक्षमस्तीति। समग्रप्रत्यक्षं तु केवलज्ञानं भवेदिति। एतच्च लोकालोकगतसर्वद्रव्यगुणपर्यायान् करतलामकमिव जानातीत्यर्थः, केवलान्वयित्वादिति। इति प्रत्यक्षम्॥२१६॥

[परोक्षज्ञानभेदाः]

[२३३] अथ परोक्षप्रमाणभेदविचारगाथामाह-

[मूल] मतिश्रुताभिधानेन परोक्षं द्विविधं स्मृतम्। अनुमानोपमानागमार्थापत्त्यब्धयो भवेत्॥२१७॥

---

१. सदेहजीवः प्रथमेऽपरोऽसङ्ख्यप्रदेशकः। चिन्तनव्यवहारश्च ऋजुसूत्रोपयोगकः॥
शब्दश्चतुर्विधो जीवः गुणयुक्तोऽभिरूढकः। गुणानन्तात्मको जीव एवम्भूतो निगद्यते॥युग्मम्॥
नैगमः सर्वधर्मोऽस्ति सङ्ग्रहः पूर्वजादृतः। व्यवहारः शुद्धहेतुः वैराग्यपरिणामकः॥
सदर्शनः शब्दनयः निजसिद्धोऽभिरूढकः। रूपातीतपरिणामा एवम्भूतो वदेत् खलु॥
सर्वजीवः सिद्धसमः सत्तासिद्धः सुसङ्ग्रहः। लब्धिसिद्धादिभिः सिद्धिः ऋजुसूत्रोपयोगकः॥
शुभशुक्लध्यानशब्दः दर्शनज्ञानषष्ठमः। सिद्धस्थितः सिद्धभावो एवम्भूतो गदेद् ध्रुवम्॥युग्मम्॥
इतने श्लोक **ला.** प्रत में अधिक है।

(व्याख्या) मतिश्रुतेत्यादि। परोक्षप्रमाणं द्विविधं भवति मतिज्ञानं श्रुतज्ञानं चेति। ततः तत् परोक्षं चतुर्विधं विद्यते। तद्यथा- अनुमानप्रमाण-उपमानप्रमाण-आगमप्रमाण-अर्थापत्तिप्रमाणानि भवन्तीति॥२१७॥

[अनुमानप्रमाणलक्षणम्]

[२३४] अथानुमानप्रमाणलक्षणमाह-

[मूल] लिङ्गपरामर्शकं स्यादनुमानप्रमाणकम्।
गिरौ धूमाङ्कमादृत्य साध्यतेऽसौ कृशानुमान्॥२१८॥

(व्याख्या) लिङ्गेत्यादि। लिङ्गपरामर्शस्मृत्युद्भवं चिह्नमादृत्य यज्ज्ञानं तदनुमानप्रमाणं स्यादिति। लिङ्गस्याविनाभूतवस्तुकं नियतं ज्ञेयमिति। अत्र दृष्टान्तमाह-**गिरावित्यादि।** यथा कश्चिन्नरो दूराद्गिरौ व्योमावलम्बिधूमरेखं सम्पश्यानुमानं करोति नगोऽयं वह्निमान्धूमवत्त्वाद्यत्र धूमस्तत्राग्निः महानसादिवदिति। इत्थं पञ्चावयवशुद्धम् अनुमानं यथार्थज्ञानहेतुसाम्यावलम्बनेन पदार्थानां यज्ज्ञानं तदिति॥२१८॥

[उपमानप्रमाणलक्षणम्]

[२३५] अथोपमानप्रमाणगाथामाह-

[मूल] गोसादृश्यत्वभावेन अदृष्टगवयाकृतिः। ज्ञानं स्याद्गवयं प्रेक्ष्य भवेत्तदुपमानकम्॥२१९॥

(व्याख्या) गोसादृश्येत्यादि। 'यथा गोस्तथा गवयः' अदृष्टगवयाकृतिः गवयं प्रेक्ष्य गोसादृश्यभावं स्मृत्वा गवय इति ज्ञानं यस्य स्यात्तदुपमानप्रमाणकं भवेदित्यर्थः॥२१९॥

[आगमप्रमाणलक्षणम्]

[२३६] अथागमप्रमाणविचारमाह-

[मूल] यथार्थवस्तुभावज्ञो वीतरागो जिनेश्वरः। तदुक्ताः सकला वाचः स्यादागमप्रमाणकम्॥२२०॥

(व्याख्या) यथार्थेत्यादि। यथार्थं चेदं वस्तु च यथार्थवस्तु, तेषां यथार्थवस्तूनां भावं जानातीति यथार्थवस्तुभावज्ञः, वीतरागो विशेषेण इतो = गतो रागो द्वेषश्च यस्य स वीतरागो **जिनेश्वर इति।** जिनानां = सामान्यकेवलीनामीश्वरो जिनेश्वरः। समवसरणस्थसभायामुपदेशरूपं समग्रं वचनम् आगम प्रमाणं स्यादित्यर्थः। तदनुयायिचतुर्दशदशपूर्वधरप्रत्येकबुद्धादिनिर्मितशास्त्रमप्यागमप्रमाणमिति। उक्तं च-

सुत्तं गणहररइयं तहेव पत्तेयबुद्धिणा रइयं। सुयकेवलिणा रइयं अभिन्नदसपुव्विणा रइयं॥

इति॥२२०॥

[अर्थापत्तिप्रमाणलक्षणम्]

[२३७] अथार्थापत्तिप्रमाणगाथामाह–

[मूल] यथा पीनो देवदत्तो वासरे तु न भुज्यते। अर्थान्नक्ताशनो ज्ञातस्तदर्थापत्तिकं भवेत्॥२२१॥

(व्याख्या) यथेत्यादि। यथेति दृष्टान्तः पीनो देवदत्तः दिवसे तु न भुज्यते। **अर्थादित्यादि।** अनेनार्थाद्रात्रौ भोजनमागतमिति ज्ञातम्। एतदेवार्थापत्तिप्रमाणं चतुर्थं भवेदित्यर्थः॥२२१॥

[ज्ञानफलम्]

[२३८] अथैतज्ज्ञानफलमाह–

[मूल] नयप्रमाणकादीनां परिपाटीमुपेत्य यत्। जीवाजीवादिभावज्ञः तज्ज्ञैस्तज्ज्ञानमुच्यते॥२२२॥

(व्याख्या) नयप्रमाणकादीनां परिपाटीं = व्यवस्थामङ्गीकृत्य जीवाजीवादितत्त्वानां यथार्थं भावं जानाति = प्ररूपयति तद् ज्ञानमिति। न तु मनःकल्पनीयनैयायिकसाङ्ख्यकादिप्रोक्तं ज्ञानमिति। **नयप्रमाणादि** इत्यत्रादिशब्देन निक्षेपसप्तभङ्गी बोद्धव्येति॥२२२॥

[दर्शनचारित्रयोः विचारः]

[२३९] अथ दर्शनविचारगाथामाह-

[मूल] जिनोक्ततत्त्वश्रद्धानं तत् सम्यग्दर्शनं वदेत्। यथार्थहेयोपादेयैः स्वरूपरमणात्मकम्॥२२३॥

[मूल] परसङ्गत्यागपूर्वं निजात्मरमणात्मकम्। संयमं साधनादेतत् सिद्धिर्भवति नान्यथा॥२२४॥[१]

(व्याख्या) जिनोक्तेत्यादि। यस्य **यथार्थहेयोपादेयैः** = कृत्याकृत्यहेयोपादेयैर्यथार्थतया जिनोक्ततत्त्वार्थ-श्रद्धानं तत् सम्यग्दर्शनं वदेदिति। तदुक्तमुत्तराध्ययने-

जीवाजीवा य बंधो य पुन्नं पावासवो तहा। संवरो निज्जरा मुक्खो संतेए तहिया नव॥

तहियाणं तु भावाणं सब्भावउवएसणं। भावेण सद्दहंतस्स सम्मत्तं तं वियाहियं॥ (उ.सू.२८.१४,१५)

इति दर्शनम्।

तथा परपरिणतिपरित्यागपूर्वकं विमलनिजपरिणतिपरिणमनात्मकं चारित्रमिति ज्ञेयम्। एतद्रत्नत्रयसाधनात्-सिद्धिर्भवति॥२२३॥२२४॥

[प्रमाणस्य लक्षणम्]

[२४०] [मूल] स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणं वदेच्छ्रुतौ। इष्टान्यवस्तुविज्ञानस्वीकारान्यक्षमं तथा॥२२५॥

(व्याख्या) स्वपरेत्यादि। तत्र स्वम् = आत्मा ज्ञानस्य स्वरूपम्, परः स्वस्मादन्योऽर्थ इति यावत्। विशेषेणतौ यथाव्यवस्थितस्वरूपेण व्यवस्यति = निश्चिनोतीत्येवं शीलं यत्तत्स्वपरव्यवसायि। ज्ञायते = प्राधान्येन विशेषो गृह्यतेऽनेनेति ज्ञानम्। एतद्विशेषणमज्ञानरूपव्यवहारधुराधौरेयतामनादधानस्य स्वसमयप्रसिद्धदर्शनस्य, सन्निकर्षादेश्चा-चेतनस्य नैयायिकादिकल्पितस्य प्रामाण्यनिराकरणार्थम्। तस्यापि च तथा प्रत्यक्षरूपस्य शाक्यैर्निर्विकल्पतया प्रामाण्येन जल्पितस्य, संशयविपर्ययानध्यवसायानां च प्रमाणत्वव्यवच्छेदार्थं व्यवसायीति। परोक्षबुद्ध्यादिवा-दिमीमांसकादीनां बाह्यार्थापलापिनां ज्ञानाद्यद्वैतवादिनां च दुर्नयपक्षबलनिरासाय स्वपरेति स्वरूपविशेषणार्थ-मुक्तमिति। (प्र.न.त.अव.)श्रुतौ = प्रवचने वदेदित्यर्थः। अत्रैव ज्ञानमिति विशेषणं समर्थयन्नाह- इष्टानिष्टवस्तुविज्ञान-स्वीकारतिरस्कारक्षमं प्रमाणं तथेति वदेदित्यर्थः। अनेन *अभिमता-नभिमतवस्तुस्वीकारतिरस्कारक्षमं हि प्रमाणमतो ज्ञानमेवेदम्* (प्र.न.त.१.३) इत्याशयः। इष्टम् = अभिमतमुपादेयम्, अनिष्टम् = अनभिमतं हेयम्। तद्द्वयमपि द्वेधा-मुख्यं गौणं च। तत्र मुख्यं सुखं दुःखं च। गौणं पुनस्तयोः कारणं कुसुमकुङ्कुमकामिनीकटाक्षादिकम्, खल-कलह-

१. यह श्लोकः **सं.** प्रत में नहीं है।

कालकूट-कण्टकादिकं च। एवंविधयोरभिमतानभिमतवस्तुनोः यौ स्वीकारतिरस्कारौ = प्राप्तिपरिहारौ तयोः क्षमं = समर्थं प्रापकं परिहारकं चेत्यर्थः। अनयोरुपलक्षणत्वादेत-दुभया-भावस्वभाव उपेक्षणीयोऽप्यत्रार्थे लक्षयितव्यः। खलु रागगोचरोऽभिमतो द्वेषविषयोऽनभिमतो रागद्वेषद्वितयानालम्बनं तु तृणादिरुपेक्षणीयस्तस्य चोपेक्षकं प्रमाणं तदुपेक्षायां समर्थमित्यर्थः। यस्मादभिमतानभिमतवस्तुस्वीकार-तिरस्कारक्षमं प्रमाणमत इदं ज्ञानमेव भवितुमर्हति, नाज्ञानरूप-मिति-(प्र.न.त.अव.)॥२२५॥

[२४१] अथ प्रमाणार्थे विचारगाथामाह–

[मूल] सर्वनयस्वरूपस्य ग्राहकं यत्प्रमाणकम्। पारिणामिकभावेन प्रमाता चेतनो भवेत्॥२२६॥

(व्याख्या) सर्वनयेत्यादि। अत्र यत्समग्रं नयस्वरूपस्य ग्राहकं तत्प्रमाणमिति। तत्र सर्वप्रमेयप्रमाता प्रत्यक्षादि-प्रमाणसंसिद्धः पारिणामिकभावेन चैतन्यस्वरूपोऽस्ति। उत्पादव्ययोः परिणमनरूपत्वात् यः कर्ता स एव भोक्ता, यो भोक्ता स एव कर्तास्तीति॥२२६॥

[जीवस्य रत्नत्रयसाधनस्वरूपम्]

[२४२] अथ जीवस्य रत्नत्रयसाधनस्वरूपमाह-

[मूल] स्वदेहमानमात्रोऽस्ति क्षेत्रं प्रति विभिन्नतः। रत्नत्रयसाधनेन जीवः सिद्धिं समश्नुते॥२२७॥

(व्याख्या) स्वदेहेत्यादि। जीवो भवे स्वदेहपरिमाणमात्रोऽस्ति। भाजनान्तरलघुभाजनस्थप्रदीपप्रकाशवदिति। **क्षेत्रमित्यादि।** क्षेत्रं प्रतिदेहं प्रतिभिन्नस्वभावतः पञ्चकारणसामग्रीयोगतो ज्ञानादिरत्नत्रयधनेन जीवस्य सिद्धिर्निष्पद्यते इति। तथा विमलाविनाशिनिष्कलङ्कस्वगुणनिरावरणनिजकार्यप्रवृत्त्यव्याबाधसुखान्वितसिद्धि-र्निष्पद्यते इति॥२२७॥ इति प्रमाणद्वारम्॥

[अष्टमं भावद्वारम्]

[२४३] अथ भावद्वारमाह–

[मूल] धर्माधर्माभ्रकालेषु भावोऽस्ति पारिणामिकः। भावोदयपरिणामौ नयनौ पुद्गले भवेत्[१]॥२२८॥

(व्याख्या) धर्मेत्यादि। द्रव्येषु जीवं विमुच्य धर्मादिचतुष्केषु पारिणामिकभावोऽस्ति। पुद्गले {नयनौ = }द्वौ भावौ उदयपरिणामाभिधौ भवेदि(भवतः इ)त्यर्थः॥

[पुद्गलेषु भावाः]

[२४४] अथ पुद्गलेषु भावानाह-

[मूल] पुद्गले च परिणामः स्कन्धेष्वादिस्वभावतः।
तथाविहायोपशमं भावाः स्युर्विघ्नावरणेऽब्धयः॥२२९॥

(व्याख्या) पुद्गलेत्यादि। पुद्गले परिणामोदयौ भवतः। तत्र द्व्यणुकादिस्कन्धेषु सादिकालत्व स्वभावेन परिणमनात्पारिणामिकत्वं, तथा सुरशैलादौ पुद्गलस्कन्धानामनादिकालस्वभावत्वेन परिणमनादिपारिणामिकत्व-

---

१. यहां पर **भवतः पुद्गले भावौ ह्युदयपरिणामकौ/परिणामोदयात्मकौ** पाठ अधिक संगत प्रतीत होता है।

मित्यर्थः। तथा येऽनन्तपरमाण्वात्मकाः स्कन्धास्ते पारिणामिकभावे औदयिकभावे च प्रवर्तन्ते। कथमेवम्? उच्यते, जीवेष्वनन्तप्रदेशस्कन्धानाम् कर्मरूपतयोदयात्तथा शरीरादीनामुदयजनितौदारकादि-शरीरतया औदारकादीनां स्कन्धानामुदयः। केवलाणवस्तु पारिणामिके एव भवन्ति। जीवस्य केवलानामणूनां ग्रहणाभावान्नौदयिक भाव इति। **तथेति।** तथाशब्देन कर्माष्टकग्रहणमिति, आवरणादयः पुद्गल(लानामुदय)भावेन गृहीतत्वादिति तेन। अथ तेषु भावविचारमाह– **विहायेत्यादि**। विघ्नावरणेषु ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायेषु उपशमं विहाय अब्धयः = चत्वारो भावाः क्षायिक-मिश्र-औदयिक-पारिणामिकलक्षणाः स्युरित्यर्थः। तत्रापि केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरण-योर्विपाकोदयविपक्षभावतः क्षायोपशमसम्भव इति॥२२९॥

[मोहनीयादिषु भावविचारः]

[२४५] अथ मोहनीयादिषु भावविचारगाथामाह-

[मूल] नामगोत्रायुर्वेदेषु त्यक्तोपशममिश्रकम्। त्रयो भावाः पञ्च मोहे भवन्ति जिनशासने॥२३०॥

(व्याख्या) नामेत्यादि। नामगोत्र-आयुर्वेदनीयकर्मचतुष्केषु उपशममिश्रकं विमुच्य क्षायिक-औदयिक-पारिणामिक-लक्षणा त्रयो भावा भवन्तीत्यर्थः। **पञ्चेत्यादि।** मोहे पञ्च भावा भवन्तीति। जिनमते इत्यर्थः॥२३०॥

[गतिमाश्रित्य भावाविचारः]

[२४६] अथ गतिमाश्रित्य भावानाह-

[मूल] गतिष्वपि पञ्च पञ्च भावाः सन्ति शिवालये।
परिणामक्षायिकौ स्तो भावद्वारं निरूपितम्॥२३१॥

(व्याख्या) गतीत्यादि। अपिः = निश्चयेन। मनुजादिचतुर्षु गतिषु पञ्च पञ्च भावा भवन्ति। कथम्? उच्यते, औपशमिकं सम्यक्त्वम्, क्षायिकं सम्यक्त्वम्, क्षयोपशमिकानीन्द्रियाणि, औदयिको गत्यादिः पारिणामिको जीवत्वादिरिति भवन्ति। तथा **शिवालये इति।** सिद्धगतौ परिणामिकक्षायिकौ भावौ स्तः। तत्र क्षायिको ज्ञानादिः, पारिणामिकं जीवत्वमिति भवतः। इति मूलभावद्वारं निरूपितम्॥२३१॥

[जीवद्रव्ये भावविचारः]

[२४७] अथ जीवद्रव्ये भावविचारगाथामाह-

[मूल] गतिस्थितेषु जीवेषु सर्वे भावा भवन्ति च। परिणाम क्षायिकौस्तो जीवेषु मोक्षपत्तने॥२३२॥

(व्याख्या) स्पष्टम्॥ इति षड्द्रव्येषु औपशमिकादयो मूलषड्भावाः प्रोक्ताः॥२३२॥

[चतुर्दशगुणस्थानकेषु भावविचारः]

[२४८] अथात्रोत्तरभावानां प्रबोधाय जीवपरिणमितभावस्वरूपप्रदर्शनाय चतुर्दशगुणस्थानकगाथाद्वयमाह–

[मूल] मिथ्यासास्वादनमिश्राव्रतदेशव्रताभिधाः।
प्रमत्तान्यौ निवृत्त्यन्यौ सूक्ष्मोपशमक्षीणकाः॥२३३॥

[मूल] गुणाः सयोग्ययोगी च भवन्ति जिनशासने।
लोके भवस्थजीवस्य परिणामविशेषकाः॥२३४॥युग्मम्॥

(व्याख्या) मिथ्येत्यादि गाथायुगलम्। लोके भवस्थजीवस्य परिणामविशेषका जिनशासने गुणाः = गुणस्थानका भवन्तीति। तथाहि- मिथ्यात्व-सास्वादन-मिश्र-अविरति-देशविरति-प्रमत्त-अप्रमत्त-निवृत्तिबादर-अनिवृत्तिबादर-सूक्ष्मसम्पराय-उपशमसम्पराय-क्षीणमोह-सयोगि-अयोगिन एते गुणस्थानका भवन्तीत्यर्थः॥ अथात्र भावोत्तर-त्रिपञ्चाशद्भेदास्तु द्वारगाथायां पूर्वोक्ता एव भवन्ति। तथाहि- उपशम-क्षायिक-क्षायोपशम-उदय-पारिणामिकाः सर्वे-५३॥२३३॥२३४॥

उपशम	क्षायिक	मिश्र	औदयिक	पारिणामिक	सान्निपातिक
२	९	१८	२१	३	सर्वे ५३

[२४९] अथ जीवेषु गुणस्थानमादृत्य भावप्ररूपकगाथाद्विकमाह-

[मूल] मिश्रोदयपरिणामा भावाः सन्ति गुणत्रिके। तथा व्रतादीभगुणे पञ्च भावा भवन्ति च॥२३५॥

[मूल] क्षीणे भवन्ति चत्वारो विमुच्योपशमं तथा। विहाय मिश्रोपशमं त्रयो भावान्त्यके द्विके॥२३६॥

(व्याख्या) मिश्रेत्यादि। मिश्रश्चोदयश्च परिणामश्चेति द्वन्द्वः। क्षायोपशमिकोदयपरिणामिकलक्षणाः त्रयो भावा **गुणत्रिके इति।** प्रथममिथ्यात्वादित्रिकगुणस्थानकेषु जीवस्य भवन्ति। तत्र क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि, औदयिकी गतिः, पारिणामिकं जीवत्वमिति। **तथेत्यादि।** ततः **अव्रतादीभगुणेत्यादि**। अविरताद्युपशमान्ताष्टगुणस्थानकेषु उपशमादयः पञ्च पञ्च भावा भवन्ति। कथम्? औपशमिकसम्यक्त्वमविरताद्यष्टगुणान्तं यावल्लभ्यते, क्षायिक-सम्यक्त्वमविरतादिगुणैकादशं यावत्प्राप्यते, क्षायोपशमिकानीन्द्रियाणि सम्यक्त्वाद्यविरतादिप्रमुखं गुणेषु चतुष्केषु प्राप्यते। ततोऽग्रे तु अपूर्वानिवृत्ति-बादरसूक्ष्मसम्परायोपशान्तेषु क्षायोपशमिकानीन्द्रियादीनि भवन्ति, न तु क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वमिति। औदयिकी गतिः पारिणामिकं जीवत्वमिति। चः पादपूरणे॥ **क्षीणेत्यादि।** तथोपशमिकं सम्यक्त्वं विमुच्य। **क्षीणेति**। क्षीणमोह-द्वादशम-गुणस्थानके क्षायोपशमिकादयश्चत्वारो भावा भवन्ति। तत्र क्षायोपशमिकानीन्द्रियादीनि, औदयिकी गतिः, पारिणामिकं जीवत्वं, क्षायिकं सम्यक्त्वं चेति। **विहायेत्यादि**। अन्त्यद्विके सयोग्ययोगिगुणस्थानकद्विके **मिश्रोपशमेति।** क्षायोपशमोपशमं विहाय = परित्यज्य त्रयो भावा इति। क्षायिकोदयपारिणामिकलक्षणा(णि?) त्रयो भावा लभ्यन्ते इति, कथम्? उच्यते, क्षायिकं केवलज्ञानादि, औदयिकी गतिः, पारिणामिकं जीवत्वमिति। स्थापना चेयम्-

गुण	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	नि	नि	सू	उ	क्षी	स	अ
मूलभाव	३	३	३	५	५	५	५	५	५	५	५	४	३	३

इति चतुर्दशगुणस्थानकेषु मूलभावाः प्रोक्ताः॥२३५॥२३६॥

[चतुर्दशगुणस्थानकेषु क्षयोपशमभावविचारः]

[२५०] अथ जीवेषु भावोत्तरद्वारविचारगाथामाह–

[मूल] मिथ्यासास्वादने सन्ति दिग्भेदा मिश्रकस्य च।
चक्ष्वचक्ष्वज्ञानत्रिकं दानादिशरलब्धयः॥२३७॥

(व्याख्या) मिथ्येत्यादि। मिथ्यासास्वादनगुणस्थानद्विके मिश्रकस्य = क्षयोपशमभावस्य चक्षुः-अचक्षुः-अज्ञानत्रिक-दानादिपञ्चलब्धयो दशभेदाः सन्तीत्यन्वयार्थः॥२३७॥

[२५१] अथ तृतीयतूर्यगुणयोः भावोत्तरद्वारगाथामाह–

[मूल] मिश्रे स्युर्मिश्रसम्यक्त्वं दर्शनज्ञानगुप्तिकम्। दानादिलब्धयः पञ्च तूर्येऽपि द्वादशस्तथा॥२३८॥

(व्याख्या) मिश्रे स्युरित्यादि। मिश्रे = मिश्रगुणे सम्यग्मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वम्। **दर्शनेत्यादि।** चक्षुः-अचक्षुः-अवधिदर्शनत्रयम्, तथा ज्ञानत्रयम्, दानादिलब्धिपञ्चकं इत्येवंलक्षणा द्वादश स्युः। अत्र ज्ञानाज्ञानान्यतरांशबाहुल्यमुभयांशमतो वा स्याद्। अत्र ज्ञानबाहुल्यविवक्षया ज्ञानत्रयमुक्तम्। अत्र गुणस्थानके यदवधिदर्शनमुक्तं तत्सैद्धान्तिकमतापेक्षया। तथा तूर्ये अविरतगुणे मिश्रं विमुच्य क्षायोपशमसम्यक्त्वक्षेपेण द्वादश भावाः स्युरित्यर्थः॥२३८॥

[२५२] अथ पञ्चमादिगुणस्थानत्रिके भावप्ररूपकगाथामाह–

[मूल] व्रतद्वादशक्षेपेण पञ्चमे स्युस्त्रयोदश। चतुर्दश पर्ययेन षष्ठमे सप्तमे गुणे॥२३९॥

(व्याख्या) व्रतेत्यादि। पञ्चमे देशविरतिगुणस्थाने द्वादशविरतिक्षेपेण क्षायोपशमिकभावास्त्रयोदश स्युरिति। तथा षष्ठमसप्तमगुणस्थानके पर्ययेन = मनःपर्यायज्ञानक्षेपेन चतुर्दश भावाः स्युरिति। कथम्? उच्यते, दानादिलब्धिपञ्चकम्, दर्शनत्रिकम्, ज्ञानत्रिकम्, सम्यक्त्वं सर्वविरतिश्च एवंलक्षणास्त्रयोदश, तथा पर्यायज्ञानप्रक्षेपेन चतुर्दश प्रमत्ताप्रमत्तयोः क्रमादित्यर्थः॥२३९॥

[२५३] अथाष्टमनवमदशमगुणेषु भावविचारमाह–

[मूल] निवृत्त्यादित्रिकगुणे क्षायोपशमकं विना। संयमाभावयोगेन द्वादश स्युर्गुणद्विके॥२४०॥

(व्याख्या) निवृत्त्यादीत्यादि। निवृत्तिबादर-अनिवृत्तिबादर-सूक्ष्मसम्परायगुणत्रिकेषु क्षायोपशमसम्यक्त्वं विना क्षायोपशमिकाः त्रयोदश भावा भवन्ति। तथाहि—दर्शनत्रिक-ज्ञानचतुष्क-दानादिलब्धिपञ्चक-सर्वविरतिलक्षणानि त्रयोदश भवन्तीत्यर्थः। अष्टमादित्रिकगुणेषु क्षायोपशमसम्यक्त्वं तु न प्राप्यत इति। **संयमेत्यादि।** तथा गुणद्विके उपशान्तमोहैकादशमगुणे क्षीणमोहद्वादशमगुणे च क्षायोपशमिकसंयमाभावयोगेन द्वादश भावाः स्युरित्यर्थः। पूर्वोक्तरूपा एव भवन्तीति॥२४०॥ इति गुणेषु क्षायोपशमिकोत्तरभावभेदाः॥

[चतुर्दशगुणस्थानकेषु औदयिकभावविचारः]

[२५४] अथ गुणे औदयिकभावोत्तरभेदविचारगाथामाह-

[मूल] नखाधिकैको मिथ्यात्वे औदयिकस्य विंशतिः।
भेदा भवन्ति द्वितीये मिथ्यात्वाभावयोगतः॥२४१॥

(व्याख्या) नखेत्यादि। मिथ्यात्वगुणस्थानके औदयिकस्योत्तरभेदा नखाधिकैकः = एकविंशतिर्भवन्ति।

तथा द्वितीये = सास्वादनगुणे मिथ्यात्वाभावयोगतो विंशतिर्भेदा भवन्तीत्यर्थः। तथाहि-अज्ञान-असिद्धत्व-लेश्या-संयम-कषायचतुष्क-गतिचतुष्क-वेदत्रिक-मिथ्यात्वैकविंशतिर्मिथ्यात्वे, द्वितीये मिथ्यात्वं विना विंशतिर्भेदा भवन्ति ॥२४१॥

[२५५] अथान्यस्मिन्गुणस्थानके औदयिकभावगाथामाह–

[मूल] तृतीयाब्ध्योर्दशखगा मुक्त्वाज्ञानं च पञ्चमे। नारकामरभावेन भवन्त्यद्रिदशोदयाः॥२४२॥

(व्याख्या) तृतीयेत्यादि। तृतीयतूर्यगुणस्थानकयोः = मिश्राविरतिलक्षणयोरज्ञानं विमुच्य दशखगाः = एकोनविंशतिभेदा असिद्धत्व-लेश्या-संयम-कषाय-गति-वेदत्रय-लक्षणा भवन्ति। तथा पञ्चमे देशविरतौ गुणे नारकसुरगत्य-भावेन अद्रिदशोदया = औदयिकसप्तदशभेदाः असिद्धत्व-लेश्या-संयम-कषाय-नरगति-तिर्यग्गति-वेद-त्रयलक्षणा भवन्तीति॥२४२॥

[२५६] अथ प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानकयोः औदयिकभावविचारगाथामाह-

[मूल] सुतिर्यक्संयमाभावात्[1]षष्ठमेषुदशो भवेत्। निकृष्टलेश्याभावेन सप्तमे सन्ति द्वादशः॥२४३॥

(व्याख्या) तिर्यगित्यादि। षष्ठमे प्रमत्तगुणस्थानके तिर्यगसंयमाभावेन इषुदश = पञ्चदशभेदा असिद्धत्व-लेश्या-कषाय-नरगति-वेदत्रयलक्षणा औदयिकभावा भवन्ति। **निकृष्टेत्यादि।** तथा सप्तमे अप्रमत्तगुणे कृष्णादिले-श्यात्रिकाभावेन औदयिकभेदाः असिद्धत्व-शुभलेश्या-कषाय-नरगति-वेदत्रय लक्षणाः द्वादश भवन्ति॥२४३॥

[२५७] अथाष्टमनवमदशमगुणस्थानेषु औदयिकभावविचारगाथामाह-

[मूल] तेजःपद्मविहीनेन मातङ्गनवमे दश। वेदादिमकषायाग्निहीनाः स्युर्दशमेऽब्धयः॥२४४॥

(व्याख्या) तेज इत्यादि। अष्टमे अपूर्वकरणगुणे तथा नवमे अनिवृत्तिबादरगुणे च तेजः पद्मलेश्याद्वयविहीनेन दश = दशभेदा असिद्धत्व-शुक्ललेश्या-कषाय-नरगति-वेदत्रयरूपा औदयिकभावस्य भवन्तीति। **वेदेत्यादि।** दशमे सूक्ष्मसम्परायगुणे आदिमश्चासौ कषायश्च आदिमकषायः, वेदश्च आदिमकषायश्चेति द्वन्द्वः तत्त्रिकहीनादिति। वेदत्रयादिकषायत्रयरूपषट्प्रकृतिविहीनादब्धयः = चत्वारो भेदाः स्युरित्यर्थः। तथाहि-असिद्धत्व-शुक्ल-सञ्ज्वलन-लोभ नरगतिलक्षणा इति॥२४४॥

[२५८] अथ शेषगुणेषु औदयिकभावविचारगाथामाह–

[मूल] लोभाभावात्त्रयो भेदा भवन्त्युपरिमत्रिके। शुक्लाभावेन चरमे भेदौ द्वौ भवतः खलु॥२४५॥

(व्याख्या) लोभेत्यादि। सञ्ज्वलनलोभाभावादुपरिमत्रिके = उपशान्तमोह-क्षीणमोह-सयोगि-गुणत्रिके असिद्धत्व-शुक्ल-नरगतिरूपास्त्रयो भेदा भवन्तीति। तथा चरमे अयोगिगुणस्थानके शुक्लाभावेन खलु = निश्चयेन नरगति-असिद्धत्वरूपौ द्वौ भेदौ भवत इत्यर्थः॥२४५॥ इत्यौदयिकभावभेदाः प्रोक्ताः॥

[चतुर्दशगुणस्थानकेषु उपशमभावविचारः]

[२५९] अथ गुणेषु उपशमभावभेदविचारगाथामाह-

[मूल] तूर्याद्युपशमान्तेषु भावश्चोपशमो भवेत्। नवमैकादशान्ते स्यात्संयमोपशमं नरान्॥२४६॥

---

१. यहां पर **तिर्यगसंयमाभावात्** पाठ अधिक संगत प्रतीत होता है।

(व्याख्या) तूर्येत्यादि। अविरताद्युपशमान्तं यावद् गुणस्थानकेषु उपशमसम्यक्त्वलक्षण उपशमभावभेदो लभ्यते इति। तथा **नवमैकादशान्तेत्यादि।** नवमदशमैकादशमगुणस्थानकत्रिके नरान्संयमोपशमं शास्त्रान्तरे उपशमचारित्रस्य प्रतिपादनादुपशमभावभेदौ भवत इति॥२४६॥ इत्यौपशमिकभावभेदाः प्रोक्ताः॥

[चतुर्दशगुणस्थानकेषु क्षायिकभावविचारः]

[२६०] अथ गुणेषु क्षायिकभावभेदविचारगाथाद्विकमाह-

[मूल] तूर्याद्यष्टगुणस्थाने क्षायिकदर्शनं भवेत्। क्षीणे क्षायिकयोगेन क्षायिकसंयमोऽपि हि॥२४७॥

[मूल] दानादिलब्धयः पञ्च सम्यक्त्वं केवलद्विकम्।
संयमं च सन्ति भेदाः क्षायिकस्यान्त्यके द्विके॥२४८॥

(व्याख्या) तूर्यादित्यादि। अविरत-देशविरति-प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वानिवृत्ति-सूक्ष्मसम्परायोपशान्तगुणाष्टकेषु श्रुते क्षायिकदर्शनमुक्तं तेन क्षायिकदर्शनं भवति, नान्यत्। तथा **क्षीणेत्यादि।** क्षीणमोहगुणे क्षायिकसम्यक्त्वयोगेन हि = अस्माद्धेतोः क्षायिकसंयमोऽपि भवेदिति। अनेन क्षायिकदर्शनं क्षायिकसंयमश्चेति द्वौ भेदौ भवतः। एतदेवाह- **दानादीत्यादि** सूत्रम्। अन्त्यकद्विके = सयोग्ययोगिगुणद्विके क्षायिकभावस्य दानादिलब्धिपञ्चक-क्षायिकसम्यक्त्व-केवलद्विक-यथाख्यातसंयमलक्षणाः खेटोन्मिताः सन्तीत्यन्वयः॥२४७॥२४८॥ इति क्षायिकभावभेदाः॥

[चतुर्दशगुणस्थानकेषु पारिणामिकभावविचारः]

[२६०] अथ पारिणामिकभावभेदगाथाद्विकमाह–

[मूल] जीवभव्याभव्यभेदा मिथ्यात्वे च त्रयं भवेत्।
द्वितीयात्क्षीणमोहान्तं मुक्त्वाभव्यमुभौ तथा॥२४९॥

[मूल] विहाय भव्यं जीवोऽस्ति गुणस्थानेऽन्त्यके द्विके।
इत्थमेते पञ्च भावा गुणस्थानेषु निर्ममे॥२५०॥

(व्याख्या) जीवेत्यादि।मिथ्यात्वगुणे जीवत्व-भव्यत्व-अभव्यत्वलक्षणा भेदाः त्रयः पारिणामिका **भवेदिति।** भवन्तीति। **द्वितीयादित्यादि।** तथा सास्वादनगुणादारभ्य क्षीणमोहं यावदभव्यं मुक्त्वा जीवत्व-भव्यत्वलक्षणौ उभौ द्वौ **तथेति** भवेतामित्यर्थः॥ **विहायेत्यादि** सूत्रम्। अन्त्यके द्विके सयोगि-अयोगि-गुणस्थानकद्विके भव्यं विहाय जीवत्वमेक एव पारिणामिकभेदोऽस्तीत्यर्थः। ननु केवलिनश्च कथं न भव्यत्वम्? उच्यते, प्रत्यासन्नसिद्धावस्थाया भव्यत्वस्याभावादधुनापि तदपगतप्रायत्वादिना केनापि कारणेन शास्त्रान्तरेषु नोक्तमिति अतोऽत्रापि न प्रोक्तमिति। **इत्थमित्यादि।** इत्थम् = अमुनाप्रकारेण एते पूर्वोक्ताः पञ्चभावा मूलोत्तरभेदभिन्ना गुणस्थानेषु निर्ममे = चकथे इत्यर्थः॥२४९॥२५०॥ इति पञ्च भावाः॥

[चतुर्दशगुणस्थानकेषु सान्निपातिकभावविचारः]

[२६२] अथ सन्निपातकोत्तरभेदगाथामाह-

[मूल] गुप्त्यम्बरादब्धियुगगुप्तिपञ्चाब्धिपावकयोगेन सप्तमे त्रिंशन्नखादद्रिगजाधिकाः॥२५१॥

[मूल] नखाद्युगाधिकनखा दिशो खेटानलाधिकः।

द्वादशान्त्ये गुणे भेदा भवन्ति सन्निपातिकाः॥२५२॥युग्मम्॥

(व्याख्या) गुप्त्यम्बरेत्यादि। अत्र यस्मिन्गुणस्थाने यस्य भावस्य भेदाः प्रोक्तास्तेषां भावभेदानामेकत्र मीलनेन यो निष्पन्नः स षष्ठमः सन्निपातको भावो भवति। तथाहि- गुप्तिश्च अम्बरश्च गुप्त्यम्बरौ इति द्वन्द्वः, गुप्त्यम्बरात् = त्रिंशतेः। अब्धि-युग-गुप्ति-पञ्चाब्धि-पावकयोगेन क्रमात्मिथ्यात्वे चतुस्त्रिंशत्। तथाहि-क्षायोपशमिकभावभेदा दश, तथौदयिक-भावभेदा एकविंशतिः, पारिणामिकभावभेदास्त्रयः, सर्वे मिश्रीकृता सान्निपातकभावाः चतुस्त्रिंशत् भवन्ति। एवं सास्वादने क्षायोपशमिक-औदयिक-पारिणामिकाः सर्वे मिश्रीकृताः सन्निपातकभावभेदा द्वात्रिंशत्। एवं मिश्रे त्रयस्त्रिंशत्। तद्यथा- क्षायोपशमिकाः १२ द्वादश, औदयिकाः १९ एकोनविंशतिः, पारिणामिकौ २ द्वौ। सर्वे मिश्रीकृताः सन्निपातकलक्षणाः ३३ त्रयस्त्रिंशत् भवन्ति। तथा विरतौ क्षायोपशमिकाः १२ द्वादश, औदयिकाः १९ एकोनविंशतिः, औपशमिकः १ एकः, क्षायिकः १ एकः, पारिणामिकौ २ द्वौ। मिश्रीकृताः सन्निपातकभावाः त्रिंशत्पञ्चाधिका भवन्ति। तथा देशविरतौ क्षायोपशमिकाः १३ त्रयोदश, औदयिकाः १७ सप्तदश, औपशमिकः १ एकः, क्षायिकः १ एकः, पारिणामिकौ २ द्वौ मिश्रीकृतलक्षणसन्निपातकभावाश्चतुस्त्रिंशत् भवन्ति। तथा प्रमत्ते क्षायोपशमिकाः १४ चतुर्दश, औदयिकाः १५ पञ्चदश, औपशमिकः १, क्षायिकः १ एकः, पारिणामिकौ २ द्वौ एवंरूपास्त्रयस्त्रिंशद्भेदाः सन्निपातका लभ्यन्ते। तथैवाप्रमत्ते-३० त्रिंशत् सन्निपाता लभ्यन्त इति। तथाष्टमेऽपूर्वकरणे **नखादित्यादि**। विंशतेः क्रमादद्रिगजाधिका ज्ञेया सप्तविंशतिर्भेदा भवन्ति। तथानिवृत्तौ अष्टाविंशतिर्भेदाः सन्तीति। **नखादित्यादि।** तथा सूक्ष्मसम्परायगुणे **नखाद्युगाधिकेति।** द्वाविंशतिः भेदा भवन्ति। तथोपशान्तमोहगुणे **नखेति**। विंशतिः सन्निपातका भवन्ति। तथा क्षीणमोहगुणे दिशः क्रमात्खेटानिलाधिका एकोनविंशतिः भेदा लभ्यन्ते इति। तथा सयोगिगुणे **दिशोऽनिलाधिक**। इति त्रयोदश सन्निपातिकभावभेदा लभ्यन्त इति। तथैवायोगिगुणे द्वादश। सन्निपातका भावभेदा भवन्तीति॥२५१॥२५२॥ इति भावद्वारम्॥ स्थापना चेयम्-

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	पू	नि	सू	उ	क्षी	स	अ
१०	१०	१२	१२	१३	१४	१४	१३	१३	१३	१२	१२	०	०
२१	२०	१९	१९	१७	१५	१२	१०	१०	४	३	३	३	२
०	०	०	१	१	१	१	१	२	२	२	०	०	०
०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	२	९	९
३	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	१	१
३४	३२	३३	३५	३४	३३	३०	२७	२८	२२	२०	१९	१३	१२
१९	२१	२०	१८	१९	२०	२३	२६	२५	३१	३३	३४	४०	४१

सङ्ख्यागुणस्थानक	
गुणस्थान नाम	
क्षयोपशमकभेदाः	१
औदयिकभेदाः	२
औपशमिकभेदाः	३
क्षायिकभेदाः	४
पारिणामिकभेदाः	५
सन्निपातिकभेदाः	६
शेषभेदाः	

इति॥

[नवमं जीवद्वारम्, दशमम् अनुयोगद्वारम्]

[२६३] अथ जीवद्वारगाथामाह–

[मूल] जीवो भवेज्जीवद्रव्यः शेषाः पञ्चाप्यजीवकाः।
सर्वे द्रव्याधिकारेण व्याख्या द्रव्यानुयोगकाः॥२५३॥

(व्याख्या) जीवेत्यादि। धर्मादिषड्द्रव्येषु जीवद्रव्यो जीवो भवेदिति। दशविधप्राणधारणहेतुत्वादिति। शेषाः पञ्चापि धर्मादयोऽजीवा बोद्धव्याः॥ इति जीवद्वारम्॥ अथानुयोगद्वारार्द्धगाथामाह- **सर्वेत्यादि** सूत्रम्। प्रवचने चत्वारोऽनुयोगा भवन्ति। तथाहि- चरणकरणानुयोगः, गणितानुयोगः, द्रव्यानुयोगः, धर्मकथानुयोगः। एतत्सर्व-व्याख्यानं जिना द्रव्यानुयोगिकं वदन्तीत्यनेन एते द्रव्यानुयोगका भवन्तीति॥२५३॥ इत्यनुयोगद्वारम्॥

[एकादशं क्षेत्रद्वारम्]

[२६४] अथ **अनुयोगाश्च** इति चकारेण क्षेत्रद्वारमादृतमस्ति, क्षेत्राभावेन समग्र द्रव्याणामभावः स्यादतः क्षेत्रद्वारमाह-

[मूल] धर्मादिष्वम्बरं द्रव्यं लोकालोकप्रमाणकम्।
क्षेत्ररूपमस्ति शेषाः सन्ति निःक्षेत्रलक्षणाः॥२५४॥

(व्याख्या) धर्मादीत्यादि। धर्मादिषु द्रव्येषु क्षेत्राक्षेत्रविचारणायामेकमाकाशद्रव्यं सर्वगं लोकालोकोन्मितत्वेन सर्वद्रव्यावगाहकत्वेन वा क्षेत्ररूपमस्ति। शेषाः पञ्चापि धर्मादयः सदा निःक्षेत्रलक्षणाः सन्तीत्यर्थः ॥२५४॥

[२६५] अथ समग्रद्वारोपसंहारगाथामाह-

[मूल] रुद्रद्वारानुसारेण सद्भावार्थमुपेत्य च। विमुच्य पुद्गलानन्दं निजभावं समाचर॥२५५॥

(व्याख्या) रूद्रेत्यादि। भो! भव्य! रूद्रशब्देनैकादशेति एतत्पूर्वोक्तैकादशद्वारानुसारेण द्रव्यादीनां सद्भावार्थभावमुपेत्य। **पुद्गलानन्दमिति।** भवे वैभाविकानन्दं विमुच्य। **निजभावमिति।** स्वात्मीयात्मानुभवज्ञानेन यथार्थभावबोधं समाचरेत्यर्थः॥२५५॥

[उपसंहारः]

[२६६] अथैतद्ग्रन्थविनिर्मितिप्रयोजनगाथामाह–

[मूल] जीवा दुर्नययोगेन मिथ्याशासनसङ्गताः। बोधिबीजं परित्यज्य भ्रमन्ति भवकानने॥२५६॥

(व्याख्या) जीवेत्यादि। भवकानने भव एव काननो भवकाननस्तस्मिन् = संसारारण्ये जीवा निजनिजाभिमत-निर्मितशास्त्रानुयायिमिथ्याशासनसङ्गतदुर्नययोगेन बोधिबीजं = सम्यक्त्वं परित्यज्य भ्रमन्तीति॥२५६॥

[२६७] तदानेन किं स्यादत एव गाथामाह–

[मूल] ततः श्रुतगुरुं लब्ध्वा विनयैर्गुरुभक्तितः। द्रव्यभावार्थमालम्ब्य श्रुतबोधमुपार्जय॥२५७॥

(व्याख्या) ततः श्रुतेत्यादि। ततः = तस्मात् कारणात् केनचित् पूर्वकृतपुण्यानुयोगेन श्रुतगुरुं = मुनियोगं लब्ध्वा विनयैर्वेयावच्चादिकैः प्रभूतभक्तितः। **द्रव्येत्यादि।** धर्मादीनां द्रव्यगुणपर्यायाणां सद्भावार्थमालम्ब्य शुभबोधं = सम्यक्त्ववित्तपुञ्जमुपार्जयेत्यन्वय इति॥२५७॥

[२६८] अथ सम्यक्त्वोपार्जनफलकथनगाथामाह-

[मूल] जीवाजीवस्वरूपं च विज्ञाय ज्ञपरिज्ञया। निजात्मगुणवित्तेन भजध्वं श्रेय(यो) मन्दिरम्॥२५८॥

(व्याख्या) जीवाजीवेत्यादि। ततो भव्याः ! सम्यक्त्वपूर्वकं ज्ञपरिज्ञया जीवाजीवयोः सद्भावस्वरूपं विज्ञाय चकारात्प्रत्याख्यानपरिज्ञया हेयोपादेयभावमङ्गीकृत्य। **निजात्मेत्यादि।** निजात्मनो गुणो निजात्मगुणो निःकलङ्काविनाशिकनिर्विकल्पापुनर्भवरूपकेवलान्वयी साद्यनन्तस्थित्यन्वितपरमानन्दरूपात्मको निजात्मदर्शनज्ञानादिवित्तेन श्रेयोमन्दिरं = श्रेयावासं विमलं भजध्वमित्यर्थः॥२५८॥

[२६९] अथैतत्प्रयोजनपूर्वकग्रन्थाभिधानगाथामाह–

[मूल] स्याद्वादपुष्पकलिका प्रवचनाद्विनिर्ममे। बालबोधाय लेशेन तत्त्वार्थावगमाय च॥२५९॥

(व्याख्या) स्याद्वादेत्यादि। अहं प्रवचनात् = जिनागमाल्लेशेन = सङ्क्षेपेन स्याद्वादपुष्पकलिकाभिधानं प्रकरणं विनिर्ममे। कस्मै प्रयोजनाय? बालबोधाय चः = पुनस्तत्त्वार्थावगमायेत्यर्थः॥२५९॥

[ग्रन्थकर्तुः व्याख्याकर्तुश्च प्रशस्तिः]

[२७०] अथ ग्रन्थकर्ता निजवंशाभिधानगाथामाह–

[मूल] कोटकेन्दुकुले रम्ये श्रीवंशोत्तमवाचके। निध्युपाध्यायस्य शिष्यश्चक्रे वाचकसंयमः॥२६०॥

(व्याख्या) कोटकेत्यादि। कोटके इन्दुश्चन्द्रः कोटकेन्दुश्चेदं कुलं च कोटकेन्दुकुलं तस्मिन् रम्ये = प्रधाने तस्मिन्। **श्रीवंशेत्यादि।** श्रिया युक्तो वंशः श्रीवंशस्तेषूत्तमः = श्रेष्ठो वाचकः तस्मिन् श्रीवंशोत्तमवाचके। **निधीत्यादि।** निधिश्चासौ उपाध्यायश्च निध्युपाध्यायस्तस्य शिष्यो वाचकसंयमश्चारित्र इदं प्रकरणं चक्रे इत्यर्थः॥२६०॥

[२७१] अथ प्रकरणकर्ता स्याद्वादपुष्पकलिकाया व्याख्यां कलिकाप्रकाशमुपसंहरन्नाह-

श्रीमत्खरतरे गच्छे जिनसिंहपदाधिपः। सूरिः श्रीजिनराजोऽभूद्भव्याम्भोजदिनेश्वरः॥१॥
सूरिपादाम्बुजे भृङ्गः श्रीरामपाठकोऽभवत्। जिनशासनधौरेयः पद्महर्षसुवाचकः॥२॥
गुरुदृष्टिसरोहंसाः सुखनन्दनकाञ्चनाः। महिमत्रो(?)पाध्याया बभूवुः श्रुतिपारगाः॥३॥
तच्छिष्यो निध्युपाध्यायोऽभवत्प्रौढशिरोमणिः। चारित्रवाचकश्चक्रे गुरुपादप्रसादतः॥४॥

अथ वत्सरदिवसगाथामाह-

वत्सराब्धीन्दुखेटेन्दौ धर्मजन्यसुवासरे। सुश्रेयोवासलाभाय निर्ममे स्वेक्षिताय च॥५॥
स्याद्वादपुष्पकलिकायास्तत्त्वार्थप्रकाशिका। वृत्तिः समासतश्चक्रे मुदा स्तम्भनतीर्थके॥६॥

॥इति स्याद्वादपुष्पकलिकाप्रकाशः संपूर्णः॥[१]

---

१. **लेखक प्रशस्तिः-** संवत् १९१४ ना आश्वीन कृष्ण ९ रवीवासरे ली. व्यास. सोमेश्वर शीवलाल स्तम्भतीरथे ठेकाणु छतरीसीपोलमध्ये ली. बोरपीपला आगल धरमशालामां॥श्रीरस्तु कल्याणमस्तु शुभं भवतु॥श्रीः॥ श्रीः॥ श्रीः॥

सङ्ग्राहकप्रशस्तिः-

आसीन्नाशित-पाप-ताप-निकरो निर्मूलिताहङ्कृतिरर्हच्छास्त्रसमुद्रपारगमनो निस्तन्द्रचन्द्राननः॥
श्रीश्वेताम्बर-सङ्घ-मङ्गल-मुखं कर्मद्रु-दावानलः सूरिर्भूरिगुणालयोऽत्र विजयानन्दोऽह्यमन्दाशयः॥१॥
यो लुम्पाकमतं विहाय रभसा निर्वाणविघ्नप्रदं संवेगामृतपान-पुष्टचरितः सत्यं मतं सङ्गतः।
योऽनेक-प्रतिपक्ष-पण्डित-गणं निर्जित्य जातोदयः स्वार्गं धाम जगाम काममथनश्चात्मादिरामाभिधः॥२॥
साध्वध्वाधमतादुर्व्यसनतो नानानरानावयन् भूपान् धर्मसुधां वटोदरनरेशादीन् बहून्यायायन्।
व्याख्यानात्प्रतिबोध्य धर्मरहितान् जीवावनं पालयन् मान्यश्रीविजयाङ्कितः कमलनामाचार्य एको बभौ॥३॥
सिद्धान्ताद्विपरीतवर्तनरता दूरीकृताः स्वापरे येनाकारि दिगन्तकीर्तिरमला दत्त्वा च सदेशनाम्।
तं सङ्घो रुचिरेऽणहिल्लनगरेऽद्रीब्ध्यङ्कभूवत्सरे प्रेम्णा स्थापितवान् मुनीन्द्रविजयानन्दीयसत्पट्टके॥४॥
आत्माराममुनीश्वरस्य विदुषः शिष्यो विपश्चिद्वरः पूर्वोक्तस्य च पट्टदानसमये श्रीमानुपाध्यायकः।
यत्सेवाकरणाच्च मूकबधिरः श्रोता च वक्ताऽभवत् पूज्योऽयं जयति स्म वीरविजयः प्रज्ञानुभावाञ्चितः॥५॥
औपाध्यायपदाढ्यवीरविजयस्यान्तेवसद्रत्नकं भूनागाङ्ककुविक्रमार्कशरदिच्छायापुरीपत्तने।
स्वस्थाने कमलाख्यसूरिगुरुणाऽऽद्यः पट्टधृक्त्वे धृतोऽनेकैः शास्त्रविचारसार चतुरैः शिष्यैः सदा सेवितः॥६॥
काव्यालङ्कृतिलक्षण-करणग्रन्थादि सिद्धान्तविद् विश्वेऽस्मिन् विजयी सदा विजयते श्रीदानसूरीश्वरः।
स्वीयश्रीगुरुवर्यवीरविजयोपाध्यायनामाङ्कित-तत्संस्थापितशास्त्रसङ्ग्रहभवं वर्तत्यदः पुस्तकम्॥७॥

प्रथमं परिशिष्टम्

स्याद्वादपुष्पकलिकामात्रम्

उपाध्यायश्रीचारित्रनन्दिविरचिता

॥स्याद्वादपुष्पकलिका॥

नत्वा संयमवामेयं गुरुं नौनिधिवाचकम्। स्याद्वादपुष्पकलिकां दर्शयामि जिनागमात्॥१॥
धर्माधर्मव्योमजीवपुद्गलाद्धा भवन्ति च। रसोन्मितानि द्रव्याणि लोको द्रव्यात्मकः स्मृतः॥२॥
अथैकादशद्वारकारिका-
लक्षणगुणपर्यायस्वभावास्तिनयानि च। भावजीवानुयोगाश्च द्रव्येषु वितनोम्यहम्॥३॥
यत्सत्तल्लक्षणं द्रव्यं व्ययोत्पादध्रुवान्वितम्। त्रयोदशः स्युर्धूर्तिकः सामान्येतरतो गुणाः॥४॥
अथ सामान्यगुणकारिका-
द्रव्यत्वास्तित्ववस्तुत्वप्रदेशत्वप्रमेयकम्। सत्त्वं चागुरुलघुत्वं चेतनाचेतनस्तथा॥५॥
मूर्तामूर्तक्रियान्यानि सामान्याः स्युस्त्रयोदश।
अथ विशेषगुणाः-
दर्शनज्ञानसौख्यं च वीर्यं षट् चेतनादयः॥६॥
वर्णगन्धरसस्पर्शगतिस्थित्यवगाहना। वर्तनाहेतुचत्वारोऽष्टादश स्युर्विशेषिकाः॥७॥
अथ पर्यायाः-
द्रव्यगुणविकारा ये पर्यायाः प्रवदन्ति ते। निजभावविभावाभ्यां द्विविधाः स्युर्जिनागमे॥८॥
वा द्रव्ये रसपर्यायाः स्युर्द्रव्ये द्रव्यव्यञ्जनः। गुणगुणव्यञ्जनकः स्वभावान्ये भवन्ति च॥९॥
अथ सामान्यस्वभावाः-
नित्यैकास्तिभेदभव्यवक्तव्येतरकोत्कटाः। सामान्यानि स्वभावाः स्युः त्रयोदशमितानि च॥१०॥
मूर्तचेतनशुद्धैकप्रदेशप्रतिपक्षिकाः। विभावाश्चोपचरितस्वभावाः स्युर्विशेषिकाः॥११॥
अथास्तिकायः-
जीवाजीवप्रभेदाभ्यां स्याद् द्विविधोऽस्तिकायिकः। नूनं जीवस्त्वेकविधोऽपरो धर्मादिकाम्बुधिः॥१२॥
अथ नयाभिधानानि-
द्रव्यपर्यायार्थिकाभ्यां मूलतोऽस्ति नयद्विधा।
अथ द्रव्यार्थिकभेदाः-
शुद्धसत्तैकद्रव्यार्थाशुद्धनित्यस्वरूपकाः॥१३॥
सद्वक्तव्यान्वयोत्कृष्टपरमभावकास्तथा। द्रव्यार्थिको दशविधो भवेत्तीर्थङ्करागमे॥१४॥
अथ पर्यायार्थिकभेदाः-
पर्यायार्थिकभेदाश्च पूर्वोक्ता द्रव्यकादयः। वानादिसादितो नित्यौ नित्यशुद्धेतरौ भवेत्॥१५॥
नित्याशुद्धेतरौ ज्ञेयौ भवन्ति षड्विधानि च। इमेऽपि भेदाः सिद्धान्ते वदन्ति पूर्वसूरयः॥१६॥
द्रव्यपर्याययोर्भेदा नयैः सन्ति महीधराः। नैगमसङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रकानि च॥१७॥

द्रव्यार्थिकोऽस्ति चत्वारः सत्पर्यायार्थिकस्त्रिधा। शब्दसमभिरुढैवम्भूतभेदेन विद्यते॥१८॥
आरोपसङ्कल्पांशैश्च नैगमस्त्रिविधो भवेत्। उपचारकमादृत्य महाभाष्ये चतुर्विधः॥१९॥
द्रव्यकालगुणारोपो हेत्वाद्यारोपभेदतः। नैगमोदधिभेदः[१] स्यात्सङ्कल्पो द्विविधो भवेत्॥२०॥
प्रथमः स्वपरिणामः कार्यान्तर(रो)द्वितीयकः। भिन्नाभिन्नस्वरूपाभ्यामंशोऽपि द्विविधो भवेत्॥२१॥
इति नैगमोत्तरभेदाः।
सङ्ग्रहो द्विविधः प्रोक्तः सामान्यसुविशेषतः। मूलोत्तरप्रभेदाभ्यां सामान्यो द्विविधः स्मृतः॥२२॥
आद्योऽस्तित्वादिषड्भेदोऽस्त्युत्तरो विविधः स्मृतः। स्वसमुदायभावेन भिन्नरूपकजातितः॥२३॥
वा व्यतिरेकानुगमसङ्गृहीतसुपिण्डिताः। सङ्ग्रहः स्याच्चतुर्भेदो विशेषावश्यकागमात्॥२४॥
इति सङ्ग्रहः।
शुद्धाशुद्धप्रभेदाभ्यां व्यवहारो युगः स्मृतः। वस्तुगतसाधनाभ्यां शुद्धः स्याद् द्विविधः श्रुतौ॥२५॥
सद्भूतकेतराभ्यां च अशुद्धोऽपि भवेद् द्विधा। असद्भूतोऽपि द्विविधः स्यात्संश्लिष्टेतरेण च॥२६॥
व्यवहारो युगं स्याद्वा विभजनप्रवृत्तितः। प्रवृत्तिस्त्रिविधा ज्ञेया वस्तुसाधनलौकिकात्॥२७॥
लोकोत्तरा लौकिका च कुप्रावचनिका तथा। साधना त्रिविधा प्रोक्ता विशेषावश्यकागमे॥२८॥
ग्रन्थान्यस्मिन् शुद्धशुभोपचरितेतरैस्तथा। व्यवहारो रसविधो भवेत्तज्ज्ञानुसारतः॥२९॥
इति व्यवहारोत्तरभेदाः।
प्रवृत्तिकालमादृत्य ऋजुसूत्रनयो भवेत्। नामाद्यब्धिप्रकारेण मत्या द्रव्येषु योजयेत्॥३०॥
इति ऋजुसूत्रः।
सुवाच्यार्थग्राहकेन तत्समः स्वक्रियान्वितः। भावनिक्षेपमादृत्य द्रव्ये शब्दनयो भवेत्॥३१॥
आविर्भावतिरोभावैरनेकधर्मसंयुतः। सप्तभङ्ग्यनुयोगेन वदेच्छब्दनयः श्रुतौ॥३२॥
प्रत्येकमेकभेदोऽस्ति श्रुतौ शब्दनयादयः। पर्यायार्थिकमन्येऽत्र वदन्ति ऋजुसूत्रकम्॥३३॥
इति शब्दः।
सञ्ज्ञान्तरार्थविमुखो भवेत्समभिरूढकः। सर्वभावेषु या सञ्ज्ञा तां तामेव वदेद् ध्रुवम्॥३४॥
इति समभिरूढः।
एवं यथा शब्दभावः शब्दार्थेषु व्यवस्थितः। यत्प्रवृत्तिस्तत्तथैव सैवम्भूतो निगद्यते॥३५॥
इत्येवम्भूतः।
परोक्षप्रत्यक्षाभ्यां च प्रमाणं द्विविधं स्मृतम्। परोक्षमिन्द्रियज्ञानं प्रत्यक्षं स्यादनिन्द्रियम्॥३६॥
इति प्रमाणम्।
क्षायिकोपशममिश्रपरिणामोदयस्तथा। षष्ठमः सन्निपातश्च भावाः सन्ति जिनागमे॥३७॥
कैवल्यदर्शनज्ञानं तथा क्षायिकदर्शनम्। क्षयान्तरायचारित्रखगाः सन्त्युत्तराणि च॥३८॥
शमदर्शनचारित्रौ युगलोपशमो भवेत्। ज्ञानाम्बुनिध्यज्ञानानि त्रिदर्शन-गृहस्थकाः॥३९॥
संयमी मिश्रसम्यक्त्वदानादिशरलब्धयः। मिश्रभावोत्तराः भेदाः भवन्त्यष्टादश श्रुतौ॥४०॥
कषायसंयमज्ञानलेश्यासिद्धचतुर्गतिः। वेदमिथ्यात्वोत्तराः स्युरेकविंशतिधोदयः॥४१॥

---

[१] यहां पर **नैगमोदधिभेदः** इस पाठ की जगह **नैगम उदधिभेदः** यह पाठ उचित लगता है परन्तु ऐसा करने पर छन्दभङ्ग होता है। सोलहवी गाथा में भी **परीणाम** यह शब्द अशुद्ध है। उसकी जगह **परिणाम** ऐसा पाठ होना चाहिए परन्तु ऐसा करने पर छन्दभंग होता है।

जीवभव्याभव्यभेदैः परिणामस्त्रिधा भवेत्। इमान्युत्तरभेदानि भावानां प्रविनिर्ममे॥४२॥
इति भावः।
भवेज्जीवस्त्वेकविधः स्वनुयोगश्चतुर्विधः। द्रव्यचारित्रगणितसुधर्माः स्युर्जिनागमे॥४३॥
देशगः सर्वगश्चैव क्षेत्रोभयविधः स्मृतः। शिवोन्मितानि द्वाराणि लेशेनेत्थमचीकथन्॥४४॥
इति द्वारोत्तरभेदाः।
जीवाजीवस्वरूपश्च लोके राशिद्विकः स्मृतः। धर्माधर्मा अस्तिकायाः भवन्ति पुद्गलास्तथा॥४५॥
सिद्धसंसारिभेदाभ्यां जीवस्तु द्विविधः स्मृतः। निजभावविभावाभ्यां भवेत्पर्यायभेदतः॥४६॥
जीवादिवस्तुनो भावः स्वरूपं तत्त्वमेव हि। यत्सर्वथाविरोधेन व्याप्यव्यापकभावतः॥४७॥
यं लक्ष्यते यथार्थेन वस्तु सद्रूपलक्षणम्। क्षेत्रकालभावकानामेकपिण्डस्वरूपकम्॥४८॥
कार्यभेदेन भावानां द्रव्ये भेदा भवन्ति च। तज्ज्ञागमानुसारेण ज्ञातव्या जिनशासने॥४९॥
व्ययोत्पादध्रुवयुतं यत्सत्तद् द्रव्यलक्षणम्। भवेत्समग्रद्रव्येषु योज्यं मेधानुसारतः॥५०॥
द्रव्यपर्याययुगलनयमाश्रित्य लक्षणम्। इति। **गुणपर्यायवद् द्रव्यमेतत्पर्यायमादृतः॥५१॥**
अर्थक्रियाकारि द्रव्यं स्वस्वधर्मसमादृतैः। इत्यादयो रसगुणाः परिणामादिभावतः॥५२॥
द्रव्याद् द्रव्यपृथग्भावो यैस्ते प्रक्रियते गुणाः। द्रव्येषु ये गुणाः सन्ति वच्म्यहं तान् जिनागमात्॥५३॥
द्रव्यैकस्मिन्प्रदेशे च शक्याः स्वकार्यहेतवे। सन्त्यनन्ताविभागा ये पर्यायसञ्चया गुणाः॥५४॥
धर्माधर्माभ्रद्रव्येषु मूर्तचेतनसक्रियम्। विहाय दिग्गुणाः सन्ति सामान्यानि बुधोदिताः॥५५॥
जीवाक्रियामूर्तकत्वं मूर्तत्वचेतनाक्रियम्। विमुच्य पुद्गले जीवे सामान्याः प्रभवन्ति ते॥५६॥
अचैतन्यामूर्तगत्यक्रिया धर्मे द्वयोत्कटाः। गतिं मुक्त्वा स्थितिक्षेपादधर्मे सन्ति वारिधिः॥५७॥
तथावगाहनक्षेपात्परावर्तनकस्य च। विशेषाब्धिगुणाः सन्ति क्रमादम्बरकालयोः॥५८॥
वीर्यदृष्टिज्ञानसुखचैतन्यमूर्तकानि च। विशेषाः षड् गुणाः ज्ञेया जीवद्रव्ये भवन्ति च॥५९॥
वर्णगन्धरसस्पर्शाचैतन्यरूपकास्तथा। गुणास्ते पुद्गले सन्ति गुणद्वारं प्ररूपितम्॥६०॥
इति गुणद्वारम्॥
प्रदेशासङ्ख्यकैकत्वस्थितिर्द्रव्यं निगद्यते। गुणोत्कटान्यद्रव्याणां प्रोच्यते द्रव्यव्यञ्जनः॥६१॥
गुणाविभागानन्ताः पर्यायव्यूहका गुणाः। ज्ञानादयः कार्यरूपाश्चतुर्थो गुणव्यञ्जनः॥६२॥
द्रव्येषु ये स्वपर्यायाः प्रोच्यन्ते ते स्वभावजाः। ये द्रव्येष्वन्यपर्यायास्ते विभावा निगद्यते(न्ते)॥६३॥
प्रदेशासङ्ख्यपिण्डत्वस्थितिद्रव्येषु द्रव्यकः। गत्यादयो विशेषाश्च धर्मोऽस्ति द्रव्यव्यञ्जनः॥६४॥
तथा स्थित्यादयोऽधर्मेऽवगाहप्रमुखा अम्बरे। चैतन्यत्वादयो जीवे पुद्गले वर्णकादयः॥६५॥
परावृत्त्यादयः काले गदितो द्रव्यव्यञ्जनः। गुणाविभागानन्तानि द्रव्येषु तृतीयो भवेत्॥६६॥
धर्माधर्माभ्रकालेष्वरूपावर्णादयो गुणाः। जीवे ज्ञानादिकानां च ज्ञानं स्याद् गुणव्यञ्जनः॥६७॥
पुद्गले रूपमादृत्य वर्णगन्धरसादयः। गुणव्यञ्जनपर्यायाः द्रव्येषु गदिता मया॥६८॥
स्वपर्याया (अ)गुरुलघुविकारास्ते स्वभावजाः। षड्गुणाः वृद्धिहानिभ्यां सर्वद्रव्येषु विद्यन्ते॥६९॥
जीवे विभावपर्यायाश्चत्वारो गतयः स्मृताः। द्व्यणुकादयः पुद्गले स्कन्धा भवन्त्यनन्तकाः॥७०॥
अनादिनित्यपर्यायैः भूधराः सन्ति भूतले। एवं द्रव्येषु पर्यायद्वारं निगदितं मया॥७१॥

इति पर्यायद्वारम्॥

शुद्धाशुद्धमूर्तजीवविभावेषुस्वभावकान्। विमुच्य धर्मादित्रिषु दिग्गजाः स्युः स्वभावजाः(काः)॥७२॥
बहुप्रदेशमुक्तेन काले दिग्भूधराधिकाः। जीवपुद्गलयोरेकविंशतिः स्युः स्वभावकाः॥७३॥
नित्यावस्थितान्यरूपाणि तत्त्वार्थे प्रवदन्ति च। लोके समग्रद्रव्येषु गुणपर्यायकेषु च॥७४॥
तद्भावाव्ययभावेन नित्यमिति प्रवक्ष्यते। पञ्चत्वभूतार्थत्वाभ्यां द्वितीयोऽव्यभिचारतः॥७५॥
स्पर्शादिमूर्त्यभावेन अरूपीति निगद्यते। सामान्यान्यविशेषानि सूत्रोक्तानि भवन्ति ते॥७६॥
मूर्तत्वगुणमादृत्य पुद्गला एव रूपिणः। विशेषगुणसंयुक्ता मूर्ताः सन्ति रसादयः॥७७॥
आकाशादेकद्रव्याणि धर्मादीनि भवन्ति च। तथैवानेकद्रव्याणि विद्यन्ते जीवपुद्गलाः॥७८॥
धर्मादयो निःक्रियाणि जीवपुद्गलसक्रिये। प्रदेशावयवव्यूहैः प्रोच्यन्ते कायसञ्ज्ञकाः॥७९॥
परमाणून्यवयवा सुस्कन्धानां निरन्तरम्। स्कन्धाणुघातभेदेभ्यः प्रदेशाः सन्त्युत्पत्तितः॥८०॥
तत्र धर्माधर्मयोश्च प्रदेशाः सन्त्यसङ्ख्यकाः। क्षेत्रे समग्रसूक्ष्मः स्यात्परमाणो(र)वगाहकः॥८१॥
जीवैकं द्रव्यमादृत्य प्रदेशाः सन्त्यसङ्ख्यकाः। तथैव लोकाकाशस्य गगनस्य त्वनन्तकाः॥८२॥
सङ्ख्यासङ्ख्यानन्तकाश्च पुद्गलानां प्रदेशकाः। भवन्त्यणुरप्रदेशो मध्याद्यभावतः खलु॥८३॥
परिणामसप्रदेशनित्यकर्तृत्वकारणम्। क्रियसर्वगताश्चैव भवन्ति निश्चयेतरात्॥८४॥
द्रव्येषु मूलसामान्यस्वभावामी (वा अ) भवन्ति षट्। अस्तित्वं वस्तु द्रव्यत्वं प्रमेयत्वं चतुर्थकम्॥८५॥
सत्त्वं चागुरुलघुत्वं द्रव्येष्वेते निरन्तरम्। परिणामिकभावेन स्वतः परिणमन्ति च॥८६॥
आधारभूतधर्मत्वमस्तित्वं च द्वितीयकम्। अर्थक्रियायाः कारित्वं द्रव्यत्वं स्याज्जिनागमे॥८७॥
वोत्पादव्ययययोर्मध्ये पर्यायोत्पादकानि च। जनकं प्रसवत्वं वाविर्भावलक्षणं भवेत्॥८८॥
व्ययपर्यायकाणां च यस्तिरोभावको भवेत्। अभावरूपाया शक्तेराधारं द्रव्यलक्षणम्॥८९॥
स्वान्यात्मकं बोधरूपं यज्ज्ञानं स्यात्प्रमाणकम्। तेन प्रमातुं यद्योग्यं प्रमेयत्वं तदुच्यते॥९०॥
ध्रौव्योत्पादव्ययायुतं तत्सत्त्वं प्रविनिर्दिशेत्। षट्गुणवृद्धिहानिभ्यां स्वभावोऽस्त्यगुरुलघुः॥९१॥
द्रव्यगुणप्रदेशाश्च भेत्तुं शक्या भवन्ति ये। सर्वद्रव्याधारभूतो (तम)गुरुलघुत्वमुच्यते॥९२॥
एते रसस्वभावाश्च सर्वद्रव्येषु सर्वदा। पारिणामिकयोगेन सामान्यानि (श्च) गदन्ति ते॥९३॥
वस्तुष्वनन्तकाः सन्ति प्रोक्ताः सामान्यकाः जिनैः। त्रयोदशापि पश्यन्ति अनेकान्तजयादिषु॥९४॥
पारम्पर्याप्रच्युतिभ्यां नित्यो युगविधः स्मृतः। कूटस्थपरिणामी द्वौ ग्रन्थान्ये विद्य(द्ये)तेऽथवा॥९५॥
कार्यान्वयकारणाभ्यां युक्तो नित्य स्वभावकः। द्रव्याणां गुण बोधायानित्योऽप्यस्ति द्वितीयकः॥९६॥
सर्वस्वभावपर्यायाधारभूतप्रदेशकान्। स्वक्षेत्रभिन्नरूपाणामेकोऽस्त्येकत्वपिण्डतः॥९७॥
क्षेत्रकालसुभावानां गुणविभागयोगतः। भिन्नकार्यप्रवृत्तीनां भवेद्भिन्नप्रवाहकः॥९८॥
द्रव्यैकभावाभावेन सामान्यविरहो भवेत्। तेष्वनेकाभावयोगाद्विशेषाभावकस्तथा॥९९॥
स्वद्रव्यादिचतुष्केन व्याप्यव्यापकसंस्थितान्। भावाद्भावान्तरो हेतुस्तद्रूपो वस्तुनो भवेत्॥१००॥
द्रव्याद्यपरजातीनां स्वद्रव्यादिचतुष्टये। सदा व्यवस्थितानां च द्रव्याद्यन्यविवक्षिते॥१०१॥
सर्वदैवाविच्छिन्नानामन्यधर्मसमुच्चयाः। व्यावृत्तिरूपो यो भावः प्रोच्यते नास्तिरूपकः॥१०२॥
यथा जीवे गुणव्यूहाः सज्ज्ञानदर्शनादयः। तेषामस्तिस्वभावोऽस्ति नास्तिकोऽन्यगुणादिकान्॥१०३॥
घटे घटधर्मास्तित्वं नास्तित्वं परधर्मतः। एवं समग्रद्रव्येषु अस्तिनास्त्युभको भवेत्॥१०४॥

स्वपरोभयपर्यायैः सद्भावेतरकोद्भवैः। कुम्भः कुम्भाकुम्भकौ द्वाववक्तव्योभयाद्भवेत्॥१०५॥
एतेऽस्त्यादिस्त्रयो भङ्गाः पूर्णवस्तुसमादरात्। भवन्ति सकलादेशा विकलादेशकाः परे॥१०६॥
निजान्यसत्त्वासत्त्वेन सदसच्च घटोऽघटः। जीवोऽपि स्वान्यपर्यायैः सदसद्विद्यते खलु॥१०७॥
विवक्षितः स्वैः सद्भावोऽन्यदेशे स्वपरोभयैः। युगपत्सत्त्वासत्त्वाभ्यामवक्तव्योऽस्ति पञ्चमः॥१०८॥
वस्त्वैकदेशे परकैरसद्भावसमर्पितः। भावान्यसत्त्वान्याभ्यां स्वान्यैरवक्तव्यको भवेत्॥१०९॥
वस्तुदेशे स्वपर्यायैः सद्भावेन समर्पितः। तथा देशेऽन्यपर्यायैरसद्भावसमर्पितः॥११०॥
स्वपरोभयपर्यायैर्देशेऽन्यस्मिन्विवक्षितः। युगपदेकशब्देन भवेद्वक्तुं त्रियोगकः॥१११॥
ज्ञानादिनिजधर्मेषु अस्तित्वेन प्रवर्त्तनात्। जीवस्य प्रथमो भङ्गः अस्तिरूपो भवेत्खलु॥११२॥
स्वान्यजात्यन्यद्रव्याणां तद्धर्माणां च सर्वथा। जीवे नास्तित्वभावेन भङ्गः स्यान्नास्तिको भवेत्॥११३॥
द्रव्ये च केचिद्धर्माणां वाग्गोचरनिषेधतः। तृतीयः स्यादवक्तव्यः स्याद्धर्मापेक्षया भवेत्॥११४॥
समकालप्रवृत्तिनः अस्तिनास्तिस्वभावयोः। वस्तुन्येकसमये स्यात्तुर्यः स्यादस्तिनास्तिकः॥११५॥
अस्तिनास्तिस्वभावाश्च वक्तव्याः सन्ति वस्तुषु। अवक्तव्याभावशङ्काभावाय स्यादुभौ क्रमात्॥११६॥
द्रव्यादिश्चैकसमये समकालप्रवृत्तितः। वक्तव्यान्यास्तिनास्तिश्च भावानां सप्तमो भवेत्॥११७॥
अत्रास्तित्वेऽस्ति धर्मोऽस्ति नास्तित्वे नास्तिधर्मकः। युगपद्युगभावेनावक्तव्यं स्यादवाक्पदम्॥११८॥
अस्त्यादयस्त्रयो भङ्गाः सर्वादेशा भवन्ति च। चत्वारो विकलादेशाः पूर्णैकदेशभावतः॥११९॥
एवं द्रव्येषु नित्यैकादिषु सन्त्यद्रिभङ्गिकाः। सामान्येतरधर्माणां गुणानां च भवेदिमाः॥१२०॥
ज्ञानत्वेन ज्ञानमस्ति नास्तित्वो[१]ऽपि निजेतरैः। इत्थं पञ्चास्तिकायेषु भवन्ति सप्तभङ्गिकाः॥१२१॥
अस्त्यभावे गुणाभावस्तेन स्याद्वस्तुशून्यता। नास्त्यभावेऽन्यभावेन मिश्रः स्यात्पारिणामिकैः॥१२२॥
पुनर्व्यञ्जकयोगेन सत्तासत्ता स्फुरेत्तथा। पदार्था नियतापत्तिर्दोषो भूयादतोचितौ॥१२३॥
स्वभावस्वकार्यगुरुलघुपर्यायभेदतः। भेदस्वभावोऽवस्थानाधारभूतोऽस्त्यभेदकः॥१२४॥
भेदाभावे गुणानां च द्रव्येषु सङ्करो भवेत्। अभेदाभावयोगेन स्थानविध्वंसकस्तथा॥१२५॥
पारिणामिकभावत्वे ये पर्यायोत्तरोत्तराः। तेषां परिणमत्वेन भवेद्द्रव्यस्वभावकः॥१२६॥
द्रव्येष्वस्त्यादयो मूलावस्थानामविमुक्तितः। कालत्रिके च तद्रूपः स्यादभव्यस्वभावकः॥१२७॥
भव्याभावे विशेषाणां द्रव्ये स्यादप्रवृत्तिकः। द्रव्यान्तरवियोगाय वक्तुं योग्योऽस्त्यभव्यकः॥१२८॥
वाग्गोचरापन्नधर्मास्ते वक्तव्याः भवन्ति च। तत्प्रतिपक्षिकाः भावा अवक्तव्यास्तथैव स्युः॥१२९॥
वक्तव्याभावयोगेन सिद्धान्तविरहो भवेत्। अवक्तव्यवियोगेन पर्यायविगमस्तदा॥१३०॥
ये समग्रपदार्थानां भवन्ति परमेतरे। गुणास्तेषां वृत्तिहेतुः स्यात्परमस्वभावकः॥१३१॥
तथैवास्तित्वनास्तित्वकर्तृभोक्तृगुणत्वकः। प्रदेशत्वासर्वगतेत्याद्यनेका भवन्ति च॥१३२॥
द्रव्यं प्रति सर्वधर्मा अनन्तधर्मवत्त्वतः। न शक्याः सन्ति गदितुं छद्मस्थज्ञायकोऽपि हि (ज्ञायकैरपि)॥१३३॥
पर्यायपरिणामाश्च स्वप्रवृत्तिनिमित्तकाः। पारिणामिककर्तृत्वज्ञायकग्राहकास्तथा॥१३४॥
भोक्तृत्वरक्षणाधाराधेयताव्याप्यव्यापकाः। विभुकरणता जन्यजनकः कारकः प्रभुः॥१३५॥
स्वकार्यत्वसप्रदेशभावकाभावका अपि। गतिस्थित्यवगाहश्चागुरुलघ्वचलाक्रियः॥१३६॥

---

१. यहां पर **नास्तित्वो** की जगह **नास्तित्वम्** पाठ उचित लगता है, किंतु ऐसा करने पर छंदोभंग होता है।

सक्रियाखण्डनिस्सङ्गा इत्यनेके भवन्ति च। निजकार्योपकरणसुप्रवृत्तिनिमित्तकाः॥१३७॥
इति स्वभावद्वारम्॥
लोके पञ्चास्तिकायास्ति प्रदेशानां समुच्चयात्। कालः प्रदेशाभावेन अस्त्यभावो निगद्यते॥१३८॥
इत्यस्तिकायद्वारम्॥
सर्वद्रव्येषु विज्ञेयाः सुनिक्षेपाश्चतुर्विधाः। स्युर्नामस्थापनाद्रव्यभावभेदैर्जघन्यतः॥१३९॥
सङ्केतसहजाभ्यां च नामस्तु द्विविधः स्मृतः। सहजारोपजाभ्यां च स्थापना द्विविधा भवेत्॥१४०॥
आगमनोआगमाभ्यां द्रव्यनिक्षेपको द्विधा। आगमतस्तदर्थज्ञोऽनुपयुक्तो भवेद्यदा॥१४१॥
ज्ञभव्यव्यतिरिक्तैः स्याद् द्रव्यो नोआगमस्त्रिधा। त्रयो नामादिनिक्षेपाः सन्ति कारणरूपकाः॥१४२॥
भावनिक्षेपको भावकार्यरूपोऽस्ति सर्वदा। कार्यप्रवृत्त्यभावेन निष्फलास्ते भवन्ति च॥१४३॥
भावानां बोधभावेन सन्ति ज्ञानांशका नयाः। धर्मानन्तात्मभावेऽस्य धर्मैकस्थापनं नयः॥१४४॥
तत्र व्याससमासाभ्यां नयो युगविधो भवेत्। व्यासतोऽनेकभेदः स्याद् युगभेदः समासतः॥१४५॥
कालत्रिकैकैव द्रव्यः प्रयोजनसमागते। द्रव्यार्थिकोऽस्ति पर्यायोत्पादव्ययध्रुवान्वितः॥१४६॥
पञ्चास्तिकायिकानां च परावर्तनधर्मतः। कालस्य द्रव्यकथनं द्रव्यारोपोऽस्ति तद्गुणे॥१४७॥
ज्ञानादिगुणमादृत्य तद्द्रव्यमनपेक्ष्य च। ज्ञानमेव यथा जीवस्तद्गुणारोप उच्यते॥१४८॥
अतीतकालभावानां करोत्यारोपकं यदा। तदा सम्प्रतिकाले च भूतारोपः स प्रोच्यते॥१४९॥
वीरनिर्वाणयोगेन यथाद्य दीपमालिका। एवमनागतारोपो यथास्ति पद्मवासरः॥१५०॥
उपादानसुनैमित्तासामान्यापेक्षकादिकः। कार्यारोपः कारणेऽस्ति द्रव्यार्हन्तारको यथा॥१५१॥
आरोपसर्जनारोपसङ्कल्पांशादिभेदतः। नैकगमग्राहरूपः सच्चैतन्यं च नैगमात्॥१५२॥
अंशग्राही नैगमश्च सत्तासिद्धिसमानकः। यथा सूक्ष्मः सिद्धसमो भवेत्संसारिको जिनः॥१५३॥
एवं पञ्चास्तिकायेषु प्रोक्तोऽयं नैगमो नयः। जिनागमाच्च बुद्ध्या च सर्वभावेषु योजयेत्॥१५४॥
सङ्ग्रहज्ञानयोगेन एते पञ्चास्तिकायिकाः। सामान्यान्यधर्मरूपौ वदन्ति सङ्ग्रहान्विताः॥१५५॥
द्रव्येषु व्याप्यभावस्थे गुणपर्यायव्यापकात्। परिणामिलक्षणस्थः सामान्यः प्रोच्यते तदा॥१५६॥
निरवयवैकनित्याक्रियसर्वगतान्वितः। सामान्योऽस्ति पिण्डरूपो गुणपर्यायसंयुतः॥१५७॥
नित्यानित्यसावयवनिरवयवसक्रियः। देशगः सर्वगश्चास्ति विशेषो गुणहेतुकः॥१५८॥
मूलसामान्यभेदामी वस्तुत्वास्तिप्रमेयकम्। द्रव्यसत्त्वागुरुलघुः रसोन्माना भवन्ति च॥१५९॥
नित्याद्युत्तरसामान्येतरे परिणमादयः। प्रोच्यन्ते गुणपर्यायाधारत्वं वस्तुकं बुधाः॥१६०॥
सङ्ग्रहज्ञानयोगेन द्रव्यं सामान्यतो वदेत्। विशेषसङ्ग्रहतया जीवेति प्रवदन्ति ते॥१६१॥
नित्यादयश्च सामान्या विपरीता विशेषकाः। निजमेधानुयोगेन द्रव्येषु सङ्ग्रहो वदेत्॥१६२॥
सामान्याभिमुखेन ग्रहणं यत्सङ्गृहीतकः। ज्ञात्वैकमेकजातीनामेकेन सङ्ग्रहात्मकः॥१६३॥
सर्वभावेष्वनुगमसामान्यप्रतिपादनम्। सोऽनुगमसङ्ग्रहः स्याद् व्यतिरेकोऽन्य इति ग्रहात्॥१६४॥
वा महदवान्ताभ्यां सङ्ग्रहो द्विविधो भवेत्। सत्तारूपोऽस्ति प्रथमः पिण्डितार्थो द्वितीयकः॥१६५॥
भेदान्तरविभजनैर्व्यवहारप्रवर्तनम्। भवेद् व्यवहारनयः पूर्वप्रोक्तानुसारतः॥१६६॥
सर्वद्रव्यस्वरूपाणां शुद्धप्रवृत्तिलक्षणैः। चलनादिसहायैश्च स द्रव्यज्ञायको भवेत्॥१६७॥
लोकालोकज्ञानरूपो जीवस्य साधना तथा। स्यात्सम्पूर्णपरमात्मभावसाधनरूपकः॥१६८॥

गुणानां साधकावस्थारूपः शुद्धप्रवृत्तिकः। गुणश्रेण्यारोहकादिः सा भवेत्साधना वरा॥१६९॥
गुणज्ञानाद्यभिन्नेन सद्भूतव्यवहारकः। व्यवहारोऽसद्भूतः स्याद्यदुणान्यसमन्वितः॥१७०॥
संश्लेषितोऽशुद्धरूपोऽहं शरीरीति प्रोच्यते। पुत्राद्यसंश्लिष्टरूपोऽसद्भूतः स्याद्भवे खलु॥१७१॥
एवं पञ्चास्तिकायेषु योज्यो मेधानुसारतः। व्यवहारस्वरूपश्च(ञ्च)समासेन विनिर्ममे॥१७२॥
सुज्ञानबोधरूपो यः प्रवदेदृजुसूत्रकः। सम्प्रतिकालमाश्रित्य गदेद्भावनयो ह्ययम्॥१७३॥
भूतहेतुं समादृत्य कार्यमागामिकं तथा। वर्तते जन्यजनकै ऋजुसूत्रः स उच्यते॥१७४॥
वर्तमानग्राहकः स्यात्स नामादिश्चतुर्विधः। पूर्वोक्तयुक्त्या संयोज्यः पञ्चास्तिकायिकेषु च॥१७५॥
शब्दस्य योऽस्ति वाच्यार्थः प्रधानस्तत्परिग्रहः। वस्तु त्वाहूयतेऽनेन स शब्दः प्रोच्यतेऽधुना॥१७६॥
शब्दस्य यो नयो व्यक्तः स शब्दनयबोधकः। प्रत्युत्पन्नं वर्तमानं शब्दः पूर्ववदिच्छति॥१७७॥
पृथुबुध्नाकारयुतं सुलिप्तं मृन्मयादिना। पाथोर्णाद्याकृष्टशक्यं स भावघटमिच्छति॥१७८॥
नामाद्यनिलकुम्भानि तद्भावेच्छुः स नेच्छति। तच्छब्दार्थप्रधानोऽयं चेष्टालक्षणमिच्छति॥१७९॥
निक्षेपोदधिमादृत्य गौणेन घटमिच्छति। ऋजुसूत्रो वर्तमानसमयग्राहको भवेत्॥१८०॥
शब्दार्थग्राहकः शब्दो भावनिक्षेपग्राहकः। सद्भावासद्भावतः स्याद्धर्मानेकसमन्वितः॥१८१॥
द्रव्यादिषु स्वभावैश्च नित्यानित्यादिभेदतः। सप्तभङ्ग्यः प्रयोज्याश्च पूर्वोक्तास्ते भवन्ति च॥१८२॥
एकैकैस्त्रिविकल्पाश्च युगयोगैस्त्रयस्तथा। त्रिकसंयोगतस्त्वैको भङ्गाः सन्ति महीधराः॥१८३॥
एवं समग्रभावेषु गुणपर्यायद्रव्यकैः। भवन्त्यनेकाद्रिभङ्ग्यो ज्ञातव्या मतियोगतः॥१८४॥
इति शब्दनयः॥
या या सञ्ज्ञा द्रव्यकाणां लक्षणेन निगद्यते। सञ्ज्ञान्तरार्थविमुखः सैव पश्यति षष्ठमः(?)॥१८५॥
नरः समभिरूढज्ञः पर्यायैकमपेक्ष्य च। न भवेत्सर्वपर्यायवाचको मिश्रदोषतः॥१८६॥
वाच्यार्थस्य वाचको यः स तथैव प्रवर्तते। विशिनष्ट्यैवम्भूतज्ञो वदेदतिशयैर्जिनः॥१८७॥
कुम्भाकृतियुतः कुम्भः शुचिपाथोर्णविभृतः। नारीशिरःस्थितश्चेष्टां कुर्वन्स कुम्भमिच्छति॥१८८॥
इत्येवम्भूतनयः॥
प्राधान्यार्थेन प्रथमे चत्वारोऽर्थनयाः स्मृताः। शब्दादयः शब्दमुख्याच्छब्दाः सन्ति जिनागमे॥१८९॥
नैगमाद्याश्च चत्वारः सामान्यार्थसमादरात्। अविशुम भवन्त्यत्र त्रयः शुद्धा विशेषतः॥१९०॥
इति सप्तनयाः॥
यः पर्यायप्रतिक्षेपी द्रव्यमात्रसमादृतः। द्रव्यार्थिकाभासरूपः प्रोच्यते श्रुतिसागरे॥१९१॥
तथा द्रव्यप्रतिक्षेपी पर्यायमात्रग्राहकः। तत्पर्यायार्थिकाभासो विज्ञेयोऽस्ति द्वितीयकः॥१९२॥
धर्मधर्मिकादीनामेकान्तिपार्थिक्ययोगतः। प्रोच्यते नैगमाभासो नैगमस्यावभासतः॥१९३॥
सत्त्वं चैतन्यभिन्नेऽपि सामान्यमात्रग्राहकः। सत्तापरामर्शरूपः प्रोच्यते सङ्ग्रहो बुधैः॥१९४॥
स परापरभेदाभ्यां युगभेदः समादृतः। सन्मात्रग्राहको द्रव्यं भाषते परसङ्ग्रहः॥१९५॥
चैतन्यलक्षणो जीवो गद्यतेऽपरसङ्ग्रहः। सत्ताद्वैतं स्वीकुर्वाणो द्रव्यान्यं यो न मन्यते॥१९६॥
स्वमत्याद्वैतभावेन साङ्ख्यनैयायिकादयः। प्रोच्यन्ते सङ्ग्रहाभासः स्याद्वादपक्षिका बुधाः॥१९७॥
अत्रावान्तरसामान्यं स्वीकुर्वाणा बलाज्जनाः। विशेषं नावमन्यन्ते पारिणामिकतादयः॥१९८॥
सङ्ग्रहादृतभावानां परमार्थमजानतः। द्रव्यपर्यायभागं च योऽभिप्रैति स पञ्चमः॥१९९॥

वर्तमानक्षणस्थायिपर्यायमात्रमादृतः। ऋजुसूत्रनयग्राही विपरीतं वदेद्यदा॥२००॥
दृष्टिज्ञानकषायाणामुपयुक्तो यदा भवेत्। ऋजुसूत्राभासकः स्यात्कालस्थोऽन्योक्तिसौगताः॥२०१॥
पर्यायैकस्य प्राग्भावस्तिरोभावान्यग्राहकः। काललिङ्गादिभेदेन शब्दार्थः शब्दको भवेत्॥२०२॥
लिङ्गत्रिवाक्प्रत्ययाद्यैः संयुक्तार्थमुपैति यः। तद्भेदेऽपि तमेवार्थं शब्दाभासस्तमादरात्॥२०३॥
यः पर्यायध्वनीनां च यावन्माना (अ)भिधेयकाः। तन्नानात्वं स्वीकुर्वाणो रूढाभासः स उच्यते॥२०४॥
पदार्थानां नामभेदं प्रेक्ष्य भिन्नार्थको वदेत्। एवम्भूताभासकः स प्रोच्यते जिनशासने॥२०५॥
शब्दक्षेप्यर्थाभिधायी वदेदर्थनयस्तथा। शब्दाभिधाय्यर्थक्षेपी शब्दाभास स उच्यते॥२०६॥
अर्पितानर्पिताभासावन्योन्यं प्रतिक्षेपतः। तत्त्वव्यवहारयोः क्षेपात्स्युर्व्यवहारविनिश्चयौ॥२०७॥
ज्ञानं गृह्णन्क्रियाक्षेपाज्ज्ञानाभासो निगद्यते। ज्ञानक्षेपात्क्रियां गच्छन्क्रियाभासो वदेद् बुधः॥२०८॥
नैगमादिसप्तनयाः पूर्वानुपूर्वयोगतः। पूर्वः प्रभूतविषयः परोऽल्पविषयो भवेत्॥२०९॥
अंशग्राही नैगमोऽस्ति सत्ताग्राहकः सङ्ग्रहः। गुणलोकप्रवृत्त्योर्यो ग्राही स्याद् व्यवहारकः॥२१०॥
ऋजुसूत्रो भवेद्धेतुपरिणामसमादृतः। व्यक्तकार्यग्राहकः स्याच्छब्दो भावप्रवृत्तिकः॥२११॥
पर्यायान्तरको भिन्नकार्यग्राही च षष्ठमः। तदृतमुख्यकार्यस्य ग्राह्येवम्भूतको भवेत्॥२१२॥
इत्याद्यनेकसद्रूपो नयवादो जिनागमे। विधानप्रतिषेधाभ्यां सप्तभङ्ग्यो भवन्ति च॥२१३॥
इत्थं नयविचारश्च समासेन प्ररूपितः। लोके समग्रभावेषु भवेत्स्याद्वादशासने॥२१४॥
इति नयाः॥
तत्प्रत्यक्षपरोक्षाभ्यां प्रमाणं द्विविधं स्मृतम्। अतीन्द्रियं च प्रत्यक्षमक्षजन्यं परं भवेत्॥२१५॥
तत्र देशसमग्राभ्यां प्रत्यक्षं द्विविधं श्रुतौ। देशावधिपर्यायौ समग्रं केवलं भवेत्॥२१६॥
मतिश्रुताभिधानेन परोक्षं द्विविधं स्मृतम्। अनुमानोपमानागमार्थापत्त्यब्धयो भवेत्॥२१७॥
लिङ्गपरामर्शकं स्यादनुमानप्रमाणकम्। गिरौ धूमाङ्कमादृत्य साध्यतेऽसौ कृशानुमान्॥२१८॥
गोसादृश्यत्वभावेन अदृष्टगवयाकृतिः। ज्ञानं स्यादवयं प्रेक्ष्य भवेत्तदुपमानकम्॥२१९॥
यथार्थवस्तुभावज्ञो वीतरागो जिनेश्वरः। तदुक्ताः सकला वाचः स्यादागमप्रमाणकम्॥२२०॥
यथा पीनो देवदत्तो वासरे तु न भुज्यते। अर्थान्नक्ताशनो ज्ञातस्तदर्थापत्तिकं भवेत्॥२२१॥
नयप्रमाणकादीनां परिपाटीमुपेत्य यत्। जीवाजीवादिभावज्ञः तज्ज्ञैस्तज्ज्ञानमुच्यते॥२२२॥
जिनोक्ततत्त्वश्रद्धानं तत् सम्यग्दर्शनं वदेत्। यथार्थहेयोपादेयैः स्वरूपरमणात्मकम्॥२२३॥
परसङ्गत्यागपूर्वं निजात्मरमणात्मकम्। संयमं साधनादेतत् सिद्धिर्भवति नान्यथा॥२२४॥[१]
स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणं वदेच्छ्रुतौ। इष्टान्यवस्तुविज्ञानस्वीकारान्यक्षमं तथा॥२२५॥
सर्वनयस्वरूपस्य ग्राहकं यत्प्रमाणकम्। पारिणामिकभावेन प्रमाता चेतनो भवेत्॥२२६॥
स्वदेहमानमात्रोऽस्ति क्षेत्रं प्रति विभिन्नतः। रत्नत्रयसाधनेन जीवः सिद्धिं समश्नुते॥२२७॥
इति प्रमाणद्वारम्॥
धर्माधर्माभ्रकालेषु भावोऽस्ति पारिणामिकः। भावोदयपरिणामौ नयनौ पुद्गले भवेत्॥२२८॥
पुद्गले च परिणामः स्कन्धेष्वादिस्वभावतः। तथाविहायोपशमं भावाः स्युर्विघ्नावरणेऽब्धयः॥२२९॥
नामगोत्रायुर्वेदेषु त्यक्तोपशममिश्रकम्। त्रयो भावाः पञ्च मोहे भवन्ति जिनशासने॥२३०॥

---

१. यह श्लोकः **सं.** प्रत में नहीं है।

गतिष्वपि पञ्च पञ्च भावाः सन्ति शिवालये। परिणामक्षायिकौ स्तो भावद्वारं निरूपितम्॥२३१॥
गतिस्थितेषु जीवेषु सर्वे भावा भवन्ति च। परिणाम क्षायिकौस्तो जीवेषु मोक्षपत्तने॥२३२॥
इति मूलभावाः॥
मिथ्यासास्वादनमिश्राव्रतदेशव्रताभिधाः। प्रमत्तान्यौ निवृत्त्यन्यौ सूक्ष्मोपशमक्षीणकाः॥२३३॥
गुणाः सयोग्ययोगी च भवन्ति जिनशासने। लोके भवस्थजीवस्य परिणामविशेषकाः॥२३४॥
मिश्रोदयपरिणामा भावाः सन्ति गुणत्रिके। तथा व्रतादीभगुणे पञ्च भावा भवन्ति च॥२३५॥
क्षीणे भवन्ति चत्वारो विमुच्योपशमं तथा। विहाय मिश्रोपशमं त्रयो भावान्त्यके द्विके॥२३६॥
मिथ्यासास्वादने सन्ति दिग्भेदा मिश्रकस्य च। चक्ष्वचक्ष्वज्ञानत्रिकं दानादिशरलब्धयः॥२३७॥
मिश्रे स्युर्मिश्रसम्यक्त्वं दर्शनज्ञानगुम्निकम्। दानादिलब्धयः पञ्च तूर्येऽपि द्वादशस्तथा॥२३८॥
व्रतद्वादशक्षेपेण पञ्चमे स्युस्त्रयोदश। चतुर्दश पर्ययेन षष्ठमे सप्तमे गुणे॥२३९॥
निवृत्त्यादित्रिकगुणे क्षायोपशमकं विना। संयमाभावयोगेन द्वादश स्युर्गुणद्विके॥२४०॥
नखाधिकैको मिथ्यात्वे औदयिकस्य विंशतिः। भेदा भवन्ति द्वितीये मिथ्यात्वाभावयोगतः॥२४१॥
तृतीयाब्ध्योर्दशखगा मुक्त्वाज्ञानं च पञ्चमे। नारकामरभावेन भवन्त्यद्रिदशोदयाः॥२४२॥
सुतिर्यक्सं[१]()यमाभावात्षष्ठमेषुदशो भवेत्। निकृष्टलेश्याभावेन सप्तमे सन्ति द्वादशः॥२४३॥
तेजःपद्मविहीनेन मातङ्गनवमे दश। वेदादिमकषायाग्निहीनाः स्युर्दशमेऽब्धयः॥२४४॥
लोभाभावात्त्रयो भेदा भवन्त्युपरिमत्रिके। शुक्लाभावेन चरमे भेदौ द्वौ भवतः खलु॥२४५॥
तूर्याद्युपशमान्तेषु भावश्चोपशमो भवेत्। नवमैकादशान्ते स्यात्संयमोपशमं नरान्॥२४६॥
तूर्याद्यष्टगुणस्थाने क्षायिकदर्शनं भवेत्। क्षीणे क्षायिकयोगेन क्षायिकसंयमोऽपि हि॥२४७॥
दानादिलब्धयः पञ्च सम्यक्त्वं केवलद्विकम्। संयमं च सन्ति भेदाः क्षायिकस्यान्त्यके द्विके॥२४८॥
जीवभव्याभव्यभेदा मिथ्यात्वे च त्रयं भवेत्। द्वितीयात्क्षीणमोहान्तं मुक्त्वाभव्यमुभौ तथा॥२४९॥
विहाय भव्यं जीवोऽस्ति गुणस्थानेऽन्त्यके द्विके। इत्थमेते पञ्च भावा गुणस्थानेषु निर्ममे॥२५०॥
इति परिणामिकभेदाः॥
गुप्त्यम्बरादब्धियुगगुम्निपञ्चाब्धिपावकयोगेन सप्तमे त्रिंशन्नखादद्रिगजाधिकाः॥२५१॥
नखाद्युगाधिकनखा दिशो खेटानलाधिकः। द्वादशान्त्ये गुणे भेदा भवन्ति सन्निपातिकाः॥२५२॥
इति भावद्वारम्॥
जीवो भवेज्जीवद्रव्यः शेषाः पञ्चाप्यजीवकाः। सर्वे द्रव्याधिकारेण व्याख्या द्रव्यानुयोगकाः॥२५३॥
धर्मादिष्वम्बरं द्रव्यं लोकालोकप्रमाणकम्। क्षेत्ररूपमस्ति शेषाः सन्ति निःक्षेत्रलक्षणाः॥२५४॥
रुद्रद्वारानुसारेण सद्भावार्थमुपेत्य च। विमुच्य पुद्गलानन्दं निजभावं समाचर॥२५५॥
जीवा दुर्नययोगेन मिथ्याशासनसङ्गताः। बोधिबीजं परित्यज्य भ्रमन्ति भवकानने॥२५६॥
ततः श्रुतगुरुं लब्ध्वा विनयैर्गुरुभक्तितः। द्रव्यभावार्थमालम्ब्य श्रुतबोधमुपार्जय॥२५७॥
जीवाजीवस्वरूपं च विज्ञाय ज्ञपरिज्ञया। निजात्मगुणवित्तेन भजध्वं श्रेय(यो) मन्दिरम्॥२५८॥
स्याद्वादपुष्पकलिका प्रवचनाद्विनिर्ममे। बालबोधाय लेशेन तत्त्वार्थावगमाय च॥२५९॥
कोटकेन्दुकुले रम्ये श्रीवंशोत्तमवाचके। निध्युपाध्यायस्य शिष्यश्चक्रे वाचकसंयमः॥२६०॥

---

१. यहां पर **तिर्यगसंयमाभावात्** पाठ अधिक संगत लगता है।

द्वितीयं परिशिष्टम्

गाथानामकारादिक्रमः

गाथा	गाथाक्रम.
अंशग्राही नैगमोऽस्ति	२१०
अंशग्राही नैगमश्च	१५३
अतीतकालभावानां	१४९
अत्रावान्तरसामान्यं	१९८
अत्रास्तित्वेऽस्ति	११८
अनादिनित्यपर्यायैः	७१
अर्थक्रियाकारि द्रव्यं	५२
अर्पितानर्पिताभासा	२०७
अस्तिनास्तिस्वभावाश्च	११६
अस्त्यभावे गुणाभावस्तेन	१२२
अस्त्यादयस्त्रयो भङ्गाः	११९
आकाशादेकद्रव्याणि	७८
आगमनोआगमाभ्यां	१४१
आद्योऽस्तित्वादिषड्भेदो	२३
आधारभूतधर्मत्वम	८७
आरोपसङ्कल्पांशैश्च	१९
आरोपसर्जनारोप	१५२
आविर्भावतिरोभावैर	३२
इत्थं नयविचारश्च	२१४
इत्याद्यनेकसद्रूपो	२१३
उपादानसुनैमित्तासामान्या	१५१
ऋजुसूत्रो भवेद्धेतु	२११
एकैकैस्त्रिविकल्पाश्च	१८३
एते रसस्वभावाश्च	९३
एतेऽस्त्यादिस्त्रयो	१०६
एवं द्रव्येषु नित्यैकादिषु	१२०
एवं पञ्चास्तिकायेषु	१५४
एवं पञ्चास्तिकायेषु	१७२
एवं यथा शब्दभावोः	३५
एवं समग्रभावेषु गुण	१८४
कषायसंयमज्ञान	४१
कार्यभेदेन भावानां	४९
कार्यान्वयकारणाभ्यां	९६
कार्यान्वयकारणाभ्यां	९७
कालत्रिकैकैव द्रव्यः	१४६
कुम्भाकृतियुतः कुम्भः	१८८
कोटकेन्दुकुले रम्ये	२६०
क्षायिकोपशममिश्र	३७
क्षीणे भवन्ति चत्वारः	२३६
क्षेत्रकालसुभावानां	९८
गतिष्वपि पञ्च पञ्च	२३१
गतिस्थितेषु जीवेषु	२३३
गुणज्ञानाद्यभिन्नेन	१७०
गुणाविभागानन्ताः	६२
गुणाः सयोग्ययोगी च	२३३
गुणानां साधकावस्थारूपः	१६९
गुप्त्यम्बरादब्धियुगगुप्ति	२५१
गोसादृश्यत्वभावेन	२१९
ग्रन्थान्यस्मिन्शुद्धशु	२९
घटे घटधर्मास्तित्वं	१०४
चैतन्यलक्षणो जीवो	१९६
चैतन्यामूर्तगत्यक्रियाः	५७
जिनोक्ततत्त्वश्रद्धानं	२२३
जीवभव्याभव्यभेदाः	२४९
जीवभव्याभव्यभेदैः	४२
जीवाक्रियामूर्तकत्वं	५६
जीवाजीवप्रभेदाभ्यां	१२
जीवाजीवस्वरूपं च	२५७
जीवाजीवस्वरूपश्च	४५
जीवाः दुर्नययोगेन	२५५
जीवादिवस्तुनो भावः	४७

जीवे विभावपर्याया	७०	द्रव्याद् द्रव्यपृथग्भावो	५३
जीवैकं द्रव्यमादृत्य	८२	द्रव्याद्यपरजातीनां	१०१
जीवो भवेज्जीवद्रव्यः	२५३	द्रव्ये च केचिद्धर्माणां	११४
ज्ञभव्यव्यतिरिक्तैः	१४२	द्रव्येषु मूलसामान्य	८५
ज्ञानं गृह्णन्क्रियाक्षेपा	२०८	द्रव्येषु ये स्वपर्यायाः	६३
ज्ञानत्वेन ज्ञानमस्ति	१२१	द्रव्येषु व्याप्यभावस्थे	१५६
ज्ञानादिगुणमादृत्य	१४८	द्रव्येष्वस्त्यादयो	१२७
ज्ञानादिनिजधर्मेषु	११२	द्रव्यैकभावाभावेन	९९
ततः श्रुतगुरुं लब्ध्वा	२५७	द्रव्यैकस्मिन्प्रदेशे च	५४
तत्प्रत्यक्षपरोक्षाभ्यां	२१५	धर्मधर्मिकादीनामेकान्ति	१९३
तत्र देशसमग्राभ्यां	२१६	धर्माधर्मव्योमजीव	२
तत्र व्याससमासाभ्यां	१४५	धर्माधर्माभ्रकालेषु	२२८
तत्र-धर्माधर्मयोश्च	८१	धर्माधर्माभ्रकालेष्व	६७
तथा द्रव्यप्रतिक्षेपी	१९२	धर्माधर्माभ्रद्रव्येषु	५५
तथा स्थित्यादयोऽधर्मे	६५	धर्मादयो निःक्रियाणि	७९
तथावगाहनक्षेपात्परा	५८	धर्मादिष्वम्बरं द्रव्यं	२५४
तथैवास्तित्वनास्ति	१३२	ध्रौव्योत्पादव्ययायुतं	९१
तद्भावाव्ययभावेन	७५	नखाद्युगाधिकनखा	२५२
तूर्याद्यष्टगुणस्थाने क्षायिक	२४७	नखाधिकैको मिथ्यात्वे	२४१
तूर्याद्युपशमान्तेषु	२४५	नत्वा संयमवामेयं	१
तृतीयाब्ध्योर्दशखगाः	२४२	नयप्रमाणकादीनां	२२२
तेजःपद्मविहीनेन मातङ्ग	२४४	नरः समभिरूढज्ञः	१८६
दानादिलब्धयः पञ्च	२४८	नामगोत्रायुर्वेदेषु	२३०
दृष्टिज्ञानकषायाणामु	२०१	नामाद्यनिलकुम्भानि	१७९
देशगः सर्वगश्चैव क्षेत्रो	४४	निक्षेपोदधिमादृत्य	१८०
द्रव्यं प्रति सर्वधर्माः	१३३	निजान्यसत्त्वासत्त्वेन	१०७
द्रव्यकालगुणारोपो	२०	नित्यानित्यसावयव	१५८
द्रव्यगुणप्रदेशाश्च	९२	नित्यावस्थितान्य	७४
द्रव्यगुणविकाराः ये	८	नित्याशुद्धेतरौ ज्ञेयौ	१६
द्रव्यत्वास्तित्ववस्तुत्व	५	नित्यादयश्च सामान्याः	१६२
द्रव्यपर्याययुगलनय	५१	नित्याद्युत्तरसामान्येतरे	१६०
द्रव्यपर्याययोर्भेदा नयैः	१७	नित्यैकास्तिभेदभव्य	१०
द्रव्यपर्यायार्थिकाभ्यां	१३	निरवयवैकनित्याक्रिय	१५७
द्रव्यादिश्चैकसमये	११७	निवृत्त्यादित्रिकगुणे	२४०
द्रव्यादिषु स्वभावैश्च	१८२	नैगमसङ्ग्रहव्यवहारर्जु	१८

नैगमादिसप्तनयाः	२०९	महदवान्ताभ्यां	१६५
नैगमाद्याश्च चत्वारः	१९०	मिथ्यासास्वादनमिश्रा	२३३
पञ्चास्तिकायिकानां	१४७	मिथ्यासास्वादने सन्ति	२३७
पदार्थानां नामभेदं	२०५	मिश्रे स्युर्मिश्रसम्यक्त्वं	२३८
परमाणून्यवयवा	८०	मिश्रोदयपरिणामाः	२३५
परसङ्गत्यागपूर्वं	२२४	मूर्तचेतनशुद्धैकप्रदेश	११
परावृत्त्यादयः काले	६६	मूर्तत्वगुणमादृत्य	७७
परिणामसप्रदेशनित्य	८४	मूर्तामूर्तक्रियान्यानि	६
परोक्षप्रत्यक्षाभ्यां च	३६	मूलसामान्यभेदामी	१५९
पर्यायपरिणामाश्चस्व	१३४	यं लक्ष्यते यथार्थेन	४८
पर्यायान्तरको भिन्नकार्य	२१२	यः पर्यायध्वनीनां	२०४
पर्यायार्थिकभेदाश्च	१५	यः पर्यायप्रतिक्षेपी	१९१
पर्यायैकस्प्राग्भावस्ति	२०२	यत्सत्तल्लक्षणं द्रव्यं	४
पारम्पर्याप्रच्युतिभ्यां	९५	यथा जीवे गुणव्यूहाः	१०३
पारिणामिकभावत्वे	१२६	यथा पीनो देवदत्तो	२२१
पुद्गले च परिणामः	२२९	यथार्थवस्तुभावज्ञो	२२०
पुद्गले रूपमादृत्य	६८	या या सञ्ज्ञा द्रव्यकाणां	१८५
पुनर्व्यञ्जकयोगेन सत्तासत्ता	१२३	ये समग्रपदार्थानां	१३१
पृथुबुध्नाकारयुतं	१७८	रुद्रद्वारानुसारेण	२५४
प्रत्येकमेकभेदोऽस्ति श्रु	३३	लक्षणगुणपर्यायस्वभावा	३
प्रथमः स्वपरिणामः	२१	लिङ्गत्रिवाक्प्रत्ययाद्यैः	२०३
प्रदेशासङ्ख्यकैकत्व	६१	लिङ्गपरामर्शकं	२१८
प्रदेशासङ्ख्यपिण्ड	६४	लोकालोकज्ञानरूपो	१६८
प्रवृत्तिकालमादृत्य	३०	लोके पञ्चास्तिकायास्ति	१३८
प्राधान्यार्थेन प्रथमे	१८९	लोकोत्तरा लौकिका	२८
बहुप्रदेशमुक्तेन	७३	लोभाभावात्त्रयो	२४५
भवेज्जीवस्त्वेकविधः	४३	वक्तव्याभावयोगेन	१३०
भव्याभावे विशेषाणां	१२८	वर्णगन्धरसस्पर्शगति	७
भावनिक्षेपको भाव	१४३	वर्णगन्धरसस्पर्शा	६०
भावानां बोधभावेन	१४४	वर्तमानक्षणस्थायिपर्याय	२००
भूतहेतुं समादृत्य	१७४	वर्तमानग्राहकः	१७५
भेदान्तरविभजनै	१६६	वस्तुदेशे स्वपर्यायैः	११०
भेदाभावे गुणानां	१२५	वस्तुष्वनन्तकाः सन्ति	९४
भोक्तृत्वरक्षणाधारा	१३५	वस्त्वैकदेशे परकैर	१०९
मतिश्रुताभिधानेन	२१७	वा द्रव्ये रस-पर्यायाः	९

वा व्यतिरेकानुगम २४
वाग्गोचरापन्नधर्मास्ते १२९
वाच्यार्थस्य वाचको १८७
विवक्षितः स्वैः सद्भावो १०८
विहाय भव्यं जीवोऽस्ति २५०
वीरनिर्वाणयोगेन १५०
वीर्यदृष्टिज्ञानसुखचैतन्य ५९
वोत्पादव्ययययोर्मध्ये ८८
व्ययपर्यायकाणां च ८९
व्ययोत्पादध्रुवयुतं ५०
व्यवहारो युगं स्याद्वा २७
व्रतद्वादशक्षेपेण २३९
शब्दक्षेप्यर्थाभिधायी २०६
शब्दस्य यो नयो व्यक्तः १७७
शब्दस्य योऽस्ति १७६
शब्दार्थग्राहकः शब्दो १८१
शमदर्शनचारित्रौ ३९
शुद्धाशुद्धप्रभेदाभ्यां २५
शुद्धाशुद्धमूर्तजीव ७२
स परापरभेदाभ्यां १९५
संयमी मिश्रसम्यक्त्व ४०
संश्लेषितोऽशुद्धरूपोऽहं १७१
सक्रियाखण्डनिस्सङ्गा १३७
सङ्केतसहजाभ्यां १४०
सङ्ख्यासङ्ख्यानन्त ८३
सङ्ग्रहज्ञानयोगेन १६१
सङ्ग्रहज्ञानयोगेन एते १५५
सङ्ग्रहादृतभावानां १९९
सङ्ग्रहो द्विविधः प्रोक्तः २२
सञ्ज्ञान्तरार्थविमुखो ३४
सत्त्वं चागुरुलघुत्वं ८६
सत्त्वं चैतन्यभिन्नेऽपि १९४
सद्भूतकेतराभ्यां २६
सद्वक्तव्यान्वयोत्कृष्ट १४
समकालप्रवृत्तिनः ११५
सर्वदैवाविच्छिन्ना १०२
सर्वद्रव्यस्वरूपाणां १६७
सर्वद्रव्येषु विज्ञेयाः १३९
सर्वनयस्वरूपस्य २२६
सर्वभावेष्वनुगम १६४
सामान्याभिमुखेन १६३
सिद्धसंसारिभेदाभ्यां ४६
सुज्ञानबोधरूपो यः १७३
सुतिर्यक्सं यमा २४३
सुवाच्यार्थग्राहकेन ३१
स्पर्शादिमूर्त्यभावेन ७६
स्याद्वादपुष्पकलिका २५९
स्वकार्यत्वसप्रदेशभावका १३६
स्वदेहमानमात्रोऽस्ति २२७
स्वद्रव्यादिचतुष्केन १००
स्वपरव्यवसायि ज्ञा २२५
स्वपरोभयपर्यायै १११
स्वपरोभयपर्यायैः १०५
स्वपर्याया (अ)गुरुलघु ६९
स्वभावस्वकार्यगुरुलघु १२४
स्वमत्याद्वैतभावेन १९७
स्वान्यजात्यन्यद्र ११३
स्वान्यात्मकं बोधरूपं ९०

तृतीयं परिशिष्टम्

उद्धरणस्थलसङ्केताः

उद्धरण	स्थलसङ्केत	गाथा क्र.
अण्णोण्णं पविसंता	पंचास्तिकायसार 7	१०
अनित्यावस्थितानि रूपाणि		७६
अप्पा कत्ता	उत्तराध्ययनसूत्र २०.३७	१३४
अभिमतानभिमतवस्तु	प्रमाणनयतत्त्वालोक १.३	२२४
अभिलप्पा जे भावा		१२९
अरूपाणि च नैषां	तत्त्वार्थसूत्रभाष्य ५.३	७६
अवगाढारं व विणा	विशेषावश्यकभाष्य २८२२	८०
अवगाहणादयो णणु गुणत्तओ	विशेषावश्यकभाष्य २८२१	८०
अवस्थितानि च	तत्त्वार्थसूत्रभाष्य ५.३	७६
अहवा सम्मद्दंसणणाणचरित्तो	विशेषावश्यकभाष्य ५०	२
इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि	अष्टाध्यायीसूत्रपाठ ३.२.१३०	७६
उवए वा विगमे वा		८०
एगे आया		२४
एवं जह सदत्थो संतो	विशेषावश्यकभाष्य २२५१	३५
कइविहे णं भंते भावपरमाणू	भगवतीसूत्र ६७०	४६
कायग्रहणं प्रदेशावय	तत्त्वार्थसूत्रभाष्य ५.१	८०
कायग्रहणं प्रदेशावयव	तत्त्वार्थसूत्रभाष्य ५.१	४६
कारणमेव यदन्त्यं सूक्ष्मो		२
कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेदं	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.३२	२००
क्रमभाविपर्यायः स	प्रमाणनयतत्त्वालोक अवचूरि ७.२४	१९९
क्रियाविष्टं वस्तु	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.४२	२०५
गिण्हइ काइएणं	आवश्यकनिर्युक्ति ७	१३४
गुणपर्यायवद् द्रव्यम्	तत्त्वार्थसूत्र ५.३७	५१
गुणपर्यायवद् द्रव्यम्	तत्त्वार्थसूत्र ५.३७	७३
गुणानामासओ दव्वं		५४
गोयमा ! अत्थित्ते अत्थित्तं		१०४

चैतन्यमनुभूतिः स्यात्सा		५
जं जं सण्णं भासइ	विशेषावश्यकभाष्य २२३६	३४
जं पुण तयत्थसुण्णं	विशेषावश्यकभाष्य २६	२
जत्थ य जं जाणिज्जा	अनुयोगद्वारसूत्र १	१३९
जायतेऽस्ति विपरिणमते	निरुक्त	१२६
जीवपुद्गलास्तु क्रियावन्तः	तत्त्वार्थसूत्रभाष्य ५.६	८०
जीवाजीवा य बंधो य	उत्तराध्ययनसूत्र २८.१४	२२३
जे एअइ वेअइ चलेइ		१३३
जो कुणई सो भुंजइ य	२८२३	१३४
ण य पज्जवओ	विशेषावश्यकभाष्य २८३३	८०
तदनेन पञ्चदशविधेनापि	आचारांगटीका लोकविजयाध्ययन प्रथमोद्देशक	१३३
तद्भावाव्ययं नित्यम्	तत्त्वार्थसूत्र ५.३०	७६
तहियाणं तु भावाणं	उत्तराध्ययन २८.१५	२२३
तान्लक्षणतः परस्ताद्	तत्त्वार्थसूत्रभाष्य ५.१	४६
तारयाणं इत्यगदत्	शक्रस्तव	१५१
दवए दुयए दोरवयवो	विशेषावश्यकभाष्य २८	२
द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं	कारिकावली २	५२
द्रव्यत्वमेव वर्ततेऽर्थान्तर	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.२२	१९८
द्रव्यत्वादीन्यवान्तर	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.१९	१९६
द्रव्याणि जीवाश्च	तत्त्वार्थसूत्र ५.२	७३
द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः	तत्त्वार्थसूत्र ५.४०	७६
धर्माधर्माभ्रपुद्गलजीव	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.२०	१९६
धर्माधर्मयोरीयती		८१
न कदाचित्पञ्चत्वं व्यभिचरन्ति		७६
नयवचनमपि निजविषये	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.५३	२०९
नामाइतियं दव्वट्ठियस्स	विशेषावश्यकभाष्य ७५	१८
नित्याऽवस्थितान्यरूपाणि	तत्त्वार्थसूत्र ५.३	७६
नित्याऽवस्थितान्यरूपाणि	तत्त्वार्थसूत्र ५.३	७६
नित्याविनाशि-अखण्डादयः		१३१
नित्यानि भवन्ति	तत्त्वार्थसूत्रभाष्य ५.३	७६
निरवयवो खलु		८०

नीयते येन श्रुताख्य		१४४
नैगमसङ्ग्रहव्यवहारभेदा		१८
नैगमादयश्चत्वारो		१८
पच्चुप्पन्नं संपयमुप्पन्नं	विशेषावश्यकभाष्य २२२३	३०
पच्चुप्पन्नगाही उज्जुसुओ	आवश्यकनिर्युक्ति	१७३
पज्जायाणभिधेयं	विशेषावश्यकभाष्य २५	२
परमाणुरप्रदेशो	प्रशमरति २०८	८०
परमाणोरन्यत्र		८०
पुद्गला एव रूपिणो		७६
प्रत्येकं धर्मास्तिकाया		४६
प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन	न्यायदर्शनम् १-१-१	५२
फलमेव गुणः फलगुणः	आचारांगटीका लोकविजयाध्ययन	१४३
मूर्त्याश्रयाश्च स्पर्शादय इति।	तत्त्वार्थसूत्रभाष्य ५.३	७६
यथा चार्वाकदर्शनम्	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.२६	१९९
यथा तथागतमतम्	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.३१	२००
यथा बभूव भवति	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.३३	२००
यथा बभूव भवति भविष्यति	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.३५	२३
यथा सत्तैव तत्त्वं ततः	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.१८	१९६
यथेन्दनमनुभवन्निन्द्रः	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.४१	२०५
यथेन्द्रः शक्रः पुरन्दर	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.३९	२०४
यावन्तो ज्ञेयास्तावन्त		५४
येनाभिसन्धिना सङ्ग्रहेण	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.२३	१९९
रूपं मूर्तिः	तत्त्वार्थसूत्रभाष्य ३.५	७६
रूपमेषामस्त्येषु वास्तीति	तत्त्वार्थसूत्रभाष्य ५.४	७६
रूपिणः पुद्गलाः	तत्त्वार्थसूत्र ५.४	७६
लोकालोकाकाशस्यानन्ताः	तत्त्वार्थसूत्रभाष्य ५.९	८२
वंजणमत्थेणत्थं च	विशेषावश्यकभाष्य २२५२	१८८
ववहरणं ववहरए स	विशेषावश्यकभाष्य २२१२	२८
विशिष्टचेष्टारहितं घटाख्यं	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.४३	२०६
विश्वमेकं सदविशेषादिति	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.१६	१९५
स व्यास-समासाभ्यां		१८

संगहणं संगिण्हइ	विशेषावश्यकभाष्य २२०३	२४
संगहियमागहियं संपिंडिय	विशेषावश्यकभाष्य २२०४	२४
संसर्गः विप्रयोगश्च साहचर्यं	वाक्यपदीय २.३१५	४६
सङ्घातभेदजाः स्कन्धाः	तत्त्वार्थसूत्रभाष्य ५.२६	८०
सत्ताद्वैतं स्वीकुर्वाणः	प्रमाणनयतत्त्वालोक ७.१७	१९६
सदसदविसेसणाओ भव	विशेषावश्यकभाष्य ११५	१०४
सर्वेषां प्रदेशाः सन्त्यन्यत्र		८०
सर्वेषामवयवाः सन्ति	तत्त्वार्थसूत्रभाष्य ५.६	८०
सह सुपा	आष्टाध्यायीसूत्रपाठ २.१.४	७६
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो	वाक्यपदीय २.३१६	४६
सिय अत्थि सिय नत्थि	ठाणसूत्र	१०४
सुत्तं गणहररइयं तहेव		२००

द्रव्य
लक्षण
गुण
सामान्य-13
द्रव्यत्व,
अस्तित्व,
वस्तुत्व,
प्रदेशत्व,
प्रमेयत्व
सत्त्व,
अगुरुलघुत्व
चेतनत्व,
अचेतनत्व,
मूर्तत्व,
अमूर्तत्व,
सक्रियत्व
अक्रियत्व
विशेष-18
दर्शन,
ज्ञान,
सौख्य
वीर्य
चेतना
अचेतना मूर्त
अमूर्त
सक्रिय अक्रिय
वर्ण
गंध
रस
स्पर्श
गतिहेतु
स्थितिहेतु
अवगाहनाहेतु
वर्तनाहेतु
पर्याय
स्वभाव
विभाव
स्वभाव
सामान्य-13
नित्य,
अनित्य,
एक,
अनेक,
अस्ति,
नास्ति,
भेद,
अभेद,
अभव्य
चक्रव्य,
अवक्तव्य
परमस्वभाव
विशेष-10
मूर्त
अमूर्त
अचेतन
शुद्ध
अशुद्ध
एकप्रदेश
अनेकप्रदेश
विभाव
उपचरित
अस्ति
नय
द्रव्यार्थिक-3
नैगम,
संग्रह,
व्यवहार
पर्यायार्थिक-4
ऋजुसूत्र,
शब्द,
समभिरूढ,
एवंभूत
प्रमाण
प्रत्यक्ष-3
अवधि
मनःपर्याय,
केवल
परोक्ष-2
मति, श्रुत
भाव
क्षायिक,
उपशम,
मिश्र,
परिणाम,
उदय
सन्निपात
जीव
अनुयोग
द्रव्यानुयोग,
चरणकरणानुयोग,
गणितानुयोग
धर्मकथानुयोग
क्षेत्र
देशगत
सर्वगत

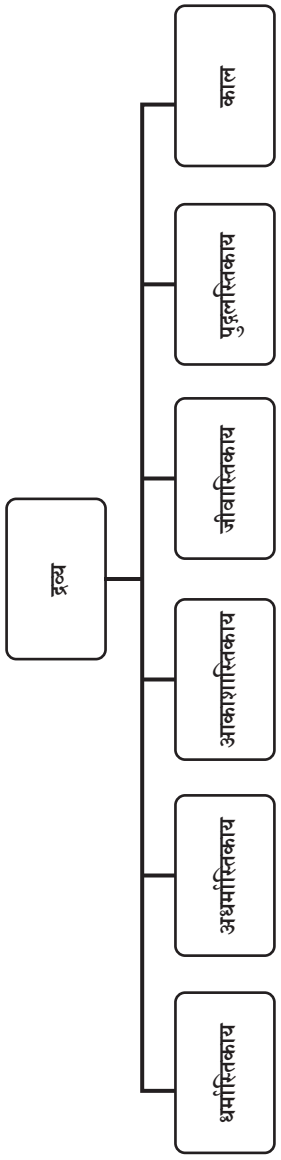
द्रव्य
धर्मास्तिकाय
अधर्मास्तिकाय
आकाशास्तिकाय
जीवास्तिकाय
पुद्गलास्तिकाय
काल

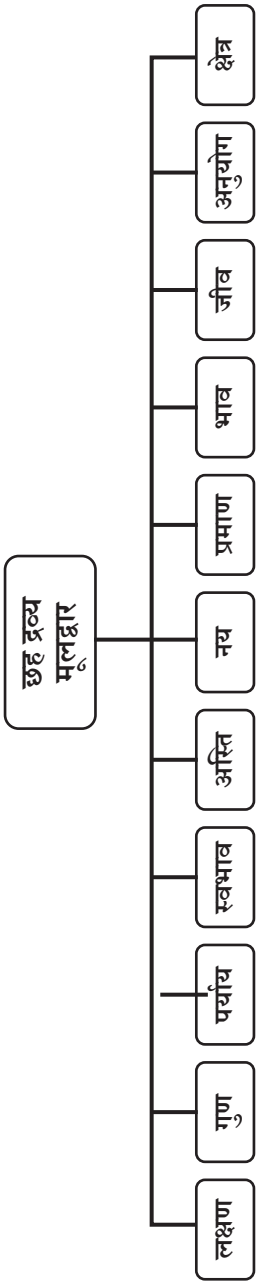
छह द्रव्य मूलद्वार
लक्षण
गुण
पर्याय
स्वभाव
अस्ति
नय
प्रमाण
भाव
जीव
अनुयोग
क्षेत्र

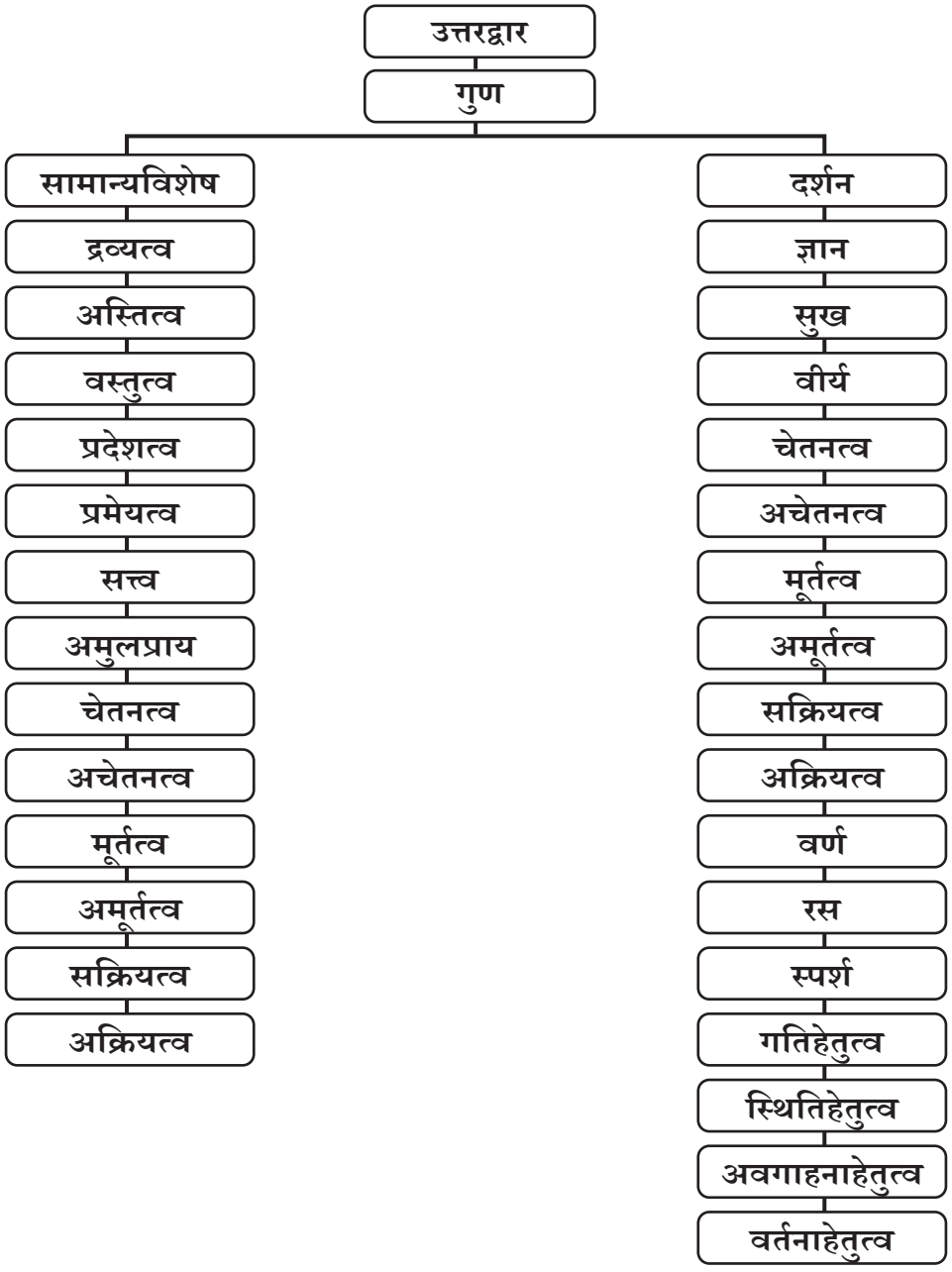
उत्तरद्वार
गुण
सामान्यविशेष
द्रव्यत्व
अस्तित्व
वस्तुत्व
प्रदेशत्व
प्रमेयत्व
सत्त्व
अमुलप्राय
चेतनत्व
अचेतनत्व
मूर्तत्व
अमूर्तत्व
सक्रियत्व
अक्रियत्व
दर्शन
ज्ञान
सुख
वीर्य
चेतनत्व
अचेतनत्व
मूर्तत्व
अमूर्तत्व
सक्रियत्व
अक्रियत्व
वर्ण
रस
स्पर्श
गतिहेतुत्व
स्थितिहेतुत्व
अवगाहनाहेतुत्व
वर्तनाहेतुत्व

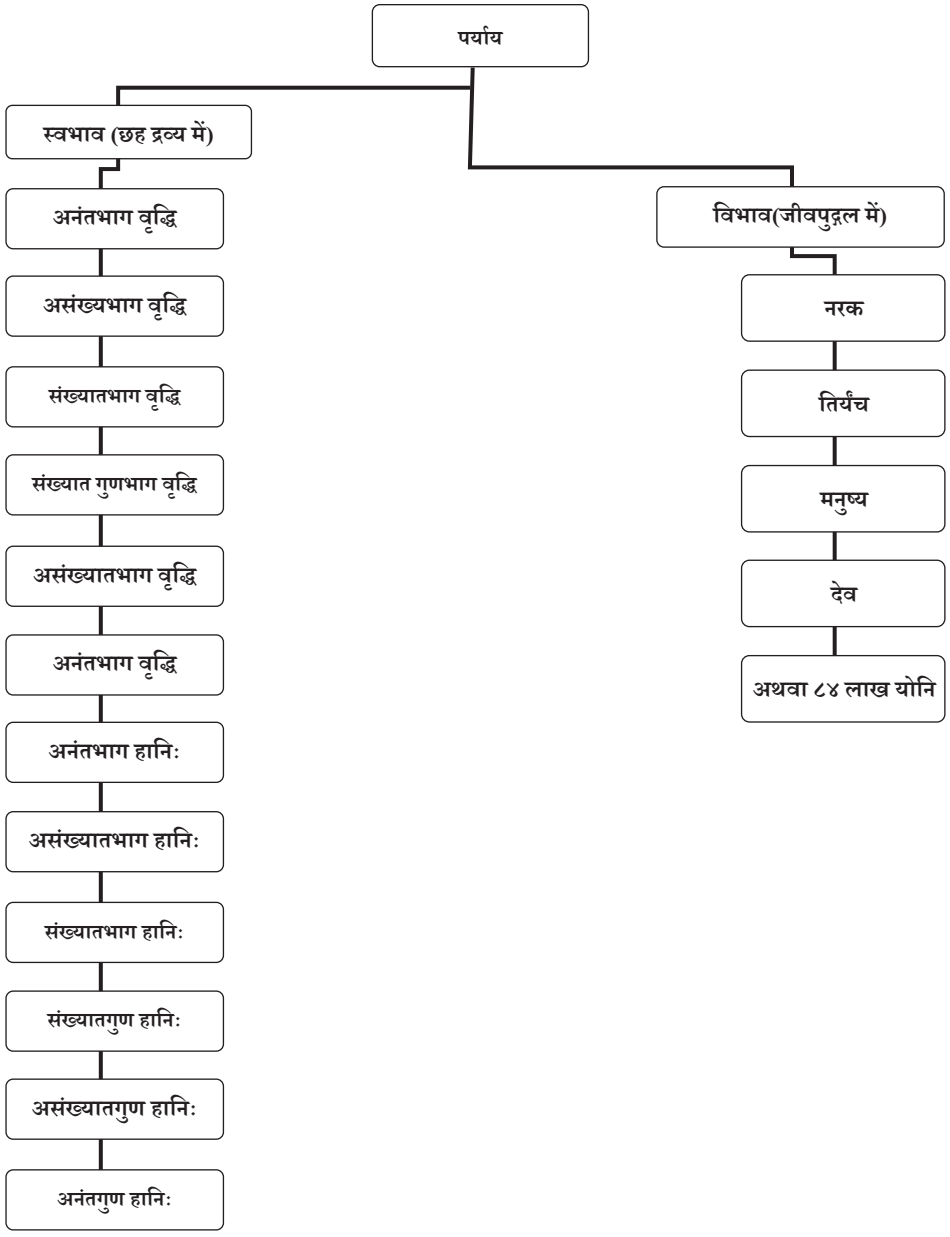
पर्याय
स्वभाव (छह द्रव्य में)
अनंतभाग वृद्धि
असंख्यभाग वृद्धि
संख्यातभाग वृद्धि
संख्यात गुणभाग वृद्धि
असंख्यातभाग वृद्धि
अनंतभाग वृद्धि
अनंतभाग हानिः
असंख्यातभाग हानिः
संख्यातभाग हानिः
संख्यातगुण हानिः
असंख्यातगुण हानिः
अनंतगुण हानिः
विभाव(जीवपुद्गल में)
नरक
तिर्यंच
मनुष्य
देव
अथवा ८४ लाख योनि

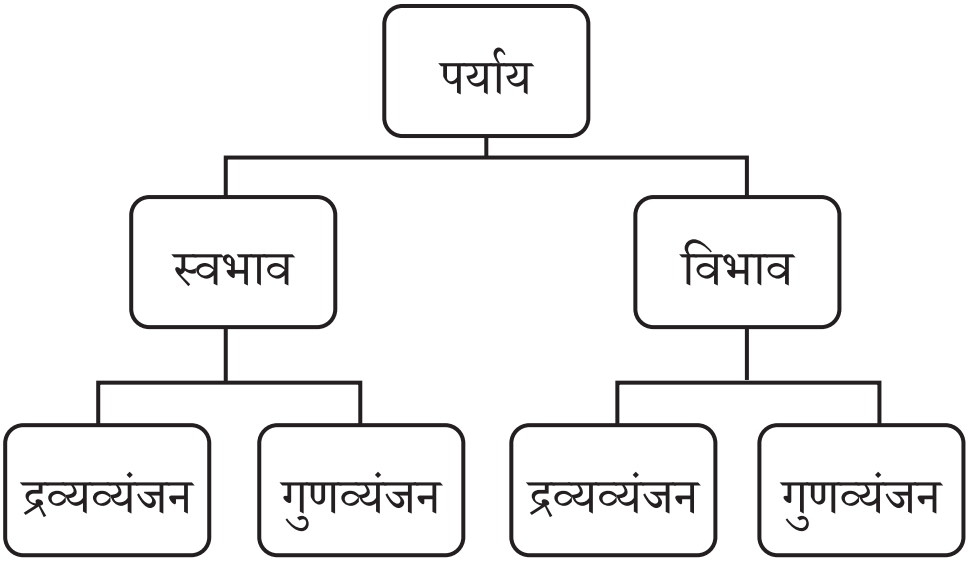
पर्याय
स्वभाव
विभाव
द्रव्यव्यंजन
गुणव्यंजन
द्रव्यव्यंजन
गुणव्यंजन

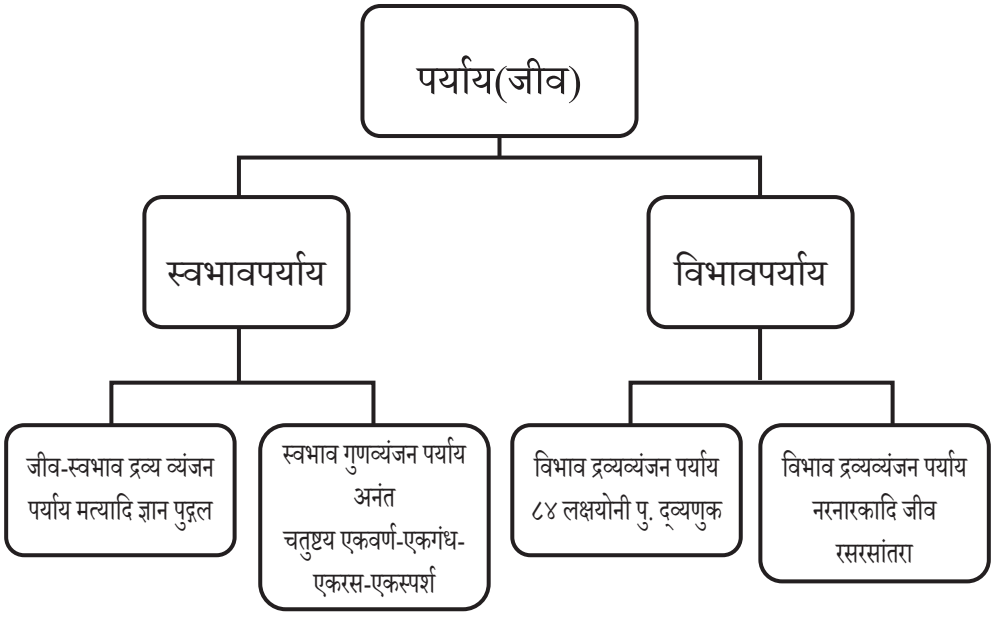
पर्याय(जीव)
स्वभावपर्याय
विभावपर्याय
जीव-स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय मत्यादि ज्ञान पुद्गल
स्वभाव गुणव्यंजन पर्याय अनंत चतुष्टय एकवर्ण-एकगंध-एकरस-एकस्पर्श
विभाव द्रव्यव्यंजन पर्याय ८४ लक्षयोनी पु. द्व्यणुक
विभाव द्रव्यव्यंजन पर्याय नरनारकादि जीव रसरसांतरा

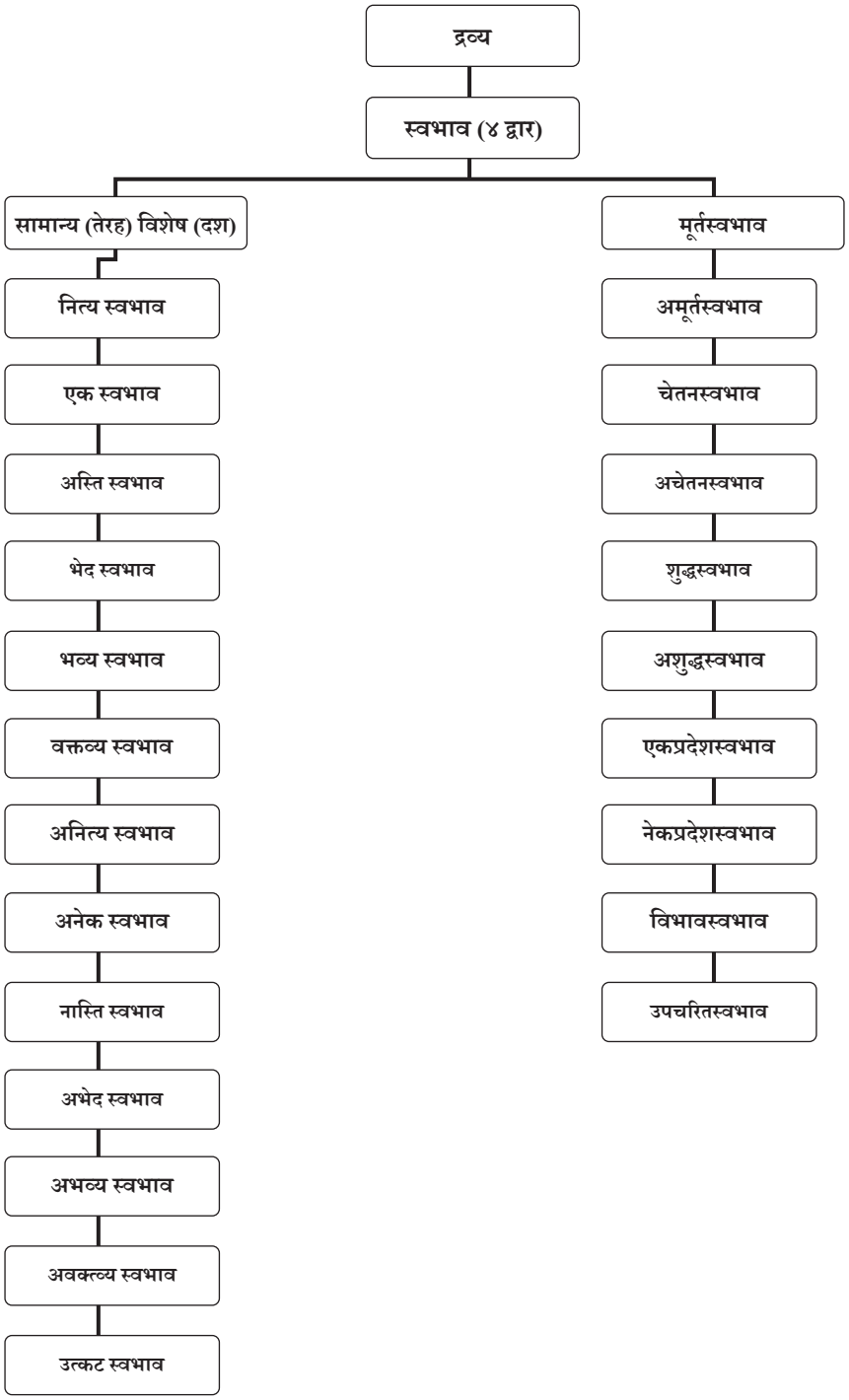
द्रव्य
स्वभाव (४ द्वार)
सामान्य (तेरह) विशेष (दश)
नित्य स्वभाव
एक स्वभाव
अस्ति स्वभाव
भेद स्वभाव
भव्य स्वभाव
वक्तव्य स्वभाव
अनित्य स्वभाव
अनेक स्वभाव
नास्ति स्वभाव
अभेद स्वभाव
अभव्य स्वभाव
अवक्तव्य स्वभाव
उत्कट स्वभाव
मूर्तस्वभाव
अमूर्तस्वभाव
चेतनस्वभाव
अचेतनस्वभाव
शुद्धस्वभाव
अशुद्धस्वभाव
एकप्रदेशस्वभाव
नेकप्रदेशस्वभाव
विभावस्वभाव
उपचरितस्वभाव

पांचवा अस्तिकायद्वार

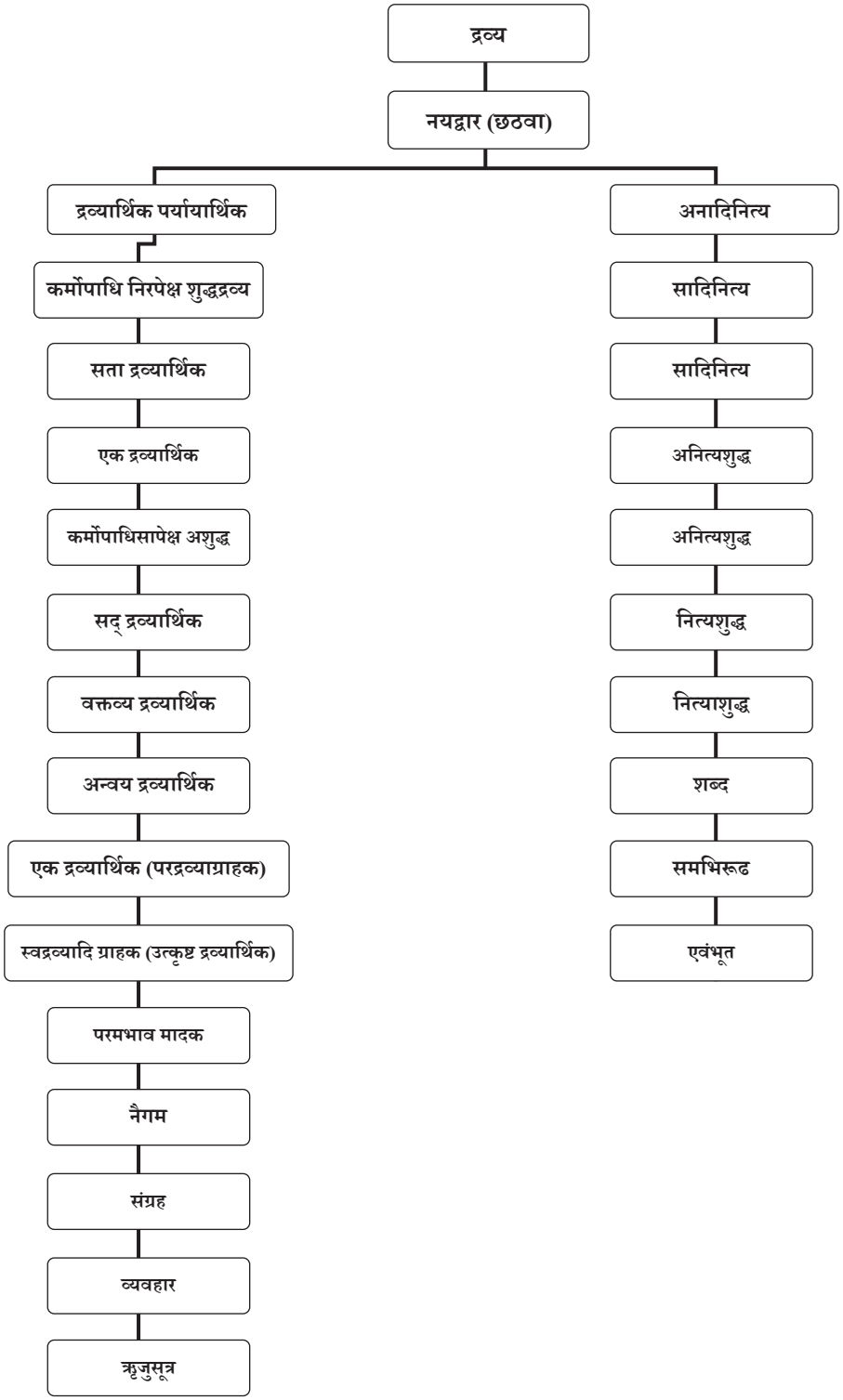
द्रव्य
नयद्वार (छठवा)
द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक
कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्धद्रव्य
सता द्रव्यार्थिक
एक द्रव्यार्थिक
कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध
सद् द्रव्यार्थिक
वक्तव्य द्रव्यार्थिक
अन्वय द्रव्यार्थिक
एक द्रव्यार्थिक (परद्रव्याग्राहक)
स्वद्रव्यादि ग्राहक (उत्कृष्ट द्रव्यार्थिक)
परमभाव मादक
नैगम
संग्रह
व्यवहार
ऋजुसूत्र
अनादिनित्य
सादिनित्य
सादिनित्य
अनित्यशुद्ध
अनित्यशुद्ध
नित्यशुद्ध
नित्याशुद्ध
शब्द
समभिरूढ
एवंभूत

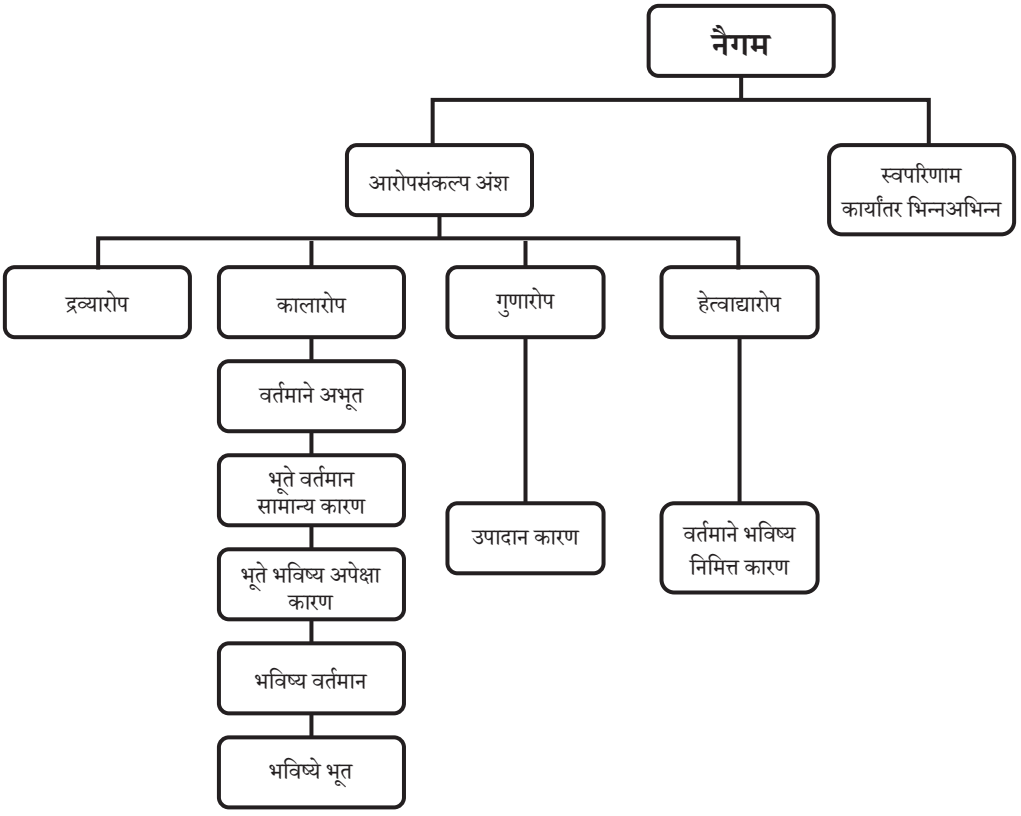
नैगम
आरोपसंकल्प अंश
स्वपरिणाम
कार्यांतर भिन्नअभिन्न
द्रव्यारोप
कालारोप
गुणारोप
हेत्वाद्यारोप
वर्तमाने अभूत
भूते वर्तमान
सामान्य कारण
भूते भविष्य अपेक्षा
कारण
भविष्य वर्तमान
भविष्ये भूत
उपादान कारण
वर्तमाने भविष्य
निमित्त कारण

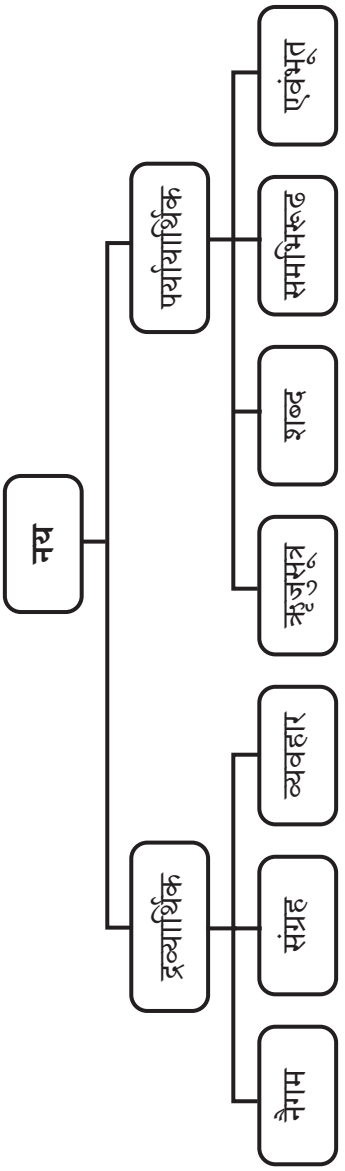
नय
द्रव्यार्थिक
पर्यायार्थिक
नैगम
संग्रह
व्यवहार
ऋजुसूत्र
शब्द
समभिरूढ
एवंभूत

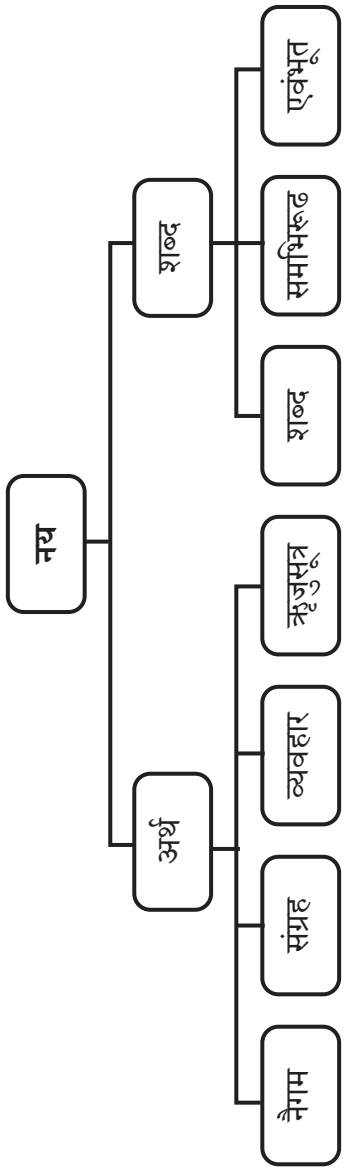
नय
अर्थ
नैगम
संग्रह
व्यवहार
ऋजुसूत्र
शब्द
शब्द
समभिरूढ
एवंभूत

प्रमाणनयतत्त्वालोक के अनुसार

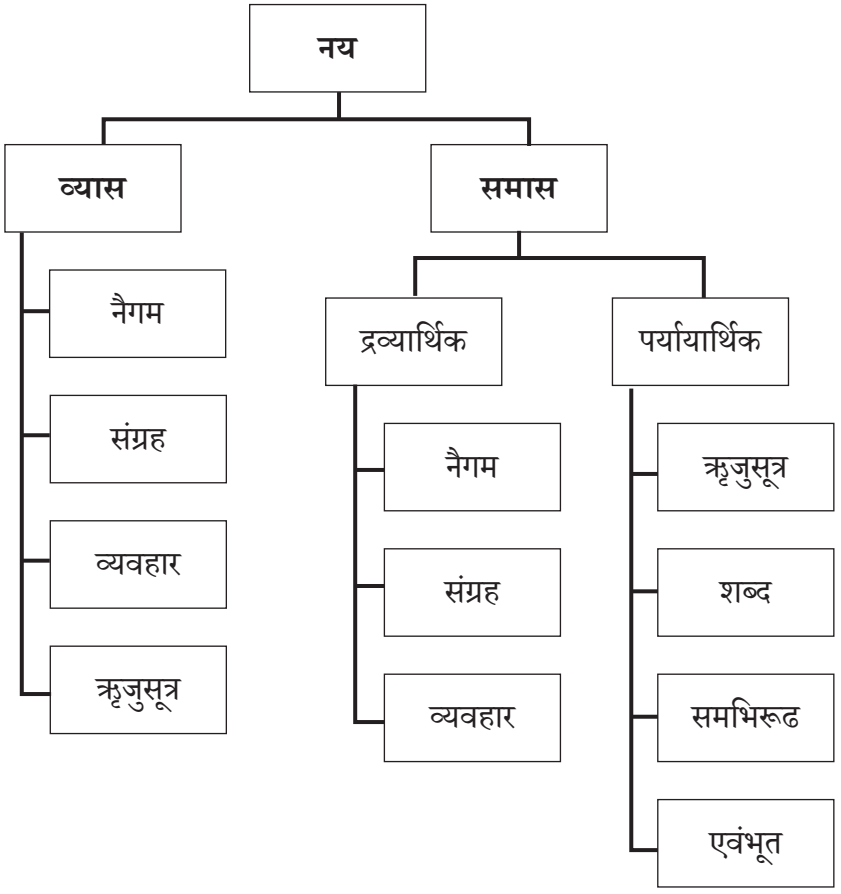

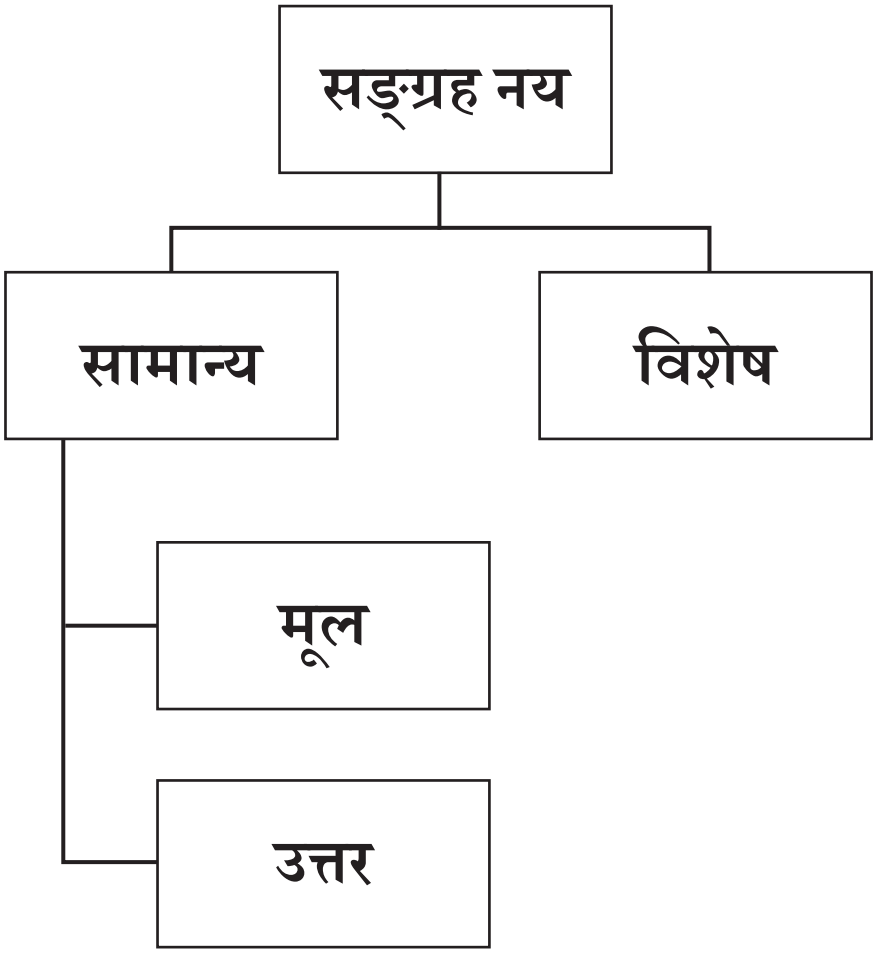
सङ्ग्रह नय
सामान्य
विशेष
मूल
उत्तर

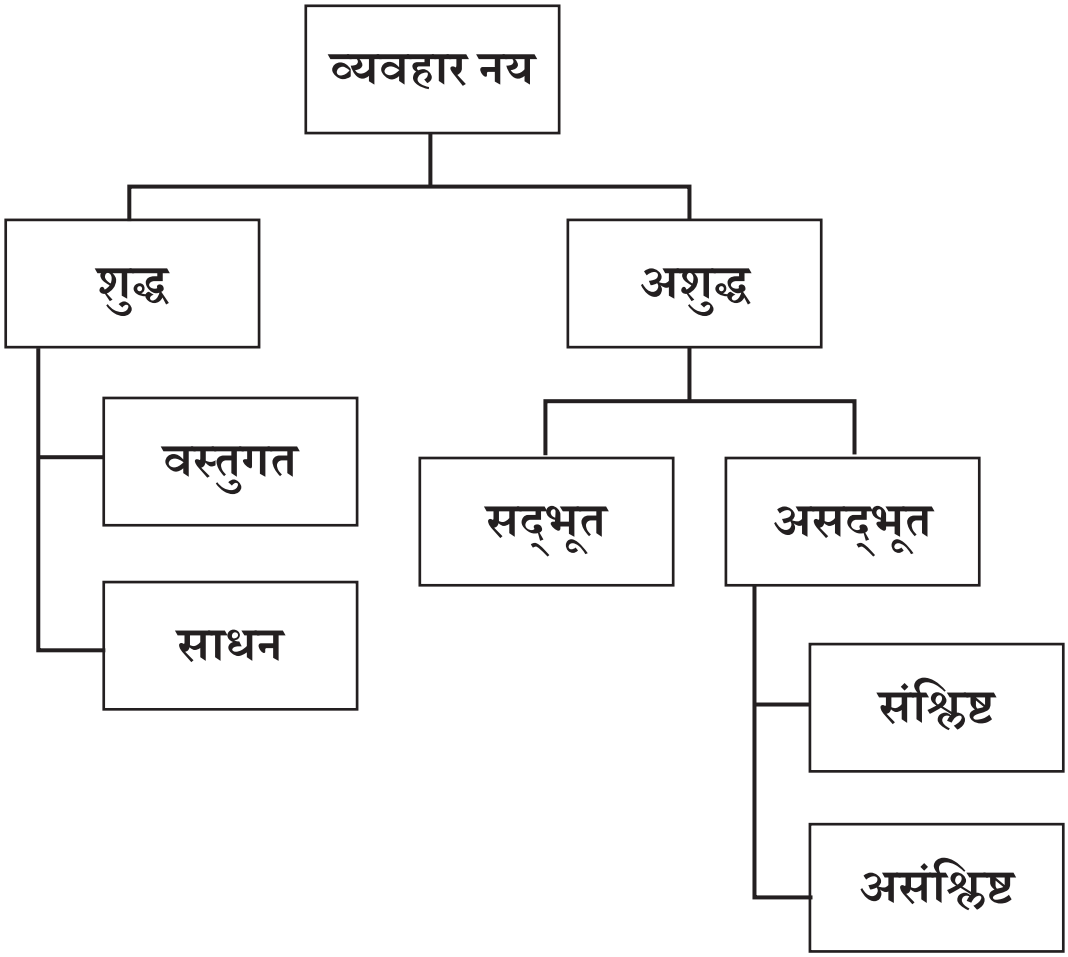
व्यवहार नय
शुद्ध
अशुद्ध
वस्तुगत
साधन
सद्भूत
असद्भूत
संश्लिष्ट
असंश्लिष्ट

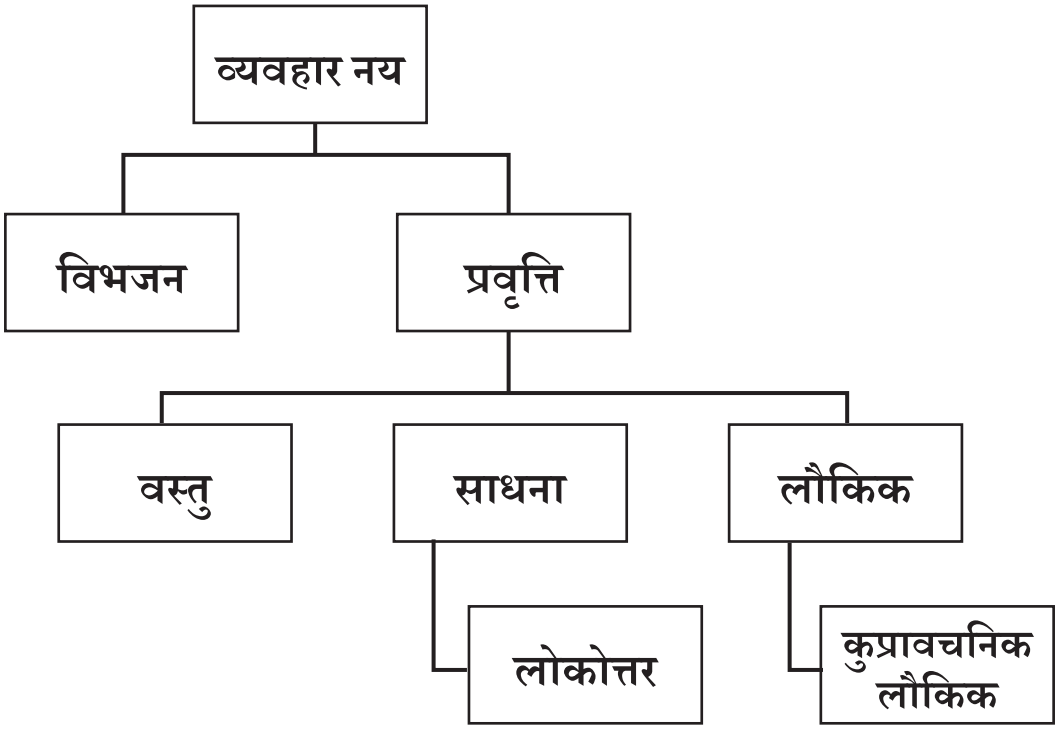
व्यवहार नय
विभजन
प्रवृत्ति
वस्तु
साधना
लौकिक
लोकोत्तर
कुप्रावचनिक
लौकिक

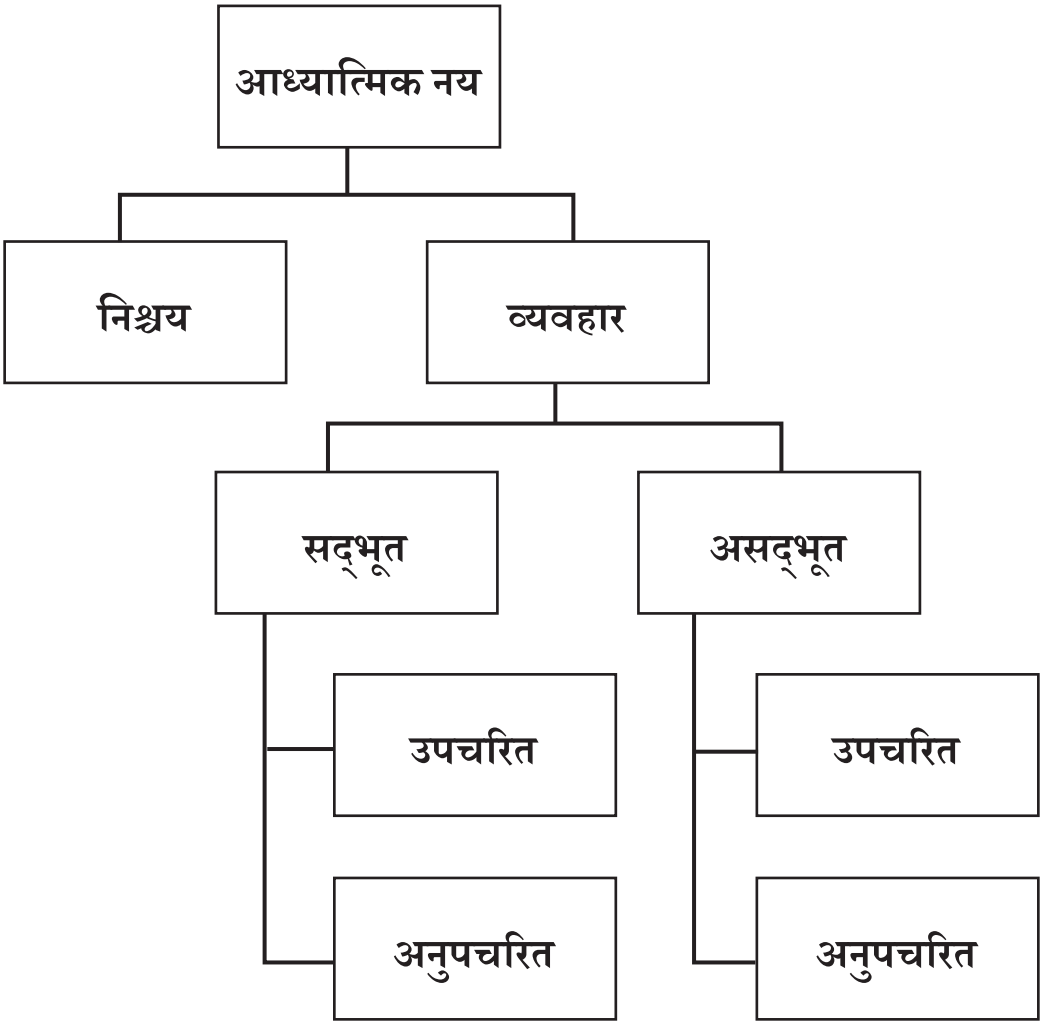
आध्यात्मिक नय
निश्चय
व्यवहार
सद्भूत
असद्भूत
उपचरित
अनुपचरित
उपचरित
अनुपचरित

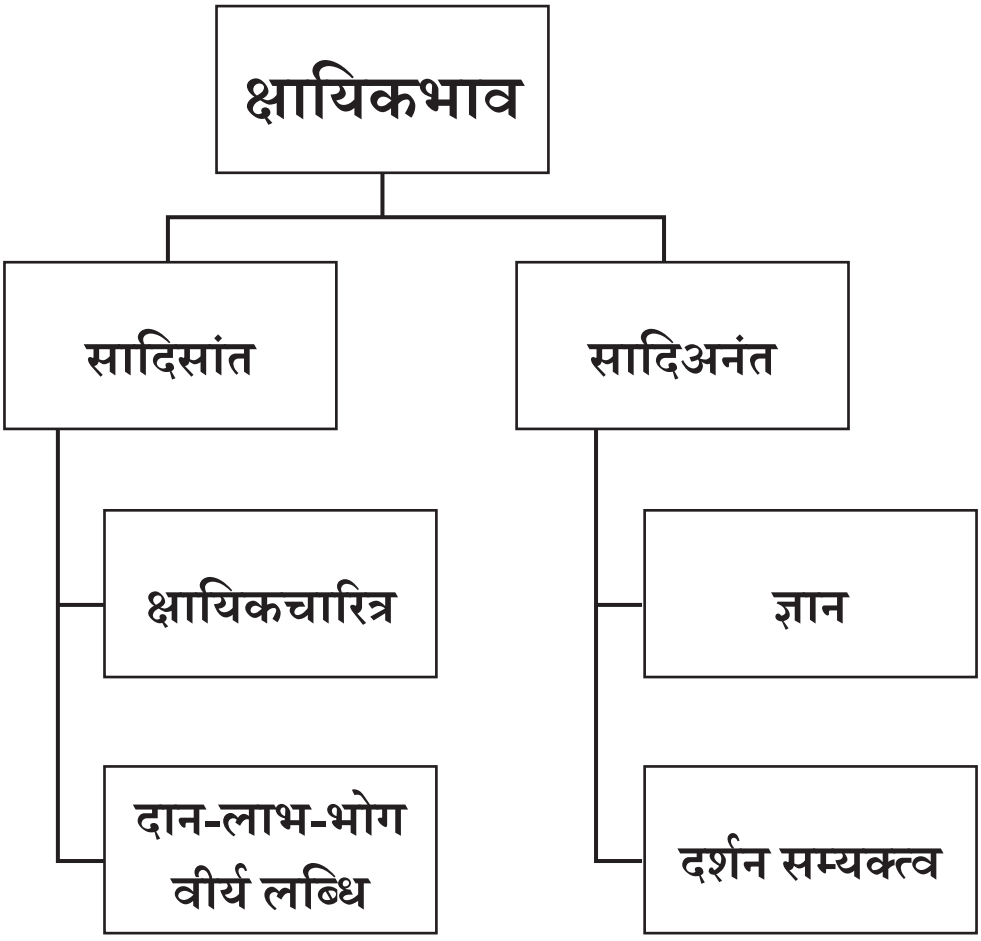
क्षायिकभाव
सादिसांत
सादिअनंत
क्षायिकचारित्र
दान-लाभ-भोग
वीर्य लब्धि
ज्ञान
दर्शन सम्यक्त्व

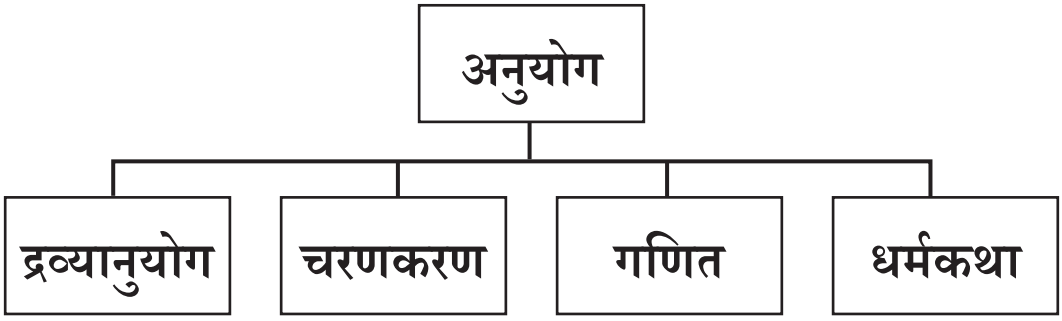
अनुयोग
द्रव्यानुयोग
चरणकरण
गणित
धर्मकथा

पञ्चमं परिशिष्टम्

पारिभाषिकशब्दकोशः

शब्द परिच्छेद

अक्षयतृतीया. १७३
अगन्ध. ७२
अगुरुलघुत्व. ११२, २४, १०
अग्नि. १३७
अचक्षुस्. ३५
अचेतन. २१७, १६०, १३७, ७२, १०
अचेतना. ७
अचैतन्य. ८८
अजीव. २६८, २६३, २३८, १८८, १८६, १५१, १५०, १३१, १०७, ४८, ३९, ३५, २५, १६, ५
अजीवकाय. ३९
अजीवसङ्ग्रह. १८६
अज्ञान. २५४
अणु. १०८, ४९
अतिव्याप्त. ५३
अतिशय. ९९
अतीतकाल. १७३
अतीतकालारोप. १७३
अद्धा. ५०, ४
अद्वैत. ६३
अद्वैतभाव. २१८
अद्वैतवाददर्शन. २१८
अद्वैतवादिन्. २४०
अधर्म. २४३, १७२, १७१, १५८, १२३, ११०, १०३, १०२, १०१, ९९, ९८, ८८, ८०, ७४, ७१, ७०, ६९, ६४, ५८, ४८, ४६, ४०, ३९, ७, ४
अधर्मास्तिकाय. १८९, ४८, ७, ४
अधर्माकाश. ४६
अध्यवसाय. ७३
अनध्यवसाय. २४०
अनर्पितनयाभास. २२६
अनर्पिताभास. २२६
अनागतारोप. १७३
अनादि. ९४, ७४, ४८, ३५
अनित्य. १४
अनिवृत्ति. २६०
अनिवृत्तिबादर. २५३, २४८
अनिवृत्तिबादरगुण. २५७
अनुगम. २५
अनुगमसङ्ग्रह. २५
अनुदीर्ण. ३५
अनुमान. २३३
अनुयोग. ३७
अनुयोगद्वार. १६२, ८
अनेकान्त. १४३, १०९, ९१
अनेकान्तजय. ११३
अनेकान्तजयपताका. १६०, १५७, २
अनेकान्तवादिन्. ९८
अनेकान्तसङ्ग्रह. १४२
अन्तकृद्दशाङ्ग. ३७
अन्तराय. २४४, ३६
अपर. २१६
अपरत्व. ७
अपरसङ्ग्रह. २१७
अपर्यवसान. १०७, ९४, ३५
अपान. ८८
अपूर्व. २६०
अप्. ८०, ६२
अप्रच्युति. ११४
अप्रमत्त. २६०, २४८
अप्रमत्तगुण. २५६
अब्धि. २६२, २३३, २९
अब्धिनिक्षेप. ३०
अभव्य. २६१, १५३, ३६, १४
अभव्यत्व. २६१

अभाव. ६२
अभिव्याप्ति. ९८
अभिसन्धि. १९
अभ्र. ७४
अभ्र. १०१
अभ्र. ६९
अमरेन्द्र. १
अमूर्त. १०१, १०
अम्बर. २६४, २६२, १७१, १५८, १०३, ९९, ९८, ८०, ७४, ६२, ३९
अम्बरास्तिकायः. ७
अम्बुधि. १६
अयोगिगुणस्थानक. २५८
अयोगिन्. २४८
अरस. ७२
अरूपिन्. १६०, ७८
अर्क. १
अर्थ. १
अर्थक्रिया. १५८, ११३, ९८, ६०
अर्थक्रियाकारि. ११२
अर्थनय. २२५, २१०
अर्थनयाभास. २२५
अर्थापत्तिप्रमाण. २३७
अर्थापत्ति. २३३
अर्थाभिधायिन्. २२५
अर्पितनयाभास. २२६
अर्पिताभास. २२६
अलोक. २६४, २३२, १९०, १५८, १०३, ६६, ७, ६
अलोकाकाश. १२०, १०७,११०, ४१
अवक्तव्य. २०२, १५५, १५४
अवगाह. २६४, १५९, १५६, १५०, ११०, १०८, १०७, १०५, १०२, ९९, ९८, ८८, ७४, ५४, ४७, ४१, ७, ६
अवगाहन. १७२, ११५, ७१, ७०
अवगाहना. ५५, ४६, ११
अवगाहनाहेतुत्व. ११
अवधि. ९४, ३५
अवधिज्ञान. २३२
अवधिदर्शन. २५१
अवधी. ९९
अवयव. ९९
अवर्ण. ७४, ७२
अवस्थान. ३९
अवस्थित. ८८, ८४, ८२, ७८
अवान्तरसत्तारूप. १८०
अवान्तरसामान्य. २१९
अवान्तरसामान्यसङ्ग्रह. १८७
अविरत. २६०, २५९
अविरतगुण. २५१
अविरति. २४८
अविशुद्ध. २११
अव्यभिचार. ७८
अव्यय. ११४, ७८
अव्याप्त. ५३
अशुद्ध. ७५, २८, २६
अशुभ. ४०, ३५, २८
असंयम. २५५
असंश्लिष्ट. १९२, २६
असङ्ख्या. १०८
असत्. १३२
असत्ता. १४८
असत्त्व. १३३, १३२, १३०
असद्भाव. २०२, १३४, ६२
असद्भूत. १९२, १९१
असम्भव. १२२, ५४, ५३
असिद्धत्व. २५८, २५७, २५६, २५५, २५४
अस्ति. १३९
अस्तिक. ७७
अस्तिकाय. १६१, ७९, ६४, ४६, ४३, ३९, १६, ७
अस्तिकायद्वार. १६१, ४४
अस्तिकायिक. १६
अस्तित्व. १३६, १३०, २४, १०
अस्तिद्वार. ८
अस्तिधर्म. १४२

अस्तिनास्ति. १४१, १३९
अस्तिनास्त्यवक्तव्यधर्म. १४२
अस्तिभाव. १४१
अस्त्यभाव. १६१, १४७
अस्पर्श. ७२
आकाश. १२३, १०४, ९९, ९८, ८०, ६४, ४८, ४६, ४१, ७
आकाशद्रव्य. ६
आकाशास्तिकाय. ४
आगम. २३३, १६५, १६४, १०१, ५५, २७, २५
आगमप्रमाण. २३६
आगामिक. १९५
आचाराङ्ग. ३७,१६५, १५८
आत्मन्. २४०, २१५, १५८, ११४, ९८, ६३, ६२
आत्मा. २५
आधाराधेयभाव. ९८,६
आपत्ति. ४४
आपदन. ४४
आभासनय. २१२
आभासरूप. २१२
आयुर्वेद. २४५
आयुष्. २४५
आरोप. १७५, २३, २२
आरोपजा. १६३
आवश्यक. ३२, २९, २७, २५, २२
आविर्भाव. ११३, ११२, ४४, ३०
इन्द्रियज्ञान. ३४
ईश्वरेच्छा. ६५
उत्तर. २४
उत्तरसामान्य. १८३
उत्तरसामान्यसङ्ग्रह. १७८
उत्तरसूत्र. ८९, ८३
उत्पत्ति. ११५, ११४, ९८, ९४, १८
उत्पल. १०९
उत्पाद. २४१, १६८, १५१, १५०, १२४, ११९, ११७, ११६, ११४, ११३, ११२, १०७, १००, ९९, ९४, ८६, ५७, ५६, ५०, ४६, ४४, १८, १७, १०, ९
उदय. २४९, ३५
उदीर्ण. ३५
उपकार. ९९, ९८, ४७
उपग्रह. ८८, ४६
उपग्रहकृत्. ७९
उपमान. २३३
उपमानक. २२०
उपयोग. १५८, १३०, १०३
उपयोगिन्. ७
उपरमा. ९४
उपलब्धि. १०९
उपशम. २४९, २४८, १९०, ३५, ३७५
उपशममिश्र. २४५
उपशमसम्पराय. २४८
उपशान्त. २६०
उपशान्तमोह. २५८
उपष्टम्भ. ७
उपसर्जन. १७५, ९५
उपसर्जनभाव. १९
उपादान. १७४, ४९, ४८, २३
उपादानकारण. ११६
उपादेय. २३९, ४४
उपाधि. १७
उपालम्भ. १४
उपासकदशाङ्ग. ३७
ऊर्द्ध्वतासामान्य. १७०
ऊर्द्ध्वप्रचय. ११४
ऊर्ध्वप्रचय. १६०
ऋजुसूत्र. २२९, २२८, २२१, २१३, २०२, २०१, १९६, १९५, ३१, ३०, १९
ऋजुसूत्रक. १९४
ऋजुसूत्रनय. २२१, १९८, १९६, १७४, २९
ऋजुसूत्राभास. २२१
एकेन्द्रिय. ३९
एवम्भूत. २२९, २२८, २२४, २०८, ३३, ३२, २०, १९
एवम्भूतज्ञ. २०८
एवम्भूतनय. २०९

एवम्भूताभास. २२४
एवम्भूताभासक. २२४
औदयिक. २६२, २५५, २५४, २४६, २४५, २४४, ३५
औदयिकभाव. २५७, २५६, २४४, ३५
औपशमिक. २४७, २४६, ३५, ३५
औपशमिकऔदयिक-पारिणामिक. ३५
औपशमिकक्षायिकऔदयिक. ३५
औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिक. ३५
औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकऔदयिक. ३५
औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिक. ३५
औपशमिकक्षायिक-पारिणामिक. ३५
औपशमिकक्षायोपशमऔदयिक. ३५
औपशमिकक्षायोपशमिकऔदयिकपारिणामिक. ३५
औपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिक. ३५
कनक. १३७
कर्तृ. १५७
कर्तृत्व. ७
कर्म. ४२, १७
कर्मन्. ६२
कर्मविपाक. ३५
कर्मोपाधि. १८, १७
कलिकाप्रकाश. १
कल्प. १
कल्पनारोप. २२०
कवीश्वर. १
कषाय. २५७, २५६, २५५, २२१, १९१, ४२, ३६, १७
कषायचतुष्क. २५४
कामधेनु. १
काय. ४८, ४५, ३९
कारक. २२२
कारण. २३
कार्तिकामावस्या. १७३
कार्यारोप. १७४, २३
कार्यान्वय. १२२
काल. २३२, २२२, १७१, १७०, १६१, १४१, १३९, १२४, ११८, १०८, ८९, ८०, ७८, ७६, ७४, ६२, ५६, ५२, ४८, ४३, ३९, ३५, २९, २३, २०, १७, ७
कालत्रिक. १६८, १५२
कालारोप. १७३, २३
कुप्रावचनिका. २७
कूटस्थ. ११४
कूटस्थनित्य. ११५
कूटस्थभाव. ११५
केवलज्ञान. २४९, २३२, ११८
केवलज्ञानावरण. २४४
केवलदर्शनावरण. २४४
केवलद्विक. २६०
केवलाकाश. ७
केवलिन्. १५४, १३०
कैवल्य. १५४, ३६
कोटकेन्दुकुल. २७०
क्रमभाविन्. २२०, १६९
क्रिया. १७४
क्रियाभास. २२७
क्षमा. ७२
क्षमाश्रमण. ३१
क्षय. ३६
क्षयोपश. २३१
क्षयोपशमभाव. २५०
क्षयोपशमिक. २४६
क्षायिक. २४८, २४७, २४६, २४५, २४४, ३६, ३५, ३५
क्षायिकऔदयिक-पारिणामिक. ३५
क्षायिकऔपशमिकऔदयिकपारिणामिक. ३५
क्षायिकक्षायोपशमिकऔदयिक. ३५
क्षायिकक्षायोपशमिकऔदयिकपारिणामिक. ३५
क्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिक. ३५
क्षायिकदर्शन. २६०
क्षायिकसंयम. २६०
क्षायिकसम्यक्त्व. २६०
क्षायोपशम. २५१, २४८, २४४, ३५
क्षायोपशमक. २५३
क्षायोपशमसम्यक्त्व. २५३
क्षायोपशमिक. २६२, २५३, २५२, २४९, ३५
क्षायोपशमिकऔदयिकपारिणामिक. ३५

क्षीणमोह. २५८, २४९, २४८
क्षीणमोहगुण. २६०
क्षेत्र. २६४, २४२, २३२, १२४, १२३, ११५, १०८, १०७, १०२, ६४, ५६, ५५, ५२, ३८, १७, ६
क्षेत्रद्वार. ८
खग. ३६
खपुष्प. ५०
गगन. १०३
गजनिमीलिका. २१७
गणधर. ९९
गणितानुयोग. ३७,२६३
गणेशानन. १
गति. २५५, २४९, २४७, २४६, १७२, १५९, १५६, १५०, १२३, १०२, १००, ९९, ९८, ८८, ७९, ७४, ७१, ५४, ४७, ४६, ४१, १३, ११, ७, ५
गतिचतुष्क. २५४
गतिहेतुत्व. ११
गत्युपष्टम्भ. ४०
गन्ध. १६०, १४९, १४८, ९६, ९१, ८०, ७४, ७२, ७०, ४९, ११
गभस्ति. १
गलन. १६०, १५६, १०८, ७१, ४२, ७
गुण. २६८, २६७, २६२, २४८, २३२, २२९, २०५, १९१, १९०, १८३, १८०, १७९, १७२, १६९, १५८, १५६, १५१, १५०, १४१, १३६, १२८, १२६, १२५, १२४, १२३, १२२, ११७, ११६, ११५, ११३, ११२, ९८, ९७, ९५, ९३, ८९, ७८, ७७, ७४, ७२, ७०, ६८, ६७, ६२, ६१, ६०, ५८, ५५, २३, १७, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ५
गुणद्वार. ७०, ६७, ११, ८
गुणव्यञ्जन. ७४
गुणव्यञ्जनक. १३
गुणस्थान. १९०
गुणस्थानक. २३९, २४८
गुणा. ६७
गुणारोप. १७२, २३
गुणार्थिक. १६९
गुणिन्. १४, १४
गुणोत्कट. ७१
गुप्ति. २६२
गृहस्थक. ३६
गोचर. १३८
गोत्र. २४५
ग्राहक. १५९
चक्षुस्. ७२, ३५
चतुर्दशरज्जु. २३०, १६१, ७८
चतुर्भङ्गिन्. ३५
चन्द्रप्रज्ञप्ति. ३७
चमू. १
चरणकरणानुयोग. २६३
चलन. ११६
चलभाव. १५८
चारित्र. २३९, १६०, १५८, १४९, ७२, ६०, ५४, ३७, ३६, ३५, १३, १
चारित्रपार्श्वनाथ. ३
चार्वाक. २२०
चेतन. २४१, २१७, १३३, ६९, १५, ११, १०, १०
चेतनधर्म. ५४
चेतना. १५६, ७
चेतनालक्षण. १५०
चैतन्य. २१७, ८८, ७१, ७०, १७
चैतन्यरूपक. ७०
छद्मस्थ. १५८, १३८, १३०
छद्मस्थमुनि. १५८
जघन्य. १६२
जन्यजनकभाव. २९
जलद्रव्य. ४४
जाति. १३७, ७७, ३९
जिन. २६३, २०८, १९०, १७६, १७४, १३८, ११३, ३९, १
जिनप्रवचन. ५५, ३
जिनभद्रगणि. ३१
जिनभद्रसूरि. ९९
जिनशासन. २४८, २४५, २२४, २१३, ६०, ५५

जिनागम. २१०, १७७, १६१, १५५, ६७, ३७, ३५, २२९, ११३, १२, १०, ३,
जिनेश्वर. २३६, २०८, ९९
जीव. २६८, २६६, २६३, २६१, २४९, २४८, २४७, २४४, २४३, २३८, २२०, २१७, २१४, १९०, १८८, १८६, १८४, १७६, १७२, १७१, १६०, १५९, १५८, १५१, १५०, १३७, १३६, १३४, १३३, १३२, १३१, १३०, १२८, १२३, ११८, ११५, ११०, १०७, १०३, १०१, १०२, १००, ९९, ९८, ८०, ७९, ७६, ७५, ७४, ७३, ७२, ७१, ६९, ६४, ६१, ६०, ५८, ५५, ५४, ५२, ५१, ४७, ३९, ३७, ३६, ३५, २३, १६, १३, १२, ७, ५, ४
जीवकाय. १०१
जीवत्व. २६१
जीवद्रव्य, ४१, २१९, १४९, १०३, ७०
जीवद्वार. ८
जीवप्रदेश. १०३, ५९
जीवराशि. १०३
जीवसङ्ग्रह. १८६
जीवास्तिकाय. ४
जीवानुयोग. ८
जीवाभिगम. ३७
जैनमत. ४०
जैनेन्द्र. ४४
जैनेन्द्रदर्शन. ८६
ज्ञप्ति. १७५
ज्ञशरीर. १६४
ज्ञाताधर्मकथा. ३७
ज्ञान. २५१, २२७, २२१, १९१, १९०, १७२, १६६, १६०, १५९, १५८, १४९, १४६, १३७, १३६, १२८, १२२, ११८, ११६, ११५, ११२, १०३, ९८, ७४, ७२, ७०, ६८, ६०, ५४, ३६, ३५, २३, १७, १३, ११, ७, १, १
ज्ञानयोग. १७८
ज्ञानाभास. २२७
ज्ञानावरण. २४४
ज्ञानाम्बु. ३६
ज्ञायक. १६५, १५९, १५८
ज्ञेय. ११५, २७
तज्ज्ञ. २३८, १०४, ५५, २८, १२
तत्त्व. १
तत्त्वार्थ. ८३, ७८, २
तत्सम. ३०
तद्व्यतिरिक्त. १६४
तिरोभाव. २२२, ४४, ३०
तिर्यक्प्रचय. १६०, ११४
तिर्यक्सामान्य. १७०
तिर्यग्गति. २५५
तीर्थकर. १७६
तीर्थङ्कर. १७
तुल. १
तूर्य. २६०, २५९, २५१
तेजस्. २५७, ८०, ६२
त्रिकालज्ञान. ११४
त्रिकालस्थायिन्. २२१
त्र्यणुक. ७३, १३, ७
दर्शन. २५१, १७२, १६०, १५८, १४९, १४६, १२८, १०३, ७२, ६८, ६०, ५४, ३६, ३५, १७, १३, ११, ७
दर्शनावरण. २४४
दान, ११८, २६०, २५१, २५०, ८८, ३६, ३५
दिक्. १०९, ८०, ७६, ६९, ६२
दुःख. ९८, ८८
दुर्नय. २६६, २२०
दृष्टि. २२१, ७०
देवप्रकृति. ५
देवसेन. १०
देश. १३५, ७८
देशग. १८१, ३८
देशप्रत्यक्ष. २३२
देशविरति. २६०, २५५, २५२, २४८, ३५
देह. १
द्युति. १
द्रव्य. २६७, २६५, २६४, २६३, २४३, २३२, २२४,

२२१, २२०, २१७, २१३, २१२, २०७, २०५, २०३, २००, १९६, १८९, १८६, १८५, १८४, १८२, १७९, १७५, १७४, १७१, १७०, १६८, १६२, १५९, १५८, १५६, १५३, १५२, १५१, १५०, १४५, १४१, १३७, १३६, १३०, १२९, १२७, १२६, १२५, १२२, ११८, ११६, ११४, ११३, ११२, ११०, १०९, १०३, १०१, ९८, ९७, ९५, ९४, ८६, ८२, ८०, ७८, ७७, ७४, ७३, ७१, ६९, ६७, ६३, ६२, ६०, ५९, ५८, ५७, ५५, ५२, ५०, ४९, ४५, ३७, ३०, २९, २३, १९, १८, १७, १४, १३, १२, ९, ८, ६, ५, ४, १

द्रव्यकलाप. ९५

द्रव्यज्ञायक. १८९

द्रव्यत्व. २४, १०

द्रव्यनय. २१३

द्रव्यनिक्षेप. १६४, १६२

द्रव्यनिक्षेपक. १६४

द्रव्यपरिणति. ११४

द्रव्यप्रस्ताव. ४०

द्रव्यलक्षणद्वार. ६६

द्रव्यविशेष. ९५

द्रव्यव्यञ्जन. ७४, ७१, १३

द्रव्यारोप. २३

द्रव्यापलापिन्. २२१

द्रव्याभाव. १७

द्रव्यार्थिक. २१२, १६८, २१, १९, १७, १७

द्रव्यावय. ४९

द्रव्यास्तिक. १६८, ९६, ९१, ८७, ८६, ७४, ५७, १७

द्रव्यानुयोग. २६३, ३७

द्रव्यार्थिक. १६८

द्वादशाङ्ग. १

द्वार. ३८

द्विकसंयोग. ३५

द्वेष. ६५

द्व्यणुक. २४४, १०१, ९५, ७३, ४९, ३५, १३, ७

धर्म. २६७, २६४, २६३, २४३, २२०, २१९, २१७, २१४, १८९, १८६, १७८, १७५, १७४, १७२, १७१, १६६, १६१, १६०, १५९, १५८, १५४, १५२, १५०, १४५, १४३, १३८, १३७, १३६, १२७, १२३, ११३, ११०, १०३, १०२, १०१, १००, ९९, ९८, ९५, ८८, ८६, ८२, ८१, ८०, ७९, ७८, ७७, ७५, ७४, ७२, ७१, ७०, ६९, ६४, ६०, ५८, ५७, ५५, ५४, ५१, ४९, ४८, ४६, ४५, ४४, ४०, ३९, ३७, ३०, २५, २३, १९, १६, १४, ७, ५, ४

धर्मकथानुयोग. २६३, ३७

धर्मकाय. ४४

धर्मद्रव्य. ४६

धर्मद्वयगोचर. १७५

धर्मप्रदेश. ४५

धर्मवचन. ५३

धर्मसङ्ग्राहक. २५

धर्मसापेक्ष. १३८

धर्मास्तिकाय. ११८, ११६, १०२, ७०, ६०, ४८, ४६, ७, ४

धर्मास्तित्व. १२८

धर्मिक. २१४

धर्मियुग्मगोचर. १७५

धूर्तिक. ९

ध्रुव. १६८, ११७, ११६, ११२, ८७, ५७, ३२, १०, ९

ध्रौव्य. ११३, ९९, ८७,८६, ५०, ४४, १७,

ध्वनि. २०

नखाधिक. २५४

नभस्. १५०, ९९, ८८, ८०, ७, ६

नभोद्रव्य. ५५

नमस्कारनिर्युक्ति. ९९

नय. २४१, २३८, २३१, २२८, २२४, २१०, २००, १९८, १७७, १७०, १६८, १६७, १६६, १०९, ९६, ९१, ८७, ८६, ७७, ३०, १९, १७, ८

नयद्वार. १६२, ३३, ८

नयप्रवाद. २३०

नयवाद. २२९

नयविचार. २३०

नयाभास. २११, २२७, २२५

नरकगति. ३५
नरकेसरिन्. ८६
नरगति. २५८, २५७, २५६, २५५
नरसिंह. ८६, ४४
नास्त्यस्ति. १४२
नाम. २४५, २२४, २०१, २००, १९८, १९६, १४४, १६५, १६४, १६३, १६२, ११५, ३०, २९, ५
नामद्रव्य. ५
नामनिक्षेप. १६३, १६२
नारक. २५५, १०३, ७३, ३५, १३, १२
नास्ति. १३९
नास्तिक. १२८
नास्तिभाव. १४१
निःक्रिया. ९९
निकृष्टलेश्या. २५६
निक्षेप. २३८, १६४, ५
निक्षेपोदधि. २०१
निगोदिक. १७६
निचयस्कन्ध. ५८
निजधर्म. १३६
निजभाव. ३९
नित्य. ११४, ८८, ८४, ८२, ७८, १४, १
नित्यस्वभाव. १२१
निधिवाचक. ३
निध्युपाध्याय. २७०, १
निमित्तकारण. १७४
निरुक्ति. २०
निर्बीज. ४४
निर्युक्ति. १५९
निर्वाण. १७३
निवृत्तिबादर. २५३, २४८
निशीथ. ३७
निश्चयाभास. २२६
नैगम. २२९, २२८, २१४, २१३, २११, १७७, १७६, १७५, २३, २३, २२, २१, १९
नैगमनय. १७३
नैगमनयाभास. २१४
नैगमाभास. २१४
नैयायिक. २१८, २१४, ६१
नोआगम. १६५, १६४
पञ्चाब्धि. २६२
पञ्चावयव. २३४
पञ्चास्तिकाय. १९३, १७७, १७१, १६१, १५८, १४६, १२३, ८८, ६८, ५६, ५५, २३, ७
पञ्चास्तिकायिक. १९६, १७६, १७८, १७१
पञ्चास्तिकाय. ११८
पद्म. २५७
पद्मजिन. १७३
पद्मनाभ. १७३
पद्मनाभजिन. १७३
पद्मलेश्या. २५७
पद्मवासर. १७३
पर. २१६
परक. १३४
परत्व. ७
परधर्म. १२८
परपर्याय. १३४, १३०
परमलोक. १०७
परमस्वभाव. १४
परमानन्द. १५८, ११
परमाणु. २४४, १५८, १५४, १२३, ११८, १०८, १०१, ९९, ९८, ९५, ८९, ५९, ५५, ४९, १०, ७
परमेश्वर. ६५
परसङ्ग्रह. २१६
परापरसङ्ग्रहाभास. २१८
परामर्श. २३४, २२४, २२२, २२०, २१८, २१५, १८८, १९
परावर्तन. ५४
परावृत्ति. ११७, ७४
परिग्रह. १९७, ३०
परिणति. ११८, १०८, १०१, ४९, ४६
परिणाम. २४९, २४७, १११, ९४, ६६, ६०, ४८, ३५, ३५, २३
परिणामिक. ७

परिणामिकभाव. ११२
परिणामिन्. ११४
परोक्ष. २३३, २३१, १५४, ३४
पर्यय. २५२
पर्यवसान. १०८, ९५
पर्यवसित. ३५
पर्याय. २६७, २३२, २२९, २२८, २२३, २२२, २२१, २२०, २१७, २१३, २१२, २०७, २०५, १८३, १८०, १७९, १७५, १७०, १६९, १६८, १५९, १५८, १५५, १५४, १५१, १५०, १४९, १४५, १४१, १३६, १३५, १३२, १३०, १२९, १२६, १२५, १२४, १२३, १२१, १२०, ११८, ११६, ११४, ११३, ११२, १०९, १०८, ९८, ९६, ९५, ८८, ८६, ७८, ७७, ७४, ७३, ७२, ७१, ६८, ५८, ५७, ५५, ३९, ३२, २०, १९, १८, १७, १४, १३, १२, १०, ८, ७, ५
पर्यायद्वार. ७४, ७३, ८
पर्यायध्वनि. २२३
पर्यायार्थिक. १६९, १६८, ३१, २१, १९, १८, १७
पर्यायार्थिकनय. १८
पर्यायास्तिक. १६८, ८६, ५७, १७
पर्यायार्थिक. २१३, १६८, १८
पर्यायार्थिकाभास. २१३
पलाश. ९५
पारणामिकभाव. १५१
पारम्पर्य. ११४
पारिणामक. ३५
पारिणामिक. २६२, २६१, २४९, २४८, २४६, २४५, २४४, २४३, १५९, १४७, ११५, ११३, १४
पारिणामिकता. २१९
पारिणामिकभाव. २४४, २४१, १५१
पार्श्व. १
पिण्डितसङ्ग्रह. १८६, २५
पुद्गल, ४२, २६५, २४४, २४३, १७२, १७१, १६०, १५८, १५१, १५०, १४९, १२३, ११४, ११०, १०८, १०७, १०१, १००, ९९, ९८, ९७, ९६, ९५, ९४, ९३, ८९, ८८, ८२, ८१, ८०, ७६, ७४, ७३, ७२, ७१, ७०, ६९, ६४, ६०, ५५, ५१, ४९, ४२, ३९, १३, १२, १०, ७, ४
पुद्गलद्रव्य. १०१, ४९, ४५
पुद्गलधर्म. १५४
पुद्गलनिचय. १८
पुद्गलास्तिकाय. ४६, ३९, ३५, ७, ४
पुष्पकलिका. ३
पूरण. १६०, १५६, १०८, ७१, ४२, ७
पूर्वसूरि. १८
पूर्वापर. ९४, ९९
पृथग्भाव. ६७
पृथिवी. ८०, ६२
पृथु. ३०
पौषदशमी. १७३
प्रकाशिन्. ८८
प्रकृति. ३५
प्रचय. ११४
प्रज्ञा. ५
प्रज्ञापना. ८६, ४४, ३७
प्रत्यक्ष. २४१, २४०, २३१, १५४, ९६, ९५, ४६, ३४, ३०, १३, ३
प्रत्यभिज्ञा. २२१
प्रत्याख्यात. १०९
प्रदेश. ११३, १०९, १०८, १०३, १०२, १०१, ९९, ९५, ७४, ७१, ५०, ४८, ४५, ६
प्रदेशत्व. १०
प्रदेशमुक्त. ७६
प्रभु. १५९
प्रमत्त. २६०, २४८
प्रमाण. २३८, ११२, ३४, ७
प्रमाणद्वार. ३४, ८
प्रमातृ. २४१
प्रमेय. ११२
प्रमेयक. १०
प्रमेयत्व. २४
प्रयोजन. ६१, ४८
प्रलय. ९४

प्रवचनज्ञ. १५८
प्रवृत्ति. ३३, २९, २७
प्रसक्ति. ८९
प्राग्भाव. २२२
प्राञ्जल. १९
प्राण. ८८
प्रातिहार्यातिशय. २०८
फलदायिन्. ४०
बादरसूक्ष्मसम्पराय. २४९
बुद्धि. ९५, २९
बुध्नोदर. ३०
बृहत्कल्प. ३७
बोधमार्ग. १७५, १९
बोधिबीज. २६६
भङ्ग. १३१
भव. ३९, १८
भवकानन. २६६
भवशरीर. ७३
भवस्थ. १५८
भवस्थजीव. १७
भव्य. २६१, १५३, ३६, ३५, १४
भव्यत्व. २६१
भव्यशरीर. १६४
भारती. १
भाव. २६२, २५९, २४९, २४४, २४३, २३२, १९६, १८६, १६६, १६२, १५४, १३४, १२६, ७८, ५६, ५५, ५२, ३५, ३३, ३०, २९, १७, १०, ८, ५
भावज्ञ. २३६
भावद्वार. २४६, ३५, ८
भावनय. १९४
भावनिक्षेप. २०२, १४४, १६५, १६२, ३०
भावनिक्षेपक. १६५
भावपर्याय. १२४
भावावयव. ४९
भूतागामिन्. १५५
भूतारोप. १७३
भूधर. ७६
भूप. १
भेदाभाव. १५०
भोक्तृ. १५७
भोक्तृत्व. ७
मति. २३३, ३४, २९
मतिज्ञान. २३३, ७२
मनःपर्यायज्ञान. २५२, २३२
मनस्. ८८, ६२
मरण. १८
मर्यादा. ३९
मलभाव. १७
महाभाष्य. २२
महासत्तारूप. १८०
महासामान्य. २१७, १८०
महासामान्यसङ्ग्रह. १८७
महास्कन्ध. १०८
महीधर. २०४, १९
माणिक्य. १
मातङ्ग. २५७
मानुज. ४२
मार्तण्ड. ७
मार्दव. ७२
मिथ्यात्व. २६१, २५४
मिथ्यादर्शन. ४२
मिथ्यादृष्टि. २५१
मिथ्यासास्वादन. २५०, २४८
मिश्र. २५१, २४९, २४४, ३६, ३५
मिश्रक. २५०
मिश्रा. २५५
मिश्रोदय. २४९
मिश्रोपशम. २४९
मीमांसक. २४०, ६६
मुक्त. २२०
मुख्यपर्याय. ३९
मूर्त. १७२, १३०, १०१, ९३, ७५, ६९, ४०, १५, १०, १०
मूर्ति. १०१, ९६, ९५

मूल. २४
मूलधर्म. १५०, ७३, ५४
मूलभावद्वार. २४६
मूलसत्ता. १७
मूलसामान्यसङ्ग्रह. १७८
मूलस्वभाव. ११४
मूलावस्था. १५२
मृत्पिण्ड. ९४
मृन्मय. १९९
मृषावाक्. ६५
मृषावादिन्. ६४
मेधा. १९३, ५७
मेरुत्रयोदशी. १७३
मोक्ष. २४७, १७४
मोहनीय. २४५
यथाख्यात. २६०
युग. २६२, २७
युगभेद. १६७
युगविध. १६७, ११४
रत्न. १, १
रत्नत्रय. २४२, २३९, १४४
रत्नाकरावतारिका. २१
रत्नाकरावतार. २
रस. १६०, १४९, १३२, १३०, ११३, ९३, ९१, ८५, ८०, ७४, ७२, ७०, ६०, ४९, १३, ११
रसविध. २८
राग. ६५
राशि. ३९
रुद्रद्वार. २६५
रूढाभास. २२३
रूप. २००, १५०, १४९, १२३, १०९, १०८, १०१, ९२, ९१, ९०, ८२, ८०, ७४
रूपवत्. ९५
रूपिन्. १६०, ९५, ९३
धर्मिन्. २१४, १७५, १९
लक्षण. १५९, ९, ८
लक्षणद्वार. ९, ८
लब्धि. ३६
लब्धिपञ्चक. २६०, २५२, २५१, ३५, ३५
लिङ्ग. २३४, २२२
लीला. ६५
लेश. ३८, ८
लेश्या. २५६, २५५, २५४, ३६
लोक. २६४, २४८, २३२, २३०, १९०, १६१, १५८, १०३, ९०, ७४, ७८, ६६, ५९, ५१, ३९, ७, ६, ४
लोकविजयाध्यय. १५८
लोकविजयाध्ययन. १६५
लोकाकाश. १०८, १०३, १०२, ११०, १०४, १०२, ५५ ४१, ७
लोकोत्तर. २७
वनस्पतिकाय. ११४
वन्ध्यापुत्र. ५०
वर्ण. १६०, १५०, १४९, ८०, ७४, ७२, ७०, ४९, ११
वर्णक. ७४
वर्तना. ११
वर्तनाहेतुत्व. ११
वर्त्तना. ७
वर्धमान. १
वल्ली. १
वसुधा. ८०
वस्तु. १४०, १३९, १३५
वस्तुग्राहक. १७८
वस्तुत्व. २४, १०
वाक्. १३८, ८८
वाक्पद. १४३
वाग्गोचर. १५४
वाग्दर्शन. १०२
वाचक. ३०
वाचकचारित्र. ३
वाचकसंयम. २७०
वाजिन्. १
वामा. ३
वामेय. ३
वायु. ८०, ६२

वार्त्तिकसमुच्चय. १५९
विकलादेश. १४४, १३१
विकलादेशक. १३१
विकार. १२
विज्ञान. १०९
विनाश. १६८, ९४, ५०, ४४
विनाशिन्. १८
विपक्षभाव. २४४
विपर्यय. २४०
विपाक. २४४, ३७, ३५
विभजन. २७
विभाव. ७५, ७४, ७३, ३९, १५, १३, १२, १०
विरह. १२५
विवाहप्रज्ञप्ति. १२१, ३७
विशेष. २२८, १८१, १७०, १५३, १२१, ७८, ७७, ७४, ७०, ६२, ३३, ३२, २९, २७, २५, २४, २२, १३, ११, ९
विशेषसङ्ग्रह. १८४, १७८
विस्रसा. ११६
विहायोपशम. २४४
वीतराग. २३६
वीरजिन. १७३
वीर्य. १६०, ७०, ६८, ११
वृत्तिहेतु. १५६
वृद्धि. ७४
वेद. ३६
वेदनीय. २४५
वेदानुयोग. ३७
वेदान्तिक. ६३
वैयर्थ्य. १५३
वैशेषिक. ८८, ६२
वैशेषिकदर्शन. २१४
व्यञ्जकयोग. १४८
व्यञ्जन. २०९, १८३, १७५, १७०, ७२, १२
व्यतिरिक्त. १७०
व्यतिरेक. २५
व्यतिरेकसङ्ग्रह. १८६, २५
व्यतिरेकिन्. ९६
व्यपदेश. ९७, ४४
व्यभिचार. ९०
व्यय. २४१, १६८, १५१, १५०, १२४, ११९, ११६, ११४, ११३, ११२, १०७, ९९, ५७, ५६, ४६, १८, १७, १०, ९
व्यवच्छेद. ४४
व्यवसायिज्ञान. २४०
व्यवसायिन्. ११२
व्यवहार. २१३, २८, २७, २६, १९
व्यवहारनय. १८८, ६०, २६, ७
व्यवहारनयाभास. २२०
व्यवहाराभास. २२६, २२०
व्यापक. १२६
व्याप्त्यभिधानलक्षणाभास. ५३
व्याप्य. १२६
व्याप्यव्यापकभाव. ५२, ६
व्याप्यव्यापकसम्बधिन्. १२६
व्यावृत्ति. १२७
व्यास. १६७
व्यूह. १३६, १२८, ९९
व्यूहक. ७२
व्योम. ४
व्योमन्. १७२, १०९, १०७, ९८
व्रत. २४९
शक्ति. ४५
शक्रेन्द्र. १७४
शङ्काव्यावृत्ति. ३९
शब्द. २२८, २२४, २२३, २१०, १९८, ३३, ३०, २०, १९
शब्दनय. २२२, २१०, २०५, २०२, १९८, १९७, ३३, ३१, ३०, २०
शब्दनयाभास. २२५, २२२
शब्दाभास. २२५, २२२
शब्दार्थ. ३३
शम. १७२, ३६
शरीर. ८८, ४७, ३९

शाश्वत. ७३
शिलापुत्रक. ३९
शिवालय. २४६
शिवोन्मित. ३८
शील. १९
शुक्ललेश्या. २५७
शुद्ध. २११, ७५, २८, २६
शुद्धसत्ता. १७
शुभ. ४०, ३५, २८
शुभबोध. २६७
शुभोपचरित. २८
शुषि. १०६
श्रीवंशोत्तमवाचक. २७०
श्रुत. २३३, ३४
श्रुतगुरु. २६७
श्रुतज्ञान. २३३
श्रुति. २४०, २३२, ३६, ३१, ३०, २६, १
श्रुतिबल. १५८
श्रुतिसागर. २१२
श्रेयस्. २६८
श्रेयोवास. ११८, ५८, १८
षट्गुण. ११३
षड्गुण. ७४, ७०
षड्दर्शनसमुच्चय. २
षड्द्रव्य. २
षड्भङ्ग. १३६
संयम. २५५, २५४, ३६
संयमवामेय. ३
संयमिन्. ३६
संयमोपशम. २५९
संशय. २४०, ७७
संश्लिष्ट. १९२, २६
संसारिक. ३९
संसारिन्. २२०, १३७, ३९
संसृष्ट. ४४
संस्थान. ९०
संहति. १०१, ९१, ४२
सकलादेश. १४४, १३१
सक्रिय. १६०
सङग्रह. १९
सङ्कर. १५०, ३२
सङ्करदोष. १५०, १४७
सङ्कल्प. २३, २२
सङ्केत. १६३
सङ्ख्या. १०८
सङ्गृहीतसङ्ग्रह. २५
सङ्ग्रह. २२९, २२०, २१५, २१३, १८७, १८०, २५, २४
सङ्ग्रहज्ञान. १८४, १७८
सङ्ग्रहण. २५
सङ्ग्रहनय. २२८, २१६, २१५, १८७, १७८
सङ्ग्रहाभास. २१८
सञ्ज्ञा. २०६, १६८, १०४, ७७, ३२, १४, ११
सञ्ज्वलन. २५७
सत्. १३२, १३०, १२८, ९९, ५७, ५२, २५, १९, १०, ९, ६
सत्ता. १४८, १४८, १८, १७
सत्त्व. १३४, १३३, १३२, १३०, ११२, ५२, २४, १९, १०
सद्द्रव्यार्थिक. १७
सद्धर्म. १४८
सद्भाव. २०२, १३३
सद्भूत. १९१
सन्देह. ७७
सन्निकर्ष. २४०
सन्निधान. ४४
सन्निपात. ३५
सन्मति. १६०
सपर्यवसान. ३५
सप्तभङ्गिक. १४६
सप्तभङ्गिन्. २३८, २२९, २०३, २०२, १४५, १४५, १२९, ३०
समकाल. १४१
समभिरुढ. २०, १९

समभिरूढ. २२८, २२३, २०७, ३३, ३२
समभिरूढक. ३२
समभिरूढज्ञ. २०७
समभिरूढनय. २०७, २०६, ३२
समभिरूढाभास. २२३
समय. ५०, १८, ७
समवसरण. २३६
समवाय. ६२
समवायाङ्ग. ३७
समवायिन्. २२४
समास. १६७
समुदाय. ४५, ४५, २४
सम्परिग्रह. ८९
सम्यक्त्व. २६०, २५२, २४६, ३६, ३५
सम्यक्त्वक्षेप. २५१
सम्यग्दर्शन. २३९
सयोगिन्. २५८, २४८
सर्जनारोप. १७५
सर्वग. १८१, ३८
सर्वज्ञ. १५४
सर्वविरति. २५३, २५२, ३५
सहकार. ११६
सहज. १६३
सहजा. १६३
सहभाविन्. २२०, १६९
साङ्ख्य. २१८
सादि. ३५, १८
साधकावस्था. १९०
साधना. १९०, २७, २६
साध्य. १७४
सान्निपातक. २६२
सान्निपातिकभाव. ३५
सापेक्ष. १७४, १८
सापेक्षभाव. १७
सामर्थ्य. ६८
सामान्य. २२८, २१५, १८६, १८५, १८४, १७०, १४५, १२५, ११३, ११२, १०३, ७८, ७७, ६९, ६२, ६०, ३०, २५, २४, २३, १९, १४, १०, ९
सामान्यकेवलिन्. २३६
सामान्यसङ्ग्रह. १७९, १७८
सास्वादन. २६२, २६१
सास्वादनगुण. २५४
सिद्ध. १५८, १३७, ३९, ३६, १८
सिद्धक्षेत्र. १५८
सिद्धपर्याय. १८
सिद्धसंसारिन्. १८८
सिद्धावगाहन. ७३
सिद्धावस्था. ७३
सिद्धान्त. १५५, ११८, १०६, ९९, ६१, ४९, ३७, ३१, १८, १२
सिद्धिसत्ता. १७६
सुख. ९८, ८८, ७०
सुज्ञान. १९४
सुदर्शन. १
सुधर्म. ३७, १
सुनिक्षेप. १६२
सुभाव. १२४
सुर. १
सुरभि. ९६
सुस्कन्ध. ९९
सूक्ष्मसम्पराय. २६०, २५३, २४८
सूक्ष्मसम्परायगुण. २६२, २५७
सूरि. ४४
सूरीन्द्र. १
सूर्यप्रज्ञप्ति. ३७
सौख्य. ११
स्कन्ध, ११, २४४, १७६, १५८, १५०, १०८, १०१, ९८, ९५, ७४, ६३, ४९
स्कन्धाणु. ९९
स्थापना. २००, १९६, १६३, १६२, ३५, ३०, २९, ५
स्थापनाद्रव्य. ५
स्थापनानिक्षेप. १६२
स्थिति. १७२, १५९, १५८, १५६, १५०, ११५, १०७, ९९, ९८, ८८, ७१, ६४, ५४, ४८, ४६, ४१, ११, ७

स्थिति\t, ४६
स्थितिसत्ता. १७६
स्थितिहेतुत्व. ११
स्थित्युपग्रह. ४७
स्थित्युपष्टम्भ. ४०
स्थैर्य. १४९
स्पर्श. १६०, १४९, ९१, ७८, ७०, ११
स्यादनित्य. २०४
स्यादनित्यावक्तव्य. २०४
स्यादवक्तव्य. २०४, १४४, १३८
स्यादस्ति. १४४, १३६
स्यादस्तिनास्ति. १४४, १३९, १३१
स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्य. १४४, १४१
स्यादस्त्यवक्तव्य. १४४, १४०
स्याद्धर्म. १३८
स्याद्वाद. २३०, २१८, १२९, ३०, ३, १
स्याद्वादपुष्पकलिका. २६९, ३, ३
स्याद्वादपुष्पकलिकाप्रकरण. २
स्याद्वादशासन. २३०
स्यान्नास्ति. १४४, १३७, १३७
स्यान्नास्त्यवक्तव्य. १४४, १४०
स्यान्नित्य. २०४
स्यान्नित्यानित्य. २०४
स्यान्नित्यानित्यावक्तव्य. २०४
स्यान्नित्यावक्तव्य. २०४
स्वक्षेत्र. १२३
स्वद्रव्य. १२६
स्वधर्म. ६०
स्वपर्याय. १३५, १३३, १३२, १३०
स्वभाव. १४९, १३९, १३६, १२८, १२४, १२३, ११५, ११३, ११२, १०९, १०८, १०३, ७९, ७८, ७५, ७३, ३९, १८, १७, १५, १४, १३, १२, १०, ८
स्वभावक. ७६, ७५
स्वभावद्वार. १६०, ७५, ८
हानि. ७४
हारिभद्रीय. १५९
हेतु. १४४, १२६, ३०, ७
हेतुवर्तिन्. ४२
हेत्वाद्यारोप. २३
हेय. २३९

षष्ठमं परिशिष्टम्

व्याख्याकोशः

शब्दः	व्याख्या	परिच्छेदः	गाथा
अक्रियत्वम्	अक्रियस्य भावोऽक्रियत्वं क्रियारहितत्वमित्यर्थः	१०	५
अक्रियत्वम्	अक्रियस्य भावोऽक्रियत्वं क्रियारहितत्वमित्यर्थः	१०	५
अगुरुलघुत्वम्	षड्गुणहानिवृद्धिस्वभावः अगुरुलघुपर्यायाधारत्वमगुरुलघुत्वम्	११२	८६
अचैतन्यम्	अचेतनस्य भावोऽचैतन्यम् अचैतन्यमननुभवनमित्यर्थः	१०	५
अधर्मास्तिकायः	स्थितिपरिणतानां जीवपुद्गलानां स्थित्युपष्टम्भहेतुरधर्मास्तिकायः	७	२
अनर्पितनयाभासः	अर्पितं प्रतिक्षिपन्ननर्पितमभिदधानोऽनर्पितनयाभासः	२२६	२०८
अनित्यस्वभावः	तथानेकपर्यायपरिणमनरूपोऽनित्यस्वभावः	१४	१०
अनुगमसङ्ग्रहः	सर्वव्यक्तिषु अनुगतस्य सामान्यस्य प्रतिपादनमनुगमसङ्ग्रहः	२५	२४
	सर्वव्यक्तिषु अनुगतस्य सामान्यस्य यत्प्रतिपादनं सोऽनुगमसङ्ग्रहः	१८६	१६५
अनुमानप्रमाणम्	लिङ्गपरामर्शस्मृत्युद्भवं चिह्नमादृत्य यज्ज्ञानं तदनुमानप्रमाणम्	२३४	२१९
अनेकस्वभावः	एकस्याप्यनेकत्वभावोपलम्भोऽनेकस्वभावः	१४	१०
अपरसङ्ग्रहाभासः	हठादत्रावान्तरसामान्यं स्वीकुर्वाणा ये पारिणामिकत्वादयो विशेषं नावमन्यन्ते स अपरसङ्ग्रहाभासः	२१९	१९९
अप्रच्युतिनित्यकम्	द्रव्याणामूर्ध्वप्रचयतिर्यक्प्रचयेन ये परिणमन्ति पुनस्तदेवेति त्रिकालज्ञानरूपमप्रच्युतिनित्यकम्	११४	९५
अभव्यस्वभावः	कालत्रयेऽपि परस्वरूपाकाराभवनरूपोऽभव्यस्वभावः	१४	१०
अम्बरास्तिकायः	सर्वद्रव्यानामाधारभूतो जीवपुद्गलादीनाम् अवगाहोपष्टम्भकोऽम्बरास्तिकायः	७	२
अर्थनयाभासः	अर्थाभिधायी शब्दप्रतिक्षेपी अर्थनयाभासः	२२५	२०७
अर्पितनयाभासः	अनर्पितं प्रतिक्षिपन्नर्पितमभिदधानोऽर्पितनयाभासः	२२६	२०८
अर्पितानर्पिताभासौ	अन्योन्यं प्रतिक्षेपेन अर्पितमनर्पितं च प्रतिक्षेपेन क्रमादर्पितानर्पिताभासौ	२२६	२०८
अवक्तव्यः	उभयधर्मसमन्वितोऽवक्तव्यः	१४	१०
असद्भूतव्यवहारः	यो गुणान्यसमन्वितः कषायात्मादिभिर्मानवोऽहं सुरोऽहमित्याद्यात्मकं ज्ञानं सोऽसद्भूतव्यवहारः	१९१	१७१
अस्तित्वम्	नित्यत्वाद्युत्तरसामान्यानां पारिणामिकत्वादिविशेषस्वभावानामाधारभूतधर्मत्वं अस्तित्वम्	११२	८५
अस्तिस्वभावः	स्वस्वभावाविनाशितधर्मोऽस्तिस्वभावः	१४	१०
	यदा विवक्षितैकवस्तुविषये स्वपर्यायाणां सद्भावेनार्पितविशेषेण अस्तिस्वभावः	१३०	१०५
आगमप्रमाणम्	समवसरणस्थसभायामुपदेशरूपं समग्रं वचनं आगमप्रमाणम्	२३६	२२१
	तदनुयायिचतुर्दशदशपूर्वधरप्रत्येकबुद्धादिनिर्मितशास्त्रमप्यागमप्रमाणम्	२३६	२२१
आविर्भावलक्षणम्	उत्पादव्ययययोर्मध्ये उत्पादपर्यायाणां जनकत्वं प्रसवत्वमाविर्भावलक्षणम्	११२	८५
आह्वानम्	'शप् आक्रोशे' शपनम् आह्वानमिति	३०	३१

उत्पादः	नूतनपर्यायसमुद्भवनरूपो यः स उत्पादः	५७	५०
उपमानप्रमाणकम्	'यथा गोस्तथा गवयः' अदृष्टगवयाकृतिः गवयं प्रेक्ष्य गोसादृश्यभावं स्मृत्वा गवय इति ज्ञानं यस्य स्यात्तदुपमानप्रमाणकम्	२३५	२२०
उभयस्वरूपं वस्तु	यत् साम्प्रतमुत्पन्नं वर्तमानकालीनं वस्तु तच्च यस्य प्रत्येकमात्मीयं तदेव तदुभयस्वरूपं वस्तु प्रत्युत्पन्नम्	२९	३०
ऊर्द्ध्वतासामान्यम्	ऊर्द्ध्वतासामान्यं द्रव्यम्	१७०	१४७
ऊर्द्ध्वप्रचयम्	मूलस्वभावाव्ययमूर्द्ध्वप्रचयम्	११४	९५
	प्रथमसमये द्रव्यपरिणतौ सत्यां स एव द्वितीयसमयेऽभिनवपर्यायोत्पादनं यः करोति पुनरपरपूर्वपर्यायव्ययेन सर्वपर्यायपरावृत्तिं दधात्यपि तदेव द्रव्यमित्यात्मकज्ञानोत्पादनमूर्द्ध्वप्रचयम्	११४	९५
ऋजुः	ऋजु = अतीतानागतकाललक्षणकौटिल्यवैकल्यात्प्राञ्जलम् अवैहि(ति) द्रव्यं सदति गुणाभावान्न पर्येति पर्यायांस्तु क्षणध्वंसिनः प्रधानतया दर्शयतीति	१९	१७
ऋजुश्रुतः	ऋजु[म्] = अवक्रं श्रुतमस्य सोऽयमृजुश्रुतः	१९४	१७४
ऋजुसूत्रः	ऋजु = वर्तमानक्षणस्थायि पर्यायमात्रं प्राधान्यतः सूत्रयन्नभिप्राय ऋजुसूत्रः	१९	१७
	सम्प्रतिकालं = वर्तमानकालम् आश्रित्य = आलम्ब्य यः सुज्ञानबोधरूपः स ऋजुसूत्रकः	१९४	१७४
	प्रवृत्तिकालं = वर्तमानकालमपेक्ष्य मत्या = बुद्ध्या नामाद्यञ्धिप्रकारेण = नामस्थापनाद्रव्यभाव-भेदेन द्रव्येषु बोधरूपो यः स ऋजुसूत्रनयः	२९	३०
एकस्वभावः	स्वभावानामेकाधारत्वमेकस्वभावः	१४	१०
एवम्भूतः	शब्दानां स्वप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाविशिष्टमर्थं वाच्यत्वेन अभ्युपगच्छन्नेवम्भूतः	१९	१८
एवम्भूतनयाभासः	क्रियाविष्टं वस्तु ध्वनिनाभिधेयतया प्रतिजानानोऽपि यः परामर्शस्तदनाविष्टं तत् तेषां तथाक्षिपति न तूपेक्षते स एवम्भूतनयाभासः	२२४	२०६
औदयिकः	उदयः शुभाशुभप्रकृतीनां विपाकतोऽनुभवनं तेन निर्वृत्त औदयिकः	३५	३७
औपशमिकः	उपशमः कर्मविपाकप्रदेशरूपतया द्विविधस्याप्युदयस्योपशमनं तेन निर्वृत्त औपशमिकः	३५	३७
कार्यारोपः	तत्रोपादाननिमित्तासाधारणापेक्षाहेतुकैः कारणं चतुर्विधमस्ति। तत्र कस्मिन्नपि कारणे यः कार्यारोपः क्रियते तत्कारणे कार्यारोपः	१७४	१५२
क्रियाभासः	ज्ञानं प्रतिक्षिप्य क्रियामभिदधन् क्रियाभासः	२२७	२०९
क्षायिकः	कर्मक्षयादुत्पन्नो यः स क्षायिकः	३५	३७
क्षायोपशमिकः	क्षयोदीर्णस्या(उदीर्णस्य क्षयाद)नुदीर्णस्य चोपशमान्निर्वृत्तो मिश्रः = क्षायोपशमिकः	३५	३७
गुणपर्यायाः	पर्यायपिण्डत्वानन्तगुणाविभागरूपा गुणपर्यायाः	१३	९
गुणव्यञ्जनम्	ज्ञानदर्शनचारित्रगुणानां भेदान्तरज्ञानं गुणव्यञ्जनम्	१३	९
गुणस्थानकाः	लोके भवस्थजीवस्य परिणामविशेषका जिनशासने गुणाः = गुणस्थानकाः	२४८	२३४
गुणाः	यैर्द्रव्याद् द्रव्यस्य पृथग्भावः प्रक्रियते ते गुणाः	६७	५३
	ये द्रव्यैकस्मिन्प्रदेशे स्वकार्यहेतवे = निजकार्यं विधातुं शक्यास्ते पर्यायसञ्चया गुणा अनन्ताविभागा भवन्ति	६८	५४
	तत्रैकस्मिन्द्रव्ये प्रदेशं प्रति निजनिजकार्यकारणसामर्थ्यरूपा अनन्ता अविभागरूपाः		

	छेदनभेदनाद्यभावेन ये पर्यायाः सन्ति तेषां समुदायो गुणा भवन्ति	६८	५४
	धर्मादिद्रव्येषु पर्यायसमुच्चयो गुणाः	७२	६२
गुणारोपः	एवं गतिस्थित्यवगाहनमूर्तादिगुणमुपेत्य गत्यादीनां धर्माधर्मव्योमपुद्गलादिद्रव्यकथनमेतद्गुणारोपः	१७२	१४९
	ज्ञानमेव जीवो दर्शनमेव जीवः शम एव जीवश्चेत्यादयो गुणारोपः	१७२	१४९
गुरुलघुत्वम्	अगुरुलघोर्भावोऽगुरुलघुत्वम्	१०	५
चारित्रम्	परपरिणतिपरित्यागपूर्वकं विमलनिजपरिणतिपरिणमनात्मकं चारित्रम्	२३९	२२४
चेतनत्वम्	चेतनस्य भावश्चेतनत्वम्	१०	५
चेतना	चेतना च ज्ञानदर्शनोपयोगिकः अनन्तपर्याय-परिणामिककर्तृत्वभोक्तृत्वादिलक्षणान्वितोऽसङ्ख्यप्रदेशात्मको जीवः	७	२
जीवः	चेतनालक्षणो जीवः	७	२
	यथा जीवस्य ज्ञानादयो गुणास्ते समादृत्य जीवः	१७२	१४९
ज्ञाननयाभासः	क्रियां प्रतिक्षिप्य ज्ञानमभिदधानो ज्ञाननयाभासः	२२७	२०९
ज्ञानम्	विशेषाववोधरूपं ज्ञानम्	११	६
	ज्ञायते = प्राधान्येन विशेषो गृह्यतेऽनेनेति ज्ञानम्	२४०	२३६
तदाभासः	सर्वथा द्रव्यापलापी तदाभासः	२२१	२०१
(पर्यायाभासः)	सर्वथा गुणप्रधानाभावप्रकारेण तदाभासः	२२१	२०१
तद्गुणारोपः	तद्गतज्ञानदर्शनशमादिगुणमादृत्य गुणानां द्रव्यकथनं तद्गुणारोपः	१७२	१४९
तिर्यक्सामान्यम्	तिर्यक्सामान्यं तु प्रतिव्यक्ति सदृश-परिणामलक्षणं व्यञ्जनपर्याया एव स्थूलाः कालान्तरस्थायिनः	१७०	१४७
तिर्यग्प्रचयम्	तिर्यक्प्रचयं द्रव्याणां प्रत्येकतुल्यं भिन्नजीवत्वरूपकं यज्ज्ञानं तत्तिर्यग्प्रचयम्	११४	९५
दर्शनम्	सामान्यावबोधरूपं दर्शनम्	११	६
दुर्नयव्यवहारप्रत्ययः	यः पुनः परामर्शविशेषः कल्पनारोपेण तद्द्रव्य-पर्यायप्रविवेकं मन्यते सोऽत्र दुर्नयव्यवहारप्रत्ययः	२२०	२००
द्रव्यत्वम्	द्रव्यस्य भावो द्रव्यत्वम्	१०	५
	अर्थक्रियाकारित्वं द्रव्यत्वम्	११२	८५
	व्ययभूतपर्यायाणां तिरोभाव(लक्षणम्) अभावरूपायाः शक्तेराधारत्वं द्रव्यत्वम्	११२	८५
द्रव्यपर्यायाः	असङ्ख्येयप्रदेशसिद्धत्वादयो द्रव्यपर्यायाः	१३	९
द्रव्यम्	गत्यादिनिजनिजधर्ममर्यादापूर्वकपर्यायान् द्रवति = गच्छति इति द्रव्यम्	५	२
	व्ययोत्पादध्रुवान्वितं यत्सत्तल्लक्षणम् द्रव्यम्	९	४
	उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् यत् तद् द्रव्यम्	९	४
	निजनिजप्रदेशव्यूहैरखण्डवृत्त्या स्वभावविभावगुणपर्यायेभ्यो द्रवति द्रोष्यति इति द्रव्यम्	१०	५
	यत्सर्वथाविरोधेन व्याप्यव्यापकभावतो जीवादिवस्तुनो भावः स्वरूपक्षेत्रकालभावानामेकपिण्डस्वरूपं यथार्थेन सद्रूपलक्षणं वस्तु लक्ष्यते तद् द्रव्यम्	५२	४७
	निजनिजधर्ममादृत्य यदर्थक्रियाप्रवृत्तिकरणं द्रव्यम्	६०	५२

द्रव्यलक्षणम्	क्षेत्रकालभावभेदानां मिश्रीभूयैकपिण्ड-रूपाधारसमुदायावस्थितत्वं द्रव्यलक्षणम्	५६	४९
	व्ययोत्पादध्रुवयुतं यत्सत्तद् द्रव्यलक्षणम्	५७	५०
द्रव्यव्यञ्जनाः	स्वस्वभिन्नकायप्रत्यक्षकरणशीला द्रव्यव्यञ्जनाः	१३	९
द्रव्यारोपः	धर्माधर्माम्बरजीवपुद्गलानां पञ्चास्तिकायानां परावर्तनधर्ममादृत्य कालस्य द्रव्यकथनं तद्गुणे द्रव्यारोपः	१७१	१४८
द्रव्यार्थिकः	द्रवति द्रोष्यति अदुद्रुवत् तांस्तान्पर्यायानिति द्रव्यं तदेवार्थः सोऽस्ति यस्य विषयत्वेन स द्रव्यार्थिकः	१६८	१४७
	कालत्रिके एकैवेति सञ्ज्ञा येनार्थेन स्याद्यस्य द्रव्यस्य स द्रव्यार्थिकनयः	१६८	१४७
द्रव्यार्थिकाभासः	यः पर्यायाणां प्रतिक्षेपेण द्रव्यमात्रं समादृतः स द्रव्यार्थिकाभासः	२१२	१९२
धर्मास्तिकायः	जीवपुद्गलानां गतिपरिणतानां गत्युपष्टम्भहेतुर्धर्मास्तिकायः	७	२
ध्रुवः	यो नित्यसत्त्वादिगुणयुक्तः स ध्रुवः	५७	५०
नयः	अनन्तधर्मात्मकवस्तुन्येकधर्मस्योन्नयनं = ज्ञानं नयः	१६६	१४५
	[नीयते] वस्तु अनेन श्रुताख्यप्रामाण्यविषयीकृतस्यार्थस्य तिष्ठति पुनरितरांशौदासीन्यभावरूपो नयः	२११	१९१
नयाभासः	प्रथमैकांशं मुख्यभावेन संस्थाप्य यो द्वितीयांशस्योत्थापनं करोति स नयाभासः	२११	१९१
नास्तिस्वभावः	[तद् विपरीतः पररूपाभावो] नास्तिस्वभावः	१४	१०
	अन्यद्रव्यगतपरपर्यायपरिणामित्वादसद्भावार्पितेन नास्तिस्वभावः	१३०	१०५
नित्यस्वभावः	निजनिजविविधपर्यायानेकस्वभावेषु तदेवेदमिति द्रव्योपालम्भो नित्यस्वभावः	१४	१०
निश्चयाभासः	तत्त्वमभ्युपगच्छन् व्यवहारप्रतिक्षेपी निश्चयाभासः	२२६	२०८
नैकगमः	धर्मयोर्धर्मिणोः धर्मधर्मिणोश्च प्रधानोपसर्जनभावेन यद्विवक्षणं स नैकगमः	१९	१७
	पर्याययोर्द्रव्यपर्याययोश्च मुख्यामुख्यरूपतया यद्विवक्षणं स एवंरूपो नैको गमो = बोधमार्गो यस्यासौ नैकगमो नाम नयो बोधव्यः	१९	१७
नैगमः	धर्मयोर्धर्मिणो धर्मधर्मिणोश्च प्रधानोपसर्जनभावेनारोपसङ्कल्पांशादि भेदाद्यद्विवक्षणं स नैकगमो नैगमः	१७५	१५३
	पर्यायद्रव्ययोर्द्रव्यपर्याययोश्च मुख्यामुख्यरूपतया यद्विवक्षणं स एवं रूपो नैको गमो = बोधमार्गो यस्यासौ नैकगमो नैगमः	१७५	१५३
नैगमाभासः	धर्मद्वयादीनामेकान्तिकपार्थक्याभिसन्धिः नैगमस्यावभासतो नैगमाभासः	२१४	१९४
परमस्वभावः	पारिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावः	१४	१०
परसङ्ग्रहः	सन्मात्रग्राहको यो द्रव्यं भाषते स परसङ्ग्रहः	२१६	१९६
	निखिलविशेषभावे ह्यौदासीन्यं भजमानः शुद्धद्रव्यं सन्मात्रमभिमन्यमानः परसङ्ग्रहः	२१६	१९६
परामर्शविशेषः	निखिलविशेषेष्वौदासीन्यं भजमानो हि परामर्शविशेषः सङ्ग्रहाख्यां लभते, न चायं तथेति तदाभासः	२१८	१९७
पर्यायाः	ये द्रव्यगुणविकारास्ते पर्यायाः	१२	८
पर्यायार्थिकः	उत्पादविनाशौ प्राप्नोतीति पर्यायः स एवार्थो सोऽस्ति यस्यासौ पर्यायार्थिकः	१६८	१४७
पर्यायार्थिकाभासः	यो द्रव्याणां प्रतिक्षेपेण पर्यायमात्रग्राहकः स पर्यायार्थिकाभासः	२१३	१९३
पारिणामिकः	परि = समन्तान्नामनं = जीवानामजीवानां च जीवाजीवत्वादिस्वरूपानुभवनं		

	प्रति प्रह्वीभवनं = परिणामस्तेन निर्वृतः पारिणामिकः	३५	३७
पिण्डितसङ्ग्रहः	पिण्डितमेकजातिमानीतमभिधीयते पिण्डितसङ्ग्रहः	२५	२४
	एकजातीनां वस्तुनामेकत्वभावं विज्ञाय एकेन यो गृह्यते सङ्ग्रहात्मकः पिण्डरूपेण स पिण्डितसङ्ग्रहः	१८६	१६४
पुद्गलाः	पूरणाद्गलनाच्च पुद्गलाः, संहन्यमानत्वाद्विसंहतिमत्त्वाद्वा, पुरुषं वा गिलन्तीति वा, पुरुषैर्गिलन्तीति पुद्गलाः, मिथ्यादर्शनादिहेतुवर्तिनं मानुजं बध्नन्ति वेष्टयन्ति	४२	४५
पुद्गलास्तिकायः	पूरणगलनस्वभावः पुद्गलास्तिकायः	७	२
प्रत्युपन्नम्	यच्च यस्य प्रत्येकमात्मीयं तदेव तदुभयस्वरूपं वस्तु प्रत्युपन्नम्	१९४	१७४
प्रदेशत्वम्	प्रदेशस्वभावः प्रदेशत्वम् = क्षेत्रत्वमविभागि-पुद्गल-परमाणुनावष्टब्धत्वम्	१०	५
प्रमाणम्	स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम्	११२	८५
	प्रमीयते अनेनेति प्रमाणम्	११२	८५
प्रमेयत्वम्	प्रमेयस्य भावः प्रमेयत्वम्	१०	५
	प्रमाणेन प्रमातुं योग्यं तत्त्वं प्रमेयत्वम्	११२	८५
प्रमेयम्	प्रमाणेन स्वपररूपं(प)परिच्छेद्यं प्रमेयम्	१०	५
प्रवृत्तिव्यवहारः	आदिशब्दादधर्मास्तिकायादिकमपि ग्राह्यम्। यो द्रव्यज्ञायकः स प्रवृत्तिव्यवहारः	१८९	१६८
भव्यस्वभावः	भाविकाले परस्वरूपाकारो भव्यस्वभावः	१४	१०
भूतारोपः	सम्प्रतिकाले = वर्तमानकाले अतीतकालभावानां य आरोपकं करोति तदा स कालो भूतारोपः	१७३	१५०
भेदस्वभावः	गुणगुण्यादिसञ्ज्ञादिभेदाद्भेदस्वभावः	१४	१०
मूर्तता	असङ्ख्येयादिप्रदेशानादिपरिणामस्वभावता वा भूतार्थता मूर्तता	८९	७६
मूर्तत्वम्	मूर्तस्य भावो मूर्तत्वं रूपादिमत्त्वमित्यर्थः	१०	५
मूर्तिः	मूर्तिर्हि रूपादिशब्दाभिधेया	८९	७६
	रूपादिसंस्थानपरिणामा	८९	७६
रूढाभासः	पर्यायध्वनीनां यावन्माना अभिधेयका भवन्ति तेषामभिधेयानां नानात्वमेव स्वीकुर्वाणः = कक्षीकुर्वाणो रूढाभासः	२२३	२०५
लक्षणम्	लक्ष्यते वस्तु अनेनेति लक्षणम्	८	३
	परस्परव्यतिकरे(रेके) सति येनान्यत्वं लक्ष्यते तल्लक्षणम्	५२	४८
	असाधारणधर्मवचनं लक्षणम्	५२	४८
वक्तव्यः	नित्यानित्याद्येकस्वरूपोच्चारणं वक्तव्यः	१४	१०
वस्तु	सामान्यविशेषात्मकं वस्तु	१०	५
	साम्प्रतमुत्पन्नं वर्तमानकालीनं वस्तु	१९४	१७४
वस्तुत्वम्	वस्तुनो भावो वस्तुत्वम्	१०	५
	गुणपर्यायाधारभूतं वस्तुत्वम्	११२	८५
विभाविपर्यायाः	जीवपुद्गलयोः नरनारकादिगत्यनुभवनं द्व्यणुकत्र्यणुकादिभिरनन्तप्रदेशपर्यन्तं विभाविपर्यायाः		

१३	९		
विशेषगुणाः	द्रव्येषु गत्यादयो विशेषगुणाः	१३	९
वीर्यम्	अनन्तशक्तिप्रवृत्तिस्वरूपं वीर्यम्	११	६
व्यञ्जनपर्यायाः	शब्दानां सङ्केतविषया व्यञ्जनपर्यायाः	१७०	१४७
व्यतिरेकसङ्ग्रहः	व्यतिरेकस्तदितरधर्मनिषेधात् ग्राह्यधर्मसङ्ग्राहकः व्यतिरेकसङ्ग्रहः	२५	२४
	इतरधर्मनिषेधाद् ग्राह्यधर्मसमाग्राहको व्यतिरेकसङ्ग्रहः	१८६	१६५
व्ययः	पूर्वपर्यायविनशनरूपो यः स व्ययः	५७	५०
व्यवहारः	सङ्ग्रहेण गोचरीकृतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसन्धिना क्रियते स व्यवहारः	१९	१७
	विशेषतो अवह्रियते = निराक्रियते सामान्यमनेनेति व्यवहारः	२७	२७
	लोकव्यवहारपरो वा विशेषतो यस्मात्तेन व्यवहारः	२७	२७
	सङ्ग्रहेण गोचरीकृतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसन्धिना क्रियते स व्यवहारः	१८८	१६७
	गुणस्थानगत-उपशम-क्षपकश्रेण्यारोहणादि साधकदशा तेन वराः प्रधानाः साधना जिनैः प्रोक्तास्तदेव व्यवहारः	१९०	१७०
	सत्स्वार्थान्विधाय न तु निषिध्य(?)मः परामर्शविशेषस्तानेव विभजते स व्यवहारनयः	१८८	१६७
व्यवहाराभासः	यः पुनरपरमार्थिकं द्रव्यपर्यायविभागमभिप्रैति सङ्ग्रहादृतपदार्थानां स व्यवहाराभासः	२२०	२००
	तत्त्वप्रतिक्षेपी लोकव्यवहारमभिदधानो व्यवहाराभासः	२२६	२०८
शब्दः	कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेदं प्रतिपद्यमानः शब्दः	१९	१८
	शपतीति वा आह्वयतीति शब्दः	३०	३१
	शप्यते आहूयते वस्तु अनेनेति शब्दः	३०	३१
	शब्दस्य यो वाच्योऽर्थस्तत्परिग्रहात् तत्प्रधानत्वान्नयः शब्दः	३०	३१
	'शप् आक्रोशे' यः शब्दस्य वाच्योऽर्थस्तत्परिग्रहः तत्प्रधानत्वादाह्वयते इति शब्दः	१९७	१७७
	शप्यते = आहूयते वस्तु अनेनेति शब्दस्तस्य शब्दस्य यो वाच्योऽर्थः तत्परिग्रहान्नयः शब्दः	१९७	१७७
शब्दनयाभासः	शब्दाभिधाय्यर्थप्रतिक्षेपी शब्दनयाभासः	२२५	२०७
	तद्भेदेऽपि तदेवार्थसमादरणरूपः शब्दाभासः	२२२	२०४
	तद्भेदेन = कालादिभेदेन ध्वनेस्तमेव = अर्थभेदमेव, शब्दाभासः	२२२	२०४
शुद्धप्रवृत्तिकः	गुणानां साधकावस्थानरूपः शुद्धप्रवृत्तिकः	१९०	१७०
शुद्धप्रवृत्तिव्यवहारः	जीवस्य लोकालोकादिज्ञानरूपः शुद्धप्रवृत्तिव्यवहारः	१९०	१६९
सक्रियत्वम्	सक्रियस्वभावः सक्रियत्वं क्रियायुक्तत्वमित्यर्थः	१०	५
सङ्गृहीतपिण्डितार्थः	सङ्गृहीतं पिण्डितं तदेवार्थोऽभिधेयं यस्य तत्स सङ्गृहीतपिण्डितार्थः	२५	२४
सङ्गृहीतसङ्ग्रहः	सामान्याभिमुखेन ग्रहणं सङ्गृहीतसङ्ग्रहः	२५	२४
	सामान्याभिमुखेन यदा ग्रहणं तत्सङ्गृहीतसङ्ग्रहः	१८६	१६४

सङ्ग्रहः	सामान्यमात्रग्राही परामर्शः सङ्ग्रहः सामान्यमात्रं समग्रविशेषरहितं सत्त्वद्रव्यत्वादिकं गृह्णातीत्येवंशीलः	१९	१७
	सम् = एकीभावेन पिण्डीभूततया विशेषराशिं गृह्णातीति सङ्ग्रहः	१९	१७
	स्वजातेर्दृष्टेष्टाभ्यामविरोधेन विशेषाणामेकरूपतया यद् ग्रहणं [स] सङ्ग्रहः	१९	१७
	सम् = सम्यक्प्रकारेण गृह्णातीति सङ्ग्रहः	२४	२२
	सङ्ग्रहणं सामान्यरूपतया सर्वभावानामाक्रोडनं सङ्ग्रहः	२५	२४
	सामान्येन समग्रं सङ्गृह्णातीति सङ्ग्रहः	२५	२४
	सर्वेऽपि भेदाः सामान्येन सङ्गृह्यन्तेऽनेनेति सङ्ग्रहः	२५	२४
	सामान्यवस्तुग्राहकः सङ्ग्रहः	१७८	१५६
	सामान्यरूपतया सकलं सङ्गृह्णातीति सङ्ग्रहः। वा सर्वेऽपि भेदाः सामान्यतया सङ्गृह्यन्ते अनेनेति सङ्ग्रहः	१८०	१५८
	स्वसत्ताख्यं महासामान्यं सङ्गृहणातीति सङ्ग्रहः	१८०	१५८
	स्वजातेर्दृष्टेष्टाभ्यामविरोधेन विशेषाणामेकरूपतया यद् ग्रहणं स सङ्ग्रहः	२१५	१९५
सत्	उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्	१०	५
	सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोति इति सदिति	१०	५
सत्त्वम्	सदित्येतस्य भावः सत्त्वम्	१०	५
	उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्त्वम्	११२	८६
सद्भावासद्भावोभयः	उभयपर्यायाणामुभयेन सद्भावासद्भावोभयार्पितेनोभावपि भवति	१३०	१०५
सद्भूतव्यवहारः	यस्मिन् क्षेत्रेऽभेदभावेन स्थिता ये ज्ञानादयो गुणास्तेनाभेदव्यवहारः स सद्भूतव्यवहारः	१९१	१७१
सद्रूपत्वम्	अस्तीत्येतस्य भावोऽस्तित्वं सद्रूपत्वम्	१०	५
समभिरुढः	पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरुढः	१९	१८
	समभिरूढः पर्यायशब्दानां यथा निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन्नभिप्रायविशेषः समभिरूढः	२२३	२०५
सम्यग्दर्शनम्	कृत्याकृत्यहेयोपादेयैर्यथार्थतया जिनोक्ततत्त्वार्थ-श्रद्धानं तत् सम्यग्दर्शनम्	२३९	२२४
साधनाव्यवहारः	साधनाव्यवहारः स्वसम्पूर्णपरमात्मभावसाधनरूपः	१९०	१६९
सान्निपातिकभावः	सन्निपातैः= द्व्यादिसंयोगान्निष्पन्नः सान्निपातिकभावः	३५	३७
सामान्यसङ्ग्रहः	व्याप्यभावस्थेषु द्रव्येषु स्वस्वद्रव्ये व्यापकस्थिताः ये नित्यत्वादयः सत्तागतधर्मस्य पारिणामिकलक्षणेन सङ्ग्रहकरणशीलः स सामान्यसङ्ग्रहः	१७९	१५७
सुखम्	परमानन्दस्वरूपं सुखम्	११	६
स्याद्वादः	स्याद्वादश्च सप्तभङ्गीपरिणामः	१२९	१०३
स्वपरव्यवसायि	स्वम् = आत्मा ज्ञानस्य स्वरूपम्, परः स्वस्मादन्योऽर्थ इति यावत्। विशेषेण तौ यथाव्यवस्थितस्वरूपेण व्यवस्यति = निश्चिनोतीत्येवं शीलं यत्तत्स्वपरव्यवसायि	२४०	२३६
स्वभावपर्यायाः	स्वभावपर्यायाः अगुरुलघुवस्तुनि षट्स्थानीयवृद्धिहानिभ्यां द्वादशविधाः	१३	९

सप्तमं परिशिष्टम्

विशेषनामकोशः

शब्द परिच्छेद

अनुयोगद्वार. १६२
अक्षयतृतीया. १७३
अद्वैतवाद. २१८
अद्वैतवादिन्. २४०
अनेकान्तजयपताका. १६०, २
अन्तकृद्दशाङ्ग. ३७
आलापपद्धति. १०
आचाराङ्ग. ३७
आचाराङ्गटीका. १६५, १५८
आवश्यकनिर्युक्ति. १९४, १५९
इन्दु. २७०
उत्तराध्ययन. २३९, १५९
उपासकदशाङ्ग. ३७
कलिकाप्रकाश. २७१, १
काञ्चन. २७१
कार्तिका. १७३
कोटक. २७०
खरतर. २७१
चन्द्रप्रज्ञप्ति. ३७
चन्द्रकुल. १
चारित्रपार्श्वनाथ. ३
चारित्रवाचक. २७१
चार्वाक. २२०
जिनभद्रगणि. ३१
जिनभद्रसूरि. ९९
जिनराज. २७१
जिनसिंह. २७१
जीवाभिगम. ३७
जैनतर्क. १६०
ज्ञाताधर्मकथा. ३७
ठाण. १२८
तत्त्वार्थ. ७८, ५८, २
तथागत. २२१
दीपमालिका. १७३
देवचन्द्र. २१
देवदत्त. २३७
देवसेन. १०
नन्दन. २७१
नमस्कारनिर्युक्ति. ९९
नयचक्र. २१
निध्युपाध्याय. २७१, २७०
निशीथ. ३७
नेकान्तजयपताका. ११२
नैयायिक. २४०, २१९, २१४, ६१
नौनिध्युपाध्याय. १
नौनिधि. ३
पञ्चमाङ्ग. १५८
पद्म. १७३
पद्मनाभ. १७३
पद्महर्ष. २७१
पौषदशमी. १७३
प्रज्ञापना. ३७
प्रशमरति. १०१
बृहत्कल्प. ३७
भगवती. १२८
भारती. १
भावुकप्रकरण. १६०
भाष्य. ६८, ३३, ५
महिमत्रोपाध्याय. २७१
मीमांसक. २४०, ६६
मेरुत्रयोदशी. १७३

रत्नाकरावतारिका. २१
रत्नाकरावतार. २
रामपाठक. २७१
लोकविजयाध्ययन. १६५, १५८
लोकविजयाध्ययन.
वर्धमान. १
वाचकसंयम. २७०
वाजीचमू. १
वार्त्तिकसमुच्चय. १५९
विपाक. ३७
विवाहप्रज्ञप्ति. ३७
विशेषावश्यक. २०९, १६०, ९९, ३२, २९, २७, २५, २२, २१
वीर. १७३, १७३
वेदान्तिक. ६३
वैशेषिक. २१४, ६२
शाक्य. २४०
शौद्धोदनीय. ६४
षड्दर्शनसमुच्चय. २
संयमवामेय. ३
सन्मति. १६०
समवायाङ्ग. ३७
साङ्ख्य. २१८
सुख. २७१
सुधर्म. १
सूर्यप्रज्ञप्ति. ३७
स्तम्भनतीर्थ. २७१
स्याद्वादपुष्पकलिका. २७१, २६९, ३
स्याद्वादलतान्तक. १
हरिभद्रसूरि. १६०
हारिभद्रीय. १५९

अष्टमं परिशिष्टम्

॥श्री परम गुरुभ्यो नमः॥

श्रीदेवचंद्रजीकृतः

नयचक्रसारः

बालावबोधसहितः

॥मंगलाचरणम्॥

[१] प्रणम्य परमब्रह्मशुद्धानन्दरसास्पदम्। वीरं सिद्धार्थराजेन्द्रनन्दनं लोकनन्दनम्॥१॥

नत्वा सुधर्मस्वाम्यादिसङ्गं सद्वाचकान्वयम्। स्वगुरून् दीपचन्द्राख्यपाठकान् श्रुतपाठकान्॥२॥

नयचक्रस्य शब्दार्थकथनं लोकभाषया। क्रियते बालबोधार्थं सम्यङ्मार्गविशुद्धये॥३॥

श्रीजिनागमने विषे १ द्रव्यानुयोग २ चरणकरणानुयोग ३ गणितानुयोग ४ धर्मकथानुयोग ए चार अनुयोग कह्या छे। तेमां छ द्रव्य अने नव तत्त्व तेना गुणपर्याय स्वभाव परिणमनने जाणवुं ते द्रव्यानुयोग। एवं पंचास्तिकायनुं स्वरूप कथनरूप छे ते पंचास्तिकायमध्ये एक आत्मा नामे अस्तिकाय द्रव्य छे, ते आत्मा अनंता छे, तेना मूल बे भेद छे, तेमां एक सिद्ध=निष्पन्न सर्वकर्मावरणदोषरहित संपूर्ण केवलज्ञान केवलदर्शनादि गुणप्रकटरूप, अखंड, अमल, अव्याबाधानंदमयी, लोकने अंते विराजमान, स्वरूपयोगी ते सिद्धजीव कहियें। ते सिद्धता सर्व आत्मानो मूल धर्म छे। ते सिद्धतानी ईहा करवाने सिद्धभगवंतोनो यथार्थसिद्धपणो ओलखीने निष्पन्न सिद्धनो बहुमान करवो, अने पोते पोतानी भूले अशुद्धचेतनपणे परिणमतां बांध्यां जे ज्ञानावरणादिकर्म ते टालीने पोतानी संपूर्ण सिद्धतानी रुचि करवी एही जे हितशिक्षा छे।

वली बीजो भेद संसारी जीवोनो छे। ते जेणे आत्मप्रदेशें स्वकर्तापणे कर्मपुद्गलने ग्रह्या, जेने कर्मपुद्गलनो लोलीभाव छे ते मिथ्यात्व गुणठाणाथी मांडीने अयोगीकेवली गुणठाणाना चरमसमयपर्यंत सर्व संसारीजीव कहियें। तेना वली बे भेद छे-एक अयोगी, बीजा सयोगी। ते सयोगीना बे भेद-एक सयोगीकेवली, बीजा सयोगी छद्मस्थ। छद्मस्थना बे भेद-एक अमोही, बीजा समोही। समोहीना बे भेद छे-एक अनुदितमोही, बीजा उदितमोही। उदितमोहीना बे भेद-एक सूक्ष्ममोही, बीजा बादरमोही। बादरमोहीना बे भेद-एक श्रेणिवंत, बीजा श्रेणिरहित। श्रेणिरहितना बे भेद-एक संयमी विरति, बीजा अविरति।अविरतिना वली बे भेद-एक समकिती, बीजा मिथ्यात्वी। मिथ्यात्वीना बे भेद-एक ग्रंथिभेदी, बीजा ग्रंथिअभेदी। ग्रंथिअभेदिना बे भेद-एक भव्य, बीजा अभव्य। तेमां अभव्यजीवोनुं तो दल ज एवो होय जे श्रुतअभ्यास पण करे तथा द्रव्यथी पंच महाव्रत आदरे पण आत्मधर्मनी यथार्थ श्रद्धा विना पहेलो गुणठाणो किवारे मूके नही। माटे ए जीवो ते सिद्धपद पामवाने योग्य नही ते अभव्य चोथे अनंते छे।

बीजा भव्य ते जे सिद्धपणाने योग्य छे, जेने कारणयोग मिले पलटण पामे। ते भव्यजीवो अभव्यथी अनन्तगुणा छे ते मध्ये केइक भव्य सामग्रीयोग पामी ग्रंथिभेद करीने समकित पामे अने केटलाएक भव्य तो सामग्रीने अभावें समकित पामे ज नही। उक्तं च विशेषणवत्याम्[१]-

सामग्गिअभावाओ, ववहाररासिअप्पवेसाओ।

भव्वा वि ते अणंता, जे सिद्धसुहं न पावंति॥ (सं.श.७१)

पण ते भव्य जीवोमां योग्यता धर्म छतो छे ते माटे भव्य कहियें। जे जीव मिथ्यात्व तजीने शुद्ध यथार्थ आत्मपणे व्यापक रह्यो तेज मारो धर्म, अने जेथी ते आत्मसत्तागत धर्म प्रगटे ते साधनधर्म। तेना बे भेद छे-एक वायणा-पुछणादि, वंदन-नमनादि, पडिलेहण-प्रमार्जनादि जेटली योगप्रवृत्ति ते सर्व द्रव्यथी साधनधर्म कहियें। ते भावधर्म प्रगट करवाने जे करे तेने कारणरूप छे। द्रव्य ते जे भावनुं ***"कारण कारया से दव्वं"*** इति आगमवचनात्।

अने जे उपयोगादि पोताना क्षयोपशमभावें प्रगट्या जे ज्ञानवीर्यादिगुण ते पुद्गलानुयायीपणाथी टालीने शुद्धगुणी जे श्रीअरिहंत-सिद्धादिक तेना शुद्धगुणने अनुयायी करवा। अथवा आत्मस्वरूप अनंतगुणपर्यायरूप तेने अनुयायी करवा ते भावथी साधनधर्म जाणवो। ए आत्मा नीपजाववानो उपाय छे।

---

१. न दृश्यते एषा गाथा विशेषणवत्याम्।

जिहां लगे आत्मानुं शुद्धस्वरूप चिदानंदघन ते साध्यमां नथी अने पुद्गलसुखनी आशाये विष, गरल, अन्योन्य अनुष्ठान जे करवुं ते संसारहेतु छे। माटे साध्यसापेक्षपणे स्याद्वादश्रद्धायें साधन करवुं एहिज मार्ग छे। अने ए मार्गनी जे प्रतीतरुचि ते सम्यक्त्व कहियें। ते सम्यक्त्व ग्रंथिभेद कर्ये पामियें। ते ग्रंथिभेद तो त्रण करण करे तो जडे। ते त्रण करण जीव करे तेवारें सम्यक्दर्शन पामे। ते त्रण करणमां पहेलुं यथाप्रवृत्तिकरण, बीजुं[२] अपूर्वकरण, त्रीजुं अनिवृत्तिकरण। ए करण सर्व संज्ञी पंचेन्द्रि करे। तेमां प्रथम यथाप्रवृत्तिकरण ते भव्य तथा अभव्य पण करे। कोइक जीव अनंतीवार करे। ते यथाप्रवृत्तिकरणनुं स्वरूप लखियें छैये।

सर्वकर्मनी उत्कृष्टस्थितिना बांधनार जीवने संक्लेश घणो छे माटे यथाप्रवृत्तिकरण करे नही।उक्तं च विशेषावश्यके-

उक्कोसट्ठि न लम्भइ भयणा एएसु पुव्वलद्धाए।

सव्वजहन्नठिइसु वि, न लब्भइ जेण पुव्वपडिवन्नो॥ (वि.आ.भा.११९१,११९२)

माटे कर्मनी उत्कृष्टस्थितिनो बांधनार जीव ते चार सामायिकनो लाभ न पामे, अने जे जीव सात कर्मनी जघन्य स्थिति बांधे ते जीव तो गुणवंत ज छे ए रीत छे। माटे जे वारें एक कोडाकोडी सागरोपम पल्योपमने असंख्यातमें भागे उणी स्थिति बांधतो होय ते यथाप्रवृत्तिकरण करे। जे जीव कर्मक्षपणारूप शक्ति पाम्यो न हतो ते शक्ति पाम्यो तेने यथाप्रवृत्तिकरण कहियें। उक्तं च भाष्ये-

येन अनादिसंसिद्धप्रकारेण प्रवृत्तं कर्मक्षपणं क्रियते अनेनेति करणं जीवपरिणाम एव उच्यते अनादिकालात् कर्मक्षपणप्रवृत्तावध्यवसायविशेषो यथाप्रवृत्तिकरणमित्यर्थः।(

क्षयोपशमी चेतनावीर्य जे संसारनी असारता जाणे, संसार दुःखरूप करी जाणे, तेथी परिग्रह शरीरथी खरे उद्वेगें उदासीनता परिणामे करी सात कर्मनी स्थिति अनेक कोडाकोडीना थोकडा अंसख्याता जे सत्तामां हता ते खपावे ने कांइक उणी एक कोडाकोडी राखे। ए यथाप्रवृत्तिकरण आत्मा अनंतीवार करे, पण ग्रंथिमेद करी शके नही। ए करण ते गिरि नदीने विचें आव्युं पाषाण ते घंचना घोलनारूप चालवे करीने जेम सहेजे सुंहालो थाय, अने कोइक आकार पकडे तेम जन्ममरणादि दुःखने उद्वेगे अनाभोगथी ज भववैरागें जीव यथाप्रवृत्तिकरण करे। एहिज जीव कोइक रीते वैराग्यं विचारे जे भवभ्रमण ते दुःख छे, ए संयोगवियोगादि असार छे पण कांइक ज्ञानानंदादि ते सार छे। एहवी गवेषणा करनारो जीव ते यथाप्रवृत्तिकरण करीने अपूर्वकरण करे।

इहां कोइ पुछे जे भव्यने तो पलटण योग्यता छे पण अभव्य जीव केम करे? तेनुं उत्तर जे तीर्थंकरभक्तिमां जे देवतानी महिमा तथा लोकसन्मानादिक देखीने पुण्यनी वांछायें देवत्वराज्यादिक लाभइच्छायें इग्यार अंग तथा बाह्य पंच महाव्रतादि पामे पण तेने सम्यक्त्व न होय। जे पुद्गलाभिलाषी छे तेने गुणस्पर्श न थाय। उक्तं च महाभाष्ये-

अर्हदादिविभूतिमतिशयवतीं दृष्ट्वा धर्मादेवंविधसक्तारो देवत्वराज्यादयः प्राप्यन्ते इत्येवं समुत्पन्नबुद्धेरभव्यस्यापि देवनरेन्द्रादिपदेहया निर्वाणश्रद्धारहितकष्टानुष्ठानं किंचिदङ्गीकुर्वतो ज्ञानरूपस्य श्रुतसामायिकमात्रलाभेऽपि सम्यक्त्वादिलाभः श्रुतस्य न भवत्येवेति।

ए रीतें धारवुं।

तथा अपूर्वकरण अने अनिवृत्तिकरणनो अधिकार जेम आगमसारमां लख्यो छे तेज प्रमाणे इहां पण जाणवो। इम त्रण करण करीने उपशम अथवा क्षयोपशम अथवा क्षायिक सम्यक्त्व जे पाम्यो अने आत्मप्रदेशें व-माने सम्यक्दर्शनगुणनो रोधक एहवो मिथ्यात्व मोहप्रकृतिना विपाकोदयने टलवे करीने जे सम्यक्दर्शनगुणनी प्रवृत्ति थाय तेथी यथार्थपणे निर्द्धार सहित जाणपणो प्रवर्ते ते जीवने द्रव्यानुयोगें तत्त्वज्ञान प्रगटे। तेथी जे आत्मगुण प्रगटे ते आत्मगुणरक्षणायें ज प्रवर्ते एहवी स्वरूपानुयायी आत्मगुणनी प्रवृत्ति तेहने धर्म करी सद्दहे।

ते माटे स्याद्वादपरिणामी पंचास्तिकाय छे। ते स्याद्वादरूप ज्ञान ते नयज्ञाने थाय; माटे नयसहित ज्ञान करवुं ते नयज्ञान अति दुर्लभ छे। अने नयनी अनंतता छे। उक्तं च-

जावइया वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया॥(स.त-१४४)

ते जे पूर्वापर सापेक्ष नही ते कुनय कहियें, अने सर्वसापेक्षपणे वर्ते ते सुनय कहियें। ते मूल सात नय छे तेनुं स्वरूप अल्पमात्र लखियें छैयें।

---

२. उक्कोसट्ठिई न लहइ महाउए पुव्वलद्धाइं। आउयजहन्नठिइओ न लभए तो जेण पुव्वपडिवन्नो॥

नय ते ज्ञानगुणनुं प्रवर्तन छे। जे कारणे एकद्रव्यमध्ये अनंता धर्म छे, ते एक समये श्रुतोपयोगमां आवे नही, स्या माटे? जे श्रुतज्ञाननो उपयोग असंख्याता समयें थाय। अने वस्तुमध्ये तो अनंता धर्म एक समये परिणमता पामिये। तेवारे श्रुतज्ञान सत्य थाय नही। ते माटे नयें करी जाणें। तथा यद्यपि केवलीनो उपयोग एकसमयी छे ते माटे जाणवामां नयनुं कार्य केवलीने पडे नही, पण वचने कहेतां केवलीने पण नयें करी कहेवुं पडे, कारण के वचन तो क्रमे करीने बोलाय छे अने वस्तुधर्म अनंता एकसमयकालें छे ते माटे नयें करी कहे। वली जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपूज्य कहे छे:-

जीवादि द्रव्यमां जे गुण छे ते अनंतस्वभावी छे। गुणनी छति तेनुं परिणमन तेनी प्रवृत्ति तेमां जे समये कारणता ते समये ज कार्यता इत्यादि अनेकपरिणतिसहित छे। तेथी कोइक रीते सर्वनुं भिन्नाभिन्नपणे ज्ञान थाय ते नयथी थाय।

माटे समकितरुचि जीवने नयसहित ज्ञान करवुं जे एटला धर्म सर्वद्रव्य मध्ये रह्या छे माटे प्रथमतो श्रीगुरुकृपाथी द्रव्यगुणपर्याय ओलखावे छे। ए पीठिका कही। हवे मूलसूत्रना अर्थनुं व्याख्यान करे छे-

[१] श्रीवर्धमानमानम्य, स्वपरानुग्रहाय च। क्रियते तत्त्वबोधार्थं, पदार्थानुगमो मया॥

[१] अर्थ- **श्री** कहेता गुणनी शोभा अतिशय शोभायें विराजमान एहवा श्रीवर्द्धमान अरिहंत शासनना नायक ते प्रते अत्यन्तपणे नमीने=नमस्कार करीने पोतानो मान मूकी त्रण योग समारी गुणीने अनुयायी चेतनानुं करवुं तेने नमवुं कहियें ते पण **स्व** कहेता पोताने अने **पर** जे शिष्य अथवा श्रोतादिकने अनुग्रह कहेता उपकारने सारु तत्त्व कहेता यथार्थ वस्तुधर्म तेने बोध कहेता जाणवाने अर्थे पदार्थ कहेता धर्मास्तिकायादिक छ मूलद्रव्य तेनो अनुगम कहेता साचो प्ररुपवो ते क्रियते कहेता करियें छैयें।

जगतमां मतांतरीओ द्रव्यने अनेकपणे कहे छे, तिहां नैयायिक सोल पदार्थ कहे छे। वैशेषिक सात पदार्थ कहे छे। वेदांती, सांख्य एक पदार्थ कहे छे। मीमांसक पांच पदार्थ कहे छे। पण ते सर्व मिथ्या छे। तेणे पदार्थनुं स्वरूप जाण्युं नथी अने श्रीअरिहंत सर्वज्ञ प्रत्यक्षज्ञानी ते एक जीव अने पांच अजीव ए रीते छ पदार्थ कहे छे।

इहां कोइ पूछे जे नवतत्त्वरूप नव पदार्थ कह्या छे ते केम? तेने उत्तर जे एक जीव, बीजो अजीव, ए बे पदार्थ तो मूल छे अने शेष सात तत्त्व तो जीव अजीवनो साधक-बाधक, शुद्ध-अशुद्ध परिणतिनी अवस्था भिन्न ओलखवाने कर्या छे।

श्लोक-

[२] द्रव्याणां च गुणानां च, पर्यायाणां च लक्षणम्। निक्षेपनयसंयुक्तं, तत्त्वभेदैरलङ्कृतम्॥

तत्र तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्या तस्य जीवादेर्वस्तुनो भावः स्वरूपतत्त्वम्।

[२] अर्थ-द्रव्यना, गुणना तथा पर्यायना लक्षण जे ओलखाण ते निक्षेपे करी तथा नयें करी युक्त तत्त्वना भेद सहित कहुं छुं। तत्र कहेता तिहां जिनागमने विषे तत्त्व जे वस्तुस्वरूप, भेद तेना जूदा जूदा भेदपर्याय तेमां रह्या जे धर्म एटला प्रकारे व्याख्या कहेता अर्थनुं कहेवुं तेणे करीने यथार्थ व्याख्यान थाय, तिहां तत्त्वनुं लक्षण कहे छे। व्याख्यान करवा योग्य जे जीवादिक वस्तु तेनो मूल धर्म ते वस्तुनुं स्वरूप तत्त्व कहियें। जेम कंचननुं स्वरूप पीत गुरु स्निग्धतादि तथा एनुं कार्य आभरणादिक अने एहनुं फल ते एहथी अनेक भोग्यवस्तु आवे। एम जीवनुं स्वरूप ज्ञान दर्शन चारित्रादि अनंत गुण, तथा जीवनुं कार्य सर्वभावनुं जाणवुं प्रमुख। ए रीते अभेदपणे रह्या जे धर्म ते सर्व वस्तुनुं तत्त्व कहिये।

[३] येन सर्वत्राविरोधेन यथार्थतया व्याप्यव्यापकभावेन लक्ष्यते वस्तुस्वरूपं तल्लक्षणम्। तत्र द्रव्यभेदा यथा जीवा अनन्ताः कार्यभेदेन भावभेदा भवन्ति। क्षेत्रकालभावभेदानामेकसमुदायित्वं द्रव्यत्वम्।

[३] अर्थ- हवे लक्षण कहे छे। जे गुणे करी सर्वद्रव्य स्वजातिमां अविरोधिपणे यथार्थपणे १ अतिव्याप्ति २ अव्याप्ति [३] असंभवादि दोषरहित वस्तु जे व्याप्य तेहने विषे व्यापकपणे लखियें जाणियें तेने वस्तुनुं लक्षण कहियें। ते लक्षण बे प्रकारनुं छे। एक लिंगबाह्य आकाररूप अने बीजुं वस्तुमां रह्यो जे स्वरूप ते। ए बे भेद छे। तेमां लिंगथी तो गायनुं लक्षण जे सास्नासहितपणो ते बाह्य आकाररूप लक्षण छे। ए बाह्य लक्षणे जे ओलखाण करे ते बालचाल छे अने जे वस्तुने धर्मे ओलखाय ते स्वरूपलक्षण कहियें। जेम चेतनालक्षण ते जीव, तथा चेतनारहित ते अजीव, इत्यादिक लक्षणे लक्षणस्वरूप जाणवो। एम अनेक रीते जाणी लेवो।

भेदाश्च- हवे भेदनुं स्वरूप कहे छे। **वक्तव्यवस्त्वंशाः** कहेता जे वस्तु कथन करता होय तेहना चार भेद छे। **तत्र द्रव्यभेदा** कहेता तिहां द्रव्यना भेद मूल लक्षणे सरिखा पण पिंडपणे जूदा छे ते द्रव्यथी भेद कहियें। **यथा** कहेता जेम सर्वजीव जीवत्वसामान्ये सरिखा छे, पण जीव प्रते पोताना गुणपर्यायनो पिंडपणो जूदो छे। कोइनु कोइमां मिलि जातो नथी। ते माटे जीव अनंता द्रव्यभिन्नपणे,

तेमज अजीव अनंता द्रव्यभिन्नपणे; एम पुद्गलपरमाणु पण जडतारूपपणे सरिखा पण सर्व परमाणुओ जूदा द्रव्य छे। जे कालें पुछीयें ते कालें एटलाने एटला छे कोइ काले घटे नही, तेम नवो वधे नहीं। ए सर्व द्रव्यथी भेद जाणवो।

हवे क्षेत्रांशः- क्षेत्रथी भेद ते जे विस्तरे तो जूदो क्षेत्र अवगाहीने रहे, जेम जीवादि द्रव्यना प्रदेश अवगाहनाधर्मे जूदा छे पण द्रव्यथी जूदा पडे नही, संलग्नपणे रहे। गुणपर्याय सर्वप्रदेशें अनंता छे ते गुणपर्याय एक प्रदेश मूकी बीजा प्रदेशमां जाय नही, पर्यायविभाग एकनो अने प्रदेशनो अवगाह सरिखा छे पण ते पर्याय अनंता भिन्न छे, अने जे अनंता पर्याय मलीने एक कार्य करे ते कार्यने गुण कहे छे। श्रीवीतराग सर्वज्ञ एम कहे छे ए क्षेत्रथी भेद छे।

एकवस्तुमां उत्पादव्ययरूप पर्याय पलटवानुं मान ते समय कहियें। जेटलो उत्पाद व्यय तथा अगुरुलघुनी हानिवृद्धिने परिणमतानुं मान ते समय कहियें। अने तेथी बीजी परिणमनता थइ ते बीजो समय, एम जे अनंती अतीतप्रवृत्ति थइ ते वर्त्तमानप्रवृत्तिनी परंपरारूप जाणवी। अने आगामिक थाशे ते कार्यरूपे योग्यतारूप जाणवी। अतीतकालनो तथा अनागत कालनो कोइ ढिगलो नथी, अने पिंडरूप पंचास्तिकायनु वर्तना रूप जे परिणमन तेनुं मान ते काल कहियें। तेने समयभेद ते त्रीजो कालरूप भेद कहिये। ते जे पर्याय भिन्न भिन्न कार्य करे ते कार्यभेदे भिन्नपणो छे, ते माटे चोथो भावथी भेद कहिये।

हवे द्रव्यनुं लक्षण कहे छे। ते क्षेत्र काल अने भावना जे भेद ते सर्वनुं एकठा मिलिने पिंडपणे एकाधारपणे समुदायीपणे रहेवुं ते द्रव्य कहियें।

[४] तत्रैकस्मिन् द्रव्ये प्रतिप्रदेशे स्वस्वएककार्यकरणसामर्थ्यरूपा अनन्ता अविभागरूपपर्यायास्तेषां समुदायो गुणः। भिन्नकार्यकरणे सामर्थ्यरूपा भिन्नगुणस्य पर्यायाः। एवं गुणा अप्यनन्ताः प्रतिगुणं प्रतिदेशं पर्याया अविभागरूपाः अनन्तास्तुल्याः प्राय इति। ते चास्तिरूपाः प्रतिवस्तुन्यनन्तास्ततोऽनन्तगुणाः सामर्थ्यपर्यायाः।

[४] अर्थ-हवे गुणनुं लक्षण कहे छे। तिहां **गुणनामाश्रयो द्रव्यमिति** वचनात्, एकद्रव्यने विषे **स्वस्व** कहेता पोतपोतानो एक जाणवा प्रमुख कार्य करवानुं जेने सामर्थ्य छे एवा अनंता सूक्ष्म जेनो **अविभाग** कहेता बीजो छेद न थाय एवा विभागनो जे समुदाय तेने गुण कहियें। जेम एक दोरडो सो तांतणानो कर्यो ते सो तांतणा तो अविभागपणे छता पर्याय छे। ते दोरडाथी अनेक कार्य थाय, अनेक वस्तु बंधाय, अने अनेकने आधार थाय अनेक वेटण थाय तेने सामर्थ्य पर्याय कहियें। छतिरूप जे पर्याय ते तो वस्तुरूप छे अने सामर्थ्यपर्याय तो प्रवर्तनरूप-कार्यरूप छे, ते छतिपर्यायनो समुदाय तेने गुण कहियें। छतिपर्यायना अविभाग ते योगस्थान समयस्थानमां कह्योज छे अने भिन्न **कहेता** जुदो कार्य करवानुं जेमां सामर्थ्य होय एवा अविभागरूप आत्मप्रदेशे वर्तता पर्याय ते **भिन्न** कहेता जुदा गुणना पर्याय जाणवा। जेम जे अविभाग परिणामालंबनरूप कार्य सामर्थ्यरूप तेनो समुदाय ते वीर्यगुण, एमज जाणवारूप सामर्थ्य छे जेमां, एहवा जे अविभागपर्याय छे तेनो समुदाय ते ज्ञानगुण। तेवा गुण एकद्रव्यने विषे अनंता छे। ते एकगुणना प्रदेशें प्रदेशें पर्याय अविभागरूप अनंता छे अने सर्व प्रदेशे सरिखा छे।

तथा पंचास्तिकाय मध्ये एक अगुरुलघु पर्यायनो भेद तरतम छे। तथा पुद्गलपरमाणुमध्ये कालभेदे अथवा द्रव्यभेदें वर्णादिकना पर्यायनो तरतमयोग ते थोडा घणापणो छे। ते पर्यायअस्तिरूप छे, सदा छता छे। कोइ पर्याय द्रव्यांतरमां जातो नथी, प्रदेशांतरमां पण जातो नथी, ते छतिपर्यायथी सामर्थ्यपर्याय अनंतगुणा जाणवा। ते कार्यरूप छे। तथा च महाभाष्ये-

यावन्तो ज्ञेयास्तावन्त एव ज्ञानपर्यायाः ते च अस्तिरूपाः प्रतिवस्तुनि अनन्तास्ततोऽप्यनन्तगुणाः सामर्थ्यपर्यायाः।

[५] तत्र द्रव्यलक्षणमुत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सल्लक्षणम्। द्रव्यम् एतद् द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकोभयनयापेक्षया लक्षणम्। गुणपर्यायवद् द्रव्यम् एतत् पर्यायनयापेक्षया। अर्थक्रियाकारि द्रव्यम् एतल्लक्षणं स्वस्वशक्तिधर्मापेक्षया। धर्मास्तिकायः,अधर्मास्तिकायः,आकाशास्तिकायः,पुद्गलास्तिकायः,जीवास्तिकायः,कालश्चेति।

[५] अर्थ- हवे वली द्रव्यनुं मुख्य लक्षण कहे छे, **उत्पाद** कहेता नवा पर्यायनुं उपजवुं **व्यय** कहेता पूर्व पर्यायनुं विणसवुं अने **ध्रुव** कहेता नित्यपणो ए तीन परिणमनपणे सर्वदा जे परिणमे तेने द्रव्य कहिये। एटले तेहिज गुण कारण-कार्य बे धर्मे समकाले परिणमे छे। कारण विना कार्य थाय ज नहीं अने कार्य करे नहीं ते कारण पण समजवुं नहीं। जे उपादान कारण तेहिज कार्य थाय छे। ते कारणतानो व्यय अने कार्यतानुं उपजवुं समकाले थाय छे। वली कारणपणो पण समयें समयें नवो नवो छे अने कार्यपणो पण समयें समयें नवो नवो छे ते माटे कारणपणानो पण उत्पाद-व्यय छे, अने कार्यपणानो पण उत्पाद-व्यय छे, अने गुणपिंडपणे द्रव्याधारपणे ध्रुव छे। एवी

परिणतिये परिणमे ते सत् कहेता छतिवन्त द्रव्य जाणवो, एटले ए लक्षण ते द्रव्यास्तिकनय तथा पर्यायास्तिकनय ए बे भेला लइने कर्यो छे। जे ध्रुवपणो ते द्रव्यास्तिकधर्म ग्रह्यो छे अने उत्पादव्यय ते पर्यायास्तिकधर्म ग्रह्यो छे। ते माटे ए लक्षण संपूर्ण छे, ए तत्त्वार्थकारकनुं वाक्य छे।

तथा वली बीजुं लक्षण तत्त्वार्थमां ज कह्युं छे। एक द्रव्यमां बधामां स्वकार्यगुणे वर्तमान ते गुण अने पर्याय ते गुणनुं कारणभूत द्रव्यनुं भिन्न भिन्न कार्यपणे परिणमे द्रव्यगुण ए बेहुने स्वाश्रयीपणे परिणमन ते बे छे जेमां ते द्रव्य कहियें। एटले गुण तथा पर्यायवंत ते द्रव्य कहियें। ते द्रव्य एकना बे खंड थायज नही, ए मूल द्रव्यनुं लक्षण छे अने जे घणा परमाणुना खंधने द्रव्य मान्यो छे ते उपचारें जाणवो। जेनी परिणति त्रण कालमध्ये ते रूपने तजे नही ते द्रव्य पोतानी मूल जात त्यजे नही। जेने अगुरुलघुनुं षड्गुणहानिवृद्धिरूप लक्षण चक्र एकठो फिरे ते एक द्रव्य, अने जेने जूदो फिरे ते भिन्न द्रव्य कहियें। एटले धर्म, अधर्म, आकाश ए एक द्रव्य छे, अने जीव असंख्यातप्रदेशरूप एक अखंड द्रव्य छे। एवा जीव सर्वलोकमध्ये अनंता छे। ते जीव सिद्धमां वधे छे अने संसारीपणामां ओछा थाय छे, पण सर्व संख्यामां घटता वधता नथी। तथा पुद्गल परमाणु एक आकाश प्रदेश प्रमाण एक द्रव्य छे। तेवा परमाणु सर्व जीवथी तथा सर्व जीवना प्रदेशथी पण अनंतगुणा द्रव्य छे। स्कंधपणे अथवा छुटा परमाणुपणे वधे तथा घटी जाय पण परमाणुपुद्गलपणे जे संख्या छे तेमां वधता घटता नथी ए निश्चयनयथी लक्षण कह्युं।

हवे व्यवहार नयथी लक्षण कहे छे।

अर्थ-जे द्रव्य तेनी जे **क्रिया** कहेता प्रवृत्ति तेने करें ते द्रव्य कहियें। तेमां जीवनी शुद्ध क्रिया ते ज्ञानादिक गुणनी प्रवृत्ति, जेम सकल ज्ञेय जाणवा माटे ज्ञानविभागनी प्रवृत्ति एम सर्व गुणनुं जे कार्य जेम ज्ञानगुणनुं कार्य विशेष धर्मनुं जाणवुं। तथा दर्शनगुणनुं कार्य सकलसामान्यस्वभावनो बोध, अने चारित्रगुणनुं कार्य ते स्वरूपनुं रमवुं इत्यादि। अने धर्मास्तिकायनुं कार्य गतिगुणे परिणम्या जे जीव तथा पुद्गल तेने चालवाने सहकारी थाय। एम सर्व द्रव्यनी समजण जोइ लेवी। ए लक्षण सर्व द्रव्यना जे गुण छे ते सर्वना स्वकार्यानुयायी प्रवृत्ति तेने अर्थक्रिया कहेवी।

हवे ते छ द्रव्य छे १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ पुद्गलास्तिकाय, ५ जीवास्तिकाय, ६ काल। ए छ द्रव्य जाणवा। एथी वधारे पदार्थ कोइ नथी।

जे नैयायिकादिक सोल पदार्थ कहे छे ते मृषा छे, कारणके ते प्रमाणने भिन्नपदार्थ कहे छे ते तो ज्ञान छे, ते आत्मामां प्रमेयनो गुण छे ते गुणी जे आत्मा ते मध्ये रह्यो छे तेने भिन्न पदार्थ केम कहियें? बीजा प्रयोजन सिद्धान्तादिक ते सर्व जीव द्रव्यनी प्रवृत्ति छे ते माटे भिन्नपदार्थ कहेवाय नही।

तथा वैशेषिक १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, ७ अभाव ए सात पदार्थ कहे छे। पण तेने कहियें जे गुण ते तो द्रव्यमांज रह्या छे तो तेने भिन्नपदार्थ करी कहेवुं ते केम घटे? अने कर्म ते द्रव्यनुं कार्य छे। तथा सामान्य अने विशेष ए बे तो द्रव्य मध्ये परिणमन छे। वली समवाय ते कारणतारूप द्रव्यनुं प्रवर्तन छे अने अभाव तो अछताने कहेवाय ते अछताने पदार्थ कहेवुं घटतुं नथी ते माटे वैशेषिकमत पण मृषा छे। ते मध्ये द्रव्य नव कहे छे। १ पृथ्वी, २ आप, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिक्, ८ आत्मा, ९ मन ए नव द्रव्य कहे छे, तेने उत्तर जे पृथ्वी, अप, तेज, वायु ए तो आत्मा छे पण कर्मयोगें शरीर भेदें नाम पड्या छे, अने दिशा तो आकाशमांज मिली गइ छे, तथा मन ते आत्माने संसारीपणाना उपयोग प्रवर्तनानो द्वार छे तेने भिन्न द्रव्य केम कहियें?

वली वेदांती सांख्य ते एक आत्मा अद्वैतपणे एकज द्रव्य माने छे, तेनी पण भूल छे, केमके जे शरीर छे ते तो रूपी छे अने पुद्गल द्रव्यानां खंध छे ते केम एक थाय? तथा आत्मा अने शरीरनो आधार ते आकाश छे ते सर्व प्रसिद्ध छे ते जूदो मान्या विना केम चाले? ते माटे अद्वैतपणो रह्यो नही।

अने बौद्धदर्शन ते समय समय नवा नवापणे १ आकाश, २ काल, ३ जीव, ४ पुद्गल ए चार द्रव्य माने छे। तेने पुछीयें जे जीव, पुद्गल एकज क्षेत्रें केम रहेता नथी? ते तो चलादि भाव पामे छे माटे तेना अपेक्षाकारणरूप १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय ए बे द्रव्य पण मानवा जोइये।

तथा केटलाक संसारस्थितिनो कर्ता एक परमेश्वरने माने छे, ते पण मृषा छे। जे निर्मल रागद्वेषरहित एवो परमेश्वर ते परना सुखदुःखनो कर्ता केम थाय?

वली कोइक इच्छा वलगाडे छे, ते तो अधूराने छे, पूराने केम होय?

तथा केटलाक परमेश्वरनी लीला कहे छे ते लीला तो अजाण अधूरो तथा जेने पोतानो आनंद पोता पासे न होय ते करे, पण जे संपूर्ण चिदानंदघन तेने लीला होय ज नही।

धर्माधर्मौ विना नाङ्गं, विनाङ्गेन मुखं कुतः।

मुखं विना न वक्तृत्वं तच्छास्तारः परे कथम्?॥ (वी.स्तो.७.१)

अने मीमांसादिक पांच भूत कहे छे। तेमां पण चार भूत तो जीवपुद्गलना संबंधे उपना छे, अने आकाश ते लोकालोक भिन्न द्रव्य छे।

[६] तत्र पञ्चानां प्रदेशपिण्डत्वाद् अस्तिकायत्वम्। कालस्य प्रदेशाभावाद् अस्तिकायता नास्ति, तत्र काल उपचारत एव द्रव्यं न वस्तुवृत्त्या।

[६] अर्थ- ए रीते असत्य प्ररुपणानुं निराकरण करी आगमनी साखे कार्यादिकने अनुमाने द्रव्य छ ठरे छे, माटे तेहिज मानवा। तेमां पांच द्रव्य सप्रदेशी छे, ते प्रदेशना पिंडपणा माटे अस्तिकायपणो पांच द्रव्यने छे। अने छठ्ठो कालद्रव्य तेने प्रदेश नथी ते माटे अस्तिकायता नथी।

तिहां काल ते मुख्यवृत्तियें द्रव्य नथी, उपचारथी द्रव्य कहेवाय छे। जेम वस्तुगते धर्मास्तिकायादिक द्रव्य छे तेम काल द्रव्य नथी। जो ए कालने पिंडरूप द्रव्य मानियें तो एनो मान किहां छे? जो मनुष्यक्षेत्रमां काल द्रव्य मानियें तो बाहिरना क्षेत्रमां नवापुराणादिक तथा उत्पाद-व्यय कोण करे छे? अने जो चौदराजलोकमां व्यापी मानीयें, तो असंख्यातप्रदेश मानवा जोइयें अने प्रदेश मानवे करी अस्तिकाय थाय, अने जो रेणुंक असंख्याता मानियें, तो लोकप्रदेश प्रमाण रेणुक थाय ते वारें असंख्याता काल द्रव्य थाय। ते तो अनंत द्रव्य मान्यो छे माटे ए कालने पंचास्तिकायना वर्तनारूप पर्यायने आरोपे द्रव्य मानियें। केमके अस्तिकायता नथी। अने सर्वमां वर्तना करे ए पक्ष सत्य छे। जे आगमने विषे ठाणांगसूत्रना आलावामां छे-

किं भंते! अद्धासमयेति वुच्चत्ति? गोयमा! जीवा चेव अजीवा चेव।

एटले काल ते जीव तथा अजीवनो वर्तमानपर्याय छे, तेना उत्पाद व्ययरूप वर्तनाने काल कह्यो छे, ते कालने अजीव द्रव्यमां गण्यो तेनो आशय ए छे जे जीव वर्तनाथी अजीववर्तना अनंतगुणी छे ते बहुलता माटे कालने अजीव गवेष्यो छे केमके कालनी वर्तना अजीव उपर अनंती छे अने जीव उपर तेथी थोडी छे माटे।

तथा विशेषावश्यकभाष्यमध्ये-

न पश्यति क्षेत्रकालावसौ तयोरमूर्त्तत्वाद्, अवधेश्च मूर्तिविषयत्वात्, वर्त्तनारूपं तु कालं पश्यति द्रव्यपर्याय-त्वात्तस्येति।

तथा बावीसहजारीमध्ये

तथा कालस्य वर्तनादिरूपत्वात् पर्यायत्वाद्, द्रव्योपक्रम उपचारात्।

तथा भगवत्यंगे १३ तेरमा शतक मध्ये इहां पुद्गलवर्त्तनानी अपेक्षाये कालने रूपी गवेष्यो छे।

[७] तत्र गतिपरिणतानां जीवपुद्गलानां गत्युपष्टम्भहेतुर्धर्मास्तिकायः स चासङ्ख्येयप्रदेशलोकप्रदेश-परिमाणः।

[७] अर्थः-हवे पंचास्तिकायनुं भिन्न भिन्न लक्षण कहे छे। जे गति परिणामीपणे परिणम्या जीव तथा पुद्गल तेने गतिना ओठंभानो हेतु ते धर्मास्तिकाय द्रव्य कहियें। ते धर्मास्तिकाय असंख्याता प्रदेश परिमाण छे। लोकमां व्यापी छे, लोकमान छे, लोकना एक एक प्रदेशे धर्मास्तिकायनो एक एक प्रदेश ते अनंत संबंधीपणे छे। ए धर्मादि त्रण द्रव्य अचल, अवस्थित, अक्रिय छे।

[८] स्थितिपरिणतानां जीवपुद्गलानां स्थित्युपष्टम्भहेतुरधर्मास्तिकायः,स चासङ्ख्येयप्रदेशलोक-परिमाणः।

[८] अर्थः-स्थितिपणे परिणम्या जे जीव तथा पुद्गल तेने स्थितिना ओठंभानो हेतु ते अधर्मास्तिकाय द्रव्य कहियें। ते पण लोक परिमाण असंख्य प्रदेशी छे।

[९] सर्वद्रव्याणां आधारभूतः अवगाहकस्वभावानां जीवपुद्गलानां अवगाहोपष्टम्भकः आकाशास्तिकायः। स चानन्तप्रदेशो लोकालोकपरिमाणः। यत्र जीवादयो वर्तन्ते स लोकोऽसङ्ख्यप्रदेशप्रमाणः ततः परमलोकः

---

१. समया ति वा आवलिया ति वा जीवा ति या अजीवा ति या पवुच्चति।(स्था.सू.१०६ अ.२ उ.४)

केवलाकाशप्रदेशव्यूहरूपः स चानन्तप्रदेशप्रमाणः।

[९] अर्थः-सर्व द्रव्यने आधारभूत अवगाह स्वभावी जे जीव तथा पुद्गलने अवगाहनानो ओठंभानो हेतु ते आकाशास्तिकाय द्रव्य कहियें। तेना प्रदेश अनंता छे। लोक तथा अलोक रूप छे, तेमां जे क्षेत्रें जीव तथा पुद्गल तथा धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय छे ते क्षेत्रने लोक कहियें, अने केवल एक लोक मात्र आकाशज जिहां छे तेने अलोक कहियें, एटले जे लोक ते जीवादि द्रव्य सहित अने जीवादिक द्रव्य जिहां नथी तेने अलोक कहियें। ते अलोकना प्रदेश अनंता छे, अवगाहक धर्मे सर्व द्रव्य एमां समाय छे।

कारणमेव तदन्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः। एकरसवर्णगन्धो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गी च॥

[१०] पूरणगलनस्वभावः पुद्गलास्तिकायः स च परमाणुरूपः। ते च लोके अनन्ता एकरूपाः परमाणवोऽनन्ता द्व्यणुका अप्यनन्ताः त्र्यणुका अप्यनन्ता एवं सङ्ख्याताणुकास्कन्धा अप्यनन्ता असङ्ख्याताणुकस्कन्धा अप्यनन्ता एकैकस्मिन् आकाशप्रदेशे एवं सर्वलोकेऽपि ज्ञेयम्। एवं चत्वारोऽस्तिकाया अचेतनाः।

[१०] अर्थः- हवे पुद्गल द्रव्यनुं स्वरूप लखियें छैयें। जे **पूरण** कहेता पूराये, वर्णादिगुणे वधे, गली जाय, खरी जाय, वर्णादि गुण घटि जाय एवो जेमां स्वभाव छे ते पुद्गलास्तिकाय कहियें। ते मूल द्रव्य परमाणुरूप छे ते परमाणुनुं लक्षण कहे छे। द्व्यणुकादिक जेटला स्कंध छे ते सर्वनुं **अत्यंत** कहेता मूल कारण परमाणु छे एटले सर्व स्कंधनुं परमाणु कारण छे पण ए परमाणुनुं कारण कोइ नथी, कोइनुं नीपजाव्यो थयो नथी अने कोइने मिलवे पण थयो नथी।सूक्ष्म छे। एक आकाशप्रदेशनी अवगाहना तुल्य एक परमाणु छे तो पण ते एक आकाशप्रदेशमां अनंत परमाणु समाय छे पण परमाणु मध्ये बीजुं द्रव्य कोइ समाय नही माटे परमाणु द्रव्य सूक्ष्म छे अने नित्य छे। जेटलुं परमाणु द्रव्य छे ते खंधादिक अनेकपणे परिणमे, पण परमाणु द्रव्य कोइ विणसी जाय नही एवुं परमाणु द्रव्य छे। ते एक परमाणुमां एक रस होय, एक वर्ण होय, एक गंध होय अने लुखो-चिकणो, टाढो-उन्हो, ए चार स्पर्श मांहेला गमे ते बे फरस होय, एवुं एक परमाणु द्रव्य छे।

इहां कोइ पुछे जे ते परमाणु देखातो नथी तो केवी रीते मनाय? तेने उत्तर-जे घट,पट,शरीरादिक कार्य देखाय छे, ग्रहवाय छे, ते रूपी छे तो एहना संबंधनुं कारण परमाणु सूक्ष्म छे माटे इंद्रियज्ञाने ग्रहेवातो नथी, परंतु रूपी छे केमके अरूपीथी रूपी कार्य थाय नही ते माटेज परमाणु रूपी छे। तेथी ए स्कंध पण रूपी थया छे। अने आकाश प्रदेश अरूपी छे तो तेनो अनंत प्रदेशी स्कंध पण अरूपी छे एम धारवुं। ते परमाणुना द्वणुकादिक स्कंध अनंता छे, तथा छुटा परमाणु ते पण अनंता छे ते वली खंधमां मिले छे तो बीजा खंधमांहेथी छुटा थाय छे एम खंध विखरी जाय ने परमाणु थाय।

तेनी वर्गणा अठ्यावीस प्रकारनी छे। ते अठ्यावीस भेद कम्मपयडीथी जाणवा। एम एकला परमाणु ते पण अनंता, तथा बे मिलीने खंध पाम्या तेवा खंध पण अनंता, एमज संख्याताणुकना खंध पण अनंता, तेमज असंख्यात परमाणु मिलि खंध थाय ते पण अनंता, तथा अनंत परमाणु मल्या खंध थाय तेवा खंध पण अनंता, ते ए जातिना खंध ते एक आकाश प्रदेश अवगाहे। आकाशांश अवगाहे एम असंख्याता प्रदेश अवगाहे छे पण एक वर्गणानी अवगाहना अंगुलने असंख्यातमें भागे अवगाहे, वधति अवगाहे नही, अने अनंती वर्गणा मिले अंगुल, हाथ, गाउ, योजनादिकने माने अवगाहना थाय।

एम ए १ धर्मास्तिकाय २ अधर्मास्तिकाय ३ आकाशास्तिकाय ४ पुद्गलास्तिकाय ए चारे द्रव्य अचेतन छे, अजीव छे, जाणपणा रहित छे।

[११] चेतनालक्षणो जीवः, चेतना च ज्ञानदर्शनोपयोगी अनन्तपर्यायपरिणामिककर्तृत्वभोक्तृत्वादिलक्षणो जीवास्तिकायः।

[११] अर्थ- हवे जीव द्रव्यनुं स्वरूप कहे छे। चेतना जे बोध शक्ति छे लक्षण जेनुं ते जीव कहियें। जे पोताना परिणमन तथा परनी परिणमन सर्वने जाणे ते जीव। तथा सर्व द्रव्य ते अनंता सामान्य स्वभाव अने अनंता विशेष स्वभाववंत छे। तेमां सर्व द्रव्यना अनंता विशेष धर्मनुं अवबोधक ते ज्ञान गुण कहियें, तथा सामान्यविशेष स्वभाववंत वस्तुने विषें जे सामान्य स्वभावनुं अवबोधक ते दर्शन गुण कहियें। ते ज्ञानदर्शनोपयोगी जे अनंतपर्याय तेनो परिणामी कर्ताभोक्तादिक अनंती शक्तिनुं पात्र ते जीव जाणवो। उक्तं च

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा। वीरियं उवओगो अ, एवं जीवस्स लक्खणं॥(न.प.५)

चेतनालक्षण ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्यादिक अनंत गुणनुं पात्र, स्वस्वरूपभोगी, तथा अनवच्छिन्न जे स्वावस्था प्रगटी तेनो भोक्ता, अनंता स्वगुणनी जे स्वस्वकार्यशक्ति तेनो कर्ता, भोक्ता, परभावनो अकर्ता, अभोक्ता, स्वक्षेत्रव्यापी अनंती आत्मसत्तानो ग्राहक, व्यापक, रमण करनारो, तेने जीव जाणवो।

[१२] पञ्चास्तिकायानां परत्वापरत्वे नवपुराणादिलिङ्गव्यक्तवृत्तिवर्तनारूपपर्यायः कालः; अस्य चाप्रदेशिकत्वेन अस्तिकायत्वाभावः। पञ्चास्तिकायान्तर्भूतपर्यायरूपतैवास्य।

एते पञ्चास्तिकायाः। तत्र धर्माधर्मौ लोकप्रमाणासङ्ख्येयप्रदेशिकौ, लोकप्रमाणप्रदेश एव एकजीवः। एते जीवा अप्यनन्ताः। आकाशो हि अनन्तप्रदेशप्रमाणः, पुद्गलपरमाणुः स्वयमेकोऽपि अनेकप्रदेशबन्धहेतुभूतद्रव्य- युक्तत्वाद् अस्तिकायः। कालस्य उपचारेण भिन्नद्रव्यता उक्ता। सा च व्यवहारनयापेक्षया आदित्यगतिपरिच्छेद-परिमाणः कालः समयक्षेत्रे एव। एष व्यवहारकालः समयावलिकादिरूप इति।

[१२] अर्थ- हवे काल द्रव्यनुं लक्षण कहे छे। जे पंचास्तिकायने परत्वे अपरत्वे ए लिंगे तथा पुद्गल खंधने नव पुराणपणे **व्यक्त** कहेता प्रगट छे, **वृत्ति** कहेता प्रवृत्ति तेने वर्तना कहियें ते वर्तनारूप पर्याय तेने काल कहियें। एने प्रदेश नथी ते माटे अस्तिकायपणो नथी। ए काल ते पंचास्तिकायने विषे अंतर्भूतपर्याय परिणमन छे, जाते धर्मास्तिकायादिकनो पर्याय छे एम तत्त्वार्थवृत्तिने विषे कह्यो छे।

तिहां धर्मास्तिकाय एक द्रव्य छे, असंख्यात प्रदेशी छे, लोकाकाशना प्रदेश प्रमाण छे। एम अधर्मास्तिकाय पण एक द्रव्य छे, लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशी छे।

अनेक जीवद्रव्य ते पण लोकप्रमाण अंसख्यात प्रदेशी छे पण स्व अवगाहना प्रमाण व्यापक छे। ते जीव द्रव्य अनंता छे। अकृत सदा छता अखंड द्रव्य छे, सच्चिदानंदमयी छे। पण परपरिणामी थवे पुद्गलग्राहक, पुद्गलभोगी थवव प्रतिसमये नवा कर्म बांधवे संसारी थया छे। तेहिज जे वारें स्वरूपग्राहक, स्वरूपभोगी थाय तेवारे सर्वकर्म रहित थइ परमज्ञानमयी, परमदर्शनमयी, परमानंदमयी, सिद्ध, बुद्ध, अनाहारी, अशरीरी, अयोगी, अलेशी, अनाकारी, एकांतिक, आत्यंतिक, निःप्रयासी, अविनाशी, स्वरूपसुखनो भोगी, शुद्ध, सिद्ध थाय ते माटे अहो! चेतन! ए पर भाव अभोग्य सर्व जगतना जीवनी एठ तेनो भोगववापणो तजी स्वभाव भोगीपणानो रसीयो थइ स्वस्वरूप निर्धार, स्वरूप भासन, स्वरूप रमणी थइ पोताना आनंदने प्रगट करीने निर्मल थावुं।

तथा आकाश द्रव्य ते लोकालोक मिलि एक द्रव्य छे, अनंत प्रदेशी छे। अने पुद्गल द्रव्य ते परमाणु रूप छे केमके परमाणु अनंता छे माटे अनंता द्रव्य छे।

इहां कोइ पुछे जे प्रदेशना संबंध विना परमाणु द्रव्यने अस्तिकाय किम कह्यो छे? तेने उत्तर जे परमाणु तो एक प्रदेशी छे पण अनंता परमाणुथी मिलवाना जे कारण ते आ द्रव्य तेणे युक्त छे, ते योग्यता माटे अस्तिकाय कह्यो छे। तथा काल द्रव्यने उपचारें भिन्न द्रव्यपणो कह्यो छे ते व्यवहारनयनी अपेक्षायें। जे मनुष्य क्षेत्रने विषे सूर्यनी गतिने परज्ञाने एटले समयावलिकादिरूप परिमाणे जे मान तेने व्यवहारथी काल कहियें इति। ए काल मुख्य वृत्तियें तो समयक्षेत्र मध्ये छे अने मनुष्य क्षेत्रथी बाहेर जे जीवो छे तेना आयुष्य पण एज क्षेत्र प्रमाणे सर्वज्ञ देवें कह्या छे। तथा सूर्यनो चार ते पण जीव पुद्गलनुं प्रवर्तन छे कारण के सूर्य ते पण जीव तथा पुद्गल छे। एटले ए काल द्रव्य ते कालपणे भिन्न पिंडपणे ठेर्यो नही; उपचारेंज ठेर्यो एम मानवो।

इहां कोइ कहे जे-एक एक द्रव्यने विषे अनेक अनेक पर्याय छे ते कोइ पर्यायने द्रव्यपणो न कह्यो अने एक वर्तना पर्यायने विषे द्रव्यनो आरोप शा माटे कर्यो? तेने उत्तर-ए वर्तना परिणति ते सर्व पर्यायने सहकारी छे अने सर्व द्रव्यने छे। तेथी मुख्य पर्याय छे माटे एने द्रव्यनो आरोप छे ते पण अनादि चाल छे।

[१३] एते पञ्चास्तिकायाः सामान्यविशेषधर्ममया एव। तत्र सामान्यतः स्वभावलक्षणं द्रव्यव्याप्यगुणपर्याय-पकत्वेन परिणामिलक्षणं स्वभावः, तत्र एकं नित्यं निरवयवं अक्रियं सर्वगतं च सामान्यम्। नित्यानित्य-निरवयवसावयवः सक्रियताहेतुर्देशगतः सर्वगतं(तः) च विशेषपदार्थगुणप्रवृत्तिकारणं विशेषः। न सामान्यं विशेषरहितम्, न विशेषः सामान्यरहितः॥

[१३] अर्थः- हवे ए पंचास्तिकाय ते सामान्यविशेष धर्ममयी छे। ते सामान्यनुं लक्षण विशेषावश्यकें कह्युं छे। तिहां प्रथमथी स्वभावनुं लक्षण कहे छे। जे द्रव्यने विषे व्यापतो होय तथा गुणपर्यायमां पण व्यापकपणे सदा परिणमतो थको पामियें तेने सामान्य स्वभाव कहियें। ते सामान्य स्वभाव जे होय ते एक होय तथा नित्य अविनाशी होय तथा **निरवयव** कहेता जेहने अविभाग रूप अवयव न होय अने **सर्वगत** कहेता सर्वमां व्यापकपणे होय ते सामान्य स्वभाव कहियें। जीवादि द्रव्यने विषे एकपणो ते पिंडपणे छे ते सर्व द्रव्यने विषे छे। सर्व गुण पर्याय पोताने रूपें अनेक छे, पण ते समुदाय पिंडपणुं मूकीने जूदा थायज नही ते माटे ए रीते जे परिणमन होय ते सामान्य स्वभाव कहियें। ते सामान्यना बे भेद छे। अस्तितादिक जे सर्व पदार्थने विषे छे ते महा सामान्य कहियें। एनी श्रुतज्ञाने करी प्रतीत थाय पण प्रत्यक्ष तो अवधिदर्शन केवलदर्शनेज जणाय। परोक्षे न ग्रहवाय। तथा वृक्ष, अंब, निंब, जंबु प्रमुख व्यक्ति अनेक छे पण वृक्षत्व

सर्वमां छे ए अवांतर सामान्य। ते चक्षुदर्शने तथा अचक्षुदर्शने ग्रहवाय अने अस्तित्व-वस्तुत्वादि सामान्य ते अवधिदर्शने तथा केवलदर्शने ग्रहवाय अने विशेष धर्म ते ज्ञान गुणेज ग्रहवाय।

हवे विशेषनुं लक्षण कहियें छीए। कोइक धर्मे नित्य, कोइक धर्मे अनित्य, कोइक रीतें अवयव सहित, कोइक रीतें अवयव रहित, अविभाग पर्यायें सावयव, सामर्थ्य पर्यायें निरवयव, पण सक्रियता हेतु देशगत जे गुण ते गुणांतरमां व्यापता नथी। ते माटे देशगत जे गुण होय ते आखा द्रव्यमां व्यापकज होय तेने सर्वगत कहियें। तो एवा जे धर्म ते सर्व विशेष जाणवा। पदार्थना गुणनी प्रवृत्ति तेना जे कारण ते विशेष स्वभाव। जे कार्य करे ते गुणने पण विशेष धर्मज गणवो। जे सामान्य ते विशेष रहित नथी अने जे विशेष ते सामान्य रहित नथी।

[१४] ते मूलसामान्यस्वभावाः षट्। ते चामी (१) अस्तित्वम्, (२) वस्तुत्वम्, (३) द्रव्यत्वम्, (४) प्रमेयत्वम् (५) सत्त्वम् (६) अगुरुलघुत्वम्। तत्र

(१) नित्यत्वादीनामुत्तरसामान्यानां पारिणामिकत्वादीनां निःशेषस्वभावानाम् आधारभूतधर्मत्वम् अस्तित्वम्।

(२) गुणपर्यायाधारत्वं वस्तुत्वम्।

(३) अर्थक्रियाकारित्वं द्रव्यत्वं, अथवा उत्पादव्ययध्रौव्ययोर्मध्ये उत्पादपर्यायाणां जनकत्वप्रसवस्याविर्भाव-लक्षणव्ययीभूतपर्यायाणां तिरोभाव्यभावरूपायाः शक्तेराधारत्वं द्रव्यत्वम्।

(४) स्वपरव्यवसायिज्ञानं प्रमाणं, प्रमीयते अनेनेति प्रमाणम्, तेन प्रमाणेन प्रमातुं योग्यं प्रमेयम्, ज्ञानेन ज्ञायते तद्योग्यतात्वं प्रमेयत्वम्।

(५) उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्त्वम्।

(६) षड्गुणहानिवृद्धिस्वभावा अगुरुलघुपर्यायास्तदाधारत्वम् अगुरुलघुत्वमेते षट्स्वभावाः सर्वद्रव्येषु परिणमन्ति तेन सामान्यस्वभावाः।

[१४] अर्थः-ते मूल सामान्यना छ भेद छे। ते सर्व द्रव्यमां व्यापकपणे छे। १) अस्तित्व, २) वस्तुत्व, ३) द्रव्यत्व, ४) प्रमेयत्व ५) सत्त्व, ६) अगुरुलघुत्व ए छ मूल स्वभाव छे ते सर्व द्रव्य मध्ये परिणामिकपणे परिणमे छे। ए धर्मने कोइनो सहाय नथी। **तत्र** कहेता तिहां-

१)सर्व द्रव्यने विषे उत्तर सामान्य स्वभाव नित्यत्व-अनित्यत्वादिक तथा विशेष स्वभाव ते परिणामिकत्वादिक तेनो आधारभूतधर्म ते धर्मने तीर्थंकरदेव सामान्य स्वभाव अस्तित्वरूप कहे छे, तथा

२) गुणपर्यायनो आधारवंत पदार्थ तेने वस्तुत्व कहियें, अने

३) अर्थ जे द्रव्य तेनी जे क्रिया, जेम धर्मास्तिकायनी चलनसहाय क्रिया, अधर्मास्तिकायनी थिरसहाय क्रिया, आकाश द्रव्यनी अवगाहरूप क्रिया, जीवनी उपयोग लक्षण क्रिया तथा पुद्गलनी मिलवा विखरवारूप क्रियानो करवापणो एटले जे पर्यायनी प्रवृत्ति ते अर्थक्रिया अने अर्थ क्रियानो आधारी धर्म तेने श्री सर्वज्ञदेवें द्रव्यत्वपणो कह्यो छे।

वली द्रव्यत्वपणानुं लक्षणांतर कहे छे-उत्पादपर्यायनी जे प्रसवशक्ति एटले आविर्भाव लक्षण जे शक्ति तेना व्ययीभूत पर्यायनो तिरोभाव थयो अथवा अभाव थवा रूप शक्तिनो जे आधारभूत धर्म तेने द्रव्यत्व कहियें।

४) **स्व** कहेता पोते आत्मा अने **पर** कहेता पुद्गलादिक धर्मास्तिकायादिक अन्य द्रव्य तेने यथार्थपणे जाणे ते ज्ञान कहीयें। ते ज्ञान पांच भेदें छे। ते ज्ञानना उपयोगमां आवे एवी जे शक्ति तेने प्रमेयत्वपणो कहिये। ते प्रमेयपणो सर्व द्रव्यनुं मूल धर्म छे। प्रमाणमां वसाव्यो जे वस्तु तेने प्रमेयपणो कहियें। ते सर्व गुण पर्याय प्रमेय छे अने आत्मानो ज्ञानगुण तेमां प्रमाणपणो तथा प्रमेयपणो ए बे धर्म छे। पोतानो प्रमाणपणो ते पोतेज करे छे, दर्शनगुणनो प्रमाण ज्ञानगुण करे छे, केमके दर्शनगुण ते विशेष छे। जे सावयव होय ते विशेषज होय। अने जे विशेष होय ते ज्ञानथीज जणाय। दर्शनगुण ते सामान्य धर्मनो ग्राहक छे, ते पण प्रमाण कहेवाय। पण प्रमाणना भेद कह्या छे तिहां ज्ञानज ग्रह्युं छे। तेनुं कारण जे दर्शनोपयोग ते व्यक्त पडतो नथी ते माटे प्रमाण मध्ये गवेष्यो नथी। ते प्रमाणना मूल बे भेद छे-एक प्रत्यक्ष अने बीजो परोक्ष।

***स्पष्टं प्रत्यक्षं परोक्षमन्यद् इति* स्याद्वादरत्नाकरवाक्यात्।**

५) **उत्पाद** कहेता उपजवो **व्यय** कहेता विणसवो **ध्रुव** कहेता नित्यपणो वस्तुना एक गुणमां एक समये ए त्रणे परिणमनें सदा

परिणमे छे एवो जे परिणाम ते सत्पणो कहियें अने ते सत्पणानो भाव ते सत्त्वपणो कहियें।

६) तथा छठ्ठो १ अनंतभाग हानि, २ असंख्यातभाग हानि, ३ संख्यातभाग हानि ४ संख्यातगुण हानि, ५ असंख्यातगुण हानि, ६ अनंतगुण हानि, ए छ प्रकारनी हानि, तथा १ अनंतभाग वृद्धि, २ असंख्यातभाग वृद्धि, ३ संख्यातभाग वृद्धि, ४ संख्यातगुण वृद्धि, ५ असंख्यातगुण वृद्धि, ६ अनंतगुण वृद्धि ए छ वृद्धि। एम छ प्रकारनी हानि तथा छ प्रकारनी वृद्धि ते अगुरुलघु पर्यायनी सर्व द्रव्यने सर्व प्रदेशे परिणमे छे ते कोइक प्रदेशें कोइ समये अनंतभाग हानिपणे परिणमे छे अने कोइक समये कोइक प्रदेशें अनंतभाग वृद्धिपणे परिणमे छे। एवं बार प्रकारें परिणमे छे ते अगुरुलघु पर्यायनी परिणमन शक्ति ते अगुरुलघुत्व=अगुरुलघुनो भाव जाणवो। तत्त्वार्थ टीकाने विषे पांचमा अध्यायें अलोकाकाशने अधिकारें कह्यो छे। एम छ स्वभाव सर्व द्रव्यने विषे परिणमे छे। ए छए द्रव्यना मूल स्वभाव छे। द्रव्यनो भिन्नपणो प्रदेशनो भिन्नपणो ते अगुरुलघुने भेदपणे थाय छे ते माटे ए छ मूल सामान्य स्वभाव छे। ए द्रव्यास्तिक धर्म छे अने एनुं परिणमन ते पर्यायास्तिक धर्म छे।

केटलाक वादी एम कहे छे जे पर्यायनो पिंड ते द्रव्य छे, पण द्रव्यपणो भिन्न नथी। जेम धूरी, पइडा, कागमो, डागली, जूंहरी प्रमुख समुदायने गाडो कहियें पण सर्व अवयवथी भिन्न गाडापणो कोइ देखातो नथी; तेमज ज्ञानादिक गुणथी भिन्नपणे कोइ आत्मा देखातो नथी। तेने कहियें जे ज्ञानादिक गुणने विषे छति एक पिंड समुदायता सदा अवस्थितपणो अने द्रव्यथी मिली न जाय तथा स्वक्रियावंतपणो इत्यादिक सामान्य धर्म छे। छति अस्तित्व अर्थ क्रियावंत ते द्रव्यपणो एकपिंडपणो ते वस्तुत्व इत्यादिक ते सर्वद्रव्यपणो छे। एटले द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिक ए बेहु मलीने द्रव्यपणो छे। उक्तं च सम्मतौ-

दव्वा पज्जवरहिआ न पज्जवा दव्वओ वि उप्पत्ति।(दव्वं पज्जवरविउयं दव्वविउत्ता य पज्जवा णत्थि)(१-१२)

ए मूल सामान्य स्वभावना छ भेद कह्या।

[१५] तत्र अस्तित्वमुत्तरसामान्यस्वभावगम्यं ते चोत्तरसामान्यस्वभावा अनन्ता अपि वक्तव्येन त्रयोदश। (१) अस्तिस्वभावः (२) नास्तिस्वभावः (३) नित्यस्वभावः (४) अनित्यस्वभावः (५) एकस्वभावः (६) अनेकस्वभावः (७) भेदस्वभावः (८) अभेदस्वभावः (९) भव्यस्वभावः (१०) अभव्यस्वभावः (११) वक्तव्यस्वभावः (१२) अवक्तव्यस्वभावः (१३) परमस्वभावः इत्येवरूपं वस्तुसामान्यान्तमयम्[१]।

[१५] अर्थः- तथा वली अस्तित्व उत्तर सामान्यस्वभाव कहे छे ते उत्तर सामान्यस्वभाव वस्तु मध्ये अनंता छे। पण तेर सामान्य स्वभाव अनेकांतजयपताकादि ग्रंथे वखाण्या छे, तेमांथी लेशमात्र लखिए छैयें। तेनां नाम उपरना मूल पाठमां सुलभ छे माटे लिख्यां नथी। तथा एना व्याख्यानथी पण जणाशे। ए तेर सामान्य स्वभावें परिणमती वस्तु होय।

[१६] (१) स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन व्याप्यव्यापकादिसम्बन्धिस्थितानां स्वपरिणामात् परिणामान्तरगमनहेतुः वस्तुनः सद्रूपतापरिणतिः अस्तिस्वभावः।

[१७] अर्थ- तेमां १) प्रथम अस्तिस्वभावनुं लक्षण कहे छे। **स्व** कहेता पोताना द्रव्यादिक चार धर्म तेनो जेमां व्यापकपणो छे। द्रव्य ते गुणपर्यायना समुदायनो आधारपणो, क्षेत्र ते प्रदेशरूप सर्व गुणपर्यायनो अवस्थाने राखवापणो, जे जेने राखे ते तेनुं क्षेत्र जाणवुं, काल ते उत्पादव्ययध्रुवपणे वर्तना, भाव ते सर्व गुणपर्यायनो कार्यधर्म। तिहां जीव द्रव्यनुं १ स्वद्रव्यप्रदेश गुणनो समुदाय द्रव्य छे, ते गुणपर्यायनो जनकपणो ते स्वद्रव्य, २ जीवना असंख्याता प्रदेश ते स्वपर्यायनो स्वक्षेत्रपर्याय ते जाणवा एटले देखवादिक जे गुणनो पर्याय तेनुं जे क्षेत्र ते स्वक्षेत्र, ३ पर्यायमध्ये कारण कार्यादिकनो जे उत्पादव्यय ते स्वकाल तथा, ४ अतीतअनागत वर्तमाननु परिणमन ते स्वभाव ते कार्यादिक धर्म जेम ज्ञानगुणनो पर्याय जाणंगपणो, वेत्तापणो, परिच्छेदकपणो, विवेचनपणो, इत्यादिक स्वभाव। एम स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव, जे परिणामिकपणे परिणमता तेनी अस्तिता कहेवी। ए सर्वनी छति छे ते अस्तिस्वभाव छे। ए अस्तिस्वभावें द्रव्य छे, ते पोतानो मूल धर्म मूकी अन्य धर्मपणे परिणमतो नथी, परिणामांतरे अगमन छे। ए अस्ति स्वभाव ते सर्व द्रव्यमां पोताना गुणपर्यायनो जाणवो। जे अस्ति ते सद्रूपता छतांरूपपणानी परिणति लेवी। सर्व द्रव्यमां पोताने धर्मेज परिणमे पण जे जीव द्रव्य ते अजीव द्रव्यपणे न परिणमे तथा एक जीव ते अन्य जीवपणे न परिणमे, वली एक गुण ते अन्य गुणपणे न परिणमे, ज्ञानगुणने विषे दर्शनादिक गुणनी नास्तिता छे अने ज्ञानना धर्मनी अस्तिता छे। तथा एकगुणना पर्याय अनंता छे ते सर्व पर्याय धर्मे सरिखा छे पण एक पर्यायना धर्म बीजा पर्यायमां नहि अने बीजा पर्यायना धर्म पहेला पर्यायमां नहिं। माटे सर्व पोताने धर्मेज अस्ति छे। ए रीते अस्ति नास्तिनुं ज्ञान सर्वत्र करवुं। ए द्रव्यने विषे प्रथम अस्तिस्वभाव कह्यो।

---

१. द्रष्टव्य—स्याद्वादपुष्पकलिका परिच्छेद-१० (गाथा ५-६)

[१७] (२) अन्यजातीयद्रव्यादीनां स्वीयद्रव्यादिचतुष्टयतया व्यवस्थितानां विवक्षिते परद्रव्यादिके सर्वदैवाभावाविच्छिन्नानामन्यधर्माणां व्यावृत्तिरूपो भावो नास्तिस्वभावः। यथा जीवे स्वीया ज्ञानदर्शनादयो भावा अस्तित्वे, परद्रव्यस्थिता अचेतनादयो भावा नास्तित्वे, सा च नास्तिता द्रव्ये अस्तित्वेन वर्तते। घटे घटधर्माणां अस्तित्वं पटादिसर्वपरद्रव्याणां नास्तित्वम्, एवं सर्वत्र।

[१७] अर्थ- हवे बीजा नास्तिस्वभावनुं स्वरूप लखियें छैयें। **अन्य** कहेता बीजा जे द्रव्यादिक जे द्रव्यगुणपर्याय तेना पोताना जे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव ते तेहिज द्रव्यमां सदा अवष्टंभपणे परिणमे छे, एटले विवक्षित द्रव्यादिकथी पर जे बीजा द्रव्यादिकना जे धर्म ते तेमां सदा अभावपणे निरंतर अविच्छेद छे, ते माटे परद्रव्यादिकना धर्मनी व्यावृत्तितापणानो जे परधर्म ते विवक्षित द्रव्यमां नथी। एवा द्रव्यमां जे भाव छे ते नास्तिस्वभाव जाणवो। जेम जीवने विषे ज्ञानदर्शनादिक पोताना जे भाव ते तो अस्तिपणे छे अने परद्रव्यमां रह्या जे अचेतनादिक भाव तेनी नास्तिता छे; एटले ते धर्म जीव द्रव्यमां नथी, माटे परधर्मनी नास्तिता छे, पण ते नास्तिता ते द्रव्य मध्ये अस्तिपणे रही छे। जेम घटना धर्म घटमां छे तेथी घटमां घट धर्मनो अस्तित्वपणो छे पण पटादि सर्व परद्रव्योनो नास्तित्वपणो ते घटने विषे रह्यो छे। तथा जीवमध्ये जो ज्ञानादिक गुण ते अस्तित्वपणें छे, पण पुद्गलना वर्णादिक जीव मध्ये नथी माटे वर्णादिकनी नास्तिता जीव मध्ये रही छे। श्रीभगवतीसूत्रे कह्युं छे

हे गौतम ***अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमई नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ।***

तथा ठाणांग सूत्रे-

सिय अत्थि, सिय नत्थि, सिय अत्थिनत्थि, सिय अवत्तव्वं। ए चोभंगी कही छे।

अने श्रीविशेषावश्यक मध्ये कह्युं छे के-जे वस्तुनो अस्ति-नास्तिपणो जाणे ते सम्यग्ज्ञानी अने जे न जाणे अथवा अयथार्थपणे जाणे ते मिथ्यात्वी। उक्तं च-

सदसदविसेसणाओ, भवहेउजहत्थिओवलंभाओ।

नाणफलाभावाओ मिच्छादिट्ठिस्स अन्नाणं॥(वि.आ.भा. ११५)

ए गाथानी टीका मध्ये-***स्याद्वादोपलक्षितं वस्तु। स्याद्वादश्च सप्तभङ्गीपरिणामः, एकैकस्मिन् द्रव्ये गुणे पर्याये सप्त सप्त भङ्गा भवन्त्येव, अतोऽनन्तपर्यायपरिणते वस्तुनि अनन्ताः सप्तभङ्ग्यो भवन्ति इति।***

रत्नाकरावतारिकायाम्-ते द्रव्यने विषे, गुणने विषे, पर्यायने विषे स्वरूपें सातभंगा होय, जे ए सात भंगानो परिणाम ते स्याद्वादपणो कहियें।

[१८] तथाहि- स्वपर्यायैः परपर्यायैरुभयपर्यायैः सद्भावेनासद्भावेनोभयेन वार्पितो विशेषतः कुम्भाकुम्भः कुम्भाकुम्भो वा अवक्तव्योभयरूपादिभेदो भवति सप्तभङ्गी प्रतिपाद्यते इत्यर्थः। ओष्ठग्रीवाकपालकुक्षिबुध्नादिभिः स्वपर्यायैः सद्भावेनार्पितविशेषतः कुम्भः कुम्भो भण्यते सन् घट इति प्रथमभङ्गो भवति । एवं जीवः स्वपर्यायैर्ज्ञानादिभिरर्पितः सन् जीवः।

[१८] अर्थः-ए सप्तभंगी परनी अपेक्षायें नथी ते द्रव्यादिक मध्येज छे। यथा स्वधर्मे परिणमवुं ते अस्ति धर्म छे अने परद्रव्यना धर्मे न परिणवुं ए नास्तिनुं फल छे। ते माटे ए सप्तभंगी ते वस्तुधर्मे छे, ते विशेषावश्यकथी सप्तभंगी लखियें छैयें। एक विवक्षित वस्तु **स्व** कहेता पोताने पर्यायें **सद्भाव** कहेता छतापणे छे अने परपर्यायें जे अन्य द्रव्यने परिणमे तेनो **असद्भाव** कहेता अछतापणो परिणमे छे। तथा जे छता अथवा अछता पर्याय तेनो छतापणो छे, कोइकपणे अछतापणो छे, माटे छता-अछतापणो पण तेज काले छे, केमके वस्तु मध्ये अनेक धर्म छे, ते सर्व केवलीने एक समयें समकालें भासे छे। ते पण वचने भंगांतरेज कही शके, अने छद्मस्थने श्रद्धामां तो सर्व धर्म समकाले सद्दहे छे पण छद्मस्थनो उपयोग असंख्यात समयी छे, अनुक्रमे छे, पूर्वापरसापेक्ष छे, तेथी सप्तभंगे भासन छे। जे वस्तुमां समकालें छे, समकीतिनी श्रद्धामां समकाले छे अने केवलीना भासनमां समकाले छे, ते श्रुतज्ञानीना भासनमां क्रमपूर्वक छे, केमके भाषा सर्व क्रमे कहेवाय छे तेथी असत्य थाय। तेने जो स्यात्पदें प्ररुपियें जाणियें तो सत्य थाय। माटे स्यात्पूर्वक सप्तभंगी कहियें। द्रव्यगुणपर्याय स्वभाव सर्व मध्ये छे ते रीतें सद्दहवी।

ते दृष्टांते करी कहे छे। ओष्ठ कहेता होठ, गाबड, कांठो, कपाल, तलो, कुक्षि पेटो, बुध्न, पोहोलो इत्यादि स्वपर्यायें करी घट छतो छे, ते घटने स्वपर्याये छतापणें अर्पित करियें तेवारें ते कुंभ कुंभ धर्म सन् कहेता छतो छे, पण अछतादिक धर्मनी छति सापेक्ष

राखवाने स्यात्पूर्वक कहेवो एटले स्याद् अस्ति घटः ए प्रथम भंगो जाणवो, तथा जीवादि द्रव्यने विषे जीवना ज्ञानादि गुण तेने पर्यायें जीव द्रव्यने नित्यादि स्वभावे करीने स्याद् अस्तिजीवः एम सर्व द्रव्यने कहेवो। यद्यपि जीव तथा अजीवनो नित्यपणो सरिखो भासे पण एनो तेमां नहीं अने तेनो एमां नही। जो के जीव सर्व एकजातीय द्रव्य छे पण एक जीवमां जे ज्ञानादि गुण छे ते बीजा जीवमां नथी। माटे सर्व द्रव्य स्वधर्मेज अस्ति छे, अने परधर्मे नास्ति छे। एम स्यात् अस्तिजीव ए प्रथम भंग जाणवो।

[१९] तथा पटादिगतैस्त्वक्त्राणादिभिः परपर्यायैरसद्भावेनार्पितः अविशेषितोऽकुम्भो भवति सर्वस्यापि घटस्य परपर्यायैरसत्त्वविवक्षायामसन्घटः। एवं जीवोऽपि मूर्त्तत्वादिपर्यायैरसद् जीव इति द्वितीयो भङ्गः।

[१९] अर्थः-पटने विषे रह्या जे पर्याय ते त्वक् जे शरीरनी चामडीने ढांके, लांबो पथराय इत्यादि ते घटना पर्याय नथी, परपर्याय छे, पटने विषे रह्या छे, घटने विषे ए पर्यायनी नास्ति छे। तेथी ए पर्यायनो असद्भाव छे, ते माटे ए घटना पर्याय नथी। एम सर्व पर्यायें घट नथी तेवारें परपर्यायना अछतापणानी विवक्षाये अछतो घट छे। एम जीव पण मूर्तिपणादिक अचेतनादि पर्यायनो जीव मध्ये असत्=अछतापणो तेथी जीव परपर्याये नास्ति छे। माटे स्याद् नास्ति ए बीजो भांगो जाणवो, केमके पर पर्यायनी नास्तितानुं परिणमन द्रव्यने विषे छे।

[२०] तथा सर्वो घटः स्वपरोभयपर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्यां सत्त्वासत्त्वाभ्यामर्पितो युगपद्वक्तुमिष्टोऽवक्तव्यो भवति स्वपरपर्यायसत्त्वासत्त्वाभ्यां एकैकनाप्यसाङ्केतिकेन शब्देन सर्वस्यापि तस्य वक्तुमशक्यत्वादिति, एवं जीवस्यापि सत्त्वासत्त्वाभ्यामेकसमयेन वक्तुमशक्यत्वात् स्यादवक्तव्यो जीव इति तृतीयो भङ्गः । एते त्रयः सकलादेशाः सकलजीवादिकवस्तुग्रहणपरत्वात्।

[२०] अर्थ-सर्व घटादि वस्तु छे ते स्वपर्याय=जे पोताना सद्भाव पर्याय तेणे करी छतापणे कहेवाय तथा परने पर्यायें अछतापणे कहेवाय, तेवारे स्वपर्यायनो छतापणो परपर्यायनो अछतापणो ए बे धर्म समकालें छे, पण एक समये कहेवाय नही, ते माटे ए घटादि द्रव्य ते स्वद्रव्यमां स्वपर्यायनो सत्त्वपणो, परपर्यायनो असत्त्वपणो, ते कोइ पण एक सांकेतिक शब्दें करी कहेवाने समर्थ नही, माटे सत्त्व=अस्तिपणो असत्त्व=नास्तिपणो ते एक समये कहेवामां असमर्थ छे तेथी वस्तुविभावना बे धर्म ते एक समयें छता छे तेनो ज्ञान करवा माटे स्यात् अवक्तव्य ए वचन बोल्या। केमके कोइकने एवो बोध थाय जे सर्वथी वचने अगोचरज छे। ते माटे स्यात् पद दीधो। स्यात् कहेता कथंचित्पणे=कोइक रीतें एक समये न कहेवाय माटे स्यात् अवक्तव्य ए जीव छे। एम सर्व द्रव्य जाणवा। ए त्रीजो भांगो थयो। ए त्रण भंगा सकलादेशी छे। सर्व वस्तुने संपूर्णपणे ग्रहेवा रूप छे। जीवादिक जे वस्तु तेने संपूर्ण ग्रहेवावंत छे।

[२१] अथ चत्वारो विकलादेशाः। तत्र एकस्मिन् देशे स्वपर्यायसत्त्वेन अन्यत्र तु परपर्यायसत्त्वेन संश्च असंश्च भवति घटोऽघटश्च। एवं जीवोऽपि स्वपर्यायैः सन् परपर्यायैरसन् इति चतुर्थो भङ्गः।

[२१] अर्थः- हवे चार भांगा विकलादेशी कहे छे। जे वस्तुनुं स्वरूप कहेवो तेना एक देशनेज ग्रहे ए स्वरूप छे। तिहां एक देशने विषे स्वपर्यायनो सत्त्वपणो=अस्तिपणो गवेषे छे ते वारें वस्तु सदसत्पणे छे एटले ए घट छे अने ए घट नथी। एम जीव पण स्वपर्यायें सत् परपर्यायें असत्; ते माटे एक समये अस्तिनास्तिरूप छे, पण कहेवामां असंख्यात समये छे, ते माटे स्यात्पूर्वक छे एम स्यात् अस्तिनास्ति ए चोथो भंगो जाणवो।

[२२] तथा एकस्मिन् देशे स्वपर्यायैः सद्भावेन विवक्षितोऽन्यत्र तु देशे स्वपरोभयपर्यायैः सत्त्वासत्त्वाभ्यां युगपदसङ्केतिकेन शब्देन वक्तुं विवक्षितः सन् अवक्तव्यरूपः पञ्चमो भङ्गो भवति। एवं जीवोऽपि चेतनत्वादिपर्यायैः सन् शेषैरवक्तव्य इति।

[२२] अर्थ- तथा एक देशें पोताने पर्यायें स्वद्रव्यादिके छतापणे गवेषीयें अने अन्य कहेता बीजा देशोने विषे स्वपर ए बे पर्यायें सत्त्व=छतापणें तथा असत्त्व=अछतापणें समकालें असंकेतपणे नामने अणकहे गवेषीयें तेवारे **सत्** कहेता अस्ति अवक्तव्यरूप भांगो उपजे। अने ए भांगा छतां बीजा छ भांगा छे, तेनी गवेषणा माटे स्यात् पद जोडीयें एटले स्यात् अस्ति अवक्तव्य ए पांचमो भांगो जाणवो। जेम जीवने विषे चेतनपणो सुखवीर्यगुणें अस्ति छे अने नास्तिपणे अस्तिनास्ति समकालपणे वचनगोचर न आवे ते स्याद् अस्ति अवक्तव्य।

[२३] तथा एकदेशे परपर्यायैरसद्भावेनार्पितो विशेषतरोऽन्यैस्तु स्वपरपर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्यां सद्भावासद्भावाभ्यां युगपदसङ्केतिकेन शब्देन वक्तुं विवक्षितकुम्भोऽसन्नवक्तव्यश्च भवति, अकुम्भोऽवक्तव्यश्च भवतीत्यर्थः, देशे तस्याकुम्भत्वाद् देशे अवक्तव्यत्वादिति षष्ठो भङ्गः।

[२३] अर्थ- तथा एकदेशें परपर्याय जे नास्तिपर्याय तेने **असद्भाव** कहेता अछतापणे अर्पित करीने मुख्यपणे गवेषीयें तेवार पछी **अन्य** कहेता बीजा स्वपर्यायें अस्तिपणो तथा परपर्याय जे नास्तिपर्याय ए बे **सत्त्व** कहेता छतापणे **असत्त्व** कहेता अछतापणे युगपत् समकाले कहियें। इहां संकेतिक शब्दने अभावे कहेवामां न आवे, अने ते कह्या विना श्रोताने ज्ञान केम थाय? ते माटे स्यात् पद ते अन्य भांगानी सापेक्षता माटे तथा सर्व धर्मनी समकालता जणाववा माटे स्याद् नास्ति अवक्तव्य ए छठ्ठो भांगो जाणवो। एटले जीव पोताने स्वगुणे तो छतापणो सर्वपर्याय समकालनो अव्यक्तव्यपणो ए स्याद् नास्ति अवक्तव्य छठ्ठो भांगो थयो।

[२४] तथा एकदेशे स्वपर्यायैः सद्भावेनार्पित एकस्मिन् देशे परपर्यायैरसद्भावेनानर्पितोऽन्यस्मिंस्तु देशे स्वपरोभयपर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्यां युगपदेकेन शब्देन वक्तुं विवक्षितः सन् असन् अवक्तव्यश्च भवति इति सप्तमो भङ्गः। एतेन एकस्मिन् वस्तुन्यर्पितानर्पितेन सप्तभङ्गी उक्ता।

[२४] अर्थ- तथा एकदेशे स्वपर्यायने छतापणे अर्पित करियें अने एकदेश परपर्यायने अछतापणे गवेषियें अने ते सर्व पर्याय समकाले भेला रह्या छे पण वचने कहेवाय नहि, एटले अस्तिपणो पण छे अने नास्तिपणो पण छे, ए सर्व धर्म समकालें छे, पण वचने गोचर थाय नही, ए अपेक्षायें स्याद् अस्ति नास्ति अवक्तव्य ए रीते वस्तुनो परिणमन छे। ए सातमो भांगो जाणवो। ए सप्तभंगी अर्पित अनर्पितपणे कही। ते अर्पित एक धर्मज होय एम एक धर्मने विषे सप्तभंगी कही।

[२५] तत्र जीवः स्वधर्मे ज्ञानादिभिरस्तित्वेन वर्तमानः, तेन स्याद् अस्तिरूपः प्रथमभङ्गः अत्र स्वधर्मा अस्तिपदगृहीताः शेषा नास्तित्वादयो धर्मा अवक्तव्यधर्माश्च स्यात्पदेन सङ्गृहीताः।

[२५] अर्थ- हवे स्वरूपपणे सप्तभंगी कहे छे। जे एक द्रव्यने विषे अथवा एक गुणने विषे, एक पर्यायने विषे, एक स्वभावने विषे सात सात भांगा सदा परिणमे छे, ते रीतें सप्तभंगी कहे छे। स्याद्वादरत्नाकरावतारिका मध्ये कह्यो छे-

***एकस्मिन् जीवादौ अनन्तधर्मापेक्षया सप्तभङ्गीनामानन्त्यम्* ए वचनथी जाणी लेजो।**

अत्थि जीवे इत्यादि गाथाथी जाणजो, ए सूयगडांग सूत्रें छे।

हवे पहेलो भांगो लखियें छैयें। तिहां जीव द्रव्य पोताने १ स्वद्रव्य=पिंडगुणपर्यायसमुदाय आधारपणो, २ स्वक्षेत्र=असंख्यप्रदेश ज्ञानादि गुणनुं अवस्थान, अगुरुलघुता हानिवृद्धिनो मान, ३ स्वकाल ते गुणनी वर्तना उत्पादव्ययना परिणमननो भिन्न स्वभाव तथा ४ अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत दान, अनंत लाभ, अनंत भोग, अनंत उपभोग, अनंत वीर्य, अनंत अव्याबाध, अरूपी, अशरीरी, परम क्षमा, परम मार्दव, परम आर्जव, स्वरूपभोगी प्रमुख स्वस्वभाव। ए अनंतज्ञेय ज्ञायकपणे जीव द्रव्य छतो छे। एम जीवनो ज्ञानगुण स्वधर्म सकल ज्ञेयज्ञायकपणो स्वशक्तिधर्मे अनंत अविभागें एक एक पर्याय अविभागमां सर्व अभिलाप्य अनभिलाप्य स्वभावनो जाणगपणो छे।

इहां विस्तारे लखियें छैयें। तिहां मतिज्ञानना पर्याय जूदा छे। श्रुतज्ञानना अविभाग जूदा छे।[अवधिज्ञानना अविभाग जूदा छे।] मनःपर्यायज्ञानना अविभाग जूदा छे। केवलज्ञानना पर्याय जूदा छे। श्रीविशेषावश्यके गणधरवादने छेडे कह्यो छे। जो आवरवा योग्य वस्तु भिन्न छे तो आवरण जूदा छे। तिहां क्षयोपशमने भेदें जाणे छे ते परोक्ष अथवा देशथी जाणे छे। सर्वथा आवरण गये थके प्रत्यक्ष जाणे पण केवलज्ञान सर्वभावनो संपूर्ण प्रत्यक्षदायक ते संपूर्ण प्रगट्यो तेवारें बीजा ज्ञाननी प्रवृत्ति छे पण भिन्न पडती नथी, माटे ते केवलज्ञाननो जाणपणोज कहेवाय छे।

तथा कोइक ज्ञानगुणना अविभाग सर्व एक जातिना कहे छे, ते अविभागमध्ये वर्णादिक जाणवानी शक्ति अनेक प्रकारनी छे, तेमांज आवरण एटले जे शक्ति प्रगटे ते शक्तिनुं मतिज्ञानादि भिन्न नाम छे, अने सर्व आवरण गयाथी एक केवलज्ञान रह्युं छे। छद्मस्थ ज्ञाननो भास छे। ए पण व्याख्यान छे। एवो ज्ञानगुण पोताना स्वपर्याय ज्ञायक परिच्छेदक वेत्तृत्वादिकें अस्ति छे। एम सर्व गुणमां स्वधर्मनी अस्तिता कहेवी। तेमज जे अविभागरूप पर्याय छे जेना समूहनी एक प्रवृत्तिने गुण कहियें छैयें ते पण स्वकार्य कारणधर्मे अस्ति छे। एम छ द्रव्यनुं स्वरूप स्वरूपें अस्ति छे अने अन्य छ भांगा पण छे एवो सापेक्षता माटे स्यात् पद देइने बोलवो ते स्याद् अस्ति ए प्रथम भांगापणो (कथ्यो) एटले गवेष्यो। जे अस्तिधर्म ते पण नास्तिपणा सहित छे एटले अस्ति कहेतां थकां नास्ति प्रमुख छ भांगानी छति छे, तिहां शब्द सहित उपयोग थयो तेथी सत्यपणो थयो।

[२६] तथा स्वजात्यन्यद्रव्याणां तद्धर्माणां च विजातिपरद्रव्याणां तद्धर्माणां च जीवे सर्वथैव अभावान्नास्तित्वम्, तेन स्यान्नास्तिरूपो द्वितीयो भङ्गोऽत्र परधर्माणां नास्तित्वं नास्तिपदेन गृहीतं शेषा अस्तित्वादयः स्यात् पदेन गृहीता इति।

[२६] अर्थ-हवे बीजो भांगो कहे छे। जे एक जीवनुं स्वरूप उपयोगमां आण्युं छे ते जीवने विषे, अन्य जे सिद्ध संसारी जीव छे ते सर्वना गुणपर्याय अस्तित्वादि प्रमुख सर्व धर्मनी नास्ति छे, अने अजीव द्रव्य तथा तेना जडतादिक सर्व धर्मनी नास्ति छे। जेम अग्निमां दाहकपणो छे तेनी पासे बीजो अग्निनो कणियो छे, ते पण दाहक छे; पण ते दाहकपणो भिन्न छे, एटले ते कणीयानो दाहकपणो ते अग्निमां नथी अने ते अग्निनो दाहकपणो ते कणीयामां नथी। तेमज एक जीवमां ज्ञानादिक गुण छे ते बीजामां नथी अने बीजा जीवमां जे ज्ञानादिक गुण छे ते तेमां नथी। बाकी सरिखा छे। ते माटे जाणवादिक कार्य सरिखा करे तो पण सर्वमां पोतपोताना गुण छे, पण कोइ द्रव्यना गुण कोइ द्रव्यमां आवता नथी। ते माटे स्वजाति अन्यद्रव्यपणो, अन्यगुणपणो तथा अन्यधर्मपणो ते सर्वनी नास्ति छे। एमज गुणमां पण सर्व अन्य द्रव्यादिकनी नास्ति छे, तथा पर्यायना अविभागमां पण स्वजाति अविभागकार्यता कारणतानी नास्ति छे। ते माटे परद्रव्यपणो, परक्षेत्रपणो, परकालपणो, परभावपणो एनी नास्ति छे। एवो नास्तिपणो पण तेमांज रह्यो छे, ते माटे स्यात् नास्तिपणो ए भांगो पण तेमांज छे। एम एकज मात्र नास्तिपणो कह्ये थके अस्तिपणो तथा एक कालपणो पण छे तथा जीवमां जडता गुणनी नास्ति छे, एटले जडतानी नास्ति ते जीवमांज रही छे। इत्यादिक अनंता धर्मनी सापेक्षता माटे स्यात् पदें बोलतां सर्व धर्मनो भासन थयो एटले सत्यता थाय ते माटे स्याद् नास्ति ए बीजो भांगो कह्यो।

[२७] केषाञ्चिद्धर्माणां वचनगोचरत्वेन तेन स्यादवक्तव्य इति तृतीयो भङ्गः। अवक्तव्यधर्मसापेक्षार्थं स्यात्पद-ग्रहणम्।

[२७] अर्थ- हवे त्रीजो भांगो कहे छे। जे वस्तु होय तेमां केटलाक धर्म एवा छे जे वचने करी कहेवाता नथी ते अवक्तव्य छे। ते केवलीने ज्ञानमां जणाय पण वचने करी ते पण कही शके नही। ते माटे तेवा धर्मनी अपेक्षायें वस्तु अवक्तव्य छे, एटले अवक्तव्य कहेतां थकां वक्तव्यनी ना थइ, पण केटलाक धर्म वस्तु मध्ये वक्तव्य छे, ते जणाववा माटे स्यात्पद ग्रहण करीने स्याद् अवक्तव्य ए त्रीजो भांगो कह्यो।

[२८] अत्र अस्तिकथनेऽसङ्खेया नास्तिकथनेऽप्यसङ्खेयाः समया वस्तुनि, एकसमये अस्तिनास्तिस्वभावौ समकं वर्तमानौ तेन स्यादस्तिनास्तिरूपश्चतुर्थो भङ्गः।

[२८] अर्थ- हवे चोथो भांगो कहे छे, जे अस्ति एवो शब्द उच्चार करतां पण असंख्यात समय थाय तथा नास्ति ए शब्द उच्चार करतां पण असंख्यात समय थाय अने वस्तुमां तो अस्तिधर्म नास्तिधर्म ए बेहु एक समयमां छे, ते बेहु समकालें जणाववा माटे, अने जे अस्ति ते नास्ति न थाय तथा जे नास्ति ते अस्ति न थाय ते सापेक्षता माटे स्यात् अस्ति नास्ति ए चोथो भांगो जाणवो।

[२९] तत्र अस्तिनास्तिभावाः सर्वे वक्तव्या एव न अवक्तव्या इति शङ्कानिवारणाय स्यादस्ति अवक्तव्य इति पञ्चमो भङ्गः स्यान्नास्ति अवक्तव्य इति षष्ठोऽत्र वक्तव्या भावाः स्यात्पदे गृहीता अत्रास्तिभावा वक्तव्यास्तथा अवक्तव्यास्तथा नास्तिभावा वक्तव्या अवक्तव्या एकस्मिन् वस्तुनि, गुणे, पर्याये, एकसमये परिणममाना इति ज्ञापनार्थं स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य इति सप्तमो भङ्गः॥ अत्र वक्तव्या भावास्ते स्यात्पदे सङ्गृहीता इति अस्तित्वेनास्तिधर्मा नास्तित्वेन नास्तिधर्मा युगपदुभयस्वभात्वेन वक्तुमशक्यत्वादवक्तव्यः स्यात्पदे च अस्त्यादिनामेव नित्यानित्या-द्यनेकान्तसङ्ग्राहकम्(ग्रहः)।

[२९] अर्थ- हवे पांचमो तथा छठ्ठो भांगो कहे छे। तिहां स्याद् अवक्तव्य एम कहेवाथी द्रव्य ते मूळधर्मे एकलो अवक्तव्य थयो ते संदेह निवारवा कह्यो जे स्याद् अस्ति अवक्तव्य। वस्तुमां अनंता अस्तिधर्म छे पण वचने अगोचर छे, अने अनंता धर्म वचनगोचर पण छे, तेनी सापेक्षता माटे स्यात्पदयुक्त करीयें एटले स्याद् अस्ति अवक्तव्य ए पांचमो भांगो जाणवो।

एमज पांचमानी रीते स्याद् नास्ति अवक्तव्य ए छठ्ठो भागो जाणवो।

हवे सातमो भांगो कहे छे। इहां अस्तिभावपणो वक्तव्य छे तेमज नास्तिभाव पण वक्तव्य छे, अने अवक्तव्य पण छे। ए सर्व धर्म एक समयमां एक वस्तुमध्ये तथा एक गुणमध्ये तथा एक पर्याय मध्ये समकालें परिणमे छे, ते जणाववा माटे अस्तिनास्ति अवक्तव्यः ए सातमो भांगो।

इहां अस्ति ते नास्ति न थाय अने नास्ति ते अस्ति न थाय तथा वक्तव्य ते अवक्तव्य न थाय अने अवक्तव्य ते वक्तव्य न थाय ते जणाववाने अर्थे स्यात्पद ग्रह्यो छे। इहां अस्तिपणे जे भाव छे ते अस्तिधर्म अने नास्तिपणे जे भाव छे ते नास्तिपणे ग्रह्या छे, बेहु समकाले छे ते माटे एक समय **वक्तव्य** कहेता कहेवामां अशक्य छे, असमर्थ छे, तेथी **अवक्तव्य** कहेता अगोचरपणे छे अने जे स्यात्पद छे ते अस्तिधर्म नास्तिधर्म अवक्तव्य धर्मनो नित्यपणो अनित्यपणो प्रमुख अनेकांतनो संग्रह करे छे। जे अस्तिधर्म छे ते

नित्यपणे पण छे तथा अनित्यपणे पण छे, एकपणे छे, अनेकपणे छे, भेदपणे छे, अभेदपणे छे, इत्यादिक ते अस्तिधर्ममां अनेकांतता छे तेने ग्रहे छे। केमके वस्तुनो एकगुण तेमां अस्तिपणो छे, नास्तिपणो छे, नित्यपणो छे, अनित्यपणो छे, भेदपणो छे, अभेदपणो छे, वक्तव्यपणो छे, अवक्तव्यपणो छे, भव्यपणो छे, अभव्यपणो छे, ए अनेकांतपणो एह ज स्याद्वाद छे। तेनुं सांकेतिक वाक्य ते स्यात्पद छे ए रीते जाणवो।

आत्मद्रव्यने विषे स्वधर्मनी अस्तिता छे, परधर्मनी नास्तिता छे, स्वगुणनो परिणमवो अनित्य छे अने तेज गुणपणे नित्य छे, तथा द्रव्य पिंडपणे एक छे अने गुण पर्यायपणे अनेक छे। तथा आत्मा कारणपणे कार्यपणे समय समयमां नवानवापणो जे पामे छे ते भवनधर्म छे। तो पण आत्मानो मूलधर्म जे पलटतो नथी ते अभवनधर्म छे। इत्यादिक अनेक धर्म परिणति युक्त छे ए रीते छ द्रव्यने जाणी निर्धारी जे हेयोपादेयपणे श्रद्धान भासन थाय ते सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन छे। ए जीवनी अशुद्धता ते परकर्ता, परभोक्ता, परग्राहकता टालवाना उपायनुं साधन ते साधन करवे आत्मा आत्मापणें मूलधर्मे रहे ते सिद्धपणो। तेनी रुचि उद्यमपणो करवो एहिज श्रेय छे।

[३०] स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्यरूपास्त्रयः सकलादेशाः सम्पूर्णवस्तुधर्मग्राहकत्वाद्, मूलतः अस्तिभावा अस्तित्वेन सन्ति, नास्तित्वेन सन्ति एवं सप्त भङ्गा एवं नित्यत्वसप्तभङ्गी अनित्यत्वसप्तभङ्गी एवं सामान्यधर्माणां, विशेषधर्माणां, गुणानां, पर्यायाणां, प्रत्येकं सप्तभङ्गी तद्यथा-

[३०] अर्थ- स्याद्अस्ति, स्यान्नास्ति, स्याद्अवक्तव्य ए त्रण भांगा वस्तुना संपूर्णरूपने ग्रहे माटे सकलादेशी छे, अने शेष रह्या जे चारभांगा ते विकलादेशी छे। ते वस्तुना एकदेशने ग्रहे माटे। तथा वली अस्तिपणाने विषे जे अस्तिपणो ते नास्तिपणे नथी, अने नास्तिपणो नास्तिपणे छे तेमां अस्तिपणो नथी। इहां कोइ पुछे के वस्तुमां जे नास्तिपणो ते अस्तिपणे कहो छो तो नास्तिपणामां आस्तिपणानी ना किम कहो छो? तेने उत्तर जे नास्तिपणो ते अस्ति छे-छतापणे छे अने अस्तिधर्म कांइ नास्तिपणामां नथी माटे ना कही छे। छतिनी ना कही नथी। तथा एमज नित्यपणानी सप्तभंगी, तथा अनित्यपणानी सप्तभंगी, तेमज सामान्य धर्म सर्वनी भिन्न भिन्न सप्तभंगी, तथा सर्व विशेष धर्मनी सप्तभंगी, तेमज गुण पर्याय सर्वनी जूदी जूदी सप्तभंगी कहेवी, तद्यथा कहेता ते कही देखाडे छे।

[३१] ज्ञानं ज्ञानत्वेन अस्ति दर्शनादिभिः स्वजातिधर्मैरचेतनादिभिर्विजातिधर्मैर्नास्ति, एवं पञ्चास्तिकाये प्रत्यस्तिकायमनन्ता सप्तभङ्ग्यो भवन्ति। अस्तित्वाभावे गुणाभावात्पदार्थे शून्यतापत्तिर्नास्तित्वाभावे कदाचित् परभावत्वेन परिणमनात् सर्वसङ्करतापत्तिर्व्यञ्जकयोगे सत्ता स्फुरति तथा असत्ताया अपि स्फुरणात्पदार्थानामनियता प्रतिपत्तिः। तत्त्वार्थे-*तद्भावाव्ययं नित्यम्*।(त.सू.५.३०)

[३२] अर्थ- हवे गुणनी सप्तभंगी कही देखाडे छे, जेम ज्ञान गुण ज्ञायकादिक गुणे अस्ति छे अने

दर्शनादिक स्वजाति एकद्रव्यव्यापि गुण तथा स्वजाति भिन्न जीवव्यापि ज्ञानादिक सर्वगुण अने अचेतनादिक परद्रव्यव्यापि सर्व धर्मनी नास्ति छे, एम पंचास्तिकायने विषे अस्तिकायें अनंती सप्तभंगीओ पामे। ए सप्तभंगी स्याद्वादपरिणामें छे ते सर्व द्रव्यादिकमां छे।

हवे वस्तुमध्ये अस्तिपणो न मानियें तो शो दोष उपजे ते कहे छे। जो वस्तुमां अस्तिपणो न मानियें तो गुण पर्यायनो अभाव थाय अने गुणना अभावें पदार्थ शून्यतापणो पामे।

तथा जो वस्तुमध्ये नास्तिपणो न मानियें तो ते वस्तु कदाकालें पर वस्तुपणें अथवा परगुणपणें परिणमी जाय, तेथी कोइवारे जीव ते अजीवपणो पामे, अने अजीव ते जीवपणो पामे तो सर्व संकरतादोष उपजे। तथा व्यंजन कहेता प्रकटतानो हेतु तेने योगें छतो धर्म ते फुरे, पण जे धर्मनी सत्ता छति न होय ते फुरे नही। जो नास्तिपणो न मानियें तो असत्तापणे फुरे, अने जे वारें असत्ता स्फुरे ते वारें द्रव्यनो अनियामक कहेता अनिश्चयपणो थइ जाय, ते माटे सर्व भाव अस्तिनास्तिमयी छे।

व्यंजकतानो दृष्टांत कहे छे। जेम कोरा कुंभमां सुगंधतानी सत्ता छे तोज पाणीने योगें वासना प्रगटे छे। जो वस्त्रादिकमां ते धर्म नथी तो तेमां प्रगटतो पण नथी एम सर्वत्र जाणवो।

हवे त्रीजो नित्य स्वभाव कहे छे ते जे वस्तुना भाव तेनो अव्यय कहेता नही टलवो एटले तेमनो तेमज रहेवो ते नित्यपणो कहियें। तेना बे भेद छे ते कहे छे।

[३३] (३) एका अप्रच्युतिनित्यता द्वितीया पारम्पर्यनित्यता। तथा द्रव्याणां ऊर्ध्वप्रवचयतिर्यग्प्रचयत्वेन तदेव द्रव्यमिति ध्रुवत्वेन नित्यस्वभावो नवनवपर्यायपरिणमनादिभिरुत्पत्तिव्ययरूपो नित्यस्वभाव उत्पत्तिव्ययस्वरूपम् अनित्यम्।

[३३] अर्थः- एक अप्रच्युतिनित्यता, बीजी पारंपर्यनित्यता। तिहां अप्रच्युतिनित्यता तेने कहियें जे द्रव्य ते ऊर्ध्वप्रचय तिर्यक्प्रचयने परिणमवे ए द्रव्य तेहिज ए ध्रुवतारूप ज्ञान थाय छे एटले सदा सर्वदा त्रणे काले तेहिज, एवुं जे ज्ञान थाय छे जे मूल स्वभाव पलटे नही ते अप्रच्युति नित्यता कहियें। अने ए नित्यतामां जे ऊर्ध्वप्रचय कह्यो ते ओलखावे छे। जे पहेले समयें द्रव्यनी परिणति हति ते बीजे समयें नवपर्यायने उपजवे अने पूर्वपर्यायने व्यय सर्व पर्यायनी परावृत्ति थइ, तो पण ए द्रव्य तेनुं तेज, एवुं जे ज्ञान थाय ते द्रव्यमां उर्ध्वप्रचय कहियें। उपरले समये ते माटे उर्ध्व प्रचय कहियें। तथा अनंताजीव सरिखा छे पण सर्वजीव जाणतां एपण जीव एवो जीवत्वसत्तायें तुल्य भिन्न जीव सत्तारूप ज्ञान थाय ते तिर्यक्प्रचय कहियें।

ऊर्ध्वप्रचय ते समयांतरे अनेक उत्पादव्ययने पलटवे पण ए जीव ते तेज छे एवुं ज्ञान थाय ए नित्यस्वभावनो धर्म जाणवो। ए कारणथी कार्य उपनो तेनुं ज्ञान थाय ते नित्यस्वभावनो धर्म जाणवो। तथा ए कारणथी जे कार्य उपनो वली ज्ञान थयुं ते कारणथी बीजे कारणे बीजुं कार्य थाय एम नवे नवे कार्य उपने पण जीव तेज छे एवुं जे ज्ञान थाय, परंपरारूप संतति चाली जाय ते पारंपर्य नित्यता कहियें। जेम प्रथम शरीरने कारणे राग हतो तेहिज वस्त्र धनने कारण प्रते राग थयो ते कारण नवा रागनो नवापणो पण राग रहित आत्मा केवारे नही, ए पारंपर्य एटले परंपरा नित्यता कहियें। बीजुं नाम संततिनित्यता जाणवी, ते कारण योगे निमित्तें नीपजे, नवा नवा पर्यायने परिणमवे एटले पूर्व पर्यायने व्ययथवे तथा अभिनव पर्यायने उपजवे अनित्य स्वभाव जाणवो। एटले उत्पत्ति कहेता उपजवो व्यय कहेता विणसवो एवो जे स्वभाव ते अनित्य स्वभाव जाणवो।

[३४] तत्र नित्यत्वं द्विविधम्-कूटस्थं प्रदेशादिनां, परिणामित्वं ज्ञानादिगुणानाम्। तत्रोत्पादव्ययावनेकप्रकारौ तथापि किञ्चिल्लिखयते विस्रसाप्रयोगजभेदाद् द्विभेदो सर्वद्रव्याणां चलनसहकारादिपदार्थक्रियाकारणं भवत्येव।

[३४] अर्थः- तिहां वली ग्रंथांतरे नित्यपणो बे प्रकारे कह्यो छे, एक कूटस्थनित्यता, बीजी परिणामिनित्यता छे। जीवना असंख्यात प्रदेश ते संख्यायें तथा क्षेत्रावगाह पलटतो नथी ते तथा गुणनो अविभाग ते सर्व कूटस्थनित्यता छे।

ज्ञानादिक गुण ए सर्व परिणामिक नित्यतायें छे, केमके गुणनो धर्मज ए छे। जे समयें समयें स्वभाव कार्यपणे परिणमे अने जे कार्य होय ते परिणामिकपणेज होय ए नीतिज छे, अने जो ज्ञानगुणने कूटस्थनित्यतापणे मानियें तो पहेले समयें जे ज्ञाने करी जाण्यो तेहिज जाणपणो सदासर्वदा रहे, पण तेम तो नथी। ज्ञेय तो नवनवी रीतें परिणमता देखाय छे तो ते ज्ञेयनी नवनवी अवस्था ज्ञान जाणे नही, एटले पहेले समय जे रीते ज्ञान परिणमे छे ते रीतें परिणमन जोवुं जोईयें अने ए रीते ज्ञान यथार्थ थयुं एम घटे नहीं ते माटे ज्ञेय जे घटपटादिक ते जेम पलटे छे तेम ज्ञान पण जाणे तेहिज ज्ञान यथार्थ थाय, ते माटे ज्ञानगुण ते नवा नवा ज्ञेय जाणवा माटे परिणामी जाणवो। अनित्य ज्ञायकता शक्ति माटे नित्य। ए रीतें नित्यानित्य स्वभावी सर्व गुण छे। सर्व द्रव्यने विषे पोतानी क्रियानुं कारण थायज छे।

[३५] तत्र चलनसहकारित्वं कार्यं धर्मास्तिकायं द्रव्यस्य प्रतिप्रदेशस्थचलनसहकारिगुणा विभागा उपादानकारणं कारणस्यैव कार्यपरिणमनात् तेन कारणत्वपर्यायव्ययः कार्यत्वपरिणामस्योत्पादो गुणत्वेन ध्रुवत्वं प्रतिसमयं कारणस्यापि उत्पादव्ययौ कार्यस्याप्युत्पादव्ययावित्यनेकान्तजयपताकाग्रन्थे। एवं सर्वद्रव्येषु सर्वेषां गुणानां स्वस्वकार्यकारणता ज्ञेया। इति प्रथमव्याख्यानम्।

[३५] अर्थः-तिहां जेम धर्मास्तिकायद्रव्यनो चलनसहकारीपणो ते मुख्य कार्य छे, अने अधर्मास्तिकायद्रव्यनो स्थिरसहायित्व ते मुख्य कार्य छे, वली आकाशद्रव्यनुं अवगाहनादान ते मुख्य कार्य छे, जीवनो जाणवा देखावारूप उपयोग ते मुख्य कार्य छे, पुद्गलनो वर्णगंधरसस्पर्शपणो ते मुख्य कार्य छे, इत्यादि स्वकार्यनो थावुं छे ते जिहां थावुं तिहां भवनधर्म थयो। अने जिहां भवनधर्म ते उत्पाद थयो, अने उत्पाद होय ते व्यय सहितज होय। ते भवनधर्म तत्त्वार्थ ग्रंथ मध्ये कह्यो छे।

हवे ते उत्पादव्यय बे प्रकारना छे। एक प्रयोगथी थाय अने बीजो विस्रसा कहेता सहजे परिणामी धर्मे थाय। हवे इहां सहजनो उत्पादव्यय कहे छे। तिहां धर्मास्तिकायादि छ द्रव्यने पोतपोताना चलन सहाकारादि गुणनी प्रवृत्तिरूप अर्थक्रियानो करवो थायज, अने चलनसहकारपणो ते कार्य। धर्मास्तिकायद्रव्यने प्रतिप्रदेशें रह्यो जे चलन सहकारी गुणाविभाग ते उत्पादानकारण छे, तेहिज कार्यपणे परिणमे छे। एटले कारणपणानो व्यय अने कार्यपणानो उत्पाद तथा चलन सहकारीपणे ध्रुव छे। एमज अधर्मास्तिकायने विषे थिरसहायगुणनुं प्रवर्तन छे, तथा आकाशास्तिकायने विषे पण अवगाहनागुणनुं प्रवर्तन एमज छे। वली पुद्गलमां पूरणगलनादिक गुणनुं प्रवर्तन छे, तेमज जीवद्रव्यमां ज्ञानादिक गुणनुं प्रवर्तन छे, अथवा वली अनेकांतजयपताका ग्रंथने विषे एम पण कह्युं छे जे प्रतिसमयें गुणने विषे कारणपणो नवो नवो उपजे छे एटले कारणपणानो पण उत्पाद व्यय छे, तेमज प्रतिसमयें कार्यपणो पण नवो नवो उपजे छे, एटले कार्यपणानो पण उत्पाद व्यय छे, एम सर्व द्रव्यने विषे सर्व गुणनो कार्यपणो कारणपणो उपजे विणसे छे, एम उत्पाद व्ययनो एक

स्वरूप प्रथम भेद कह्यो।

[३६] तथा च-सर्वेषां द्रव्याणां पारिणामिकत्वं पूर्वपर्यायव्ययो नवपर्यायोत्पादः एवमप्युत्पादव्ययौ, द्रव्यत्वेन ध्रुवत्वमिति द्वितीयः।

प्रतिद्रव्यं स्वकार्यकारणपरिणमनपरावृत्तिगुणप्रवृत्तिरूपा परिणतिः अनन्ता अतीता एका वर्तमाना अन्या अनागता योग्यतारूपा। ता वर्तमाना अतीता भवन्ति अनागता वर्तमाना भवन्ति शेषा अनागता कार्ययोग्यतासन्नतां लभन्ते इत्येवं रूपावुत्पादव्ययौ गुणत्वेन ध्रुवत्वमिति तृतीयः। अत्र केचित् कालापेक्षया परप्रत्ययत्वं वदन्ति, तदसत्, कालस्य पञ्चास्तिकायपर्यायत्वेनैवागमे उक्तत्वादियं परिणतिः स्वकालत्वेन वर्तनात् स प्रत्यक्ष एव। तथा कालस्य भिन्नद्रव्यत्वेऽपि कालस्य कारणता, अतीतानागतवर्तमानभवनं तु जीवादिद्रव्यस्यैव परिणतिरिति॥

[३६] अर्थः-सर्व धर्म छे ते परिणामिक भावे छे। तिहां पूर्व पर्यायनो व्यय अने नवा पर्यायनो उत्पाद समय समयें छे अने द्रव्यपणो ध्रुव छे ए बीजो भेद।

सर्व द्रव्यने विषे **स्व** कहेता पोतानुं कारण परिणमन **परावृत्ति** कहेता पलटणपणे गुणनी प्रवृत्तिरूप परिणमन छे, ते परिणति अनंती अनंत जातिनी अतीतकालें थइ छे अने अनंती जातिनी एक वर्तमान कालें छे, अने बीजी अनागत योग्यतारूपपणे अनंती छे, ते वर्तमान परिणति ते अतीत थाय छे, एटले ते परिणतिमध्ये वर्तमानपणानो व्यय अने अतीतपणानो उत्पाद तथा परिणतिपणे ध्रुव छे। अने अनागतपरिणति ते वर्तमान थाय छे, तिहां अनागतपणानो व्यय, वर्तमानपणानो उत्पाद अने छतिपणे ध्रुव अने अनागत कार्य योग्यता ते दूर हता ते **आसन्न** कहेता नजीकपणो पामे, एटले दूरतानो व्यय अने नजीकतानो उत्पाद तथा अतीतमध्ये दूरतानो उत्पाद अने नजीकतानो व्यय, ए रीतें सर्व द्रव्यने विषे अतीत वर्तमान तथा अनागतपणे परिणति छे, ते परिणमेज छे। ए द्रव्यने विषे स्वकालरूप परिणमन छे, ए उत्पाद व्ययनो त्रीजो भेद जाणवो।

इहां केटलाक कालनी अपेक्षा लेइने परप्रत्ययपणो कहे छे ते खोटो छे, कारण के कालद्रव्य जे छे, ते पंचास्तिकायनो पर्याय छे, अने परिणतितो द्रव्यनो स्वधर्म छे, माटे काल ते स्वकालरूप वस्तुनो परिणाम तेनो भेद छे, अथवा कालने भिन्न द्रव्य मानियें तो पण काल ते कारणपणे छे, अने अतीत, अनागत वर्तमानरूप परिणति तेतो जीवादिक द्रव्यनो धर्म छे ते माटे ए उत्पादव्यय पण स्वरूपज छे। ए त्रीजो भेद थयो।

[३७] तथा च सिद्धात्मनि केवलज्ञानस्य यथार्थज्ञेयज्ञायकत्वाद् यथा ज्ञेया धर्मादिपदार्थाः तथा घटापटादिरूपा वा परिणमन्ति तथैव ज्ञाने भासनाद् यस्मिन् समये घटस्य प्रतिभासः समयान्तरे।

घटध्वंसे कपालादिप्रतिभासः तदा ज्ञाने घटाप्रतिभासध्वंसः कपालप्रतिभासस्योत्पादः ज्ञानरूपत्वेन ध्रुवत्वमिति। तथा धर्मास्तिकाये यस्मिन् समये सङ्ख्येयपरमाणूनां चलनसहकारिता अन्यसमये असङ्ख्येयानाम्, एवं सङ्ख्येयत्वसहकारिताव्ययोऽसङ्ख्येयानन्तसहकारितोत्पादश्चलनसहकारित्वेन ध्रुवत्वम्। एवमधर्मादिष्वपि ज्ञेयम्, एवं सर्वगुणप्रवृत्तिष्विति चतुर्थः।

[३७] अर्थः-**तथा** कहेता तेमज वली सिद्धात्माने विषे केवलज्ञान गुणनी संपूर्ण प्रगटता छे ते यथार्थ जे कालें जे ज्ञेय जेम परिणमे ते कालें तेमज जाणे एहवो ज्ञेयनो ज्ञायक ते केवलज्ञान छे, जेम धर्मादि द्रव्य तथा घटपटादि ज्ञेय पदार्थ जे रीते परिणमे ते रीतेज केवलज्ञान जाणे, ते जे समये घटज्ञान हतुं ते समयांतरे घट ध्वंस थये कपालनुं ज्ञान थाय, तेवारें घटप्रतिभासनो ध्वंस, कपाल प्रतिभासनो उत्पाद, अने ज्ञाननो ध्रुवपणो एम दर्शनादि सर्व गुणनो प्रवर्तन जाणवो।

तथा धर्मास्तिकायने विषे जे समये संख्यात परमाणुने चलन सहकारिपणो हतो, फरी समयांतरे असंख्यात परमाणुने चलनसहकारीपणो करे, तेवारें संख्याता परमाणु चलनसहकारतानो व्यय अने असंख्येय परमाणुने चलनसहकारतानो उत्पाद अने चलनसहकारीपणे ध्रुव छे। एमज अधर्मास्तिकायादिकने विषे पण सर्व गुणनी प्रवृत्ति थाय छे। ए रीते द्रव्यने विषे अनंता गुणनी प्रवृत्ति छे।

इहां कोइ पुछशे जे धर्मास्तिकाय मध्ये अनंता जीव तथा अनंता परमाणु ने चलणसहकारी थाय एटलो चलनसहकारी छे, तो थोडा जीव अने थोडा परमाणुनें चलणसहकार करतां बीजो गुण सौ अणप्रवर्त्यो रह्यो? एम कहे तेने उत्तर के-निरावरण जे द्रव्य छे तेनो गुण अप्रवर्त्यो रहेज नही अने जीव पुद्गल जे आवी पहोता तेने सहकारें सर्व चलन सहकारी गुणना पर्याय ते प्रवर्ते ज छे, केमके अलोकाकाशमध्ये जो अवगाहक जीव पुद्गल नथी तोपण अवगाहक दान गुण तो प्रवर्ते ज छे। तेम धर्मास्तिकायादिकमां जीव पुद्गल

थोडाने पोचवे पण गुण तो बधे प्रवर्ते ज छे एम धारवो। ए रीतें गुण पर्यायनो उत्पादव्ययध्रुवरूप धर्म कहेवो ए चोथुं रूप कह्युं।

[३८] तथा सर्वे पदार्था अस्तिनास्तित्वेन परिणामिनः। तत्रास्तिभावानां स्वधर्माणां परिणामिकत्वेन उत्पादव्ययौ स्तः। नास्तिभावानां परद्रव्यादीनां परावृत्तौ। नास्तिभावानां परावृत्तित्वेनाप्युत्पादव्ययौ ध्रुवत्वं च अस्तिनास्तिद्वयौ इति पञ्चमः।

[३८] अर्थ- तथा सर्व द्रव्यमां अस्ति तथा नास्ति ए बे स्वभाव परिणमि रह्या छे। तिहां जे अस्तिस्वभाव छे ते स्वद्रव्यादिकनो छे। ते जेवारें ज्ञानगुण घट जाणतो हतो तेवारें घट ज्ञाननी अस्तिता हती, अने तेज घटध्वंस थये कपालज्ञान थयुं ते वारें घटज्ञाननी अस्तितानो व्यय थयो, अने कपालज्ञाननी अस्तितानो उत्पाद थयो, ए रीते अस्तितानो उत्पादव्यय छे तेज रीतें नास्तितानो पण उत्पादव्यय जाणवो। जे पहेली घटनास्तिता हती ते पछे घटध्वंसे कपालनास्तिता थइ एम परद्रव्यने पलटवे नास्तिता पलटे छे। ते स्वगुणने परिणामिक कार्यने पलटवे करीने अस्तिता पलटे छे, अने जिहां पलटवापणो तिहां उत्पादव्यय थायज। एम द्रव्यमां सामान्य स्वभाव धर्म छे तेमां जेम संभवे तेम श्री प्रभुनी आज्ञायें उपयोग देइने उत्पादव्ययपणो करवो अने अस्तिनास्तिपणे ध्रुव छे ए पांचमो अधिकार कह्यो।

[३९] तथा पुनः अगुरुलघुपर्यायाणां षड्गुणहानिवृद्धिरूपाणां प्रतिद्रव्यं परिणमनाद्धानिव्यये वृद्ध्युत्पादो वृद्धिव्यये हान्युत्पादः ध्रुवत्वं चागुरुलघुपर्यायाणाम्। एवं सर्वद्रव्येषु ज्ञेयम्। तत्त्वार्थवृत्तौ आकाशाधिकारे- यत्राप्यवगाहकजीवपुद्गलादिर्नास्ति तत्राप्यगुरुलघुपर्यायवर्तनयावश्यत्वे चानित्यताभ्युपेया ते च अन्ये अन्ये च भवन्ति। अन्यथा तत्र नवोत्पादव्ययौ नापेक्षिकाविति न्यूनं एवं सल्लक्षणं स्यादिति षष्ठः।

[३९] अर्थ-**तथा** कहेता तेमज वली सर्व द्रव्य तथा पर्याय ते अगुरुलघुधर्मे संयुक्त होय द्रव्यने प्रदेशें अगुरुलघु अनंतो छे ते अगुरुलघु समयें समयें प्रदेशें तथा पर्यायें कोइक वारें वृद्धि पामे कोइक वारें घटी जाय; ते वधुघटु थवो छ छ प्रकारें छे। १ अनंतभाग हानि, २ असंख्यातभाग हानि, ३ संख्यातभाग हानि, ४ संख्यातगुण हानिं, ५ असंख्यातगुण हानि, ६ अनंतगुण हानि, ए छ प्रकारें हानि तथा १ अनंतभाग वृद्धि, २ असंख्यातभाग वृद्धि, ३ संख्यातभाग वृद्धि, ४ संख्यातगुण वृद्धि, ५ असंख्यातगुण वृद्धि, ६ अनंतगुण वृद्धि। ए छ प्रकारनी वृद्धि ते सर्व द्रव्यना सर्व प्रदेशें सर्व पर्यायमां थाय। एक प्रदेशमां कोइक समयें वधे छे कोइक समयें घटे छे। जेम परमाणुमां वर्णादिक वधे घटे छे तेम अगुरुलघुपणो पण वधे घटे छे। हानिनो व्यय छे तो वृद्धिनो उत्पाद छे। अथवा वृद्धिनो व्यय छे तो हानिनो उत्पाद छे, पण अगुरुलघु ध्रुवनो ध्रुव छे। एम सर्व द्रव्यने विषे जाणवो।

तिहां तत्त्वार्थटीकामां आकाश द्रव्यना अधिकारे कह्युं छे ते लखियें छैयें। जिहां अलोकाकाशमध्ये अवगाहक जीव पुद्गलादिक द्रव्य नथी तिहां पण अगुरुलघुपर्यायवंतपणो अवश्य छे, ते अगुरुलघुनी अनित्यता अवश्य अंगीकारे छे। अने ते अगुरुलघु ते पर्यायें तथा प्रदेशें अन्य अन्य कहेता बीजो बीजो थाय छे, एटले पूर्व समयें अगुरुलघुनो व्यय अने बीजे समयें नवा अगुरुलघुनो उत्पाद छे। जो ए रीते नवो उत्पाद व्यय गवेषिये नही तो अलोकाकाशनें विषे सल्लक्षण **न्यून** कहेता ओछो पडे, जे उत्पादव्ययध्रुवता संयुक्त ते सत् कहियें अने जे द्रव्य होय ते सत्पणा संयुक्तज होय। माटे अगुरुलघुनुं परिणमन सर्व द्रव्यमां, सर्व पर्यायमां, सर्व प्रदेशमां छे। ए अगुरुलघुनो उत्पादव्यय कह्यो। ए छठ्ठो अधिकार थयो।

[४०] तथा भगवतीटीकायाम्। तथा च अस्तिपर्यायतः सामर्थ्यरूपा विशेषपर्यायास्ते चानन्तगुणास्ते प्रतिसमयं निमित्तभेदेन परावृत्तिरूपाः। तत्र पूर्वविशेषपर्यायाणां नाशः अभिनवविशेषपर्यायाणाम् उत्पादपर्यायवत्त्वे ध्रुवत्वं इत्यादि सर्वत्र ज्ञेयमिति सप्तमः।

[४०] अर्थ- तेमज वली अस्तिपर्यायथी विशेष पर्याय जे सामर्थ्यरूप ते अनंतगुणा छे। ए भगवती सूत्रनी टीका मध्ये कह्यो छे। जे अस्ति पर्याय ते ज्ञानादि गुणना अविभागरूप पर्याय छे। जे पर्यायमां सर्व ज्ञेय जाणवानुं सामर्थ्य छे ते विशेष पर्याय छे। तथा महाभाष्ये- *यावन्तो ज्ञेयास्तावन्तो ज्ञानपर्यायाः*। ए सामर्थ्यपर्याय गवेष्या छे, ए सामर्थ्यपर्याय ते ज्ञेयनें निमित्ते छे, ते ज्ञेय तो अनेक उपजे छे ने अनेक विणशे छे, तेवारें विशेष पर्याय पण पलटे छे ते प्रतिसमयें निमित्त भेदनी परावृत्ति पलटवेथी पूर्व विशेष पर्याय नाश थाय तथा अभिनव विशेष पर्यायनो उपजवो छे अने पर्यायनी अस्तिता ध्रुव छे, एम गुणपर्यायनो उत्पादव्ययध्रुवपणो ते सातमो छे। ए अस्तिनास्तिस्वभाव वखाण्या।

[४१] नित्यताऽभावे निरन्वयता कार्यस्य भवति कारणाभावता च भवति। अनित्यताया अभावे ज्ञानकतादिशक्तेरभावोऽर्थक्रियासम्भवः।

[४१] अर्थ- एमज सर्व द्रव्यमां नित्यता तथा अनित्यता छे। ए नित्यअनित्यपणा विना द्रव्य कोइ नथी। जो द्रव्यमां नित्यता न होय तो कार्यनो अन्वय कोने होय? एटले अमुक कार्य ते अमुक द्रव्यें कर्यो एम कह्यो जाय नही, माटे द्रव्यमां नित्यता मानवाथीज अमुक द्रव्ये अमुक कार्य कर्यो एम कहेवाय छे। माटे जो द्रव्यने नित्यपणेज मानियें तो गुणनुं कार्य ते द्रव्यनो कहेवाय, अने गुण ते द्रव्य न कहेवाय। अने जो द्रव्य नित्य न होय तो कारणपणानो अभाव थाय माटे द्रव्यमां नित्यता मानवी। अने जो द्रव्यमां अनित्यपणो न मानियें तो जाणंग आदे देइनें सर्व द्रव्यना गुणरूप कार्यनो अभाव थइ जाय, अर्थक्रिया संभवे नही, एटले कोइ अनित्यपणो होय तो अर्थ क्रियाने करे केमके करवापणो कोइक बीजापणो एटले नवापणो निपजाववो ते पूर्व पर्यायनो ध्वंस थयेथी थाय अने ते एकनो ध्वंस अने कोइक बीजा नवानो नीपजवो ते द्रव्यमां अनित्यपणो छे। एटले नित्य स्वभाव तथा अनित्य स्वभाव ओलखाव्या। हवे एक स्वभाव तथा अनेक स्वभाव ओलखावे छे।

[४२] तथा समस्तस्वभावपर्यायाधारभूतभव्यदेशानां स्वस्वक्षेत्रभेदरूपाणामेकत्वपिण्डीरूपापरत्याग एकस्वभावः। क्षेत्रकालभावानां भिन्नकार्यपरिणामानां भिन्नप्रभावरूपोऽनेकस्वभावः, एकत्वाभावे सामान्याभावः। अनेकत्वाभावे विशेषधर्माभावः स्वस्वामित्वव्याप्यव्यापकता|या अ|प्यभावः

[४२] **तथा** कहेता तेमज **समस्त** कहेता सर्व जे स्वभाव अस्तित्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघु आदिक समस्त पर्याय गुणाविभागादिक ते सर्वनुं आधारभूत क्षेत्र ते प्रदेश छे ते **स्व** कहेता पोताना जे क्षेत्र ते सर्व भेदरूप जुदा जुदा छे, एटले संख्याता प्रदेश भिन्न छे पण ते एकपिंडपणो किंवारें तजता नथी। सर्व प्रदेशमां अंतराल क्षेत्रपणो कोइवारें पामतो नथी, जे अनंता स्वभाव, अनंत पर्याय, ते असंख्यात प्रदेशरूप तेनुं प्रमाण फिरतुं नथी एवो जे द्रव्यने विषे समुदायपिंडपणो रहे छे ते एक स्वभाव कहियें। ते पंचास्तिकायमध्ये धर्म, अधर्म, आकाश, ए त्रण द्रव्य एकेक छे। अने जीव द्रव्य अनंता छे तेथी पुद्गल परमाणुओ अनंत गुणा छे। ते एक जीव अनेक रूप नवा नवा करे पण अन्तर पडे नही ते माटे द्रव्यमध्ये एक स्वभाव छे।

क्षेत्र असंख्यात प्रदेश, काल उत्पादव्ययरूप, भाव पर्याय गुणना अविभाग ते पोताना भिन्नकार्य परिणामी छे, ते सर्वनो भिन्न प्रवाह छे। एटले सर्वना कार्यपणो भिन्न छे ते माटे द्रव्यने सर्व स्वभाव पर्याय भेदें विचारतां द्रव्यमां अनेक स्वभाव पण छे।

जो वस्तुमां एकपणाना अभाव मानियें तो सामान्यपणो रहे नही अने गुणनो पर्यायनो स्वामी आधार ते कोण थाय? अने आधार विना गुणादि आधेय ते क्यां रहे? ते माटे द्रव्यनो एकपणो छे।

जो वस्तुमां अनेकपणो न मानियें तो द्रव्य ते विशेष रहित थई जाय, तेथी गुणनो अनेकपणो शी रीते द्रव्यने विषे पामियें? माटे द्रव्यमां गुणकार्यनो अनेकपणो पण छे तथा स्वस्वामित्व व्यापकव्यापकभाव केम ठरे? जे गुणपर्याय ते **स्व** कहेता घन अने द्रव्य ते तेनो स्वामी छे अथवा द्रव्य ते व्याप्य अने गुणपर्याय ते व्यापक छे ए रीते द्रव्यमां एक स्वभाव तथा अनेक स्वभाव जाणवा।

[४३] स्वस्वकार्यभेदेन स्वभावभेदेन अगुरुलघुपर्यायभेदेन भेदस्वभावः, अवस्थानाधारताद्यभेदेन अभेदस्वभावः। भेदाभावे सर्वगुणपर्यायाणां सङ्करदोषो गुणगुणीलक्षलक्षणः कार्यकारणतानाशः, भेदाभावे स्थानध्वंसः कस्यैते गुणाः को वा गुणी? इत्याद्यभावः।

[४३] अर्थ- **स्वस्व** कहेता पोतपोताना कार्यने भेदें करी एटले जीवद्रव्यमां ज्ञानगुण ते जाणवानुं कार्य करे, अने दर्शनगुण देखवानुं कार्य करे तथा चारित्रगुण थिरतारमणतारूप कार्य करे, तथा पुद्गलद्रव्य ते रूपपणो भिन्न कार्य करे, तथा वर्णपणो, गंधपणो, रसपणो अने स्पर्शपणो, सर्व कार्य भिन्न छे। तथा स्वभावभेद ते अस्तिस्वभाव छति रूप छे, नित्यस्वभाव अविनाशीपणो छे, अनित्यपणो ते पलटण रूप छे, एकपणो ते ते पिंडरूप छे,अनेकपणो ते प्रदेशादिक छे। इत्यादि स्वभावभेद तथा अगुरुलघुपर्याय प्रदेशे गुणाविभागें जूदो जूदो छे। कोई कोईनो तुल्य नथी, हानिवृद्धिरूप परिणमन छे इत्यादि प्रकारे द्रव्यमां भेद स्वभाव छे।

तथा सर्व धर्मनो **अवस्थान** कहेता रहेवो तेने आधारपणो कार्यनी **तुलना** कहेता सरिखापणो केवारें भिन्न पडतो नथी, ते माटे द्रव्यमां अभेद स्वभाव छे।

जो द्रव्य गुणपर्यायमां भेद स्वभाव न होय तो सर्वसंकर=एकपणो थाय तेवारें कार्यनो भेद केम पडे? ते माटे सर्व द्रव्यगुणपर्यायमां भेद स्वभाव छे। जीव ते चेतना लक्षणवंत अजीव ते चेतना रहित ए भेद छे। अजीवमध्ये जे अधर्मास्तिकाय द्रव्य ते चलनसहकारनें करे छे, पण बीजा अजीवद्रव्य ते ए कार्य करता नथी। एम धर्मास्तिकाय थिरसहायगुणन करे छे। आकाश अवगाहदानने करे छे। पुद्गलरूपी आवरण स्कंधादिपरिणमन करे छे। एम सर्व द्रव्यनें भेद छे तोज भिन्न भिन्न द्रव्य कहेवाय छे।

इहां कोइ कहेशे के जीव अनंता तेतो सरिखा छे तो सर्व जीवनें एकद्रव्य शा वास्ते न कह्यो? तेने उत्तर जे रूपैया सोनारूपापणे अथवा धवलापणे तोलपणे सरिखा छे, पण वस्तुना पिंडपणे भिन्न छे, ते माटे सोने पण भिन्न भिन्न कहियें छैयें। तेम जीवने पण भिन्न भिन्न कहियें। वली उत्पादव्ययनो फिरवो सर्वमां तेज रीतनो छे। पण पलटण ते एक रीतनो नथी, तथा अगुरुलघुनी हानिवृद्धिनो फिरवो पण सर्व द्रव्यमां पोतपोताने छे, तेथी सर्व जीव तथा सर्व परमाणु भिन्न छे, ए भेद स्वभाव जाणवो।

तन्मयतावस्थानाधारताद्यभेदेन अभेदस्वभावः।

तथा तन्मयता अवस्थानतानो अभेद छे अने आधारतानो पण अभेदपणो छे ते अभेद स्वभाव छे।

तथा भेदनो जो अभावपणो मानियें एटले वस्तुमां भेदपणो न मानियें तो सर्व गुण तथा पर्यायनो संकर कहेता एकमेकपणो ए दोष लागे, तो गुणी कोण? तथा गुण कोण? द्रव्य कोण? एम गुणपर्यायने केइ द्रव्यनो कयो पर्याय एम वेहेंचण थाय नही। गुण तथा गुणी तथा जे ओलखवा योग्य लक्षण तेनुं चिह्न तथा कारणधर्म तथा कार्यधर्मता ए बे जुदा पडे नहीं। कार्यधर्म तथा कारणधर्मनो नाश थाय माटे वस्तुमां भेद स्वभाव मानवो।

तथा जो वस्तुमां अभेदपणो न मानियें तो स्थानध्वंस थाय छे। ते स्थान कोण? अने ते स्थानकमां रहे ते कोण? इत्यादिकनो अभाव थाय छे। एम विचारतां सर्वथा एकपणो मानतां कोण गुणी? अने कोण गुण? एम ओलखाण न थाय। ए रीतें भेदाभेद स्वभाव वस्तुमां मानवा।

[४४] परिणामिकत्वे उत्तरोत्तरपर्यायपरिणमनरूपो भव्यस्वभावः। तथा *तत्त्वार्थवृत्तौ इह तु भावे* द्रव्यं भव्यं भवनमिति गुणपर्यायाश्च भवनसमवस्थानमात्रका एव उत्थितासीनोत्कुटकजागृतशयितपुरुषवत्तदेव च वृत्त्यन्तरव्यक्तिरूपेणोपदिश्यते, जायते, अस्ति विपरिणमते, वर्द्धते, अपक्षीयते, विनश्यतीति। पिण्डातिरिक्तवृत्त्यन्तरावस्थाप्रकाशतायां तु जायते इत्युच्यते।

स व्यापारैश्च भवनवृत्तिरस्ति इत्यनेन निर्व्यापारात्मसत्ताख्यायते भवनवृत्तिरुदासीना अस्तिशब्दस्य निपातत्वाद्।

विपरिणमते इत्यनेन तिरोभूतात्मरूपस्यानुच्छिन्नतथावृत्तिकस्य रूपान्तरेण भवनम्, यथा क्षीरं दधिभावेन परिणमते। विकारान्तरवृत्त्या भवनवत्तिष्ठते वृत्त्यन्तरव्यक्तिहेतुभाववृत्तिर्वा विपरिणामः।

वर्द्धत इत्यनेन तूपचयरूपः प्रवर्तते यथाङ्कुरो वर्द्धते उपचयवत् परिणामरूपेण भवनवृत्तिर्व्यजते।

अपक्षीयते इत्यनेन तु तस्यैव परिणामस्यापचयवृत्तिराख्यायते दुर्बलीभवत्पुरुषवत् पुरुषवदपचयरूपो भवनवृत्त्यन्तरव्यक्तिरुच्यते।

विनश्यति इत्यनेनाविर्भूतभवनवृत्तिस्तिरोभवनमुच्यते यथा विनष्टो घटः प्रतिविशिष्टसमवस्थानात्मिका भवनवृत्तिस्तिरोभूता न त्वभावस्यैव जाता कपालाद्युत्तरभवनवृत्त्यन्तरक्रमाविच्छिन्नरूपत्वाद् इत्येवमादिभिः आकारैर्द्रव्याणि एव भवनलक्षणान्यपदिश्यन्ते।

त्रिकालमूलावस्थाया अपरित्यागरूपोऽभव्यस्वभावः। भव्यत्वाभावे विशेषगुणानामप्रवृत्तिरभव्यत्वाभावे द्रव्यान्तरापत्तिः।

[४४] अर्थ- हवे भव्य स्वभाव तथा अभव्य स्वभाव कहे छे। जीवाजीवादिक द्रव्य छे ते परिणामि छे। समयें समयें नवा नवा परिणामें परिणमे छे। तिहां पूर्वपर्यायने विनाशे अने उत्तरोत्तर नवा नवा पर्यायने प्रगटावे एवी जे द्रव्यनी परिणति तेनुं मूल कारण ते भव्यस्वभाव कहियें। तिहां तत्त्वार्थ टीका मध्ये कह्यो छे। इहां द्रव्यानुयोगने विषे भाव धर्मने विषे एटले गुण पर्यायने विषे द्रव्य ते भव्य कहेता भवन थयो, एटले नवो निपजवो ते भवन इति कहेता एम वस्तुना गुणपर्याय जे छे ते भवन कहेता नवो थवा रूप समवस्थान मात्र छे, एटले नवा नवा थावारूप छे। तिहां दृष्टांत कहे छे, जे पुरुष उत्थित कहेता उठ्यो आसीन कहेता फरि तेहिज बेठो, बेसवुं ते पद्मासन कहियें, अथवा उकडवुं ते आसन सहित सूवुं जेम इत्यादिक पर्यायें ते पुरुष थाय छे तेम तेहज वृत्त्यंतर कहेता पूर्व पर्यायनो विनाश अने उत्तर पर्यायनो उपजवो ते वृत्त्यंतर कहियें, वृत्त्यंतर व्यक्तिरूपपणे उपदेशे छे।

ते भवनधर्मनी प्रवृत्ति कहे छे। **जायते** कहेता नवो उपजे। **अस्ति** कहेता छतिपणे रहे। **विपरिणमते** कहेता बीजापणे परिणमे वली सामर्थ्य धर्मे वधे अने **अपक्षीयते** कहेता घटे। **विनश्यति** कहेता विनाश पामे। **पिंड** कहेता समुदायपणो तेथी **अतिरिक्त** कहेता बीजी वृत्ति जे गुणनी प्रवृत्त्यंतरनी अवस्थाने प्रकाश थवे करीने जे भवनपणो थाय एटले जे ठेरी जे भवनवृत्ति ते सव्यापार छे पण निर्व्यापार नथी।

अस्ति ए वचने निर्व्यापार आत्मशक्ति छे ते कहियें छैयें। ते पण भवनवृत्तिथी उदासीन छे एटले भवनवृत्तिने ग्रहण करती नथीं। अस्ति शब्दने निपातपणो छे।

विपरिणमते ए वचने **तिरोभूत** कहेता अणप्रगटी जे वस्तु तेमां तद्रूपपणे **अनुच्छिन्न** कहेता विच्छेद गइ। तथा **वृत्तिकस्य** कहेता ते रीतें वर्तति आत्मशक्ति तेनो रूपांतर थवो ते भवन कहियें। तिहां दृष्टांत-जेम क्षीर ते दूध दधिभावें परिणमे, विकारांतरे थवो ते रीतें रहे ए भवनधर्म कहियें। जे ज्ञानादिपर्यायमां अनंतज्ञेय जाणवानी शक्ति छे पण जे ज्ञेय जे रीतें परिणमे ते रीतें ज्ञानगुण प्रवर्ते ए ज्ञानगुणनुं प्रवर्तन ते प्रतिसमयें विपरिणामपणे परिणमन छे। ए पण भवन धर्म छे। वली वृत्त्यंतरवर्तने अन्यपणे व्यक्तिने हेतुकरणे जे भवांतरे वर्तवो ते विपरिणाम कहियें। तथा वली **वर्द्धते** कहेता वधे ए वचने उपचयरूपपणे प्रवर्ते, जेम अंकुर वधे छे तेम वर्णादिक पुद्गलना गुण उपचयपणे वधे ए उपचयरूप भवनता वृत्ति। **व्यज्यते** कहेता प्रगट करियें छैयें।

एम गुणने कार्यांतरपणे परिणमने द्रव्यमां भवन धर्म छे **अपक्षीयते** ए वचने करीने **तु** कहेता वली तेहिज परिणामनो ऊणो थवो अथवा टलवो कहियें, दुर्बल थता पुरुषनी परें, जेम पुरुष दुर्बल थाय तेम पर्यायने घटवे द्रव्य प्रमाणादिक तथा ते समयें अगुरुलघु पर्याय घटवे ते दुर्बल थवुं ते रूप जे भवन वृत्तिने अंतरे **व्यक्ति** कहेता प्रगटता कहि छे।

तथा **विनश्यति** एम कहेवाथी आविर्भूत कहेता प्रगट थयो जे भवन धर्मनो वर्तवो तेनो तिरोभाव थयो कहियें। जेम विणस्यो घट जे मृत्पिंडने विषे ते चक्रादि कारणे प्रगट थयो, जे घट तेने प्रध्वंसे विनाश कहियें। एम द्रव्यने विषे कार्य करवारूप जे पर्याय तेने तिरोभावें अन्यपणे कार्यकरण रीते समवस्थान जे रहेवुं ते समयें ते भवनवृत्ति कहियें। तथा तिरोभावपणाने अभावें थावुं जे कपालादिक उत्तरभवन तेपणे वर्तवुं ए पण भवन धर्म छे। एम अनुक्रमे अविच्छिन्न निरंतर रूपें इत्यादिक अनेक आकारें द्रव्य तेज भवनलक्षण कहियें। ए भव्य स्वभाव जाणवो।

द्रव्यने विषे जे अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्वादिक धर्म ते त्रणे कालमां मूल अवस्थाने अपरित्यागे कहेता तजता नथी। तेहिज रूपपणे रहे। एहवा जेटला धर्म ते अभव्यस्वभाव जाणवो, जे अनेक उत्पादव्ययने परिणमने-फिरवे फिरे पण जीवनो जीवपणो पलटाय नही, तेमज अजीवनो अजीवपणो पलटाय नही ए सर्व अभव्य स्वभाव जाणवो।

हवे ए बे स्वभाव जो द्रव्यमां न मानियें तो शो दोष थाय? ते कहे छे। जो द्रव्यने विषे भव्यपणो न मानियें तो द्रव्यना जे विशेष गुण गतिसहकार, स्थितिसहकार, अवगाहदान, ज्ञायकता, वर्णादि जे पंचास्तिकायना विशेष गुण तेनी प्रवृत्ति न थाय, अने प्रवृत्ति विना कार्यनो करवो न थाय अने कार्यने अणकरवे द्रव्यनो व्यर्थपणो थाय, ते माटे भव्य स्वभाव छे।

जो द्रव्यने विषे अभवनरूप अभव्यस्वभाव न होय अने एकलो भवन स्वभाव होय तो नवानवापणे थवे ते द्रव्य पलटीने अन्य द्रव्य थइ जाय, ते माटे द्रव्यत्व, सत्य, प्रमयेत्वादि धर्मे अभव्यपणो छे तेथीज द्रव्य पलटतो नथी, तेमनो तेमज रहे छे ए अभव्यस्वभाव छे।

[४५] वचनगोचरा ये धर्मास्ते वक्तव्या इतरे अवक्तव्याः। तत्राक्षराः सङ्खेयाः तत्सन्निपाता असङ्ख्येयाः तद्गोचरा भावाः भावश्रुतगम्या अनन्तगुणाः। वक्तव्याभावे श्रुताग्रहणत्वापत्तिरवक्तव्यभावे अतीतानागतपर्यायाणां कारणतायोग्यतारूपाणामभावः सर्वकार्याणां निराधारतापत्तिश्च।

[४५] अर्थ- आत्मानो वीर्यनामा गुण तेना अविभाग जे वीर्यांतराय कर्मे आवर्या छे, तेज वीर्यांतरायने क्षयोपशमें तथा क्षय थवाथी प्रगट्यो जे वीर्यधर्म तेने भाषापर्याप्ति नामकर्मने उदयें लीवराणाजे भाषावर्गणानां पुद्गल ते शब्दपणे परिणमे ते शब्द पुद्गल खंध छे, पण श्रोताजनने ज्ञानना हेतु छे। एटले -जेमां जे गुण न होय ते गुणनुं कारण पण थाय नही- एम जे कहे छे ते मृषा छे, केमके जे निमित्त कारण होय तेमां गुण होय किंवा न पण होय, अने उपादान कारणमां ते गुणना कारणतापणे तथा योग्यतापणे नियामक छे ते वचनयोगेंज ग्रहवाय, एवा जे वस्तुमां धर्म छे तेने वक्तव्य धर्म कहियें। अने तेथी इतर कहेता जूदा जे धर्मास्तिकाय द्रव्यमां अनेक धर्म छे ते वचनमां ग्रहवाता नथी, तेवा सर्व धर्म अवक्तव्य कहियें। ते वक्तव्य धर्मथी अवक्तव्य धर्म अनंतगुणा छे। वचनतो संख्याता, छे पण ते वचनोमां एवो सामर्थ्य छे जे अवक्तव्य धर्म सर्वनो ज्ञानपणो थाय। उक्तं च-

अभिलप्पा जे भावा, अणंतभागो य अणभिलप्पाणं। अभिलप्पसाणंतो, भागो सुए निबद्धो अ॥

तत्र कहेता तिहां अक्षर संख्याता छे, ते अक्षरना सन्निपात संयोगीभाव असंख्याता छे, ते अक्षर संन्निपातने ग्रहवाय एवा जे पदार्थादिकना भाव ते अनंतगुणा छे, तेथी अवक्तव्य भाव अनंतगुणा छे। जे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अभिलाप्यभावनो परोक्षप्रमाणे ग्राहक छे। अवधिज्ञान ते पुद्गलनो प्रत्यक्ष प्रमाणे जाणंग छे, पण एक परमाणुना सर्व पर्यायने जाणे नही। केटलाक पर्यायने जाणे ते पण

असंख्यात समयें जाणे, अने केवलज्ञान ए छ द्रव्यना सर्व पर्यायने एक समयमां प्रत्यक्ष जाणे। माटे जो द्रव्यमां वक्तव्यपणो न होय तो श्रुतज्ञाने ग्रहण थाय नही अने जे ग्रंथाभ्यास, उपदेशादिक सर्व काम थाय छे तेतो एम नथी माटे द्रव्यमां वक्तव्यपणो छे।

अवक्तव्याभावे कहेता अवक्तव्यपणाने न मानियें तो अतीतपर्याय ते वस्तुमां कारणतानी परंपरामां रह्या छे, तथा अनागतपर्याय सर्व योग्यतामां रह्या छे ते सर्वनो अभाव थाय, ते वारें वस्तुमां वर्तमान पर्यायनी छति पामियें तेथी अतीत अनागतनो ज्ञान थाय नही, माटे अवक्तव्य स्वभाव अवश्य मानवो अने वर्तमान सर्व कार्य ते निराधार थइ जाय, अने द्रव्यमां एक समयमां अनंता कारण छे, ते अनंता कारणना अनंता कार्य धर्म छे, अने अनंता कार्यना अनंता कारण परंपरानुं ज्ञान ते केवलीने छे, अने वर्तमानकाले कारणधर्म तथा कार्यधर्मथी अनंतगुणा कारणकार्यनी योग्यरूप सत्ता छे ते कोइना अविभाग नथी, पण अविभागी जे ज्ञानादिक गुण तेमां अनंता कारणधर्म, अनंता कार्यधर्म ऊपजवानी योग्यतारूप सत्ता छे ते सर्व अवक्तव्यरूप छे।

[४६] सर्वेषां पदार्थानां ये विशेषगुणाश्चलनस्थित्यवगाहसहकारपूरणगलनचेतनादयस्ते परमगुणाः। शेषाः साधारणाः, साधारणासाधारणगुणास्तेषां तदनुयायिप्रवृत्तिहेतुः परमस्वभाव इत्यादयः सामान्यस्वभावः।

[४६] हवे परम स्वभावनुं स्वरूप कहे छे। सर्व जे धर्मास्तिकायादिक पदार्थ तेना विशेष गुण जे धर्मास्तिकायनो चलन सहकारीपणो तथा अधर्मास्तिकायनो स्थितिसहाय, आकाशास्तिकायनो अवगाहक तथा पुद्गलद्रव्यनो पूरणगलन, जीव द्रव्यनो चेतना लक्षण, ए सर्व द्रव्यना विशेष गुण कह्या। एम लक्षणरूप तथा द्रव्यांतरथी भिन्न पाडवानुं मूल कारण ते परम प्रकृष्ट गुण कहिये। ए प्रधान गुणने अनुयायी बीजा जे साधारण गुण ते गुण पंचास्तिकायमां पामिये। तेनां नाम अविनाशीपणो, अखंडपणो, नित्यत्वादिक ए पंचास्तिकायमां सरिखा छे ते माटे साधारण गुण, तथा पंचास्तिकायमां कोइक अस्तिकायमां पामिये, कोइकमां न पामीये ते गुणने साधारण-असाधारण कहिये, ते सर्व गुणने विषे विशेष गुणने अनुयायि प्रवर्ते छे ते प्रवर्ततनना कारण द्रव्यमां एक परमस्वभावपणो छे। ते परम स्वभावने परिणमने द्रव्यना सर्व गुण मुख्य गुणने अनुरागेज प्रवर्ते। ते परमस्वभाव सर्व द्रव्यने विषे छे। एटले तेर सामान्य स्वभाव कह्या। वली अनेकांतजयपताकामां कह्या छे।

[४७] तथास्तित्व-नास्तित्व-कर्तृत्व-भोक्तृत्वासर्वगतत्व-प्रदेशवत्त्वादिभावाः पुनः तत्त्वार्थटीकायां पुनरप्यादिग्रहणं कुर्वन् ज्ञापयत्यत्रानन्तधर्मवत्त्वं तत्राशक्ताः प्रस्तारयन्तु सर्वे धर्माः प्रतिपदं प्रवचनत्वेन पुंसा यथासम्भवमायोजनीयाः। क्रियावत्त्वं पर्यायोपयोगिता प्रदेशाष्टकनिश्चलता एवं प्रकाराः संति भूयांसः अनादिपरिणामिका भवन्ति जीवस्वभावा धर्मादिभिस्तु समाना इति विशेषः।

[४७] अर्थ- तेमज अस्तिपणो, नास्तिपणो, कर्तापणो, भोक्तापणो, गुणवंतपणो, असर्वव्यापिपणो, प्रदेशवंतपणो, इत्यादि अनंत स्वभाववंत द्रव्य छे। तेमज तत्त्वार्थ टीकामध्ये परिणामिक भावना भेद वखाणतां कह्यो छे। पुनरपि आदि शब्दना ग्रहण करतां एम जणावे छे जे वस्तु अनंतधर्मवंत छे ते सर्व विस्तारी शके नही तो पण द्रव्य द्रव्यने विषे प्रवचनना जाण पुरुषें जेम संभवे तेम धर्म जोडवा। तथा क्रियावंतपणो जे ज्ञानादिक गुण ते लोकालोक जाणवाने प्रति समयें प्रवर्ते छे। श्री भाष्यकारे ज्ञानादि गुण ते करण अने तेज गुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया जाणवी। तथा देखवो ते कार्य एम धर्मास्तिकायादिकना सरवे(सर्वे) गुण ते त्रण परिणतिये परिणामी छे, ते माटे पंचास्तिकाय ते अर्थक्रिया करे छे, ते क्रियावंतपणो जाणवो। सर्व पर्यायनो उपयोगोपणो ए पण जीव स्वभाव छे, तथा प्रदेशाष्टकनी निश्चलता ए पण जीवनो स्वभाव छे। तिहां धर्माधर्म अने आकाश ए त्रण अस्तिकायना प्रदेश अनादि अनंतकाल अवस्थितपणे छे। पुद्गलने चलपणो सदा सर्वदा छे, पुद्गलपरमाणु तथा पुद्गलस्कंध ते संख्यातो काल अथवा असंख्यातो काल एक क्षेत्रे रहे पण पछे अवश्य चल थाय।

तथा जीवद्रव्यने सकर्मा संसारीपणे क्षेत्रथी क्षेत्रांतर गमन, भवथी भवांतर गमनरूप चलता छे, ते जीवने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान अने सम्यक्चारित्रने प्रगटवे सर्व परभावभोगीपणो निवारवे आत्मस्वरूपनिरधारण स्वरूप भासनस्वरूप परिणमने करवे, स्वरूप एकत्वें, स्वधर्मकर्ता, स्वधर्मभोक्तापणे, सकल परभाव तजवे, निरावरण, निःसंग, निरामय, निर्द्वंद्व, निष्कलंक, निर्मल, स्वीय अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतचारित्र, अरूपी, अव्याबाध, परमानंदमयी, सिद्धात्मा, सिद्धक्षेत्रे रह्या ते सादि अनंतकाल स्थिर छे, सकल प्रदेश स्थिर छे अने संसारी जीव तेना आठ प्रदेश सदा सर्वदा स्थिर छे। ते आठ प्रदेश निरावरणे तथा आचारागंनी टीका शीलांगाचार्यकृतना लोकविजयाध्ययनने प्रथमोद्देशके-

तदनेन पञ्चदशविधेनापि योगेनात्मा अष्टौ प्रदेशान् विहाय तप्तभाजनोदकवदुद्वर्तमानैः सर्वैरेवात्मप्रदेशैः आत्मप्रदेशावष्टब्धाकाशस्थं कार्मणशरीरयोग्यं कर्मदलिकं यद् बध्नाति तत् प्रयोगकर्मेत्युच्यते।

एटले आ अष्ट प्रदेशे कर्म लागतां नथी।

इहां कोइ पुछे जे आठ प्रदेश निरावरण छेतो लोकालोक केम जाणता नथी? तिहां उत्तर जे आत्म द्रव्यनी जे गुणप्रवृत्ति ते सर्व प्रदेश मिले प्रवर्ते तो तेमां ए आठ प्रदेश अल्प छे तेथी आठ प्रदेशमां सर्व गुण निरावरण छे पण कार्य करी शकता नथी। जेम अग्निनुं अत्यंत सूक्ष्म कणीयुं होय तेमां दाहक, पाचक, प्रकाशक गुण छे पण अल्पता माटे दाहकादिकार्य करी शकतुं नथी।

वली कोइ पुछे जे ए अष्ट प्रदेश ते निरावरण केम रही शक्या? तेनुं उत्तर जे चल प्रदेश होय तेने कर्म लागे पण अचल प्रदेशने कर्म लागे नहीएम भगवतीसूत्र(मां) कह्युं छे।

जे एअइ, वेअइ, चलइ, फंदइ, घट्टइ, से बंधइ।

ए पाठ छे ते माटे जे चल होय ते बंधाय अने आठ प्रदेश तो अचल छे तेथी ए आठ प्रदेशने बंध नथी, तथा कार्याभ्यासे प्रदेश भेला थाय तेथी प्रदेशना गुण पण तिहां ते कार्य करवाने प्रवर्ते छे, तथा जे द्रव्यनो जे गुण जे प्रदेशे होय ते गुण ते प्रदेश मूकी अन्य क्षेत्रे जाय नही। तथा जीवना आठ प्रदेश सर्वथा निरावरण छे, बीजा प्रदेशे अक्षरनो अनंतमो भाग चेतना सर्वदा उघाडी छे ए रीते **संति** कहेता छे। घणा अनादि परिणामिकभाव ते **भवंति** कहेता होय। अनादि परिणामिकभाव छे ते जीवना भाव छे अने सप्रदेशादिक धर्मास्तिकाय प्रमुखने विषे समान छे एम जाणवो।

इत्यादिक विशेषःस्वभाव छे।

[४८] भिन्नभिन्नपर्यायप्रवर्तन-स्वकार्यकरणसहकारभूताः पर्यायानुगतपरिणामविशेषस्वभावाः ते च के?

१) पारिणामिकता, २) कर्तृता, ३) ज्ञायकता, ४) ग्राहकता, ५) भोक्तृता, ६) रक्षणता, ७) व्याप्यव्यापकता, ८) आधाराधेयता, ९) जन्यजनकता, १०) अगुरुलघुता, ११) विभूतकारणता, १२) कारकता, १३) प्रभुता, १४) भावुकता, १५) अभावुकता, १६) स्वकार्यता, १७) सप्रदेशता, १८) गतिस्वभावता, १९) स्थितिस्वभावता, २०) अवगाहकस्वभावता, २१) अखण्डता, २२) अचलता, २३) असङ्गता, २४) अक्रियता, २५) सक्रियता इत्यादि स्वीयोपकरणप्रवृत्तिनैमित्तिकाः। उक्तं च सम्मतौ-

आरोपोपचारेण यद्यदपेक्षते तन्न वस्तुधर्मोपाधितो भवनान्न चोपाधिर्वस्तुसत्ता इति।

[४८] अर्थ- हवे विशेष स्वभाव कहे छे। भिन्न भिन्न जे पर्याय तेनुं कार्य कारणपणे जे प्रवर्तन तेना सहकारभूत जे जे पर्यायानुगत परिणामि एवा जे स्वभाव ते विशेष स्वभाव कहियें। तेना अनेक भेद छे। ते श्रीहरिभद्रसूरिकृत शास्त्रवार्तासमुच्चयग्रंथमां कह्या छे ते कहे छे।

१ सर्व द्रव्यने पोताना गुण समय समयमां कार्य करवे प्रवर्ते ते भिन्न भिन्न परिणामे परिणमे ते सर्व पोताना गुण तेने कारणिक छे ते परिणामिकपणो कहियें।

तत्र कर्तृत्वं जीवस्य नान्येषाम् ,तिहां आत्मा कर्ता छे एटले कर्तापणो जीव द्रव्यने विषे छे।

अप्पा कत्ता विकत्ता य । इति उत्तराध्ययनवचनात्,

३ ज्ञायकता जाणपणानी शक्ति जीवने विषे छे। ज्ञानलक्षण जीव छे। ते माटे

गिण्हई कायिएणं इति आवश्यकनिर्युक्तिवचनात्।(आ.नि.७)

४ ग्राहकशक्ति पण जीवने छे। गृह्णातीति क्रियानो कर्ता जीव छे।

५ भोक्ताशक्ति पण जीवमां छे।

जो कुणइ सो भुंजइ। यः कर्ता स एव भोक्ता इति वचनात्।

१ रक्षणता, २ व्यापकता, ३ आधाराधेयता, ४ जन्यजनकता तत्त्वार्थवृत्ति मध्ये छे, तथा अगुरुलघुता, विभुता, कारणता, कार्यता, कारकता, ए शक्तिनी व्याख्या श्रीविशेषावश्यकें छे, भावुकता तथा अभावुकता शक्ति ते श्री हरिभद्रसूरिकृत भावुक नामे प्रकरण मध्यें कहि छे।

एम केटलीक शक्ति जैनना तर्कग्रन्थो जे अनेकांतजयपताका सम्मति प्रमुखमां छे, तथा ऊर्ध्व प्रचयशक्ति अने तिर्यक् प्रचयशक्ति, ओघशक्ति, समुचितशक्ति, ए सर्व सम्मतिग्रंथने विषे छे। तथा जे द्रिगुणी आत्मा माने ते सर्व धर्म शक्तिरूपज माने छे। तेणे दानादिकलब्धि अव्याबाध सुख प्रमुख शक्ति मानी छे।

इहां व्याख्यांतरे जे गुणकरण छे तेने कर्तादिकपणो ते सामर्थ्य छे, जाणवो देखवो ते कार्य छे, केटलीक शक्ति जीवमांज छे, अने केटलीक पंचास्तिकाय मध्ये छे।

तथा देवसेनकृत नयचक्रमध्ये जीवने अचेतन स्वभाव, मूर्त स्वभाव, तथा पुद्गल परमाणुने चेतन स्वभाव, अमूर्त स्वभाव कह्या ते असत् छे। एतो आरोपणपणे कोइक कहे ते कथनमात्र जाणवो। पण ए वात छतीमां नथी। जे धर्म आरोपें तथा उपचारें गवेषाय ते वस्तुनो धर्म नथी। उपाधिथी थाय छे, ते माटे जे उपाधि ते वस्तुनी सत्ता नथी एम धारवुं।

[४९] धर्मास्तिकाये अमूर्ताचेतनाक्रियगतिसहायादयो गुणाः अधर्मास्तिकाये अमूर्ताचेतनाक्रिय-स्थितिसहकारादयो गुणाः। आकाशास्तिकाये अमूर्ताचेतनाक्रियावगाहनादयो गुणाः। पुद्गलास्तिकाये मूर्ताचेतनसक्रियपूरणगलनादयो वर्णगन्धरसस्पर्शादयो गुणाः। जीवास्तिकाये ज्ञानदर्शनचारित्रवीर्याऽव्याबाधामूर्ताऽगुरुलघ्वनवगाहादयो गुणाः। एवं प्रतिद्रव्यं गुणानामनन्तत्वं ज्ञेयम्।

[४९] अर्थ- धर्मास्तिकायना गुण चार १ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ गतिसहाय इत्यादि अनंतगुण छे। अधर्मास्तिकायना गुण चार १ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ स्थितिसहाय, इत्यादि अनंतगुण छे। आकाशास्तिकायना गुण चार १ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ अवगाहनादिक अनंतगुण छे। पुद्गलास्तिकायना गुण चार छे १ रूपी, २ अचेतन, ३ सक्रिय, ४ पूरणगलन।१ वर्ण, २ गंध, ३ रस, ४ स्पर्श इत्यादिक गुण अनंता छे। जीवास्तिकायने विषे १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ वीर्य, ५ अव्याबाध, ६ अरूपी, ७ अगुरुलघु, ८ अनवगाहादिक अनंतगुण छे, ए रीते अनंता गुण जाणवा।

[५०] पर्यायाः षोढा द्रव्यपर्याया असङ्ख्येयप्रदेशसिद्धत्वादयः। १ द्रव्यव्यञ्जनापर्यायाः द्रव्याणां विशेषगुणाश्चेतनादयश्चलनसहायादयश्च, २ गुणपर्याया गुणाविभागादयः, ३ गुणव्यञ्जनपर्याया ज्ञायकादयः कार्यरूपा मतिज्ञानादयो ज्ञानस्य, चक्षुर्दर्शनादयो दर्शनस्य, क्षमामार्दवादयश्चारित्रस्य, वर्णगन्धरसस्पर्शादयो मूर्तस्य इत्यादि ४ स्वभावपर्याया अगुरुलघुविकाराः ते च द्वादशप्रकाराः षड्गुणहानिवृद्धिरूपा अवाग्गोचराः। एते पञ्च पर्यायाः सर्वद्रव्येषु, विभावपर्याया जीवे नरनारकादयः। पुद्गले द्व्यणुकतोऽनन्ताणुकपर्यन्ताः स्कन्धाः।

[५०] अर्थ- हवे नयज्ञान करवानो अधिकार कहे छे। तिहां द्रव्यास्तिकायना मूल बे भेद छे। १ शुद्ध द्रव्यास्तिक, २ अशुद्धद्रव्यास्तिक, अने देवसेनकृत पद्धतिमां द्रव्यास्तिकना दश भेद कर्या छे ते सर्व ए बे भेद मध्ये समाय छे, तथा ते सामान्य स्वभावमां समाणा छे ते माटे इहां न वखाण्या।

हवे पर्यायना छ भेद कहे छे। तिहां प्रथम १ जे द्रव्यने विषे एकत्वपणे रह्या जे जीवादिकना असंख्याता प्रदेश तथा आकाशना अनंता प्रदेश ए द्रव्य पर्याय कहिये।

२ सिद्धत्वादिक अखंडत्वादिक तथा द्रव्यनो व्यंजक कहेता प्रगटपणो जे माने छे ते द्रव्यव्यंजनपर्याय कहियें। द्रव्यनो विशेष गुण जे अन्य द्रव्यमां नथी तेने विशेष गुण कहिये। ते जीवने चेतनादिक अने धर्मास्तिकायमां चलणसहकार तथा अधर्मास्तिकायमां स्थिरसहकार, आकाशमां अवगाहदान, पुद्गलमां पूरणगलनरूप ए सर्व द्रव्यनी भिन्नताने प्रगट करे छे ते माटे ए धर्मने व्यंजनपर्याय कहिये।

३ एक गुणना अविभाग अनंता छे तेनो पिंडपणो ते गुणपर्याय कहिये।

४ गुणव्यंजन पर्याय ते ज्ञाननो जाणंगपणो तथा चारित्रनो स्थिरतापणो इत्यादिक अथवा ज्ञानगुणना भेदांतर ज्ञानना भेद जे मतिज्ञानादिक पांच तथा दर्शनगुणना चक्षुर्दर्शनादिक भेद तथा चारित्रगुणना क्षमादिक भेद, पुद्गलनो रूपीगुण तेना भेद वर्ण, गंध, रस, स्पर्श संस्थानादिक। अरूपी गुणना *अवन्ने, अगंधे, अरसे, अफासे*, इत्यादिक चार चार जाणवा ते गुणव्यंजनपर्याय।

५ स्वभाव पर्याय ते वस्तुनो कोइक स्वभावज एवो छे जे अगुरुलघुपणे छ प्रकारनी वृद्धि तथा छ प्रकारनी हानि एवी रीते बार प्रकारे परिणमे छे। इहां कोइ प्रेरकनो योग नथी, वस्तुने मूल धर्मनो हेतु छे। एनुं स्वरूप पूरूं वचनगोचर नथी। अनुभव गम्य नथी। केमके श्रीठाणांगसूत्रनी टीका मध्ये श्रुतज्ञान वृद्धिना सात अंग छे। तिहां प्रथम सूत्र अंग, बीजुं निर्युक्ति अंग,३ भाष्य अंग, ४ चूर्णिवालो सूत्रादि सर्वना अर्थ कहे छे, ५ टीका व्याख्या निरन्तर ए पांच अंग तो ग्रंथरूप छे, तथा छट्ठो अंग परंपरारूप छे तथा सातमुं अंग अनुभव ए साते कारणे विनय सहित भणतां सुणतां थकां, साचा अर्थ पामीने आत्मानुं निर्मल ज्ञान थाय। श्री भगवतीसूत्रे गाथा-

सुत्तत्थो खलु पढमो बीओ निज्जुत्तिमिसिओ भणिओ।
तइयो अ निरवसेसो, एस विहि होइ अणुओगे॥ (भ.सू.९४)

ए पांच पर्याय कह्या ते सर्व द्रव्य मध्ये छे।

६ विभाव पर्याय ते जीव तथा पुद्गल मध्येज छे, ते विभाव पर्याय जीवने नरनारकीपणुं पामवुं ते तथा पुद्गलनो द्व्यणुक त्र्यणुकादि खंधनो मिलवुं, अनंतागुण पर्यंत अनंतपुद्गल स्कंधरूप ते विभावपर्याय कहियें।

[५१] मेर्वाद्यनादिनित्यपर्यायाः चरमशरीरत्रिभागन्यूनावगाहनादयः सादिनित्यपर्यायाः सादिसान्तपर्याया भवशरीराध्यवसायादयोऽनादिसान्तपर्याया भव्यत्वादयः। तथा च निक्षेपाः सहजरूपा वस्तुनः पर्याया एवं *चत्तारो वत्थुपज्जाया* इति भाष्यवचनान्नामयुक्ते प्रतिवस्तुनि निक्षेपचतुष्टयं युक्तम् उक्तं चानुयोगद्वारे-

जत्थ य जं जाणिज्जा, निक्खेवं निक्खिवे निरवसेसं।

जत्थ य नो जाणिज्जा, चउक्कयं निक्खिवे तत्थ॥ (अ.द्वा.सू.१)

तत्र नामनिक्षेपः स्थापनानिक्षेपः द्रव्यनिक्षेपः भावनिक्षेपः। तत्र नामनिक्षेपो द्विविधः- सहजः साङ्केतिकश्च। स्थापनाऽपि द्विविधा-सहजा आरोपजा च। द्रव्यनिक्षेपो द्विविधः-आगमतो नोआगमतश्च। तत्र आगमतः तदर्थज्ञानानुपयुक्तो नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीरतद्व्यतिरिक्तभेदात्त्रिधा। भावनिक्षेपो द्विविधः- आगमतो नोआगमतश्च तज्ज्ञानोपयुक्तः तद्गुणमयश्च वस्तुस्वधर्मयुक्तम्। तत्र निक्षेपा वस्तुनः स्वपर्याया धर्मभेदाः।

[५१] अर्थ- पुद्गलनुं मेरुप्रमुख ते अनादि नित्य पर्याय छे। जीवनी सिद्धावस्था, सिद्धावगाहनादिक, ते सादि नित्य पर्याय छे, तथा भाव अने शरीर तथा अध्यवसाय ए त्रण प्रकारना योगस्थान जे वीर्यना क्षयोपशमथी ऊपना तेमां कषायस्थान जे चेतननो क्षयोपशम कषायना उदयथी मिल्या अने संयमस्थान जे चारित्रनो क्षयोपशम परिणमी जे चेतनादिक गुण ए सर्व अध्यवसायस्थानक ते सादि सांत पर्याय छे। तथा सिद्धिगमन योग्यता धर्म ते भव्यपणो ए पर्याय ते अनादि सांत छे, जे सिद्धत्वपणो प्रगटे भव्यत्वपर्यायनो विनाश छे ते माटे अनादिकालनो छे पण अंत थवा सहित छे, माटे अनादि सांतपर्याय छे, एम पर्याय अनेक जाणवा।

तथा वस्तुमां सहजना जे चार निक्षेपा छे, ते पण वस्तुना स्वपर्याय छे, ते श्रीविशेषावश्यकनी भाष्यमध्ये कह्यो छे। ***चत्तारो वत्थुपज्जाया*** ए वचन छे ते माटे स्वपर्याय कहिये। वली श्री अनुयोगद्वारसूत्रमां कह्यो छे-जिहां जे वस्तुना जेटला निक्षेपा जाणिये तिहां ते वस्तुना तेटला निक्षेपा करिये। कदाचित् वधता निक्षेपा भासनमां न आवे तोपण १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, ४ भाव ए चार निक्षेपा तो अवश्य करवा।

तेमां नामनिक्षेपना बे भेद छे-१ सहजनाम, २ सांकेतिक नाम, ते कोइनो कर्यो नाम। तथा स्थापनाना बे भेद छे-१ सहजस्थापना ते वस्तुनी अवगाहनारूप, २ आरोपस्थापना ते आरोपथी थइ माटे कृत्रिम कहिये, आरोपजा कहिये। हवे द्रव्य निक्षेपाना बे भेद छे ते कहे छे, १ आगमथी द्रव्यनिक्षेपो ते जे पुरुष स्वरूपने जाणे पण हमणां ते उपयोगे नथी ते आगमद्रव्यनिक्षेप। जे वस्तु ते गुण सहित छे पण हमणां तेपणे वर्तता नथी तेने नोआगम कहिये तेहना त्रण भेद छे-१ ज्ञशरीर जेहना हता पण मरण पाम्या तेथी तेनुं शरीर जे ऋषभदेवना शरीरनी भक्ति श्रीजंबूद्वीपपन्नत्तिमां छे, २ भव्यशरीर ते हमणां तो गुणमय नथी पण गुणमय थशे, जेम अयमत्तामुनि, ए भव्यशरीर जाणवो, ३ तद्व्यतिरिक्त जे ते गुणे वर्ते छे पण ते उपयोगे हमणां वर्तता नथी।

भावनिक्षेपाना बे भेद १ आगमथी भावनिक्षेपो ते आगमना अर्थनो जाण वली ते उपयोगें वर्ते छे, २ नोआगमथी भावनिक्षेपो ते जेपणे ज्ञ वर्ते छे तेज रूप छे, ए रीते निक्षेपा कहेवा।

ए चार निक्षेपामां पहेला त्रण निक्षेपा ते कारणरूप छे अने चोथो भावनिक्षेपो ते कार्यरूप छे। ते भावनिक्षेपाने निपजावतां पहेला त्रण निक्षेपा प्रमाण छे नहीं तो अप्रमाण छे। पहेला त्रण निक्षेपा द्रव्यनय छे। एक भावनिक्षेपो ते भावनय छे। भावनिक्षेपाने अणनिपजावतां एकली द्रव्यनी प्रवृत्ति ते निष्फल छे। एम श्री आचारांगनी टीकामां लोकविजय अध्ययने कह्युं छे ते लखीये छैये।

फलमेव गुणः फलगुणः फलं च क्रिया भवति तस्याश्च क्रियायाः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररहिताया ऐहिकामुष्मिकार्थं प्रवृत्ताया आनात्यन्तिकोऽनैकान्तिको भवेत्, फलं गुणोऽप्यगुणो भवति सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्रक्रिया यास्त्वैकान्तिकानाबाधसुखाख्यसिद्धिगुणोऽव्याप्यते। एतदुक्तं भवति- सम्यग्दर्शनादिकैव क्रियासिद्धिः फलगुणेन फलवत्यपरा तु सांसारिकसुखफलाभ्यास एव फलाध्यारोपान्निष्फलेत्यर्थः।

एटले रत्नत्रयी परिणमन विना जे क्रिया करवी ते थकी संसारीक सुख थाय ते क्रिया निष्फल छे ए पाठ छे माटे भावनिक्षेपाना कारण विना पहेला त्रणे निक्षेपा निष्फल छे। निक्षेपा तो मूलगी वस्तुना पर्याय छे द्रव्यनो स्वधर्मज छे।

[५२] नयास्तु पदार्थज्ञाने ज्ञानांशाः। तत्रानन्तधर्मात्मके वस्तुन्येकधर्मोन्नयनं ज्ञाननयः तथा रत्नाकरे-*नीयते येन श्रुताख्यप्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांशस्तदितरांसौदासीन्यतः स प्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः*। स्वाभिप्रेतादंशापलापी पुनर्नयाभासः। स व्याससमासाभ्यां द्विप्रकारो व्यासतोऽनेकविकल्पः, समासतो द्विभेदो द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकः। तत्र द्रव्यार्थिकश्चतुर्धा नैगमसङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रभेदात्। पर्यायार्थिकस्त्रिधा शब्दसमभिरूढैवम्भूतभेदात्।

[५२] अर्थ- जे नय छे ते पदार्थना ज्ञानने विषे ज्ञानना अंश छे। तिहां नयनुं लक्षण कहे छे। अनंत धर्मात्मक जे वस्तु एटले जीवादिक एक पदार्थमां अनंता धर्म छे तेनो जे एक धर्म गवेष्यो तो पण अन्य कहेता बीजा अनंता धर्म तेमां रह्या छे तेनो उच्छेद नही अने ग्रहण पण नही। एक धर्मनी मुख्यता करवी ते नय कहियें। ते नयना व्यास कहेता विस्तारथी अनेक भेद छे अने समास कहेता संक्षेपथी बे भेद छे -द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक। ते रत्नाकरावतारिका ग्रंथथी लखीये छैये।

द्रवति द्रोष्यति अदुद्रवत् तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यं तदेवार्थः सोऽस्ति यस्य विषयत्वेन स द्रव्यार्थिकः।

जे वर्तमान पर्यायने द्रवे छे अने आगामिककाले द्रवशे तथा अतीतकाले द्रवतो हतो ते द्रव्य कहियें तेज छे अर्थ प्रयोजन विषयपणे जेने ते द्रव्यार्थिक कहियें। एटले पर्याय ते जन्य अने द्रव्य ते जनक कह्यो तथा द्रव्य ते ध्रुव अने पर्याय ते उत्पाद विनाशरूप छे। उक्तं च-

पर्येति उत्पादविनाशौ प्राप्नोतीति पर्यायः, स एवार्थः सोऽस्ति यस्यासौ पर्यायार्थिकः।

जे उपजवा विणसवानो **परि** कहेता नवानवापणे **एति** कहेता पामे तेज अर्थ प्रयोजन तेने पर्यायार्थिक कहियें। ते द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक ए बे धर्मने द्रव्य तथा पर्याय कहियें।

इहां कोइक पुछे जे त्रीजो गुणार्थिक केम कहेता नथी? ते वली रत्नाकरावतारिका मध्ये कह्यो छे-

गुणस्य पर्याये एवान्तर्भूतत्वात् तेन पर्यायार्थिकेनैव तत्सङ्ग्रहात्।

जे गुण ते पर्यायने विषे अंतर्भूत छे ते पर्यायार्थिक मध्येज संग्रह्यो छे। ते पर्याय बे भेदे छे, एक सहभावि बीजो क्रमभावि। तेमां सहभावि ते गुण छे ते पर्यायने विषे अंतर्भूत छे, तिहां द्रव्यपर्यायथी व्यतिरिक्त सामान्य विशेष ए बे धर्म छे माटे सामान्य विशेष बे नय वत्ता केम कहेता नथी? एम कोइ पुछे तेने उत्तर जे ***द्रव्यपर्यायाभ्यां व्यतिरिक्तयोः सामान्यविशेषयोरप्रसिद्धेः। तथाहि द्विप्रकारं सामान्यमुक्तमूर्ध्वतासामान्यं तिर्यक्सामान्यं च। तत्रोर्ध्वसामान्यं द्रव्यमेव, तिर्यक्सामान्यं तु प्रतिव्यक्ति सदृशपरिणामलक्षणं व्यञ्जनपर्याय एव।*** ए पाठथी ऊर्ध्वसामान्य ते द्रव्यनो धर्म छे अने तिर्यक्सामान्य ते पर्यायधर्म छे।

विशेषोऽपि वैसादृश्यविवर्तलक्षणं पर्याय एवान्तर्भवति नैताभ्यामधिकनयावकाशः।

विशेषपणे अनेक रीतें वर्तवानो लक्षण छे ते पर्यायने विषे अंतर्भाव छे ते माटे भिन्न नयनो अवकाश नथी। ए बे नय मध्येज अंतर्भाव छे। तेमां वली द्रव्यार्थिकना चार भेद छे १ नैगम, २ संग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजुसूत्र तथा पर्यायार्थिकना त्रण भेद छे १ शब्द, २ समभिरूढ, ३ एवंभूत।

[५३] विकल्पान्तरे ऋजुसूत्रस्य पर्यायार्थिकताप्यस्ति। स नैगमस्त्रिप्रकार आरोपांशङ्कल्पभेदाद् विशेषावश्यके तूपचारस्य भिन्नग्रहणात् चतुर्विधः। न एके गमा आशयविशेषा यस्य स नैगमः। तत्र चतुःप्रकार आरोपो द्रव्यारोप-गुणारोप-कालारोप-कारणाद्यारोपभेदात्। तत्र गुणे द्रव्यारोपः पञ्चास्तिकायवर्तनागुणस्य कालस्य द्रव्यकथनं एतद्गुणे द्रव्यारोपः। ज्ञानमेवात्मा अत्र द्रव्ये गुणारोपः। वर्तमानकाले अतीतकालारोपोऽद्य दीपोत्सवे वीरनिर्वाणम्, वर्तमाने अनागत-कालारोपोऽद्यैव पद्मनाभनिर्वाणम्, एवं षड्भेदाः। कारणे कार्यारोपो बाह्यक्रियाया धर्मत्वं धर्मकारणस्य धर्मत्वेन कथनम्। सङ्कल्पो द्विविधः-स्वपरिणामरूपः कार्यान्तरपरिणामश्च। अंशोऽपि द्विविधो-भिन्नोऽभिन्नश्चेत्यादि शतभेदो नैगमः।

[५३] अर्थ- वली विकल्पांतरे ऋजुसूत्र ते पर्यायार्थिकमां पण कह्यो छे। केमके ए विकल्परूप नय छे ते माटे। तेमां नैगमना त्रण भेद छे। १ आरोप, २ अंश, ३ संकल्प तथा विशेषावश्यकमां चोथो भेद पण उपचारपणे कहे छे। नथी एक गमो अभिप्राय जेनो ते नैगमनय कहिये। एटले अनेक आशयी छे। ते नैगमनयना चार भेद छे ते मध्ये आरोपना चार प्रकार छे। १ द्रव्यारोप, २ गुणारोप, ३ कालारोप, ४ कारणाद्यारोप।

१ तिहां गुणादिकने विषे द्रव्यपणो मानवो ते द्रव्यारोप। जेम वर्तना परिणाम ते पंचास्तिकायनो परिणमन धर्म छे तेने कालद्रव्य कही बोलाव्यो, ए काल ते भिन्न पिंडरूप द्रव्य नथी पण आरोपे द्रव्य कह्यो छे माटे द्रव्यारोप। अने द्रव्यने विषे गुणनो आरोप करवो-

जेम ज्ञानगुण छे पण ज्ञान तेज आत्मा एम ज्ञानने आत्मा कह्यो ते गुणनो आरोप कर्यो माटे गुणारोप। तथा जेम श्रीवीरनिर्वाण थया तेने तो घणो काळ गयो छे पण आज दीवालीना दीवसे वीरनो निर्वाण छे एम कहेवुं ए वर्तमानमां अतीतनो आरोप कर्यो। अथवा आज श्रीपद्मनाभ प्रभुनो निर्वाण छे, एम कहेवुं तेम वर्तमानने विषे अनागत कालनो आरोप छे एवी रीतें। वली अतीतना बे भेद छे, तथा एवीज रीते अनागतना बे भेद छे। अने वर्तमानना बे भेद उपर कह्या ते सर्व मली कालारोपना छ भेद जाणवा।

वली कारण विषे कार्यनो आरोप करवो ते कारण चार छे। १ उपादान कारण, २ निमित्त कारण, ३ असाधारण कारण, ४ अपेक्षा कारण। तेमां बाह्यद्रव्यक्रिया ते साध्यसापेक्षवालाने धर्मनुं निमित्त कारण छे, तो पण एने धर्म कहियें। तेमज श्रीतीर्थंकर मोक्षनुं कारण छे तेथी तेने *तारयाणं* कह्यो ते कारणने विषे कर्तापणानो आरोप कर्यो, एम आरोपना अनेक प्रकार छे ते कारणाद्यारोप।

वली संकल्पनैगमना बे भेद छे, १ स्वपरिणामरूप जे वीर्यचेतनानो जे नवो नवो क्षयोपशम ते ते लेवो। बीजो कार्यांतरे नवे नवे कार्ये नवो नवो उपयोग थाय ते, ए बे भेद थया।

तथा अंशनैगमना पण बे भेद छे, १ भिन्नांश ते जूदो अंश स्कंधादिकनो, बीजो अभिन्नांश ते जे आत्माना प्रदेश तथा गुणना अविभाग इत्यादिक। ए सर्व नैगमनयना भेद जाणवा। एटले नैगमनय कह्यो।

[५४] सामान्यवस्तुसत्तासङ्ग्राहकः सङ्ग्रहः। स द्विविधः- सामान्यसङ्ग्रहो विशेषसङ्ग्रहश्च। सामान्यसङ्ग्रहो द्विविधो-मूलत उत्तरतश्च। मूलतोऽस्तित्वादिभेदतः षड्विधः, उत्तरतो जातिसमुदायभेदरूपः, जातितो गवि गोत्वं, घटे घटत्वं, वनस्पतौ वनस्पतित्वम्। समुदायतो सहकारात्मके वने सहकारवनं, मनुष्यसमुहे मनुष्यवृन्द इत्यादिसमुदायरूपः। अथवा द्रव्यमिति सामान्यसङ्ग्रहो जीव इति विशेषसङ्ग्रहः। तथा विशेषावश्यके-

संगहणं संगिण्हइ संगिण्हंते व तेण जं भेया।

तो संगहो संगिहिय पिंडियत्थं वउज्जस्स॥ (वि.आ.भा.२२०३)

सङ्ग्रहणं सामान्यरूपतया सर्ववस्तुनामाक्रोडनं सङ्ग्रहः, अथवा सामान्यरूपतया सर्वं गृह्णातीति सङ्ग्रहः, अथवा सर्वेऽपि भेदाः सामान्यरूपतया सङ्गृह्यन्ते अनेनेति सङ्ग्रहः, अथवा सङ्गृहीतं पिण्डितं तदेवार्थोऽभिधेयं यस्य तत् सङ्गृहीतपिण्डितार्थमेवंभूतं वचो यस्य सङ्ग्रहस्येति सङ्गृहीतपिण्डितम्। तत् किमुच्यते? इत्याह-

संगहीयमागहीयं संपिंडियमेगजाइमाणीयं।

संगहीयमणुगमो वा वइरे गोपिंडियं भणियं॥(वि.आ.भा.२२०४)

सामान्याभिमुख्येन ग्रहणं सङ्गृहीतसङ्ग्रह उच्यते, पिण्डितं त्वेकजातिमानीतमभिधीयते पिण्डितसङ्ग्रहः। अथ सर्वव्यक्तिष्वनुगतस्य सामान्यस्य प्रतिपादनमनुगमसङ्ग्रहोऽभिधियते, व्यतिरेकस्तु तदितरधर्मनिषेधाद् ग्राह्यधर्मसङ्ग्रहकारकं व्यतिरेकसङ्ग्रहो भण्यते यथा जीवो जीव इति निषेधे जीवसङ्ग्रह एव जातः। अतः सङ्ग्रहपिण्डितार्थानुगमव्यतिरेकभेदाच्चतुर्विधः। अथवा स्वसत्ताख्यं महासामान्यं सङ्गृह्णाति इतरस्तु गौत्वादिकमवान्तरसामान्यं पिण्डितार्थमभिधीयते महासत्तारूपमवान्तरसत्तारूपम्।

एगं निच्चं निरवयवमक्किय सव्वगं च सामन्नं।(वि.आ.भा.२२०६)

एतन्महासामान्यं गवि गोत्वादिकमवान्तरसामान्यमिति सङ्ग्रहः॥

[५४] अर्थ- हवे संग्रहनय कहे छे। सामान्ये मूल सर्व द्रव्य व्यापक नित्यत्वादिक सत्तापणे रह्या जे धर्म तेनो जे संग्रह करे ते संग्रह कहियें। तेना बे भेद छे १ सामान्य संग्रह। २ विशेष संग्रह। वली सामान्य संग्रहना बे भेद छे १ मूल सामान्य संग्रह, २ उत्तर सामान्य संग्रह। वली मूल सामान्य संग्रहना अस्तित्वादिक छ भेद ते पूर्वे कह्या छे। तथा उत्तर सामान्यना बे भेद छे १ जातिसामान्य, २ समुदायसामान्य। तिहां गायना समुदायमां गोत्वरूप जाति छे तथा घटसमुदायमां घटत्वपणो अने वनस्पतिने विषे वनस्पतिपणो ते जातिसामान्य कह्यो। अने आंबाना समूहने विषे अंबवन कहे तथा मनुष्यना समूहमां मनुष्य ग्रहण थाय ते समुदाय सामान्य। ए उत्तर सामान्य ते चक्षुदर्शन तथा अचक्षुदर्शनने ग्राहीक छे, अने मूल सामान्य ते अवधिदर्शन तथा केवल दर्शनथी ग्रहवाय छे। अथवा १ सामान्यसंग्रह, २ विशेषसंग्रह। तिहां छ द्रव्यना समुदायने द्रव्य कह्युं ए सामान्य संग्रह। इहां सर्वनो ग्रहण थयो छे। अने जीवने जीवद्रव्य कही अजीव द्रव्यथी जूदो भेद पाड्यो ए विशेष संग्रह। ए विशेष संग्रहनो विस्तार घणो छे।

तथा विशेषावश्यकथी संग्रहनयना चार भेद ते लखियें छैयें। मूल पाठमां कहेली गाथानो अर्थ छे।

संग्रहणं कहेता एकठो एकवचन मध्ये एक अध्यवसाय उपयोगमां समकालें ग्रहेवुं सामान्यरूपपणे सर्व वस्तुनो आक्रोडण ग्रहण करवो ते संग्रह कहियें अथवा सामान्यरूपपणे सर्व संग्रह करे ते संग्रह कहिये, अथवा जे थकी सर्व भेद सामान्यपणे ग्रहियें तेने संग्रह कहियें, अथवा **संगृहीतं पिंडितं** कहेता जे वचनथी समुदाय अर्थ ग्रहवाय ते संग्रह वचन कहियें। तेना चार भेद छे। १ संगृहीत संग्रह, २ पिंडित संग्रह, ३ अनुगम संग्रह, ४ व्यतिरेक संग्रह।

१ सामान्यपणे वहेंचण विना ग्रहण थाय एवो जे उपयोग अथवा एवुं वचन अथवा एवो धर्म कोइपण वस्तुने विशे होय तेने संगृहीत संग्रह कहियें।

२ अने एकजाति माटे एकपणो मानिये ते एकमध्ये सर्वनो ग्रहण थाय जेम-*एगे आया,एगे पुग्गले* इत्यादि वस्तु अनंती छे पण जाति एक माटे ग्रहवाय छे ते बीजो पिंडित संग्रह कहियें।

३ जे अनेक जीवरूप अनेक व्यक्ति छे ते सर्वमां पामियें, जेम सच्चिन्मय आत्मा एटले सर्व जीव तथा सर्व प्रदेश, सर्व गुण ते जीवनां लक्षण छे। एने अनुगम संग्रह कहियें।

४ तथा जेने ना कहेवे तेथी इतरनो सर्व संग्रहपणे ज्ञान थाय ते जेम अजीव छे तेवारें जे जीव नही ते अजीव कहियें एटले कोइक जीव छे एम व्यतिरेक वचने ठेर्यो तथा उपयोगें जीवनो ग्रहण थाय छे ते व्यतिरेक संग्रह कहियें।

अथवा संग्रहनय बे भेदें कहेवाय छे? महासत्तारूप, २ अवांतरसत्तारूप। ए रीतें पण संग्रहनो स्वरूप कह्यो छे।

सदिति भणियम्मि जम्हा, सव्वत्थाणुप्पवत्तए बुद्धी।

तो सव्वं सत्तामत्तं[1] नत्थि तदत्थंतरं किंचि॥(वि.आ.भा.२२०७)

यद्यस्मात् सदित्येवं भणिते सर्वत्र भुवनत्रयान्तर्गतवस्तुनि बुद्धिरनुप्रवर्तते प्रधावति, न हि तत् किमपि वस्तु अस्ति यत् सदित्युक्ते झगिति बुद्धौ न प्रतिभासते तस्मात् सर्वं सत्तामात्रम्, न पुनः अर्थान्तरं तत् श्रुतसामर्थ्याद् यत् सङ्ग्रहेन सङ्गृह्यते तेन परिणमनरूपत्वादेव सङ्ग्रहस्येति।

एटले त्रणे भुवनमां एहवी वस्तु कोइ नथी जे संग्रहनयने ग्रहणमां आवती नथी जे जे वस्तु छे ते सर्व संग्रहनयमां ग्रहवाणी ज छे ए संग्रहनय कह्यो।

[५५] सङ्ग्रहगृहीतवस्तुभेदान्तरेण विभजनं व्यवहरणं प्रवर्तनं वा व्यवहारः। स द्विविधः शुद्धोऽशुद्धश्च। शुद्धो द्विविधः- वस्तुगतव्यवहारो धर्मास्तिकायादिद्रव्याणां स्वस्वचलनसहकारादिजीवस्य लोकालोकादिज्ञानादिरूपः स्वसम्पूर्णपरमात्मभावसाधनरूपो गुणसाधकावस्थारूपो गुणश्रेण्यारोहादिसाधनशुद्धव्यवहारः। अशुद्धोऽपि द्विविधः- सद्भूतासद्भूतभेदात्। सद्भूतव्यवहारो ज्ञानादिगुणः परस्परं भिन्नः, असद्भूतव्यवहारः कषायात्मादि मनुष्योऽहं देवोऽहम्। सोऽपि द्विविधः- संश्लेषिताशुद्धव्यवहारः शरीरं मम अहं शरीरी। असंश्लेषितासद्भूतव्यवहारः पुत्रकलत्रादि। तौ च उपचरितानुपचरितव्यवहारभेदाद् द्विविधौ तथा च विशेषावश्यके-

ववहरणं ववहरए स तेण वऽवहीरए व सामन्नं।

ववहारपरो व जओ विसेसओ तेण ववहारो॥(वि.आ.भा.२२१२)

व्यवहरणं व्यवहारः, व्यवहरति स इति वा व्यवहारः, विशेषतो व्यवह्रियते निराक्रियते सामान्यं तेनेति व्यवहारः, लोको व्यवहारपरो वा विशेषतो यस्मात्तेन व्यवहारः। न व्यवहारात् स्वस्वधर्मप्रवर्तितेन ऋते सामान्यमिति स्वगुणप्रवृत्तिरूपव्यवहारस्यैव वस्तुत्वं तमन्तरेण तद्धा(दभा)वात्। स द्विविधो विभजनप्रवृत्तिभेदात्। प्रवृत्तिव्यवहार-स्त्रिविधः-वस्तुप्रवृत्तिः, साधनप्रवृत्तिः, लौकिकप्रवृत्तिश्च। साधनप्रवृत्तिस्त्रेधा-लोकोत्तर-लौकिक-कुप्रावचनिकभेदाद् इति व्यवहारनयः श्रीविशेषावश्यके।

[५५] अर्थ- हवे व्यवहारनयनी व्याख्या करे छे। संग्रहनयें ग्रहित जे वस्तु तेने भेदांतरे विभजन कहेता वहेंचवुं ते व्यवहारनय। जेम द्रव्य एवुं सामान्य नाम कह्युं तेमां वली वेंहचण करियें जे द्रव्यना बे भेद छे। जीव द्रव्य, अजीव द्रव्य, वली तेमां पण वेहेंचण करिये जे जीवना बे भेद एक सिद्ध बीजा संसारी एम वेहेंचण करवी ते सर्व व्यवहारनयनो स्वभाव जाणवो।

अथवा व्यवहार कहेता प्रवर्तन ते व्यवहारनय। तेना बे भेद छे। शुद्ध व्यवहार, अशुद्ध व्यवहार। वली शुद्ध व्यवहारना बे भेद छे। सर्व द्रव्यनी स्वरूपरूप शुद्धप्रवृत्ति जेम धर्मास्तिकायनी चलणसहायता तथा अधर्मास्तिकायनी स्थिरसहायता तथा जीवनी ज्ञायकता इत्यादिकने वस्तुगत शुद्ध व्यवहार कहिये। द्रव्यनो उत्सर्ग निपजवा माटे रत्नत्रयी शुद्धता गुणस्थाने श्रेणीआरोहणरूप ते साधनशुद्ध व्यवहार कहिये।

---

१. तम्मत्तं इति पाठो मुद्रितः।

वली अशुद्ध व्यवहारना बे भेद छे। सद्भूत, असद्भूत। तेमां जे क्षेत्रे अवस्थाने अभेदें रह्या जे ज्ञानादि गुण तेने परस्पर भेदें कहेवा ते सद्भूतव्यवहार।

तथा जेम क्रोधी हुं, मानी हुं, अथवा देवता हुं, मनुष्य हुं, इत्यादि देवतापणो ते हेतुपणे परिणमतां ग्रह्या जे देवगतिविपाकी कर्म तेने उदयरूप परभाव छे ते पण यथार्थ ज्ञान विना भेदज्ञानशून्य जीवने एक करी माने छे ते अशुद्ध व्यवहार कहिये। तेना बे भेद छे। संश्लेषित अशुद्ध व्यवहार ते जे शरीर मारुं हुं शरीरी इत्यादिक संश्लेषित असद्भूत व्यवहार। असंश्लेषित अशुद्ध व्यवहार ते आ पुत्र मारो, धनादिक मारा, एम कहेवुं ते असंश्लेषित असद्भूत व्यवहार। तेना उपचरित, अनुपचरित ए बे भेद जाणवा।

तथा विशेषावश्यक महाभाष्यमां कह्युं छे जे व्यवहारनयना मूल बे भेद छे। एक वेंहेचणरूप व्यवहार बीजो प्रवृत्ति व्यवहार। ते वली प्रवृत्तिना त्रण भेद छे, १ वस्तु प्रवृत्ति, २ साधन प्रवृत्ति, ३ लौकिक प्रवृत्ति। तेमां वली साधन प्रवृत्तिना त्रण भेद छे, १ जे अरिहंतनी आज्ञाये शुद्ध साधनमार्गे इहलोक संसार पुद्गलभोग आशंसादि दोष रहित जे रत्नत्रयीनी परिणति परभावत्याग सहित ते लोकोत्तर साधन प्रवृत्ति, २ जे स्याद्वाद विना मिथ्याभिनिवेश सहित साधनप्रवृत्ति ते कुप्रावचनिक साधनप्रवृत्ति, ३ अने जे लोकना स्वस्वदेश कुलनी चाले प्रवृत्ति ते लोकव्यवहार प्रवृत्ति ए त्रण प्रवृत्ति कहिये। ए व्यवहारनयना भेद जाणवा। तिहां द्वादशसार नयचक्रमां एकेक नयना सो सो भेद कह्या छे ते जैनशासन रहस्यना जाण जीवे ते ग्रंथमांथी धारवा ए व्यवहारनय कह्यो।

[५६] *उज्जुं उउं सुयं नाणमुज्जुसुयमस्स सोऽमुज्जुसुओ।*

सुत्तयइ वा जमुज्जुं वत्थुं तेणुज्जुसुत्तो त्ति॥ (वि.आ.भा.२२२२)

उऊं ति। ऋजु श्रुतं सुज्ञानं बोधरूपं ततश्च ऋजु=अवक्रं श्रुतमस्य सोऽयमृजुश्रुतम्। वा=अथवा ऋजु=अवक्रं वस्तु सूत्रयतीति ऋजुसूत्रम् इति। कथं पुनरेतदभ्युपगतस्य वस्तुनोऽवक्रत्वम्? इत्याह-

पच्चुपन्नं संपयमुप्पन्नं जं च जस्स पत्तेयं।

तं ऋजु तदेव तस्सत्थि उ वक्कम्मन्नं ति जमसंतं॥ (वि.आ.भा.-२२२३)

यत्साम्प्रतमुत्पन्नं वर्तमानकालीनं वस्तु, यच्च यस्य प्रत्येकमात्मीयं तदेव=तदुभयस्वरूपं वस्तु प्रत्युत्पन्नमुच्यते तदेवासौ नयः ऋजु प्रतिपद्यते तदेव च वर्तमानकालीनं वस्तु तस्यर्जुसूत्रस्यास्ति, अन्यत्र शेषातीतानागतं परकीयं च यद्=यस्माद् असद्=अविद्यमानं ततोऽसत्त्वादेव तद्व्रक्रमिच्छत्यसाविति। अत एव उक्तं निर्युक्तिकृता- *पच्चुपन्नगाही उज्जुसुनयविही मुणेयव्वो।* (आ.नि.७५७)

यतः कालत्रये वर्तमानमन्तरेण वस्तुत्वमुक्तं च यतोऽतीतमनागतं भविष्यति न साम्प्रतं तद् वर्तते इति वर्तमानस्यैव वस्तुत्वमिति अतीतस्य कारणता अनागतस्य कार्यता जन्यजनकभावेन प्रवर्तते अतः ऋजुसूत्रं वर्तमानग्राहकम्। तद्वर्तमानं नामादिचतुःप्रकारं ग्राह्यम्॥

[५६] अर्थ- हवे ऋजुसूत्रनय कहे छे। **ऋजु** कहेता सरल छे **श्रुत** कहेता बोध ते ऋजुसूत्र कहियें, ऋजु शुब्दें अवक्र एटले समो छे श्रुत जेने ते ऋजुसूत्र कहियें। अथवा ऋजु=अवक्रपणे वस्तुने जाणे कहे ते ऋजुसूत्र कहियें। ते वस्तुनो वक्रपणो केम जाणियें ते कहे छे। **सांप्रत** कहेता वर्तमानपणे उपनो जे वर्तमानकालें वस्तु ते ऋजुसूत्र कहियें। अन्य जे अतीत, अनागत ते ऋजुसूत्रनी अपेक्षाये अछतो छे, केमके अतीत तो विणसी गयो छे अने अनागत आव्यो नथी तेवारे अतीत अनागत ए बे अवस्तु छे, अने जे वर्तमान पर्याये वर्ते ते वस्तुपणो छे जे पूर्वकाल पश्चात्काल लइ वस्तु कहेवी ते नैगमनय छे, आरोपरूप छे। तिहां कोइ पूछे जे संसारीकर्मा जीवने सिद्धसमान कहो छो ते तो अनागतकाले सिद्ध थशे तो तमे अनागतने अवस्तु केम कहो छो? तेनो उत्तर जे हे भव्य! ए अनागत भावि माटे कहेता नथी ए तो वर्तमान सर्व गुणनी छति आत्मप्रदेशे छे ते आवरण दोषें प्रवर्तती नथी तेथी तिरोभावीपणा माटे संग्रहनये कहिये पण वस्तुमां सर्व केवलज्ञानादि गुण छता वर्ते छे ते माटे सिद्ध कहिये छैयें।

अने जे वस्तु ते नामादिक पर्याय सहित वर्ते छे माटे नामादि निक्षेपा ते सर्व ऋजुसूत्रनयना भेद छे। तथा नामादिक त्रण निक्षेपा तो द्रव्य छे अने भाव ते भाव छे। ए व्याख्या कारणकार्यभावनी वेंचण करीये ते माटे छे पण वस्तुमां सहज चार निक्षेपा ते भाव धर्मज छे। तथा ए स्वस्वकार्यना कर्ताज छे। ए ऋजुसूत्रना बे भेद दिगंबर कहे छे, १ सूक्ष्मऋजुसूत्र, २ स्थूलऋजुसूत्र। जे वर्तमानकालनो एक समय तेने सूक्ष्मऋजुसूत्र कहिये, अने जे बहुकालि ते स्थूलऋजुसूत्र। ए पण कालापेक्षी भाव छे। तथा ए भावनय छे अने योगावलंबीपणो ते बाह्य छे ते पण द्रव्य माटे एक द्रव्य मध्ये गणे छे। ए ऋजुसूत्रनय कह्यो।

[५७] *'शप् आक्रोशे'* शपनमाह्वानमिति शब्दः, शपतीति वा आह्वयति शब्दः, शप्यते आहूयते वस्तु अनेनेति शब्दः, तस्य शब्दस्य यो वाच्योऽर्थस्तत्परिग्रहात्तत्प्रधानत्वान्नयशब्दो यथा कृतकत्वादित्यादिकः पञ्चम्यन्तः शब्दोऽपि हेतुः। अर्थरूपं कृतकत्वमनित्यत्वगमकत्वान्मुख्यतया हेतुरुच्यते उपचारतस्तु तद्वाचकः कृतकत्वशब्दो हेतुरभिधीयते एवामिहापि

शब्दवाच्यार्थपरिग्रहादुपचारेण नयोऽपि शब्दो व्यपदिश्यते इति भावः। यथा ऋजुसूत्रनयस्याभीष्टं प्रत्युत्पन्नं वर्तमानं तथैव इच्छत्यसौ शब्दनयः। यद्यस्मात्पृथुबुध्नोदरकलितमृन्मयं जलाहरणादिक्रियाक्षमं प्रसिद्धघटरूपं भावघटमेवेच्छत्यसौ, न तु शेषान् नामस्थापनाद्रव्यरूपान् त्रीन् घटानिति। शब्दार्थप्रधानो ह्येष नयः, चेष्टालक्षणश्च घटशब्दार्थौ *'घट चेष्टायां'* घटते इति घटोऽतो जलाहरणादिचेष्टां कुर्वन् घटः। अतश्चतुरोऽपि नामादिघटानिच्छतः ऋजुसूत्राद्विशेषिततरं वस्तु इच्छत्यसौ। शब्दार्थोपपत्तेः भावघटस्यैव अनेनाभ्युपगमादिति। अथवा ऋजुसूत्रात् शब्दनयो विशेषिततरः। ऋजुसूत्रे सामान्येन घटोऽभिप्रेतः, शब्देन तु सद्भावादिभिरनेकधर्मैरभिप्रेत इति। ते च सप्तभङ्गाः पूर्वमुक्ता इति॥

[५७] अर्थ- हवे शब्दनयनुं स्वरूप कहिये छैये। शपति कहेता बोलावे तेने शब्द कहियें। अथवा शपियें-बोलावियें वस्तुपणे ते शब्द कहियें। ते शब्दें जे वाच्य अर्थ तेने ग्रहे एहवो छे प्रधानपणो जे नयमां तेपण शब्दनय कहियें। जेम कृतक ते जे कर्यो तेनो हेतु जे धर्म ते जे वस्तुमां होय ते बोलाय एटले शब्दनुं कारण तो वस्तुनो धर्म थयो। जेम जलाहरण धर्म जेमां छे तेने घट कहियें छैयें एम इहां पण शब्दे वाच्यार्थ ग्रहे ते माटे ते नयनो नाम पण शब्द कहेवाय। जेम ऋजुसूत्रनयने वर्तमानकालना धर्म इष्ट छे तेम शब्दादिकनयने पण वर्तमानताना धर्म ज इष्ट छे,केमके पेटे **पृथु** कहेता पहोलो **बुध्न** कहेता गोल संकोचित उदरकलितयुक्त जलाहरणक्रियाने समर्थ प्रसिद्ध घटरूप भावघट तेनेज घट इच्छे छे, पण शेष नाम, स्थापना अने द्रव्यरूप त्रण घटने ए शब्दनय घट माने नहीं। घट शब्दना अर्थने ते संकेतनेज घट कहे। घट धातु ते चेष्टावाची छे। **अतः कारणात्** कहेता ए कारणपणा माटे ए शब्दनय ते चेष्टाकर्तानेज घट कहे एटले ऋजुसूत्रनय चार निक्षेपा संयुक्तने घट माने अने शब्दनय ते भावघटने ज घट माने एटलो विशेषपणो छे। शब्दना अर्थनी जिहां उपपत्ति होय तेनेज ते वस्तुपणे कहे एटले ऋजुसूत्रनयें सामान्य घट गवेष्यो अने शब्दनयें सद्भाव जे अस्तिधर्म तथा असद्भाव जे नास्तिधर्म ते सर्व संयुक्त वस्तुने वस्तुपणें कहे।

एटले वस्तुने शब्दें बोलावतां सातभांगे बोलाववो माटे ए सप्तभंगी जेटलाज शब्दनयना भेद जाणवा। ते सप्तभंगीनुं स्वरूप पूर्वे कह्युं छे। ए शब्दादिकनय वस्तुना पर्यायने अवलंबीने वस्तुना भावधर्मना ग्राहक छे, ते माटे वस्तुना भाव निक्षेपा ए नयें मुख्य छे। धुरना चार नयमां नामादिक त्रण निक्षेपा मुख्य छे। ए शब्दनयनुं स्वरूप कह्युं।

[५८] गाथा-*जं जं सण्णं भासइ तं तं चिय समभिरोहइ जम्हा।*

सण्णंतरत्थविमुहो, तओ नओ समभिरूढो त्ति॥ (वि.आ.भा.-२२३६)

यां यां सञ्ज्ञां घटादिलक्षणां भाषते=वदति तां तामेव यस्मात्सञ्ज्ञान्तरार्थविमुखः समभिरूढो नयो नानार्थनामा एव भाषते यदि एकपर्यायमपेक्ष्य सर्वपर्यायवाचकत्वं तथा एकपर्यायाणां सङ्करः पर्यायसङ्करे च वस्तुसङ्करो भवत्येवेति मा भूत्सङ्करदोषः, अतः पर्यायान्तरानपेक्ष एव समभिरूढनय इति।

[५८] अर्थ- हवे समभिरूढनयनी व्याख्या कहियें छैयें। जे शब्दनय ते इंद्र, शक्र, पुरंदर इत्यादिक सर्व इंद्रना नामभेद छे, पण एक इंद्र पर्यायवंत इंद्र देखी तेना सर्व नाम कहे।उक्तं च विशेषावश्यके-

एकस्मिन्नपि इन्द्रादिके वस्तुनि यावद् इन्द्रन-शक्रन-पुरदारणादयोऽर्था घटन्ते तद्वशेन इन्द्रशक्रादि बहुपर्यायमपि तद्वस्तु शब्दनयो मन्यते समभिरूढस्तु नैवं मंस्यते इत्यनयोर्भेदः।

जे एक पर्याय प्रगटपणे अने शेषपर्यायने अणप्रगटवे शब्दनय तेटला सर्वनाम बोलावे पण समभिरूढनय ते न बोलावे एटलो शब्दनय तथा समभिरूढनयमां भेद छे। माटे हवे समभिरूढनय कहे छे।

घटकुंभादिकमां जे संज्ञानो वाच्य अर्थ देखाय तेज संज्ञा कहे जेमां संज्ञांतर अर्थने विमुख छे तेने समभिरूढनय कहियें। जो एक संज्ञामध्ये सर्व नामांतर मानियें तो सर्वनो संकर थाय तेवारें पर्यायनो भेदपणो रहे नही अने जे पर्यायांतर होय तेतो भेदपणेज होय तेथी पर्यायांतरनो भेदपणोज रह्यो ते माटे लिंगादिभेदने सापेक्षपणे वस्तुनो भेदपणोज मानवो। ए समभिरूढनय वखाण्यो। ए नयमां पण भेदज्ञाननी मुख्यता छे।

[५९] ***एवं जह सद्दत्थो संतो भूओ तदन्नहाभूओ।***

तेणेवंभूयनओ, सद्दत्थपरो विसेसेणं॥ (वि.आ.भा.२२५१)

एवम्= यथा घट चेष्टायामित्यादिरूपेण शब्दार्थो व्यवस्थितःतह त्ति तथैव यो वर्तते घटादिकोऽर्थः स एवं सन् भूतो विद्यमानः *तदन्नहाभूओ* त्ति वस्तु तदन्यथा शब्दार्थोल्लङ्घनेन वर्तते स तत्त्वतो घटाद्यर्थोऽपि न भवति किम्भूतः? विद्यमानः, येनैवं मन्यते तेन कारणेन शब्दनयसमभिरूढनयाभ्यां सकाशादेवम्भूतनयो विशेषेण शब्दार्थनयतत्परः। अयं हि योषिन्मस्तकारूढं जलाहरणादिक्रियानिमित्तं घटमानमेव चेष्टमानमेव=घटं मन्यते न तु गृहकोणादिव्यवस्थितम्। विशेषतः शब्दार्थतत्परोऽयमिति।

वंजणमत्थेणत्थं च वंजणेणोभयं विसेसेइ।
जह घटसद्दं चेट्ठावया तहा तंपि तेणेव॥ *(वि.आ.भा.२२५२)*

व्यज्यते अर्थोऽनेनेति व्यञ्जनं वाचकशब्दो घटादिस्तं चेष्टावता एतद्वाच्येनार्थेन विशिनष्टि स एव घटशब्दो यच्चेष्टावन्तमर्थं प्रतिपादयति, नान्यम् इत्येवं शब्दमर्थेन नैयत्ये व्यवस्थापयतीत्यर्थः। तथार्थमप्युक्तलक्षणम् अभिहितरूपेण व्यञ्जनेन विशेषयति। चेष्टापि सैव या घटशब्देन वाच्यत्वेन प्रसिद्धा योषिन्मस्तकारूढस्य जलाहरणादिक्रियारूपा, न तु स्थान-तरणक्रियात्मिका, इत्येवमर्थं शब्देन नैयत्ये स्थापयतीत्यर्थः। इत्येवमुभयं विशेषयति शब्दोऽर्थेनार्थः शब्देन नैयत्ये स्थापयतीत्यर्थः। एतदेवाह-यदा योषिन्मस्तकारूढः चेष्टावानर्थो घटशब्देनोच्यते स घटलक्षणोऽर्थः। स च तद्वाचको घटशब्दोऽन्यदा तु वस्त्वन्तरस्येव तच्चेष्टाभावादघटत्वम्, घटध्वनेश्चावाचकत्वमित्येवमुभयविशेषक एवम्भूतनय इति।

[५९] अर्थ- हवे एवंभूतनयनो स्वरूप कहिये छैयें। एवं कहेता जेम घट चेष्टावाची इत्यादिक रूपे शब्दनयनो अर्थ कह्यो छे ए रीते जे घटादिक अर्थ वर्ते ते **एवं** कहेता एमज जे विद्यमानपणे शब्दना अर्थने ओलंघीने वर्ते ते ते शब्दनो वाच्य नथी अने शब्दार्थपणो जेमां न पामियें ते वस्तु ते रूपे नही माटे जो शब्दार्थमांथी एक पर्याय पण ओछो होय तो एवंभूतनय तेने तेपणो कहे नही। ते माटे शब्दनयथी तथा समभिरूढनयथी एवंभूतनय ते विशेषांतर छे।

ए एवंभूतनय ते स्त्रीने मस्तके चढयो, पाणी आणवानी क्रियानो निमित्त, मार्गे आवतापणानी चेष्टा करतो होय तेने घट माने, पण घरने खूंणे रह्यो जे घट तेने घट करी माने नही, केमके ते चेष्टाने अणकरतो छे ते माटे। जे थकी अर्थने **व्यंजीये** कहेता प्रगट करीयें तेने व्यंजन कहियें। व्यंजन ते वाचक शब्द छे ते अर्थने कहे ते क्रियावंत थको तेनेज ते वस्तु कहे बीजाने न कहे, अने तेहिज अर्थे कह्युं जे लक्षण ते कह्याने रूपें विशेष थाय जेम चेष्टा घट शब्द वाचे प्रसिद्ध छे। योषित् कहेता स्त्रीने माथे पाणी लावतो ते घट तथा स्थानकें रह्यो अथवा तरण क्रिया करताने एवंभूतनय घट कहे नही। ए शब्दें अर्थ तथा अर्थे शब्दने थापे छे। एनुं ए रहस्य छे जे स्त्रीने मस्तकें चढ्यो चेष्टावंत अर्थ ते घट शब्दें बोलावे तेथी अन्यथा तेने तेपणे बोलावे नही, जेम सामान्य केवली जे ज्ञानादिक गुणे समान छे तेने समभिरूढनय अरिहंत कहे पण एवंभूतनय तो समवसरणादि अतिशय संपदा सहित तथा केवली ते इंद्रादिकें पूजतां युक्त होय तेनेज अरिहंत कहे ते विना न कहे। वाच्यवाचकनी पूर्णताने कहे, ए स्वरूपें एवंभूतनय जाणवो।

ए साते नयना भेद ते विशेषावश्यकने अनुसारे कह्या। तेमां नैगमना दश भेद, संग्रहना छ भेद अथवा बार कह्या। व्यवहारना भेद आठ अथवा चउद कह्या। ऋजुसूत्रना चार अथवा छ कह्या। शब्दना सात भेद कह्या। समभिरूढना बे भेद अने एवंभूतनो एक भेद कह्यो। ए रीते सर्वना भेद कह्या। वली नयचक्रमां नयना भेद सातसो कह्या छे ते पण जाणवा।

[६०] एवमेव स्याद्वादरत्नाकरात् पुनर्लक्षणत उच्यते। ***नीयते येन श्रुताख्यप्रामाण्यविषयीकृतस्यार्थस्य शस्तादितरांशौदासीन्यतः सम्प्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः। स्वाभिप्रेतादेशादपरांशापलापी पुनर्नयाभासः।*** (प्र.न.त.७.२) ***स समासतः द्विभेदः-द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकः।*** (प्र.न.त.७.५) ***आद्यो नैगमङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रभेदाच्चतुर्द्धा। केचिद् ऋजुसूत्रं पर्यायार्थिकं वदन्ति ते चेतनांशत्वेन विकल्पस्य ऋजुसूत्रे ग्रहणात्। श्रीवीरशासने मुख्यतः परिणतिचक्रस्यैव भावधर्मत्वेनाङ्गीकारात् तेषामृजुसूत्रः द्रव्यनये एव।***

धर्मयोर्धर्मिणोर्धर्मधर्मिणोश्च प्रधानोपसर्जन आरोपसङ्कल्पांशादिभावेनानेकगमग्रहणात्मको नैगमः। (प्र.न.त.७.७) ***सच्चैतन्यमात्मनीति धर्मयोः।*** (प्र.न.त.७.८) ***गुणपर्यायवद् द्रव्यमिति धर्मधर्मिणोः।*** (प्र.न.त.७.९) ***क्षणमेको सुखी विषयासक्तो जीव इति धर्मधर्मिणोः।*** (प्र.न.त.७.१०) ***सूक्ष्मनिगोदी जीवसिद्धसमानसत्ताकोऽयोगी नो संसारीति अंशग्राही नैगमो धर्माधर्मादीनामेकान्तिकपार्थक्याभिसन्धिर्नैगमाभासः। यथाऽत्मनि सत्त्वचैतन्ये परस्परं भिन्ने।***

[६०] अर्थ- हवे स्याद्वादरत्नाकरथी नयस्वरूप लखियें छैयें। नीयते **कहेता** पमाडीयें जे थकी श्रुतज्ञान स्वरूप प्रमाणे विषये कीधो जे पदार्थनो अंश ते अंशथी **इतर** कहेता बीजो जे अंश ते थकी उदासीपणो तेने पडिवर्जवा वालानो जे अभिप्राय विशेष तेने नय कहिये। एटले वस्तुना अंशने ग्रहे अने अन्यथी उदासीनपणो ते नय कहिये। एक अंशने मुख्य करीने बीजा अंशने उत्थापे ते नयाभास कहियें। ते नयना बे भेद छे एक द्रव्यार्थिक बीजो पर्यायार्थिक। तेमां द्रव्यार्थिकना १ नैगम, २ संग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजुसूत्र, ए चार भेद छे। केटलाक आचार्य ऋजुसूत्रने विकल्परूप माटे भावनय गवेषे छे ते रीते द्रव्यार्थिकना त्रण भेद छे।

हवे नैगमनयनुं स्वरूप कहे छे। जे धर्मने प्रधानपणे अथवा गौणपणे अथवा धर्मीने प्रधानपणे अथवा गौणपणे तथा धर्मधर्मी ए बेउने प्रधानपणे तथा गौणपणे जे गवेषवो एटले धर्मोनी प्राधान्यता ते वारे पर्यायोनी प्रधानता थइ अने जिहां धर्मीनो प्रधानपणो तिहां द्रव्यनो प्रधानपणो तेमज गौणपणो तथा धर्मधर्मीनो प्रधान गौणपणो ए रीते जे द्रव्य पर्यायनो गौणप्रधानपणानी गवेषणा रूप ज्ञानोपयोग ते नैगमनय जाणवो तेना बोधने नैगम बोध कहियें। तेना उदाहरण कहे छे।

सत् कहेता छतापणे चैतन्य कहेता जाणपणो ए बे धर्म मध्ये एक धर्म पक्ष मुख्यपणे गणे अने बीजाने गौणपणे गवेषे ए रीतें नैगमनय जाणवो। इहां चैतन्य नामे जे व्यंजनपर्याय तेने प्रधानपणे गणे केमके चैतन्यपणो ते विशेष गुण छे अने सत्त्व नामा व्यंजन पर्याय छे ते सकल द्रव्य साधारण छे ते माटे तेने गौणपणे लेखवे ए नैगमनो प्रथम भेद कह्यो।

तथा वली वस्तुपर्यायवद् द्रव्यम् एम बोलवुं ते धर्मीनो नैगम छे इहां पर्यायवद् द्रव्यम् एम वस्तु छे। इहां द्रव्यनो मुख्यपणो वली वस्तुने पर्यायवंत कहेवुं ते वस्तुनो गौणपणो अने पर्यायनो मुख्यपणो इहां उभयगोचरपणा माटे। ए नैगमनो बीजो भेद कह्यो।

क्षणमेकः सुखी विषयासक्तो जीव इति धर्मधर्मिणोरिति। इहां विषयासक्त जीवाख्य जे धर्मिना मुख्यताना विशेषपणाथी सुखलक्षण धर्मनी प्रधानता ते विशेषपणे करीने धर्मधर्मिने आलंबने ए त्रीजो नैगम। जेवारे धर्म तथा धर्मि ए बेने अवलंबे ग्रहण करे तेवारे संपूर्ण वस्तुनो ग्रहण थयो, तेवारे ए ज्ञानने प्रमाण कह्यो। तिहां उत्तर द्रव्य पर्याय ते बेहुने प्रधानपणे अनुभवतां ते ज्ञान प्रमाण थाय। इहां बे पक्षने विषे एकनी गौणता बीजानी मुख्यता लइने ज्ञान थाय छे ते माटे नय कहियें। तथा वली सूक्ष्मनिगोदि जीव ते समान सत्तावंत छे अथवा अयोगी केवली जिन तेने संसारी कहेवुं ते अंशनैगम।

हवे नैगमाभास कहे छे। वस्तुमां धर्म अनेक छे ते एकांत माने पण एकबीजाने सापेक्षपणे न माने एटले एक धर्मने माने अने बीजा धर्मने न माने ते नैगमाभास कहियें। ए दुर्नय जाणवो। केमके अन्य नयने गवेषे नही माटे। जेम आत्माने विषे सत्त्व तथा चैतन्य ए धर्म भिन्नभिन्न छ तेमां चैतन्यपणो न माने ते नैगमाभास कहियें। एटले नैगमनय कह्यो।

[६१] ***सामान्यमात्रग्राही सत्तापरामर्शरूपः सङ्ग्रहः।*** (प्र.न.त.७.१३) ***स परापरभेदाद् द्विविधः।*** (प्र.न.त.७.१४) ***तत्र शुद्धद्रव्य सन्मात्रग्राहकः परसङ्ग्रहः, चेतनालक्षणो जीव इत्यपरसङ्ग्रहः। सत्ताद्वैतं स्वीकुर्वाणः सकलविशेषान् निराचक्षाणः सङ्ग्रहाभासः*** (प्र.न.त.७.१७) ***सङ्ग्रहस्यैकत्वेन 'एगे आया' इत्यभिज्ञानात् सत्ताद्वैत एव आत्मा ततः सर्वविशेषाणां तदितराणां जीवाजीवादिद्रव्याणामदर्शनाद् द्रव्यत्वादिन्यवान्तरसामान्यानि मन्वानस्तदभेदेषु गजनिमिलिकाम् अवलम्बमानः परः(पुनः) अपरसङ्ग्रहः।*** (प्र. न. त. ७. १९) ***धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवद्रव्याणामैक्यं द्रव्यत्वादिभेदादित्यादि।*** (प्र.न.त.७.२०) ***द्रव्यत्वादिकं प्रतिजानानस्तद्विशेषान् निह्नुवानस्तदाभासो यथा द्रव्यमेव तत्त्वं तत्त्वपर्यायाणामग्रहणाद्विपर्यास इति सङ्ग्रहः।*** (प्र.न.त.७.२१)

[६१] अर्थ- हवे संग्रहनय कहे छे। सामान्य मात्र समस्तविशेष रहित सत्यद्रव्याादिकने ग्रहवानो छे स्वभाव जेनो ते **सत्ता**॰ कहेता पिंडपणे विशेषराशीने ग्रहे पण व्यक्तपणे न ग्रहे स्वजातिना दीठा जे इष्ट अर्थ तेने अविरोधें करीने विशेष धर्मोने एकरूपपणे जे ग्रहण करवो ते संग्रहनय कहियें ए भावना छे। तेना बे भेद छे परसंग्रह, अपरसंग्रह तेमां

अशेषविशेषोदासीनं भजमानं शुद्धद्रव्यं सन्मात्रमभिमन्यमानः परसङ्ग्रह इति। (प्र.न.त.७.१५)

जे समस्त विशेष धर्म स्थापनानी भजना करतो एटले विशेषपणाने अणग्रहतो थको शुद्धद्रव्य सत्तामात्रप्रतें माने जेम द्रव्य, ए परसंग्रह। विश्व एक सत्पणा माटे एम कह्याथी छतापणाना एकपणानुं ज्ञान थाय छे एटले सर्व पदार्थनो एकपणे ग्रहण छे ते परसंग्रह कहियें।

तथा जे सत्तानो अद्वैत स्वीकारे अने द्रव्यांतरभेद न माने समस्त विशेषपणाने ना कहेता थको जे ग्रहण करे ते अद्वैतवादी वेदांत तथा सांख्यदर्शन ए परसंग्रहाभास छे, केमके जे भेद धर्म छता देखाय छे तथा द्रव्यांतरपणो तेने न माने माटे परसंग्रहाभास कहियें। अने जैन तो विशेष सहित सामान्यने ग्रहे छे माटे संग्रहनय कहियें।

द्रव्यत्वादिनयान्तरसामान्यानि मत्त्वा तद्भेदेषु गजनिमीलिकामवलम्बमानोऽपरसङ्ग्रहः। (प्र.न.त.७.१९)

द्रव्य जे जीव अजीवादिक जे अवांतर सामान्यने मानतो अने जीवने विषे प्रति जीवनो विशेष भेद भव्य, अभव्य, सम्यक्त्वी, मिथ्यात्वी, नरनारकादि जे भेद तेने गजनिमीलिका कहेता मस्ताइयें(?) न गवेषवो ते अपरसंग्रह कहियें। अने द्रव्यने सामान्यपणे माने पण स्वद्रव्यनी परिणामिकतादिक धर्मने न माने ते अपरसंग्रहाभास कहियें ए संग्रहनयनुं स्वरूप कह्युं।

[६२] ***सङ्ग्रहेण च गोचरीकृतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसन्धिना क्रियते स व्यवहारः।*** (प्र.न.त.७.२३) ***यथा यत् सत्तद्द्रव्यं पर्यायश्चेत्यादि।*** (प्र.न.त.७.२४) ***यः पुनरपरमार्थिकं द्रव्यपर्यायप्रविभागमभिप्रैति स व्यवहाराभासः।*** (प्र.न.त.७.२५) ***चार्वाकदर्शनमिति व्यवहारदुर्नयः।*** (प्र.न.त.७.२६)

[६२] अर्थ- हवे व्यवहारनय कहे छे। संग्रहनय ग्रह्या जे वस्तुना सत्त्वादिक धर्म तेनेज गुणभेदें वेहेंचे, भिन्नभिन्न गवेषे, तथा पदार्थनी गुणप्रवृत्ति तेनेज मुख्यपणे गवेषे ते व्यवहारनय कहियें। जेम द्रव्य छे तेना जीव पुद्गलादिक पर्यायना क्रमभावी तथा सहभावी ए रीतें बे भेद छे, तेमां वलीं जीव बे प्रकारें सिद्धना, संसारी। तेमज पुद्गलना बे भेद परमाणु तथा खंध इत्यादिक कार्यभेदें भिन्न माने तथा क्रमभावी पर्यायना बे भेद एक क्रियारूप बीजो अक्रियारूप। इम वेहेंचण जे सामर्थ्यादिक गुणभेदें भेद पडे ते सर्व व्यवहारनय जाणवो।

अने जे परमार्थ विना द्रव्य पर्यायनो विभाग करे ते व्यवहाराभास जाणवो। जे कल्पना करी भेदें वहेंचे ते चार्वाकमत ए व्यवहार प्रमुखनयनो दुर्नय छे। जेम चार्वाक प्रमाणपणें छतो जीवपणो लोकप्रत्यक्षमां दृष्टिगोचर नथी आवतो ते माटे जीव नथी एम कहे, अने जगतमां पंचभूतादिक वस्तु नथी एम कल्पना करी स्थूललोकने कुमार्गे प्रवर्तावे ते व्यवहारदुर्नय कहियें। ए व्यवहारनुं स्वरूप कह्युं।

[६३] ***ऋजु वर्तमानक्षणस्थायि पर्यायमात्रप्राधान्यतः सूत्रयति अभिप्रायः ऋजुसूत्रः।*** (प्र.न.त.७.२८) ***ज्ञानोपयुक्तो ज्ञानी, दर्शनोपयुक्तो दर्शनी, कषायोपयुक्तः कषायी, समतोपयुक्तः सामयिकी। वर्तमानापलापी तदाभासो ।*** (प्र.न.त.७.३०) ***यथा तथागतमतम् इति।*** (प्र.न.त.७.३१)

[६३] अर्थ- हवे ऋजुसूत्रनय कहे छे **ऋजु** कहेता सरलपणे अतीत अनागतने अणगवेषतो अने वर्तमानसमय वर्तता जे पदार्थना पर्यायमात्र तेने प्रधानपणे **सूत्रयति** कहेता गवेषे ते ऋजुसूत्र कहियें। ते ज्ञानने उपयोगें वर्तताने ज्ञानी कहे, दर्शनोपयोगें वर्तताने दर्शनी कहे, कषायपणे वर्तता जीवने कषायी कहें, समताने उपयोगें वर्तता जीवने सामायिकवंत कहे।

इहां कोइ पुछे जे उपर कह्या मुजब तो ऋजुसूत्र तथा शब्दनय ए बे एकज थाय छे तेने उत्तर कहे छे जे विशेषावश्यकनां कह्युं छे- ***कारणं यावद् ऋजुसूत्रः।***

एटले ज्ञानने कारणपणे वर्ततो ते ऋजुसूत्र ग्रहे छे अने जे जाणपणारूप कार्यपणे थाय ते शब्दनय कहियें ए फेर छे।

वर्तमानकालने पण ग्रहण करे ते ऋजुसूत्राभास कहियें, जे छता भावने अछता कहे अथवा कहे अथवा विपरीत कहे जेम जीवने अजीव कहे, अजीवने जीव कहे इत्यादिक। ते तथागत कहेता बौद्धनो मत छे जे छतो सर्वदा वर्ततो जीवादि द्रव्य तेना पर्यायने पलटवे सर्वथा द्रव्यने विनाशी माने तेने ऋजुसूत्रनयाभासाभिप्राय जाणवो। ए ऋजुसूत्रनय कह्यो।

[६४] ***एकपर्यायप्राग्भावेन तिरोभाविपर्यायग्राहकः शब्दनयः। कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेदं प्रतिपाद्यमानः शब्दः।*** (प्र.न.त.७.३२) ***जलाहरणादिक्रियासमर्थ एव घटः, न मृत्पिण्डादिः। तत्त्वार्थवृत्तौ शब्दवशादर्थप्रतिपत्तिः तत्कार्यधर्मे वर्तमानवस्तु तथा मन्वानः शब्दनयः शब्दानुरूपमर्थपरिणतं द्रव्यमिच्छति त्रिकालत्रिलिङ्गत्रिवचनप्रत्ययप्रकृतिभिः समन्वितमर्थमिच्छति। तद्भेदे तस्य तमेव समर्थयमानस्तदाभासः।*** (प्र.न.त.७.३४)

[६४] अर्थ- हवे शब्दनय कहे छे। जे वस्तुना एक पर्यायने प्रगट देखवे बीजा शब्द वाचकपर्यायने तिरोभावें अणप्रकटवें पण ते पर्यायने ग्रहे अथवा काल त्रण, वचन त्रण, लिंग त्रण तेने भेदे शब्दनो भेद पडे ते भेदेंज अर्थने कहे। अथवा जलाहरणादि समर्थने घट कहे तथा कुंभादिक चिह्न पर्याय जेटला छे तेटलानो अर्थ वर्ततो न देखाय तो पण तेने नाम कही बोलावे एम जेमां कार्यनो सामर्थ्यवंतपणो छे तेने ग्रहे पण माटीना पिंडने घट कहे नही ते शब्दनय कहियें। अने जे संग्रह तथा नैगमनयवालो कहे ते सत्ता-योग्यता अंशना ग्राहक छे।

तथा तत्त्वार्थटीका मध्ये शब्दवशथी अर्थ पडिवर्जवो ते शब्दें बोलातो होय जे अर्थ ते वस्तुमां धर्मपणे प्रगट देखाय तेनेज ते वस्तु माने। ए नयने शब्दानुयायी अर्थे परिणमति जे वस्तु तेने वस्तु कहे छे काल-लिंगादिभेदें अर्थनो भेद छे ते भेद तेम ते धर्मे वस्तु माने ते शब्दनय कहियें। अने ते अर्थ विना ते वस्तुमध्ये तेपणो वर्ततो देखातो नथी तेने ते वस्तुपणे समर्थन करे ते शब्दाभास कहिजे(यें)। एटले शब्दनय कह्यो।

[६५] ***एकार्थावलम्बिपर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरूढः।***(प्र. न. त. ७. ३६) ***यथा इन्दनादिन्द्रः, शकनाच्छक्रः, पुरदारणात् पुरन्दर इत्यादिषु।*** (प्र. न. त. ७. ३७) ***यथा पर्यायध्वनिनामाभिधेयनानात्वमेव कक्षीकुर्वाणस्तदाभासः।*** (प्र.न.त.७.३८) **यथा इन्द्रः शक्रः पुरन्दर इत्यादि भिन्नाभिधेये।**

[६५] अर्थ- हवे समभिरूढनय कहे छे। जे एक पदार्थने अवलंबी जेटला सरिखा नाम तेटला पर्याय नाम थया, ते पर्याय नाम जेटला होय तेटला निरुक्ति=व्युत्पत्ति भिन्न होय ते अर्थनो पण भेद होय ते अर्थने **समभिरोहन्** कहेता सम्यक् प्रकारे आरोहतो एटले एटला सर्व अर्थ संयुक्त जे होय ते समभिरूढयन कहियें। जेम इन्द धातु परमैश्वर्यने अर्थे छे ते परम ऐश्वर्यवंतने इंद्र कहियें, तथा **शकन** कहेतां नवि नवि शक्तियुक्तने शक्र कहियें, **पुर** कहेता दैत्यने **दारे** कहेता विदारे ते पुरंदर, अने शचि जे इंद्राणी तेनो पति स्वामी ते शचिपति कहियें। एटला सर्व धर्म ते इंद्रमां छे ते माटे जे देवलोकनो धणी छे तेने इंद्र एवे नामें बोलावे छे बीजा नामादिक इंद्रने ए नामे न बोलावे। जेटला पर्याय नाम छे तेना जे अर्थ थाय ते सर्वने भिन्न भिन्न अर्थ कहे छे, पण एकार्थ न जाणे ते समभिरूढाभास कहियें। एटलें समभिरूढनय कह्यो।

[६६] **एवम्=भिन्नशब्दवाच्यत्वात्।** ***शब्दानां स्वप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाविशिष्टमर्थं वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन् एवम्भूतः।*** (प्र.न.त.७.४०) ***यथा इन्दनमनुभवन्निन्द्रः, शकनाच्छक्रः।*** (प्र.न.त.७.४१) ***शब्दवाच्यतया प्रत्यक्षस्तदाभासः।***

(प्र.न.त.७.४२) ***तथा विशिष्टचेष्टाशून्यं घटाख्यवस्तुनो घटशब्दवाच्यं घटशब्दद्रव्यवृत्तिभूतार्थशून्यत्वात् पटवदित्यादि।*** (प्र.न.त.७.४३)

[६६] अर्थ- हवे एवंभूतनय कहे छे। शब्दनी प्रवृत्तिनो निमित्तभूत जे क्रिया ते विशिष्ट संयुक्त जे अर्थ तेने वाच्य जे धर्म तेने जे पहोंचतो होय एटले ते कारण कार्य धर्म सहित तेने एवंभूतनय कहियें। तथा ऐश्वर्य सहित ते इंद्र, शक्ररूप सिंहासने बेसे ते शक्र, **शचि** कहेता इंद्राणीने साथे बेठो ते वारें शचीपति कहे, एटले जे शब्दना जेटला पर्याय ते सर्व तेमां पहोंचता भावने ते नाम कही बोलावे अने जे पर्याय पहोंचतो देखे नही ते पर्यायनी ना कहे। जिहां सुधी एक पर्याय ऊणो छे तिहां सुधी समभिरूढनय कहियें, अने सर्व वचन पर्यायने पहोंचे ते वारें एवंभूतनय कहियें। जे पदार्थनो नामभेदनो भेद देखीने पदार्थनी भिन्नता कहे ते एवंभूतनयाभास कहिजे। नामभेदें ते वस्तुज भिन्न जेम हाथी, घोडा, हिरण्य भिन्न छे तेम भिन्नपणो माने जेम अर्थ भिन्नपणा माटे घटथी पट भिन्न छे तेम इंद्रपणाथी पुरंदरपणो भिन्न माने ते एवंभूतनयनो दुर्नय जाणवो। एटले एवंभूतनय कह्यो, ए रीते सातनयनी व्याख्या कही।

[६७] अत्र आद्यनयचतुष्टयमविशुद्धम्, पदार्थप्ररूपणाप्रवणत्वाद्। अर्थनया नामद्रव्यत्वसामान्यरूपा नयाः। शब्दादयो विशुद्धनयाः शब्दावलम्बार्थमुख्यत्वाद्, यतस्ते तत्त्वभेदद्वारेण वचनमिच्छन्ति। शब्दनयस्तावत् समानलिङ्गानां समानवचनानां शब्दानामिन्द्रशक्रपुरन्दरादीनां वाच्यं भावर्थमेवाभिन्नमभ्युपैति, न जातुचिद् भिन्नवचनं वा शब्दं स्त्री दाराः तथा आपो जलमिति। समभिरूढस्तु प्रत्यर्थं शब्दनिवेशादिन्द्रशक्रादीनां पर्यायशब्दत्वं न प्रतिजानीते, अत्यन्तभिन्नप्रवृत्तिनिमित्तत्वादभिन्नार्थत्वमेवानुमन्यते घटशक्रादिशब्दानामिवेति। एवम्भूतः पुनर्यथासद्भाववस्तुवचनगोचरं आपृच्छतीति चेष्टाविशिष्ट एवार्थो घटशब्दवाच्यः चित्रालेख्यतोपयोग- परिणतश्च चित्रकारः। चेष्टारहितस्तिष्ठन् घटो न घटः, तच्छब्दार्थरहितत्वात् कूटशब्दवाच्यार्थवन्नापि भुञ्जानः शयानो वा चित्रकाराभिधानाभिधेयश्चित्रज्ञानोपयोगपरिणतिशून्यत्वाद्, गोपालवद्। एवमभेदार्थवाचिनो नैकैकशब्दवाच्यार्थावलम्बिनश्च शब्दप्रधानार्थोपसर्जनाच्छब्दनया इति तत्त्वार्थवृत्तौ।

[६७] अर्थ- ए सात नयमां आद्यना चार नय जे छे ते अविशुद्ध छे शा माटे के जे पदार्थ कहेता द्रव्य तेने सामान्यपणे कहेवाना अधिकारी छे। ए नयनुं किहां एक अर्थनय ए पण नाम छे ते अर्थ शब्दे द्रव्य लेवुं। तथा शब्दादिक त्रण नय ते शुद्धनय छे केमके शब्दना अर्थनी एने मुख्यता छे। पेहेला नय ते भेदपणे वचनने वांछे छे अने शब्दादिक नय ते लिंगादिके अभेद वचने अभेद कहे तथा भिन्नवचने भिन्नार्थ कही माने अने समभिरूढ ते भिन्न शब्द तेने वस्तु पर्याय न माने तथा एवंभूत ते भिन्नगोचर पर्यायने भिन्न माने। जे चेष्टा करतो होय तेने घट कहे पण खूंणे पडयो घट कहे नही, चित्रामण करतो होय तथा तेज उपयोगें वर्ततो होय तेने चित्रकार कहे पण तेज चित्रकार सुतो होय अथवा खावा बेठो होय तेने चित्रकार न कहे केमके ते उपयोगें रहित छे माटे। ए नय ते शब्द तथा अर्थने भेदपणो माने छे अने अर्थथी शून्य शब्द ते प्रमाण नथी अने शब्दप्रधान अर्थ ते द्रव्यने गौणपणे वर्तता शब्दादिक त्रण नय छे एम तत्त्वार्थ टीका मध्ये कह्यो छे।

[६८] एतेषु नैगमः सामान्यविशेषोभयग्राहकः, व्यवहारो विशेषग्राहको द्रव्यार्थावलम्बि-ऋजुसूत्रो विशेषग्राहक एव। एते चत्वारो द्रव्यनयाः। शब्दादयः पर्यायार्थिकविशेषावलम्बिनो भावनयाश्चेति। शब्दादयो नामस्थापनाद्रव्यनिक्षेपानवस्तुतया जानन्ति। परस्परसापेक्षाः सम्यग्दर्शनम्, निरपेक्षा मिथ्यात्वम्। प्रतिनयं भेदानां शतं तेन सप्तशतं नयनामिति अनुयोगद्वारोक्तत्वाज्ज्ञेयम्।

[६८] ए सात नयने विषे पहेलो नैगमनय ते सामान्य विशेष बेहुने माने छे। संग्रहनय ते सामान्यने माने छे। व्यवहारनय विशेषने माने छे अने द्रव्यार्थावलंबी छे। तथा ऋजुसूत्र तो विशेष ग्राहक छे। ए चार ते द्रव्यनय छे, अने पाछला शब्दादिक त्रण नय ते पर्यायार्थिक विशेषावलंबी भावनय छे। तथा शब्दादिक नय ते नाम, स्थापना, द्रव्य ए पेहेला त्रण निक्षेपाने अवस्तु माने छे *तिण्हं सद्दनयाणं अवत्थु* ए अनुयोगद्वार सूत्रनुं वचन छे। ए साते नय परस्पर सापेक्षपणे ग्रहे ते समकिती जाणवा, अने जो ए नय परस्पर विरोधी होय तो मिथ्यात्वी जाणवा। तथा एकेका नयना सो सो भेद थाय छे, एम साते नयना मली सातसो भेद थाय छे। ए अधिकार श्रीअनुयोगद्वार सूत्रथी कह्यो छे।

[६९]* पूर्वपूर्वनयः प्रचुरगोचरः, परास्तु परिमितविषयाः।* (प्र. न. त. ७. ४६) ***सन्मात्रगोचरात् सङ्ग्रहान्नैगमो भावाभावभूमित्वाद् भूरिविषयः।*** (प्र.न.त.७.४७) ***वर्तमानविषयाद् ऋजुसूत्राद् व्यवहारस्त्रिकालविषयत्वाद् बहुविषयः।*** (प्र. न. त. ७. ४९) ***कालादिभेदेन भिन्नार्थोपदर्शनाद् भिन्न ऋजुसूत्रविपरीतत्वान्महार्थः।*** (प्र. न. त. ७. ५०) ***प्रतिपर्यायमशब्दमर्थभेदमभीप्सितः समभिरूढाच्छब्दः प्रभूतविषयः।*** (प्र.न.त.७.५१) ***प्रतिक्रियां भिन्नमर्थं प्रतिजानानाद् एवम्भूतात् समभिरूढो महद्गोचरः।*** (प्र.न.त.७.५२)

नयवाक्यमपि स्वविषये प्रवर्तमानं विधिप्रतिषेधाभ्यां सप्तभङ्गीमनुव्रजति। (प्र.न.त.७.५३) *अंशग्राही नैगमः। सत्ताग्राही सङ्ग्रहः। गुणप्रवृत्तिलोकप्रवृत्तिग्राही व्यवहारः। कारणपरिणामग्राही ऋजुसूत्रः। व्यक्तकार्यग्राही शब्दः। पर्यायान्तरभिन्नकार्यग्राही समभिरूढः। तत्परिणमनमुख्यकार्यग्राही एवम्भूत इत्याद्यनेकरूपो नयप्रचारः।*

जावंतिया वयणपहा तावतिया चेव हुंति नयवाया॥ (वि.आ.भा.४५१)

इति वचनाद्। उक्तो नयाधिकारः॥

[६९] अर्थ- ए प्रकारे पूर्व कहेता पूर्वलो जे नैगम नय तेनो विस्तार घणो जाणवो अने तेथी ऊपलो नय तेनो परिमित विषय छे एटले थोडो विषय छे केमके सत्तामात्रनो ग्राहक संग्रहनय छे। छति सत्ताने संग्रहनय ग्रहे अने नैगम ते छता भाव अथवा संकल्पपणे अछता भाव सर्वने ग्रहे। अथवा सामान्य विशेष बे धर्मने ग्रहे ते माटे नैगमनो विषय घणो छे।

तथा संग्रहनय ते सत्तागत सामान्य विशेष बेहुने ग्रहे छे, अने व्यवहार ते सत् एक विशेषनेज ग्रहे छे माटे संग्रहनयथी व्यवहारनयनो विषय थोडो छे अने व्यवहारनयथी संग्रहनय ते बहुविषयी छे।

तथा ऋजुसूत्रनय ते वर्तमान विशेष धर्मनो ग्राहक छे, अने व्यवहारथी ऋजुसूत्रनय ते कालविषयनो ग्राहक छे; ते माटे व्यवहार बहुविषयी छे अने व्यवहारथी ऋजुसूत्र अल्पविषयी छे।

ऋजुसूत्र ते वर्तमानकाल ग्रहे, अने शब्दनय कालादि वचन लिंगथी वेहेंचता अर्थने ग्रहे, अने ऋजुसूत्रनय ते वचन लिंगने भिन्न पाडतो नथी, ते माटे ऋजुसूत्रथी शब्दनय अल्पविषयी छे, ऋजुसूत्र बहुविषयी छे।

अने शब्दनय सर्व पर्यायनो एक पर्यायने ग्रहता ग्रहे, अने समभिरूढ ते जे धर्म व्यक्त ते वाचक पर्यायने ग्रहे; ते माटे शब्दनयथी समभिरूढनय ते अल्पविषयी छे। केमके समभिरूढ ते पर्यायनो सर्वकाल गवेष्यो छे।

अने एवंभूतनय ते प्रतिसमयें क्रियाभेदें भिन्नार्थपणो मानतो अल्पविषयी छे; ते माटे एवंभूतथी समभिरूढ बहुविषयी जाणवो अने एवंभूत अल्पविषयी जाणवो।

जे नय वचन छे ते पोताना नयने स्वरूपें अस्ति छे, अने परनयना स्वरूपनी तेमां नास्ति छे; एम सर्व नयनी विधिप्रतिषेधें करीने सप्तभंगी ऊपजे, पण नयनी जे सप्तभंगी ते विकलादेशी ज होय अने जे सकलादेशी सप्तभंगी ते प्रमाण छे पण नयनी सप्तभंगी न ऊपजे।

उक्तं च रत्नाकरावतारिकायाम्- *विकलादेशस्वभावा हि नयसप्तभङ्गी वस्त्वंशमात्रपरूपकत्वात्। सकलादेशस्वभावास्तु प्रमाणसप्तभङ्गी सम्पूर्णवस्तुस्वरूपप्ररूपकत्वात्।*

ए वचन छे। एटले यथायोग्यपणे नयनो अधिकार कह्यो।

[७०] सकलनयग्राहकं प्रमाणम्। प्रमाता आत्मा प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धश्चैतन्यस्वरूपपरिणामी कर्ता साक्षाद् भोक्ता स्वदेहपरिमाणः प्रतिक्षेत्रभिन्नत्वेनैव पञ्चकारणसामग्रीतः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रसाधनात् साधयते सिद्धिम्।

स्वपरव्यवसायिज्ञानं प्रमाणम्। तद् द्विविधम्- प्रत्यक्षपरोक्षभेदात् स्पष्टं प्रत्यक्षम्, परोक्षमन्यद्। अथवा आत्मोपयोगत इन्द्रियद्वारा प्रवर्तते न यज्ज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्। अवधिमनःपर्यायौ देशप्रत्यक्षौ, केवलज्ञानं तु सकलप्रत्यक्षम्। मतिश्रुते परोक्षे।

तच्चतुर्विधम् अनुमानोपमानागमार्थापत्तिभेदात्। लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम्। लिङ्गं चाविनाभूतवस्तुकं नियतं ज्ञेयम्, यथा गिरिगुहिरादौ व्योमावलम्बिधूम्रलेखां दृष्ट्वा अनुमानं करोति- पर्वतो वह्निमान् धूमवत्त्वाद्, यत्र धूमस्तत्राग्निर्यथा महानसम्। एवं पञ्चावयवशुद्धमनुमानं यथार्थज्ञानकारणम्।

सादृश्यावलम्बनेनाज्ञातवस्तुनां यज्ज्ञानमुपमानज्ञानं, यथा गौस्तथा गवयः। गोसादृश्येन अदृष्टगवयाकारज्ञानमम् उपमानज्ञानम्।

यथार्थोपदेष्टा पुरुष आप्तः। स उत्कृष्टतो वीतरागः सर्वज्ञ एव। आप्तोक्तं वाक्यमागमः। रागद्वेषाज्ञानभयादि दोषरहितत्वाद् अर्हतो वाक्यमागमः। तदनुयायिपूर्वापराविरुद्धं मिथ्यात्वासंयमकषायभ्रान्तिरहितं स्याद्वादोपेतं वाक्यमन्येषां शिष्टानामपि वाक्यमागमः।

लिङ्गग्रहणाद् ज्ञेयज्ञानोपकारकमर्थापत्तिप्रमाणं, यथा पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते तदा अर्थाद्रात्रौ भुङ्क्ते एव। इत्यादिप्रमाणपरिपाटीगृहीतजीवाजीवस्वरूपः सम्यग्ज्ञानी उच्यते।

[७०] अर्थ- हवे प्रमाणनुं स्वरूप कहे छे। सर्व नयना स्वरूपने ग्रहण करनारो तथा सर्व धर्मनो जाणंगपणो छे जेमां एहवुं जे ज्ञान तेने प्रमाण कहियें। जे प्रमाण ते मापवानुं नाम छे त्रण जगतना सर्व प्रमेयने मापवानुं प्रमाण ते ज्ञान छे, अने ते प्रमाणनो कर्ता आत्मा ते प्रमाता छे। ते प्रत्यक्षादि प्रमाणे सिद्ध कहेता ठहेर्यो छे, चैतन्य स्वरूप परिणामी छे, वली भवन धर्मथी उत्पादव्ययपणे परिणमे छे, ते माटे

परिणामिक छे। तथा कर्ता छे तथा भोक्ता छे, जे कर्ता होय तेज भोक्ता होय। भोक्तापणा विना सुखमयी कहेवाय नहि ते चैतन्य संसारीपणे स्वदेहपरिमाण छे। प्रतिक्षेत्र कहेता प्रत्येकें शरीर भिन्नपणा माटे भिन्न जीव छे। ते जीव पांच कारणनी सामग्री पामीने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रने साधवाथी संपूर्ण, अविनाशी, निर्मल, निःकलंक, असहाय, अप्रयास, स्वगुणनिरावरण, स्वकार्यप्रवृत्ति, अक्षर, अव्याबाध, सुखमयी, एवी सिद्धता निष्पन्नता नीपजे एज साधन मार्ग छे।

स्व शब्दें करी आत्मा, परशब्दे परद्रव्य। स्व आत्माथी भिन्न अनंता पर जीव धर्मादिक तेना व्यवसायी व्यवच्छेदक जे ज्ञान तेने प्रमाण कहिये। तेना मूल बे भेद छे। एक प्रत्यक्ष बीजो परोक्ष। तिहां स्पष्ट ज्ञान ने प्रत्यक्ष कहिये तेथी इतर कहेता बीजो जे अस्पष्ट ज्ञान ते परोक्ष कहिये। अथवा आत्माना उपयोगथी इंद्रियनी प्रवृत्ति विना जे ज्ञान ते प्रत्यक्ष कहिये। तेना बे भेद छे। एक देशप्रत्यक्ष, बीजो सर्वप्रत्यक्ष। तेमां अवधिज्ञान तथा मनःपर्यवज्ञान ते देशप्रत्यक्ष छे। केमके अवधिज्ञान एक पुद्गल परमाणुने द्रव्यें तथा क्षेत्रें अने कालें तथा भावें केटलाक पर्यायने देखे। तथा मनःपर्यवज्ञानी मनना पर्यायने प्रत्यक्ष जाणे पण बीजा द्रव्यने न जाणे माटे बेहु ज्ञानने देशप्रत्यक्ष कहियें। कारण के देशथी वस्तुने जाणे पण सर्वथी न जाणे माटे। अने केवलज्ञान ते जीव तथा अजीव, रूपी तथा अरूपी सर्व लोकालोकना त्रण कालना भावने प्रत्यक्षपणे जाणे माटे सर्व प्रत्यक्ष कहियें।

तथा मतिज्ञान अने श्रुतज्ञान ए बे अस्पष्ट ज्ञान छे माटे परोक्ष छे, ते परोक्ष प्रमाणना चार भेद छे। १ अनुमान प्रमाण, २ उपमान प्रमाण, ३ आगम प्रमाण, ४ अर्थापत्ति प्रमाण।

तिहां चिह्ने करीने जे पदार्थने ओलखवुं तेने लिंग कहियें। ते परामर्श कहेता संभारवाथी जे ज्ञान थाय तेने अनुमानज्ञान कहियें। लिंग ते जे विना ते वस्तु होयज नही ते वस्तुनुं लिंग जाणवुं। ते लिंगने देखवाथी वस्तुनो निर्धार करवो ते अनुमान प्रमाण जाणवो। जेम गिरिगुहिरने विषे आकाशावलंबी धूमनी रेखा देखीने अनुमान करे जे ए पर्वत अग्नि सहित छे ए पक्ष तथा साध्य कह्यो। जे पक्ष ते पर्वत, अने साध्य ते अग्निमन्तपणो, साधवो ते हेतु जे धूम्रवंतपणा माटे एटले जिहां धूम्र होय तिहां अग्नि अवश्य होयज। आकाशने पहोंचती जे धूम्र रेखा ते अग्नि विना होय नही तिहां दृष्टांत कहे छे-जेम **महानसे** कहेता रसोडाने विषे रसोइयाए धूम्र तथा अग्निने भेला दीठा ते इहां आ अमुक पर्वतने विषे धूम्र छे तो तिहां निश्चेथी अग्नि छेज एहवी व्याप्ति निर्धारीने ज्ञान करवो ते पंचावयवें शुद्ध अनुमान प्रमाण कहिये। ते अनुमान प्रमाण मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञाननुं कारण छे। ते अनुमाने जे यथार्थ ज्ञान थाय तेने **मान** कहेता प्रमाण कहियें अने जे अयथार्थ ज्ञान थाय ते प्रमाण नही।

तथा सरिखावलंबीपणे अजाणी वस्तुनो जे जाणपणो थाय जेम गो कहेता बलद तेम गवय कहेता गवो ए गो सरिखो गवयनुं ज्ञान थयुं ते उपमान प्रमाण कहियें।

यथार्थ भावनो उपदेशक जे पुरुष ते आप्त कहियें। ते उत्कृष्ट आप्त वीतराग रागद्वेषरहित सर्वज्ञ केवलज्ञानी। ते आप्तनो कह्यो जे वचन तेने आगम कहियें। जे राग, द्वेष तथा अज्ञान ए दोषे आघोपाछो, अधिकोओछो बोलाय छे ते आगम नही। अने राग, द्वेष, भय, अज्ञान रहित जे अरिहंत तेनुं वचन ते आगम प्रमाण जाणवो।

तथा वली अरिहंतना वचनने अनुयायी पूर्वापर अविरोधि मिथ्यात्व, असंयम, कषायथी रहित ते भ्रांति विना स्याद्वाद युक्त तथा जे साधक ते साधक, बाधक ते बाधक, हेय ते हेय, उपादेय ते उपादेय, इत्यादिक वहेचण सहित जे होय तेनो कह्यो ते आगमप्रमाण जाणवो। उक्तं च-

सुत्तं गणहररइयं, तहेव पत्तेयबुद्धरइयं च।
सुअकेवलिणा रइयं अभिन्नदसपुव्विणा रइयं॥ (द्वा.प.कु.२०)

इत्यादिक सदुपयोगी भवभीरु जगत् जीवोना उपकारी एवा श्रुत आम्नायधर जे श्रुतने अनुसारे कहे तेनो वचन पण प्रमाण मानवुं।

तथा कोइक फलरूप लिंगे करीने जे अजाण्या पदार्थनो निर्धार करियें ते अर्थापत्ति प्रमाण कहियें। जेम देवदत्तनो पीन कहेता पुष्ट शरीर छे पण ते देवदत्त दिवसनो जमतो नथी तेवारे अर्थापत्तिथी जाणीयें जे रात्रे जमतो हशे माटे पुष्ट शरीर छे। एम अर्थापत्ति प्रमाण जाणवो। ए प्रमाण ते जाते अनुमाननो अंश छे ते माटे श्रीअनुयोगद्वारमां प्रथम कह्यो नथी।

इहां दर्शनांतरीयो जे प्रमाण माने छे ते सत्य नथी, जेम छ प्रकारना इंद्रिय सन्निकर्षथी ऊपनो जे ज्ञान तेने नैयायिक प्रत्यक्ष प्रमाण कहे छे, अने परब्रह्मने इंद्रिय रहित माने छे ज्ञानानंदमयी माने छे तेवार(रें) इंद्रिय रहित ज्ञान ते अप्रमाण थाय छे। इत्यादिक अनेक युक्ति छे ते माटे ते प्रमाण नही। तथा चार्वाक मतवाला मात्र एक इंद्रियप्रत्यक्षनेज प्रमाण माने छे। एम दर्शनांतरीयना अनेक विकल्प टालीने सर्व नय निक्षेप सप्तभंगी स्याद्वादयुक्त जे वस्तु जीव तथा अजीवनो सम्यग्ज्ञान जेनामां होय तेने सम्यग्ज्ञानी कहियें। ए ज्ञाननुं स्वरूप कह्युं।

[७१] तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। यथार्थहेयोपादेयपरीक्षायुक्तज्ञानं सम्यग्ज्ञानम्। स्वरूपरमणपरपरित्यागरूपं चारित्रम्। एतद्रत्नत्रयीरूपमोक्षमार्गसाधनात्साध्यसिद्धिः। इत्यनेनात्मनः ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षण एवात्मा।

छद्मस्थानां च प्रथमं दर्शनोपयोगः केवलिनां प्रथमं ज्ञानोपयोगः पश्चाद्दर्शनोपयोगः। सहकारिकर्तृत्वप्रयोगाद् उपयोगसहकारेणैव शेषगुणानां प्रवृत्त्यभ्युपगमाद्। इत्येवं स्वतत्त्वज्ञानकरणे स्वरूपोपादानं तथा स्वरूपरमणध्यानैकत्वेनैव सिद्धिः।

[७१] अर्थ- हवे श्रीवीतरागना आगमथी जाण्यो जे वस्तु स्वरूप तेने हेयोपादेयपणे निर्धार करवो ते सम्यग्दर्शन कहियें। तिहां तत्त्वार्थने विषे कह्यो छे के जे-***तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।*** (त.सू.१.२) उक्तं च उत्तराध्ययने-

जीवाजीवा य बंधो पुन्नं पावासवो तहा। संवरो निज्जरा मुक्खो संति एतिहिया नव॥

तिहियाणं तु भावाणं सब्भावे ऊवएसणं। भावेण सद्दहंतस्स सम्मत्तं ति वियाहियं॥

इत्यादिक देशरुचिथी सर्व जाणवुं जे तत्वार्थ जीवादि पदार्थनो श्रद्धान निर्धार ते सम्यग्दर्शन कहियें, अने जे सम्यग्दर्शन ते धर्मनुं मूल छे। तथा जे हेय ते तजवा योग्य, अने उपादेय ते ग्रहण करवा योग्य, एहवी परीक्षा सहित जे जाणपणो ते सम्यग्ज्ञान छे। जेमां हेयोपयोग संकोच अकरण बुद्धि नथी; पण उपादेयने उपयोगें एहवी चितवणा थाय जे हवे किवारे करुं? ए विना केम चाले? एहवी जो बुद्धी नथी तो ते संवेदन ज्ञान छे तेथी संवर कार्य थाय एवो निर्धार नथी। तथा स्वरूपरमण परभावरागद्वेषविभावादिकनो त्याग ते चारित्र कहियें।

ए रत्नत्रयीरूप परिणाम ते मोक्षमार्ग छे। ए मार्गने साधवाथी साध्य जे परम अव्याबाधपद तेनी सिद्धि निष्पत्ति थाय। जे आत्मानो पोतानुं रूप ते यथार्थ ज्ञान छे। तथा चेतना लक्षण तेज जीवपणो छे, अने ज्ञाननो प्रकर्ष बहुलपणो ते आत्माने लाभ छे।

ज्ञान तथा दर्शननो उपयोग लक्षण आत्मा छे। तिहां छद्मस्थने प्रथम दर्शनोपयोग पछे ज्ञानोपयोग छे, अने केवलीने प्रथम ज्ञानोपयोग पछे दर्शनोपयोग छे। जे सर्व जीव नवो गुण पामे तेनो केवलीने ज्ञानोपयोग ते कालें थाय ते माटे प्रथम ज्ञानोपयोग वर्ते।

अने सहकारी जे कर्तृताशक्ति ते जेम हतो तेमज छे। एक गुणने साह्य करे अने बीजा गुणनो उपयोग सहकारें वर्ते छे। सहकार ते ज्ञानोपयोग विशेष धर्मने जाणे ते जाणतां विशेष ते सामान्यने आधारे वर्ते छे ते सहित जाणे एटले विशेष ते भेला सामान्य ग्रहवाणा अने सामान्य ग्रहतां सामान्य ते विशेषताजन (विशेष ते ज्ञान) कहेतां सहित जाणे ते माटे सर्वज्ञ सर्वदर्शीपणो जाणवो।

ए रीते स्वतत्त्वनुं ज्ञान करवुं। तेथी स्वधर्मनो उपादान कहेता लेवापणुं थाय, पछे स्वरूपने पामवे स्वरूपमां रमण थाय, ते रमण थकी ध्याननी एकत्वता थाय, एटले निश्चें ज्ञान, निश्चें चारित्र, तथा निश्चें तपपणो थाय। जे थकी सिद्धि कहेता मोक्ष निपजे ए सिद्धांत जाणवो।

[७२] तत्र प्रथमतो ग्रन्थिभेदं कृत्वा शुद्धश्रद्धानज्ञानी द्वादशकषायोपशमः, स्वरूपैकत्वध्यानपरिणतेन क्षपकश्रेणीपरिपाटीकृतघातिकर्मक्षयः, अवाप्तकेवलज्ञानदर्शनः, योगनिरोधाद् अयोगीभावमापन्नः, अघातिकर्मक्षयानन्तरं समय एवास्पर्शवद्गत्या एकान्तिकात्यन्तिकानाबाधनिरूपाधिनिरुपचरितानायास- विनाशिसम्पूर्णात्मशक्तिप्राग्भावलक्षणं सुखमनुभवन् सिद्ध्यति साद्यनन्तकालं तिष्ठति परमात्मा इति। एतत् कार्यं सर्वं भव्यानाम्।

[७२] अर्थ- ते प्रथम ग्रंथिभेद करीने शुद्धश्रद्धावान् तथा शुद्ध ज्ञानी जे जीव ते प्रथम त्रण चोकडीनो क्षयोपशम करीने पाम्यो जे चारित्र ते ध्यानें एकत्व थइने क्षपकश्रेणि मांडी अनुक्रमे घातिकर्म क्षय करीने केवलज्ञान केवलदर्शन पामे। पछे ए सयोगी गुणठाणे जघन्यथी अंतर्मुहूर्त अने उत्कृष्टो आठ वरस उणा पूर्वकोडी रहीने कोइक केवली समुद्घात करे, कोइक केवली समुद्घात न करे; पण आवर्जिकरण सर्व केवली करे।

ते आवर्जिकरणनुं स्वरूप कहे छे। इहां आत्मप्रदेशे रह्या जे कर्मदल ते पहेला चले छे, पछे उदीरणा थाय छे, पछे भोगवी निर्जरे छे। तिहां केवलीने जिवारे तेरमे गुणठाणे अल्पायु रहे तिवारें आवर्जिकरण करे छे। ते आत्मप्रदेशगत कर्मदलने प्रतिसमयें असंख्यातगुण निर्जरा करवी छे तेटला दलने आत्मवीर्ये करीने सर्व चलायमान करी मूके एवुं जे वीर्यनुं प्रवर्तन ते आवर्जिकरण कहियें। एम करतां त्रण कर्मदल वधतां रह्या तो समुद्घात करे नहीतो न करे, ते माटे आवर्जिकरण सर्व केवली करे।

पछे तेरमा गुणठाणाने अंते योगनो रोध करीने अयोगी अशरीरी, अनाहारी अप्रकंप घनीकृत आत्मप्रदेशी थको, पांच लघु अक्षर जेटलो काल अयोगीगुणठाणे रहीने शेषसत्तागत प्रकृति वेद्यमान तथा अवेद्यमानस्तिबुक संक्रमें सत्ताथी खपावी, सकल पुद्गल संगपणाथी रहित थयी, तेहिज समयें आकाश प्रदेशनी बीजी श्रेणिने अणफरसतो थको लोकांते सिद्ध, कृतकृत्य, संपूर्णगुणप्राग्भावी, पूर्ण. परमात्मा, परमानंदी, अनंत केवलज्ञानमयी, अनंत दर्शनमयी, अरूपी सिद्ध थाय। उक्तं च उत्तराध्ययने-

कहि पडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धा पइट्ठिया। कहि बोंदि चइत्ताणं कत्थ गंतूण सिज्झई॥(१४१०)

अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया। इह बोंदि चइत्ताणं तत्थ गंतूण सिज्झई॥ (१४११)इत्यादि।

ते सिद्ध एकांतिक, आत्यंतिक, अनाबाध, निरूपाधि, निरूपचरित, अनायास, अविनाशी, संपूर्ण आत्मशक्ति प्रकटरूप सुखप्रते

अनुभवे। अव्याबाध सुख ते प्रदेशें प्रदेशें अनंतो छे। उक्तं च उव्ववाइसूत्रें-

सिद्धस्स सुहोरासि सव्वद्धा पिण्डियं जह वज्जा। सोणंतवग्गो भइयो सव्वागासे न माइज्जा॥ *इति* वचनात्। ए रीतें परमानंद सुख भोगवता रहे छे। सादि अनंतकाल पर्यंत परमात्मापणे रहे छे। तो एहिज कार्य सर्व भव्यने करवो। ते कार्यनो पुष्ट कारण श्रुताभ्यास छे। ते श्रुताभ्यास करवा माटे ए द्रव्यानुयोग नय स्वरूप लेशथी कह्यो। ते जाणपणो जे गुरुनी परंपराथी हुं पाम्यो ते गुर्वादिकनी परंपराने संभारुं छुं।

(काव्य)

गच्छे श्रीकोटिकाख्ये विशदखरतरे ज्ञानपात्रा महान्तः,
सूरिश्रीजैनचन्द्रा गुरुतरगणभृत्शिष्यमुख्या विनीताः।
श्रीमत्पुण्यात्प्रधानाः सुमतिजलनिधिपाठकाः साधुरङ्गाः,
तच्छिष्याः पाठकेन्द्राः श्रुतरसरसिका राजसारा मुनीन्द्राः॥१॥(शार्दूलविक्रीडितम्)
तच्चरणाम्बुजसेवालीनाः श्रीज्ञानधर्मधराः। तच्छिष्यपाठकोत्तमदीपचन्द्राः श्रुतरसज्ञाः॥२॥(आर्या)
नयचक्रलेशमेतत्तेषां शिष्येण देवचन्द्रेण। स्वपरावबोधनार्थं कृतं सदभ्यासवृद्ध्यर्थम्॥३॥
शोधयन्तु सुधियः कृपापराः शुद्धतत्त्वरसिकाश्च पठन्तु ।
साधनेन कृतसिद्धिसत्सुखाः परममङ्गलभावमश्नुते॥४॥

॥इति श्रीनयचक्रविवरणं समाप्तम्॥

(दोहा)

सुक्ष्मबोध विणु भविकने, न होये तत्त्व प्रतीत। तत्त्वालंबन ज्ञान विण, न टले भवभ्रमभीत॥१॥
तत्त्व ते आत्मस्वरूप छे, शुद्धधर्म पण तेह। परभावानुगत चेतना, कर्मगेह छे एह॥२॥
तजी परपरिणतिरमणता, भज निजभाव विशुद्ध। आत्मभावथी एकता, परमानन्द प्रसिद्ध॥३॥
स्याद्वाद गुणपरिणमन, रमता समतासंग। साधे शुद्धानंदता, निर्विकल्प रसरंग॥४॥
मोक्षसाधन तणु मूल ते, सम्यग्दर्शनज्ञान। वस्तुधर्म अवबोध विणु, तुसखंडन समान॥५॥
आत्मबोध विणु जे क्रिया, ते तो बालकचाल। तत्त्वार्थनी वृत्तिमें, लेजो वचन संभाल॥६॥
रत्नत्रयी विणु साधना, निष्फल कहा सदैव। लोकविजय अध्ययनमें, धारो उत्तमजीव॥७॥
इंद्रिविषय आसंसना, करता जे मुनिलिंग। खूता ते भवपंकमें, भाखे आचारांग॥८॥
इम जाणी नाणी गुणी, न करे पुद्गल आस। शुद्धात्मगुणमें रमे, ते पामे सिद्धिविलास॥९॥
सत्यार्थ नयज्ञान विनुं, न होये सम्यग्ज्ञान। सत्यज्ञान विणु देशना, न कहे श्रीजिनभाण॥१०॥
स्याद्वादवादी गुरु, तसु रस रसिया शिष्य। योग मिले तो निपजे, पूरण सिद्ध जगीस॥११॥
वक्ता श्रोता योगथी, श्रुतअनुभव रस पीन। ध्यानध्येयनी एकता, करता शिवसुख लीन॥१२॥
इम जाणी शासनरुचि, करजो श्रुतअभ्यास। पामी चारित्रसंपदा, लेहेसो लीलविलास॥१३॥
दीपचंद्र गुरुराजने, सुपसायें उल्लास। देवचंद्र भविहितभणी, कीधो ग्रंथ प्रकाश॥१४॥
सुणसे भणसे जे भविक, एह ग्रंथ मनरंग। ज्ञानक्रिया अभ्यासतां, लहेशे तत्त्वतरंग॥१५॥
द्वादसार नयचक्र छे, मल्लवादिकृत वृद्ध। सप्तशति नय वाचना, कीधी तिहां प्रसिद्ध॥१६॥
अल्पमतिना चित्तमें, नावे ते विस्तार। मुख्यथूलनयभेदनो, भाख्यो अल्प विचार॥१७॥
खरतर मुनिपति गच्छपति, श्रीजिनचंद्रसूरीश। तास शिष्य पाठकप्रवर, पुन्यप्रधान मुनीश॥१८॥
तसु विनयी पाठकप्रवर, सुमतिसागर सुसहाय। साधुरंग गुणरत्ननिधि, राजसार उवज्झाय॥१९॥
पाठक ज्ञानधर्म गुणी, पाठक श्रीदीपचंद। तास शीष्य देवचंद्र कहे भणतां परमानंद॥२०॥

॥इति श्रीनयचक्रविवरणं समाप्तम्॥

नवमं परिशिष्टम्

सङ्क्षेपसूचिः

संक्षेप	कृति का नाम
अ.द्वा.सू.	अनुयोगद्वारसूत्र
अ.सू.	अष्टाध्यायी सूत्रपाठ
आ.नि.	आवश्यक निर्युक्ति
उ.सू.	उत्तराध्ययनसूत्र
का.	कारिकावली
त.सू.	तत्त्वार्थसूत्र
त.सू.भा.	तत्त्वार्थसूत्रभाष्य
त.सू.भा.सि.	तत्त्वार्थसूत्रभाष्यसिद्धसेनीयटीका
द्वा.प्र.कु.	द्वादशाङ्गीपदप्रमाणकुलक
न.	नयामृतम्
न.च.सा.	नयचक्रसार
न.प्र.	नवतत्त्वप्रकरण
न्या.सू.	न्यायसूत्र
प.का.	पंचास्तिकायसार
प्र.न.त.	प्रमाणनयतत्त्वालोक
प्र.न.त.अव.	प्रमाणनयतत्त्वालोकावचूरि
भ.सू.	भगवतीसूत्र
वा.प.	वाक्यपदीय
वि.आ.भा.	विशेषावश्यकभाष्य
वी.स्तो.	वीतरागस्तोत्र
शं	शंका
स	समाधान
स.त.	सन्मतितर्क
सं.श.	सङ्ग्रहशतक

दशमं परिशिष्टम्
सम्पादनोपयुक्तग्रन्थसूचिः

नाम	कर्ता	सम्पादक	प्रकाशक	आवृत्ति	वर्ष
अनुयोगद्वारसूत्र		जम्बूवि.	श्रीसिद्धिभुवन मनोहर जैन ट्रस्ट, अहमदाबाद	प्रथम	ई.१९९९
अष्टसाहस्रीतात्पर्यविवरण	महोपा. यशोविजय	मु. वैराग्यरतिवि.	प्रवचन प्रकाशन, पुणे	प्रथम	ई.२००४
अष्टाध्यायीसूत्रपाठ	पाणिनी	पुष्पा दीक्षित	ज्ञानभारती पब्लिकेशन्स दिल्ली	प्रथम	ई.२००९
आगमपद्यानामकारादिक्रमेणानुक्रमणिका		मु.विनयरक्षितवि.	शास्त्रसंदेश प्रकाशन, सुरत	प्रथम	वि.सं.२०६५
आचाराङ्गसूत्र भा.१		मधुकर मु.	श्रीआगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, राजस्थान.	प्रथम	ई.१९८०
आवश्यकनिर्युक्ति		जम्बूवि.	श्रीमहावीर जैन विद्यालय, मुंबई	प्रथम	ई.१९९९
उत्तराध्ययनसूत्र		मधुकर मु., राजेंद्रमुनि शास्त्री	श्रीआगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, राजस्थान	प्रथम	ई.१९८४
कारिकावली	विश्वनाथ न्यायपंचानन	महादेव गं. बाक्रे	निर्णयसागर प्रेस, मुंबई		
काव्यप्रकाश	आ.मम्मट टीका-उपा.यशोवि.	रुद्रदेव त्रिपाठी	यशोभारती प्रकाशन, पालिताणा		
काव्यानुशासनवृत्ति	हेमचन्द्र	काशीनाथ पांडुरंग परब, वासुदेव लक्ष्मण पणशीकर	प्रवचन प्रकाशन, पुणे	द्वितीय	वि.सं.२०५८
ठाणंगसुत्तं समवायंगसुत्तं च	सुधर्मा स्वामी	जम्बूवि.	महावीर जैन विद्यालय	प्रथम	वि.सं.२०१४
तत्त्वार्थसूत्र	उमास्वाति	सुखलालजी पं.मोहनलाल मेहता	पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, बनारस	तृतीय	ई.१९७६
तत्त्वार्थाधिगमसूत्र	उमास्वाति म.	मु.प्रशमरतिवि.	रत्नत्रयी आराधक संघ, नवसारी		वि.सं.२०५२
तत्त्वार्थाधिगमसूत्र	उमास्वाति म.	हीरालाल रसिकदास	दे.ला.पुस्तकोद्धार फंड, सुरत		ई.१९३०,
नयचक्रसार (श्रीमद् देवचन्द्र भा.१)	देवचन्द्र उपा.		अध्यात्मज्ञानप्रसारकमण्डल		वि.सं.१९८५
नयामृतम्		मु.वैराग्यरतिवि.	प्रवचन प्रकाशन, पुणे	प्रथम	ई.२००२
नवतत्त्वप्रकरण		सं.+अनु.प्रवीण मोता	गीतार्थ गंगा, अमदावाद		
नवतत्त्वसाहित्यसङ्ग्रह (भा.२)			श्रीजैनग्रन्थप्रकाशकसभा		
निर्युक्तिसंग्रह	भद्रबाहुसू.	जिनेंद्रसू.	हर्षपुष्पामृत जैन ग्रंथमाला, लाखाबावळ	प्रथम	
न्यायकोश	महोपा. भीमाचार्य झालकीकर	महोपा. वासुदेव शास्त्री अभ्यंकर	भांडारकर प्राच्यविद्या संशोधन मंदिर, पुणे	चतुर्दश	ई.१९९६
न्यायदर्शन	महर्षि गौतम	तारानाथ+अमरेंद्रमोहन	मुंशीराम मनोहरलाल पब्लि., कोलकाता	द्वितीय	ई.२००३

प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारअवचूरि	देवसूरि	उ. क्षमाविजय ग.	झवेरी मोतिलाल डाह्याभाई		वि.सं.१९९४, वी.सं.२४६४
प्रशमरति	उमास्वाति म.	मु.वैराग्यरतिवि.	श्रुतभवन संशोधन केन्द्र, पुणे	प्रथम	ई.२०१५
प्राकृतपद्यानाम् अकारादिक्रमेण अनुक्रमणिका-२		पू.मु.श्री.विनयरक्षितवि	शास्त्रसंदेश, नवसारी	प्रथम	वि.सं.२०६५
बृहद् अनुवाद चन्द्रिका	चक्रधर नौटियाल हंस		मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	द्वादश	ई.२००६
भगवतीसूत्र भा. १-४		बेचरदास जीवराज	जिनागम प्रकाशक, सभा	प्रथम	वि.सं.१९७४
लेख संग्रह	महोपा. विनयसागर		रांदेर रोड जैन संघ, सुरत	प्रथम	ई.२०११, वि.सं.२०६७
वाक्यपदीय	भर्तृहरि	डॉ. जे. एम्. शुक्ल	ला.द.सं. विद्यामंदिर, अहमदाबाद	प्रथम	ई.१९८४
विशेषावश्यकभाष्य (भाषांतर)	जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण	चुनीलाल हकमचंद	आगमोदय समिति, सुरत		ई.१९२७, वि.सं.१९८२
व्याकरणमहाभाष्य	पतंजलि	प्रद्युम्न वोरा	ला.द.सं. विद्यामंदिर, अहमदाबाद	प्रथम	ई.२००४
षड्दर्शनसूत्रसंग्रह एवं षड्दर्शनविषयककृतयः		संकलन-संयमकीर्तिवि.	सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद	प्रथम	ई.२०१०, वि.सं.२०६८
संस्कृतपद्यानाम् अकारादिक्रमेण अनुक्रमणिका-३		पू.मु.श्री.विनयरक्षितवि	शास्त्रसंदेश, नवसारी	प्रथम	वि.सं.२०६५
सन्मति तर्क	सिद्धसेनसू.दि.	सुखलालजी पं,. बेचरदास दोशी	जैन श्वे.एज्युकेशन बोर्ड, मुंबई	प्रथम	ई.१९३९
सर्वदर्शन प्रवेशक		मु. वैराग्यरतिवि.	प्रवचन प्रकाशन, पुणे	प्रथम	ई.२००९
स्थानाङ्गसूत्र		जम्बूवि.	श्रीसिद्धिभुवन मनोहर जैन ट्रस्ट, अहमदाबाद	प्रथम	ई.२००२